उत्तराखण्ड में
दलित–गैर दलित संवादों
का संकलन

विषय सूची

1. विषय :– सामाजिक समता सम्मेलन, उत्तरकाशी
तिथि :– 28–30 जनवरी 2006
स्थान :– हिमालय पर्यावरण शिक्षण संस्थान मातली, उत्तरकाशी

2. तिथि : 30–1–2007
विषय : समता अभियान एवं जन घोषणा प्रक्रिया
स्थान : द्रोण होटल, देहरादून
आयोजक : उत्तराखण्ड समता आंदोलन, हिमालय स्वराज अभियान, सोशलिस्ट फ्रंट, राष्ट्र सेवा दल

3. विषयः– उत्तराखण्ड में समता आंदोलन का अस्तित्व और उसका महत्व
स्थानः– हिमालय टार्च बीयरर सैन्टर, कोठाल गेट, देहरादून
तिथिः– 14–16 अप्रैल 2007

4. उत्तराखण्ड बैठक
स्थान : गांधी शांति प्रतिष्ठान
विषयः समता रथ
तिथि–10–1–2007

5. बैठक उत्तराखण्ड
समता, राजनीति
गांधी शांति प्रतिष्ठान

6. हिमालय स्वराज अभियान दिनांक–10–11–2006
इंडिया सोशल फोरम
विषय – जातिगत व्यवस्था
स्थान – आई.एस.एफ.(जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम)

7. विषयः पर्यावरणीय लोकतन्त्र पर संवाद
दिनांक – 21 अप्रैल 2007
स्थान – शेवाप होटल अल्मोड़ा
आयोजक – हिमालय स्वराज अभियान, समता आन्दोलन, उत्तराखण्ड पानी पंचायत

विषय :– सामाजिक समता सम्मेलन, उत्तरकाशी
तिथि :– 28–30 जनवरी 2006
स्थान :– हिमालय पर्यावरण शिक्षण संस्थान मातली, उत्तरकाशी

कामेश्वर बहुगुणा – मैं संयोग से इस गोष्ठी में उपस्थित हो गया हूं। मुझे इस गोष्ठी के विषय और मंतव्य के बारे में कुछ जानकारी नहीं थी लेकिन फिर मुझे सुरेश जी से जानकारी मिली।

मित्रो! नए राज्य के रूप में उत्तराखण्ड का निर्माण हुआ। इसके पीछे शुरू से ही दो धारणायें थी, दो बातें थी। इसमें अधिकांश लोग कुछ ऐसे थे जिनको इस बात की पीड़ा थी कि देश की राजनीति में, सत्ता की राजनीति में और उसके दूसरे फलितार्थों में उनकी जो हिस्सेदारी होनी चाहिए वो नहीं हो पा रही है। यदि अपना छोटा राज्य बन जाए तो ये कमी पूरी हो जाय। इसलिए बहुत लोगों के मन में ये बात थी कि उत्तराखण्ड राज्य अलग हो। वहीं कुछ अन्य लोग भी थे जो उत्तराखण्ड को अलग राज्य बनाना चाहते थे लेकिन वे अपने लिए कुछ मांग नहीं करना चाहते थे। वे सिर्फ यही चाहते थे कि जिस तरह से एक बड़े विराट जंगल में सिर्फ एक ही आदमी अकेला पड़ जाता है उसी प्रकार से सम्पूर्ण देश में उत्तराखण्ड का हिस्सा भी अकेला ही हो गया था। इस बड़े राज्य में उनकी सुनने वाला कोई भी नहीं था वे चाहते थे कि उनका भी अपना एक छोटा राज्य हो जिसमें उनके दुख–दर्द और उनकी समस्याओं को उनकी ही भाषा में सुनने वाला भी कोई हो।

ऐसे ही दो कारणों से 1951–52 से पृथक राज्य की बात उठी थी उस समय पी.सी.जोशी, सी.पी.आई. के नेता थे। कुमाऊँ के पूरन चन्द्र जोशी राष्ट्रीय स्तर पर सी. पी.जी. के जरनल सेक्रेटरी थे। यद्यपि वो राजनीति में थे लेकिन उनके मन में सत्ता पाने की बजाय सम्पूर्ण उत्तराखण्ड का विकास था।

उत्तराखण्ड निमार्ण की प्रक्रिया के दौरान एक नारा बहुत लोकप्रिय हुआ 'आज दो अभी दो उत्तराखण्ड राज्य दो'; उस समय मेरे जैसे विजातीय तत्व भी मौजूद थे जो यह पूछ लेते थे कि भई तुम्हें राज तो चाहिए लेकिन उसके रूप–रंग के बारे में भी तो कुछ बताओ ? यह बताओ के उसका रूप–रंग कैसा होगा आदि। इसके जवाब में उन्होंने कहा कि पहले अलग राज्य तो बनने दो, उसके बाद ही हम उसके रूप–रंग के बारे में सोचेंगे। उनका यह जवाब मुझे तब भी अच्छा नहीं लगा था और आज भी अच्छा नहीं लग रहा है। 'आज दो अभी दो' के उतावलेपन में उन्होंने राज्य की जोर–शोर से मांग की और वो उनको मिल भी गया। इस बात को मैं, आपके सामने रखता हूं कि आप ही सोचकर बताइए कि हम जिस तरह का राज्य बनाना चाहते थे

वो बन गया कि नहीं बना ? या जो हम चाहते थे वो हमें मिला या नहीं इसके बारे में भी आप जरूर विचार करें।

इस बारे में मैं आपके साथ एक अन्य बात पर विचार करना चाहता हूं कि हिमालय के बहुत सारे टुकड़े हो गए और उन टुकड़ों में नागालैण्ड, कश्मीर जैसे कई छोटे–छोटे राज्य बन गए क्योंकि ये सभी लोग चाहते थे कि उनके अपने पृथक राज्य हों जिसके लिए नागालैण्ड से लेकर कश्मीर तक कई आंदोलन हुए। लेकिन यदि हम एक बात पर ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि इन छोटे राज्यों में तरक्की होने की बजाय असंतोष बढ़ा है। इससे स्पष्ट है कि छोटा राज्य बना देने से ही किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। मुझे तो यह समझ में नहीं आता कि जब पृथक राज्य के निमार्ण के बाद भी उस राज्य का कोई विकास नहीं होता तो उसे बनाया ही क्यों जाता है ? मैं पार्टी राजनीति में बिल्कुल भी विश्वास नहीं करता हूं इसलिए न तो मुझे एम.एल.ए. बनना था और न ही मंत्री फिर भी अन्य लोगों के साथ मैंने भी पृथक राज्य की कामना की। मुझसे कई लोगों ने प्रश्न किया भी कि जब आप कोई मंत्री आदि नहीं बनना चाहते हैं तो आप इस आंदोलन में शमिल क्यों हैं? तब भी मैंने यही जवाब दिया था कि हम जिस स्वतंत्र भारत की कामना करते थे जिसमें केवल हमारा ही अधिकार होगा तो हम लोग उसी सपने को इस धरती पर सत्य होता हुआ देखना चाहते थे। मुझे भी यही लग रहा था कि छोटा राज्य होने से हमें अधिक सुविधा मिलेगी इसलिए मैंने भी पृथक राज्य की मांग रखी।

हम सबने मिलकर उत्तराखण्ड के विकास के लिए पृथक राज्य के लिए आंदोलन किए और हमें वह मिल भी गया लेकिन आज भी हमें वो सुविधाएं नहीं मिल पायी हैं। अभी कुछ दिन पहले मैंने सरकार की एक रिपोर्ट के बारे में सुना जिसमें यह कहा गया कि पिछले ढ़ाई साल से यहां अपराध बढ़े हैं और उसके साथ–साथ जनता के बीच असंतोष भी बढ़ा है। खुद सरकार भी यह मानने लगी है कि नागालैण्ड, मिजोरम, अरूणाचल आदि राज्यों में असंतोष और हिंसा बढ़ रही है। मुझे लगता है कि यदि इसी तरह की हिंसा उत्तराखण्ड में भी बढ़ने लगे तो इससे हिन्दुस्तान का विनाश होना अवश्यंभावी है क्योंकि उत्तराखण्ड एक लघु भारत है, समेचे हिमालयी क्षेत्र में उसका एक विशिष्ट स्थान है। वह भारत की संस्कृति, धर्म, परम्परा का इतिहास स्रोत है। आज उत्तराखण्ड या मध्य हिमालय में उत्तराखण्ड की जो स्थिति है वो समूचे हिमालय में किसी भी राज्य की नहीं है। इस प्रकार हिमालय में पैदा होने वाली परिस्थितियों से न केवल उत्तराखण्ड बल्कि सम्पूर्ण भारत पर असर पड़ने वाला है। हम सबको इस बात पर विचार करना चाहिए।

दूसरी बात यहाँ का समाज। उत्तराखण्ड का समाज भारत के अन्य समाजों की तरह परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों, अंधविश्वासों और सरलता से बना समाज है।

सरलता का समाज है लेकिन उसमें एक अंतर है इसके बारे में मैंने इंदोर से निकलने वाली पत्रिका 'नई दुनिया' में राजेन्द्र माथुर के एक लेख 'हिमालय संस्कृति' में पढ़ा कि हिमालय की संस्कृति एक विशिष्ट तरीके की संस्कृति है। जैसे देश के अन्य राज्यों में अधिकतर लोगों को एक-दूसरे से कोई मतलब नहीं होता और न ही वे एक दूसरे के बारे में जानना ही चाहते हैं। लेकिन किसी भी पहाड़ी इलाके में देख लो वहां किसी भी मनुष्य को देखते ही उसके साथ संबध कायम करने की इच्छा होती है। वहां प्रत्येक मनुष्य के मन में किसी भी आदमी के सुख-दुःख में भागीदारी की भावना है। जो कि मैदानों में कम ही देखने को मिलेगी। हमारा यह पहाड़ी इलाका सीमान्त का इलाका है; फिर चाहे वो पहाड़ का सीमान्त हो या कि मैदान का सीमान्त वह हमेशा ही संवेदनशील होता है। ऐसा समाज बाघ और बकरी के मिश्रण स्वभाव से बना होता है। वहां के लोगों का स्वभाव बहुत ही नम्र होता है, आप चाहे उसे कितना ही सताओ वह सहन करने की पराकाष्ठा तक सहनशील होता है लेकिन यदि वह किसी बात पर बिगड़ गया तब वह बाघ की तरह हिंसक हो जाता है। इस प्रकार से हमें इस प्रकार के समाज को विकसित करने के लिए पृथक उत्तराखण्ड राज्य की आवश्यकता थी।

हमने पृथक उत्तराखण्ड राज्य तो बना दिया लेकिन हमें लगता है कि वो अपने लक्ष्यों से भटक गया है। उत्तराखण्ड में दलितों का प्रश्न अन्य राज्यों की अपेक्षा भिन्न है। यहां जातिगत भिन्नतायें हैं लेकिन उनमें जो कट्टरपना था वो समाज के अन्य भागों की तरह विभाजक नहीं था लेकिन अब धीरे-धीरे उस समाज में भी वो विभाजक रेखाएं समाती जा रही हैं। साम्राज्यवादियों ने हिन्दुस्तान को कमजोर करने के लिए कई तरह के तरीके अपनाए। हमारे पुखरे अपने-आपको बहुत अक्लमंद मानते थे और ये बात सत्य है कि वे कुछ मामलों में अक्लमंद थे भी लेकिन उनमें कुछ मुर्खताएं भी शामिल थीं जिसके कारण देश में समाज को बांटने का प्रयास होता रहा और यह काम राज्य को दे दिया गया। इस देश में राज्य और परंपरा का यह गठजोड़ महाभारत के जमाने से शुरू हुआ था और वो अभी तक भी कायम है।

इस देश में कुछ लोगों ने देश तथा समाज को धर्म, जाति, आस्था, पूजा और लिंगों के नाम पर बांटने का धंधा शुरू किया है। इस समाज में धर्मदर्शन का बहाना बनाकर समाज में विभाजक रेखाएं खींचने की कोशिश की गई। लेकिन आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि हमारे किसी भी दर्शन ग्रन्थ में इस विभाजन की स्वीकृति कहीं पर भी नहीं मिलेगी। उदाहरण के लिए वेदान्त में कहीं पर भी जातिगत विचारों का कोई स्थान नहीं है। वहाँ तो मनुष्य मात्र ब्रह्मा का रूप है लेकिन व्यवहार में ऐसा कुछ भी नहीं है। इस देश में जाति के नाम पर छुआछूत के नाम पर लोगों को बांटा ही नहीं बल्कि तिरस्कृत किया गया और इस तिरस्कार की कोई सीमा नहीं है। जिन लोगों के पास इस बारे में कोई अनुभव नहीं हैं या जिन्होंने इस बारे में अध्ययन नहीं

किया वे तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। वो एक बहुत ही बड़ा कलंक था जिसे हम आज तक नहीं धो पाये हैं। उस कलंक को धोना जरूरी है। ये सही है कि काफी मात्रा में वो कम हो गया है लेकिन फिर भी वो आज भी मौजूद है। यदि मैं बहुगुणा जी की बात कहूँ तो ये अपने आपको बहुत बड़ा समझते हैं वे सोचते हैं कि सबसे ऊपर ब्रह्मा हैं और उसके बाद दूसरे नंबर पर ये बहुगुणा लोग ही हैं। इन्हें अपने तथा अपनी जाति के बारे में बहुत घमण्ड है। हालाँकि वो इसके काबिल नहीं हैं। जब हम लोग 15–16 साल के थे तभी हमें लगा कि हमें इस मूर्खता से छुटकारा पाना चाहिए इसलिए हमने कभी भी उस तर्क को माना ही नहीं।

मैंने अपना सार्वजनिक जीवन टिहरी की भंगी बस्ती से शुरू किया। उस समय मैं टिहरी में पढ़ता था, उनकी पाठशाला लगाता था। इसलिए आज मैं जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, लिंग के नाम पर, मनुष्य–मनुष्य में भेद नहीं करता। मैं मंदिर, मस्जिद तथा गिरजाघरों में जाता हूं और वहां की रीतिनुसार पूजा अर्चना करता हूं। वास्तव में मैंने अपनी पढ़ाई बनारस से की। लेकिन मैंने वर्षों तक गंगास्नान नहीं किया। खैर मैं ये कहना चाहता हूँ कि इस सवाल को राजनैतिक, सामाजिक सरोकारों से अलग करके मत करिये। आपको समाज को बाँटने का काम करने वाले लोगों से अलग हो जाना चाहिए। यदि आपके समाज में किसी भी प्रकार का वैचारिक झंझट कायम है तो आप गाँव–समाज में समरसता का काम नहीं कर सकते। आपको अपने विचारों को पक्का कर लेना चाहिए ताकि किसी भी प्रकार का विचार आपकी इस मनःस्थता को न डिगा सके कि परमात्मा ने मनुष्य–मनुष्य में कोई अन्तर नहीं बनाया है। और जो भी आदमी अपने को ऊँचा, और अन्य लोगों को नीचा मानता है वो मनुष्य होने के काबिल नहीं है। मनुष्य की मनुष्यता का अर्थ है कि जैसा मैं हूं आप भी वैसे ही हैं। भले ही आपका रंग अलग हो, अलग–अलग जलवायु में रहने के कारण हमारा खाना और रहन–सहन और हमारी भाषा अलग हो लेकिन मूलतः आप और हम एक ही हैं। हमारा शरीरधर्म एक है। यदि किसी बात से मुझे प्रसन्नता या दुख होता होगा तो उसी बात से आपको भी ऐसा ही महसूस होगा। इसीलिए मौलिक एकता कुदरत का नियम है। यदि उसमें भिन्नता पैदा होती है तो वो बनावटी हैं। एक भिन्नता ऐसी है कि जो चुभती है। एक भिन्नता ऐसी है कि वो कुदरती कारणों से पैदा हो गयी है वो चुभती नहीं है। दार्शनिक स्तर पर आपका विचार ये स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आप विशिष्ट हैं, पवित्र हैं। विभाजक काम करने अर्थात धर्म के नाम पर बांटने में आपकी भागीदारी खत्म हो जानी चाहिए। मुझे तो ये लगता है कि सभी धर्मों में से कोई भी धर्म अच्छा नहीं है क्योंकि कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसने मानव जाति को एक किया हो। (कृपया करके मेरी बात को दूसरे ढंग से मत सोचिए) धर्म और मूल विचार में जो दर्शन है उसे आध्यात्म कहते हैं और उसमें फर्क होता है। सारे धर्मों का मूल एक ही है

लेकिन कर्मकाण्ड अलग–अलग हो गए हैं, मुझे लगता है कि हमें इस तरह के कर्मकाण्डों की आवश्यकता नहीं है। यदि आप दर्शन का अध्ययन करें तो आपको पता चलेगा कि दुनिया भर में धर्म है ही नहीं। वो केवल एक ही है चाहे आप उसे मनुष्यता का नाम दें या मानव धर्म का। कुरान में हजरत मुहम्मद कहते हैं कि 'भई, मैंने तुम्हें कुरान दी है और मैं अरबी भाषा में बोलता हूं इसलिए मैंने कुरान को अरबी भाषा में दिया है इसलिए मैंने अरबी भाषा में जो बात कही है वो बिल्कुल वैसी ही है जैसे कि पुराने कवियों ने अपनी कविताओं में कहा है। जैसे कुरान अपनी बात करता है वैसे ही गीता भी अपनी बात कहती है।'

मैं समझता हूं कि हिन्दू धर्म के लोग चुटिया और जनूऊ रखते हैं लेकिन वो धर्म नहीं है। मैं, जनेऊ पहन रहा हूँ तो वो धर्म नहीं है। मेरा धर्म वो है जो मेरी आत्मा का गुण है। मैं चाहता हूँ कि आप सब मेरा सम्मान करेंगे और मुझे लगता है कि आप भी ऐसा ही चाहते होंगे। यदि आपने मुझे कोई अपशब्द कहा तो उससे मुझे अपमान का एहसास होता है। आत्मा और आत्मा का जो तादात्मय है वो धर्म तो स्वभाव गुण है। जैसे पानी का स्वभाव बहना है, आग का जलना है। गुण–धर्म को पहचानिये और उसका सम्मान करना सीखिए। उसको पोषण देना सीखिए। जो गुण– धर्म आपका है वो बढ़े यही विकास है। मैं जिस दवाई को बीमारी में खाता हूं, वही बीमारी होने की स्थिति में वो दवाई अन्य लोगों के भी काम आ सकती है।

इस प्रकार संसार भर में जैविक दृष्टि से मनुष्य–मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। किसी पोथी या किताब में लिखी हुई बातों को ही सच मत मानिए। मेरे हिसाब से सच यह है कि उस व्यक्ति को दलित कहते हैं जो अपने–आप पर भरोसा नहीं करता, जिसको अपने मान–सम्मान का भाव नहीं है, जो दबा हुआ है। रोजी–रोटी के कारण दबा है, उसकी बुद्धि का विकास कम हुआ इसलिए दबा है। और ये बात, सच है लोगों को दबाया गया है। लोग बढ़ें नहीं। इनकी बुद्धि का विकास न हो। इनकी रोजी–रोटी इनके हाथ में न रहे।

जब व्यक्ति में आत्मरक्षा का भय पैदा होता तो वह दब जाता है। आज भी भारत में करोड़ों लोग हैं जिनकी रोजी–रोटी उनके हाथ में नहीं है। उनकी विवशता दूर करने का प्रयास करना हमारा कर्तव्य है जो कि हमारा धर्म है। किसी भी आदमी पर दया मत करो और लोगों पर दया कर दानदाता बनने की कोशिश न करो। कुछ लोगों का स्वार्थ यह है कि दुनिया में लोग दबे रहें। अगर लोग दबे न रहें तो उन्हें दान करने का मौका कहाँ मिलेगा। मदर टेरेसा के देहान्त के बाद शायद उनकी एक बहन सन्त हो गईं। एक बार मैंने उनका एक भाषण सुना उसमें एक बात मुझे आज भी याद है। शायद उन्हें ये सब बातें सहज रूप में सिखायी जाती हों लेकिन उन्होंने कहा कि परमात्मा की दया है कि आज हम ऐसे समाज में पैदा हुए हैं कि हमको सेवा करने

का मौका मिला वरना आजकल सेवा करने का मौका कहाँ मिलता ? इसका मतलब ये हुआ कि आज भी हमारे समाज में कुछ ऐसी व्यवस्थायें मौजूद हैं कि हम दानशील कहे जायें, हम धर्मात्मा कहे जायें। हमें इसके खिलाफ बगावत करना है ये बगावत हमें गाँधीजी ने सिखायी थी। दलितों की बात करते हैं तो गाँधीजी का योगदान अपूर्व है। उन्होंने कहा कि दया–धर्म करने का ढोंग भी मत करो, लोगों का हक लोगों को ही मिलना चाहिए और आज की राजनीति को बदले बगैर आप गरीबों का उद्वार नहीं कर सकते।

पुराने समय के लोग यह चाहते थे कि समाज में सभी मनुष्य आपस में आहार–व्यवहार न कर सकें इसके लिए समाज में जाति का भेदभाव कायम किया गया, जाति के भेदभाव के आधार पर ही अर्थव्यवस्था और राजनीति को भी ढ़ाल दिया गया। मुझे लगता है कि जब तक आप इस राजनीति को या तथाकथित धर्म नीति को नहीं त्यागते तब तक दलितों, कमजोरों, पीड़ितों का किसी भी प्रकार से भला नहीं कर पाएंगे। इसलिए मैं ये कहना चाहता हूं कि ये उत्तराखण्ड का बड़ा प्रश्न है। आप इस समाज में उन्हें बराबरी का हक दिलाकर उनपर कोई अहसान नहीं कर रहे हैं। ये उनका हक है और यदि उन्हें उनका हक नहीं मिला तो उत्तराखण्ड टूट जायेगा। और उसे टूटना भी चाहिए क्योंकि जिस समाज में प्रत्येक सदस्य को सम्मानपूर्वक जीने का हक नहीं है उस समाज को जीवित रहने का कोई हक नहीं है।

हमने उत्तराखण्ड को एक पृथक राज्य बनाने की मांग की उसके पीछे भी यही भावना थी कि उत्तराखण्ड का एक सजातीय समाज बने। सजातीय समाज उसे कहते हैं जिसमें भावनाओं की एकता हो, आहार–व्यवहार, सुख–दुःख, के कामों में समता हो। जिस स्थान पर हम रहते हैं उस स्थान के प्रति हमारे मन में ममत्व हो। यदि हम सब लोग आपस मे समरस हो जाएं तो समाज में प्राचीन काल से चले आ रहे जातिगत या भाषागत विभेदों को भी दूर किया जा सकता है। अभी कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि हमारी भाषा अन्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसी कारण हमारे देश में भाषा के विदेशीपन को जबरदस्ती गले मढ़ा जा रहा है। कुछ लोग अन्य भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी को श्रेष्ठ मानते हैं लेकिन ध्यान से सोचें तो क्या अंग्रेजी बोलने मात्र से ही समाज में गिरा हुआ आदमी उठ सकता है ? क्या समाज का दुख और अलगाव उससे खत्म हो सकता है ?

इसलिए हमें जाति के साथ–साथ भाषा के मोर्चे पर भी काम करना पड़ेगा। नहीं तो अन्य लोगों के अलावा खुद हमारे देश के लोग और राजनीतिज्ञ भी इस बात से लाभ उठाते रहेंगे, इसका एक जीवंत उदाहरण अर्थनीति के मोर्चे पर आरक्षण की बात है। लोग हर जगह आरक्षण की बात उठाते हैं और राजनीति वाले तो अपने लाभ के लिए उस सवाल को बराबर जीवंत रखना चाहते हैं। ये सभी काम विंदेश्वरी प्रसाद

मण्डल के नेतृत्व में चले थे। आपको पता ही होगा कि अपने देश में घरेलू चीजों को बनाने या कपड़े बुनने, जूते बनाने, लकड़ी बनाने, मकान बनाने या धार्मिक स्थलों पर छोटे–मोटे काम करने वालों को हमारे पूर्वजों ने शूद्रों की श्रेणी में डाला। इस तरह से वे सामाजिक और आर्थिक रूप से गरीब थे लेकिन अपनी रोजी–रोटी का प्रबंध स्वंय कर लेते थे। आरक्षण के नाम पर आपने कहा कि इन जाति के लोगों को प्रधान बना दो, एम.पी., एम.एल.ए., मंत्री बना दो। इनमें से कुछ लोग तो बन भी गए लेकिन बाकी बचे हुए लोग लाखों करोड़ों लोग जिन धंधों से अपनी रोजी–रोटी चलाते थे उन धन्धों को तुमने खत्म कर दिया। आज हम विदेशी कंपनियों में बनने वाले सामान का प्रयोग करते हैं। हम समाजवाद का नारा लगाते हैं और जूता 'बाटा' और 'टाटा' का पहनते हैं। आजकल बाजार में फॉस्ट फूड कंपनियां आ गई हैं। वे आपको बना–बनाया सामान देंगी। अब सरकार भारत निर्माण योजना बना रही है। जिसमें गाँव के किसान का खेत भी अब विनिवेश वालों के पास चला जायेगा। इस तरह से समाज के राजनेता काम तो इस तरह का करते हैं और नारे लगाते हैं समानता के।

इसलिए गाँधीजी जैसे आदमी ने स्वदेशी का नारा दिया था। स्वदेशी का मतलब था कि यदि हमने अपने पड़ोसियों का ख्याल किया होता, पड़ोसियों का सामान खरीदने व इस्तेमाल करने की अर्थनीति, समाजनीति बनायी होती तो आज बेकारी न बढ़ी होती गाँव के काम धन्धे खत्म न हुए होते। इसलिए आरक्षण का मुद्दा यहाँ टकरा जाता है। यदि आरक्षण के माध्यम से हमारा एक भाई मंत्री भी बन गया तो उससे सारी जाति का उद्धार तो होने वाला नहीं है, उससे सारी कौम की पीड़ा खत्म नहीं हो सकती। ये तो हमें बरगलाने का एक झुनझुना मात्र है। मेरी बातों का गलत अर्थ न निकालें, मैं ये नहीं कह रहा कि आपको मंत्री नहीं होना चाहिए। यदि आप मंत्री बनना चाहते हैं तो जरूर बनिये। लेकिन बुनियादी बात यह नहीं कि आप राजनीति में मंत्री हो गये। बुनियादी बात ये है कि दूसरे की कृपा पर रहने की जो आपकी विवशता है, कम से कम वो तो न हो। लेकिन वो विवशता हो रही है। गांव का धन्धा खत्म न हो इसके लिए आप क्या कर रहे हैं ? आरक्षण का प्रश्न रोजी–रोटी के साथ, स्वदेशी के साथ और ग्रामाद्योगों के साथ जुड़ा हुआ है इन सवालों पर आपको सोचना चाहिए। आपकी संस्था यह तय कर ले कि आपने परम्परागत धन्धों को किस तरह से पुनर्जीवित करना है ?

अब अन्तिम बात कहना चाहता हूं। अगर आप राजनीति को ऐसे ही चलने दें तो इस राजनीति से कभी भी गरीबों और दलितों का उद्धार नहीं हो सकता क्योंकि ये दलितों के उद्धार के लिए बनी ही नहीं हैं। ये राजनीति समाज के हित के लिए नहीं बनी है, ये तो लोगों को बरगलाने और परस्पर तकरार पैदा करने के लिए बनायी गयी है ये विदेश से आयी है, ये हिन्दुस्तान के इतिहास और परम्परा के विपरीत है। इसलिए

इस राजनीति को तिलांजलि देनी पड़ेगी। गांधी जी ने 1909 में हिन्द स्वराज में इसका उल्लेख किया था और यदि हम लोगों ने इस देश में गांधी को भुलाने का प्रयास किया तो हमें इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। आज मैं उत्तराखण्ड का रहने वाला हूं लेकिन मेरा दिमाग इंगलैंड का है। आज यदि आप किसी आदमी को बरबाद करना चाहते हैं तो उसे अन्धविश्वास सिखा दो, उसकी भाषा और परम्परा छीन लो, तो ये सब कुछ संभव हो जाएगा। जैसे यदि आप किसी पौधे को नष्ट करना चाहते हैं तो उसको उखाड़ कर फेंक या उसकी जड़ से मिट्टी को हटा दो तो वह अपने आप ही सूख जाएगा। इसी तरह से किसी भी राष्ट्र को नष्ट करने के लिए, उसकी कौम को बर्बाद करने के लिए उसकी भाषा, विचार और परम्परा को छीन लो और भारत में ऐसा ही हो रहा है।

आज हमारा दिमाग खराब करने के लिए तीन उत्तेजक चीजें दी जा रही हैं। पहला है टीवी– ये दूर का दर्शन है जिससे बच्चे का बचपन, पड़ोस का पड़ोसीपन नष्ट हो रहा है, इससे सारी युवा पीढ़ी बर्बाद हो रही है। जर्मनी की माताएं कहती हैं कि इसने हमारे बच्चों को मन्दबुद्धि बना दिया है। दूसरा है उत्तेजना– अरबों–खरबों का व्यापार। आखिर ये पैसा कहां से आता है? इसका क्या उपयोग है? इससे घर का काम बिगड़ रहा है। रही–सही कसर शराब ने पूरी कर दी है। और इसे दरकिनार किए बिना कुछ नहीं होगा।

आज राजनीति को तिलांजलि दो। आज लोकनीति का जमाना है, देश का राष्ट्रपति सन्त आदमी है। जो वैज्ञानिक सचमुच का वैज्ञानिक होता है वो सन्त होता है। उस आदमी ने नसीहत दी कि देश की राजनीति किसी समस्या का हल नहीं है लेकिन राजनीति करनी है तो ढंग से करो।

राजनीति भी दो तरह की होती है एक है राजनैतिक राजनीति (Political Politics)। ये राजनीति चुनाव के समय ही शुरू होती है और चुनाव के खत्म होते ही वो भी खत्म हो जाती है। एक और राजनीति है विकसित राजनीति Developmental Politics। जिसमें सिर्फ कुर्सी का लालच ही नहीं किया जाता है बल्कि उसमें देश को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इसलिए हम चाहते हैं कि केवल कुर्सी पाने की अपेक्षा अपने–अपने स्तर पर विकास की धरती पर उतरने का प्रयास करें। लेकिन आज का रंग–ढंग मनुष्य तथा समाज के विरूद्ध है। इसीलिए यदि हम मनुष्य की गरिमा, उसकी समता, समानता को ध्यान में रखना चाहते हैं तो राजनीति के चलते वो संभव नहीं हो सकती। इसीलिए गाँधीजी के बारे में सोचो, उत्तराखण्ड का भविष्य ही भारत के भविष्य को तय करने वाला है। इस प्रान्त में जिसकी वोट उसका उम्मीदवार के मंत्र को तय करो। जबकि आज की राजनीति में वोट मेरी व प्रतिनिधि कॉंग्रेस का, भाजपा का, इसीलिए अब इस राजनीति को खत्म

कर देना चाहिए। देश के राजनीतिज्ञ दलितों और गरीबों की भलाई के लिए काम करें क्योंकि दलितों का मुद्दा समूची राज व्यवस्था, समाज व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। इस पर सोचिए और इस काम में एकजुट होकर लग जाएं। धन्यवाद।

जबर सिंह– अभी बहुगुणा जी ने अपनी बात रखी इसी प्रकार अन्य लोग भी अपनी खुली बहस करें तो अच्छा होगा। वे इस बात को भी स्पष्ट करें कि इस मुद्दे पर दलित तथा अन्य साथी क्या सोचते हैं?

खंडवाल जी– बहुगुणा जी ने गाँधीजी के बारे में बताया। मेरे मन में एक शंका थी कि आप गाँधीजी द्वारा किये गए कामों को किस तरह से देखते हैं और अम्बेडकर जी के किये हुए काम को किस तरह से? और उनमें क्यों और कैसे मतभेद हो गये हैं ?

सुरेश भाई– खंडवाल जी ने अपने सवाल रखे। लगभग यही सवाल हम सबके हैं। लेकिन बहुगुणा जी ने जो वक्तव्य दिया, वो एक वक्तव्य है। अम्बेडकर जी के विषय में भी बात होनी चाहिए। कहीं न कहीं बहुगुणा जी ने बताया कि ये मानसिकता कहीं न कहीं रही है कि 'दलित, दलित ही रहेगा'। उसको उस रूप में देखने की कोशिश कभी की ही नहीं गयी है।

बहुगुणा जी– अम्बेडकर ने बताया कि इसका कोई उपाय है ही नहीं। लेकिन अगर आप शुरूआत में करना चाहते हैं तो आप दस साल तक ऐसा इंतजाम कर सकते हैं अम्बेडकर को ये मालूम था कि लोग आरक्षण के नाम पर फिर से राजनीति करेंगे। इसलिए आप अम्बेडकर द्वारा दिए गए आरक्षण के मुद्दे को आर्थिक, राजनैतिक सवालों से अलग करके मत देखिए। हमें गांधी के खिलाफ खड़े होने की काशिश नहीं करनी चाहिए क्योंकि वो तो इसमें शामिल थे ही नहीं। यदि इसे स्पष्ट करने के लिए इतिहास को खोजने की जरूरत हो तो वो काम जरूर करें।

त्रिभुवन सिंह– आदरणीय बहुगुणा जी, टम्टा जी, सुरेश जी, नौटियाल जी, आपने गाँधी जी व अम्बेडकर साहब के बारे में जो राजनैतिक मतभेद की चर्चा की वो नहीं थे। मैं एक चीज कहना चाहता हूँ, कल 26 जनवरी थी और यहां बैठे बुजर्ग से मैं इस बात पर मुहर लगाना चाहता हूँ कि संविधान बाबा साहेब ने लिखा तो क्या 26 जनवरी को संविधान दिवस के रूप में नहीं मनाना चाहिए? दूसरा सवाल कि क्या संविधान के जनक बाबा साहेब थे कि नहीं थे? क्योंकि जब हम बैठकें करते हैं तो उसमें यह कहा

जाता है कि अम्बेडकर जी तो केवल ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष ही थे बाकी कुछ भी नहीं थे।

अंजलि शर्मा– ये बात सही है कि अम्बेडकर जी संविधान सभा के अध्यक्ष थे लेकिन जो बातें ली गयी हैं वो मूलतः भारत के समाज को ध्यान में रखकर नहीं कही गयी थी बल्कि कुछ कनाडा से ली गयी, कुछ अमेरिका से कुछ इग्लैण्ड से . . .

त्रिभुवन सिंह– नहीं, इसे कौन लाया ?

अंजलि शर्मा– न आपका संविधान भारतीय रहा न उसको भारतीय समाज में ढालने की कोशिश की गयी। देखिए कनाडा की स्थिति भारत के जैसी नहीं है।

त्रिभुवन सिंह– अक्सर मंचों से यह कहा जाता है कि अम्बेडकर जी केवल ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष थे, जिसे सुनकर थोड़ी सी पीड़ा होती है। मैं अंबेडकरवादी हूं उसी नाते से बोल रहा हूं।

हल्ला................ हल्ला .... हल्ला ....

....अस्पष्ट ध्वनियाँ...

जबर सिंह– ये तय है कि अम्बेडकरवादी और गांधीवादी लोग एक–दूसरे के विपरीत ही काम करते हैं।

पुनः हल्ला................ हल्ला .... हल्ला ....

....अस्पष्ट ध्वनियाँ...

सुरेश भाई– मैं इस चर्चा को व्यापक रूप से समझने और आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ। बहुगुणा जी ने जो बातें कहीं वो ऐतिहासिक बातें हैं और आज अंबेडकर व गाँधी हमारे बीच में बैठे हुए नहीं हैं। उस समय की जो परिस्थितियाँ आज की परिस्थितियों के जैसे नहीं थी। आप लोग आज अर्थात वर्तमान संदर्भ में बात करें तो अच्छा रहेगा क्योंकि यदि आप ऐतिहासिक घटनाओं में झूलेंगे तो वहीं रह जायेंगे।

शैलेन्द्र कुमार– इस देश में जो भी व्यक्ति गांधीजी व अम्बेडकर जी को आमने–सामने लाने की कोशिशें कर रहे थे वो ठीक नहीं था। क्योंकि दलितों के सवाल अलग नहीं है। इस देश के दलितों का सवाल इस देश के सवर्णों के साथ जुड़ा हुआ है। आज तक इस देश के दलितों का सवाल सवर्णों की सहिष्णुता पर आधारित था। सवर्णों की सहिष्णुता पर जो सवाल हैं उन सवालों से कैसे बाहर निकला जाए ये सोचने की बात

है। हमें इस सवाल को सवर्णों की सहिष्णुता पर आधारित न रहकर देखना होगा। हमें इस विषय में इतिहास के विश्लेषण से आगे बढ़ना होगा।

सूरवीर सिंह मल्सेटा— हमसे एक नहीं हजारों गलतियाँ हुई हैं। मैं उन बातों पर नहीं जाता हूं। अब हमें यह देखना है कि दिशा कैसी हो ? और आगे की सुधि लें। अभी बहुगुणा जी ने विकास के बारे में बताया है। लेकिन उन्होंने छुआछूत को मिटाने के बारे में कुछ नहीं कहा। इस देश में आरक्षण तो आगे बढ़ने का एक छोटा सा माध्यम है। इस देश की मूल समस्या छुआछूत ने दलित लोगों को भिखारी बनाया है। कबीर साहब की तीनों रचनाओं का अध्ययन करो आपको अपने स्वरूप का पता चल जायेगा। तब आपको लगेगा ये ब्राह्मण नहीं ये पशु हैं। जिसके पास विवेक नहीं वो पशु हैं। ये विद्यां न तपो न दानं न ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म। ते मत्यलोके भूविभार भूतो मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति। जिस व्यक्ति में ये छह गुण होते हैं वो मनुष्य हैं और जिनके पास ये नहीं वो मनुष्य न होकर पशु हैं। इस प्रकार यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणों के बारे में पता करे तो उसे खुद ही पता चल जाएगा कि वह मनुष्य है या पशु।

ढलवान जी— दलितों के पेशे, जैसे मशीन का काम, संस्कृति का काम, सिलाई आदि का काम उच्च जातियों के पास चले गये। लेकिन वो पेशे उच्च जाति के पास चले जाने के बाद भी वो लोग अछूत नहीं कहलाते हैं, आखिर ऐसा क्यों? इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है।

कामेश्वर जी— यदि आप इस सवाल को उठाओगे तो ये ध्वस्त हो जायेगी। क्योंकि व्यवस्था या पेशे से जातियाँ नहीं बनती।

ढलवान जी— लेकिन समाज में ऐसी मानसिकता क्यों है ?

बहुगुणा जी— अरे बनायी गयी है। आज से नहीं पिछले हजारों सालों से।

जबर सिंह— ये पेशे तक में भी नहीं गिने जाते जैसे मन्दिर की मूर्ति एक शिल्पकार बनता है। और मंदिर बनने के बाद उसी मंदिर के भीतर उस शिल्पकार को जाने की इजाजत नहीं होती।

ओमप्रकाश निरंकारी— मैंने आँखें खोली तो पाया कि मैं एक समाज में हूँ, लेकिन समाज के रूप—रंग को देखकर मुझे रोना आया। इस समाज में हमें अपने आंसू खुद

ही पोछने पड़ते हैं जो कि बड़े सवाल हैं। इसके लिए हमें कोई मंच नहीं मिला जिसके माध्यम से हम कुछ सवाल उठा सकें। मैंने एक लेख लिखा था कि भई समझने की जरूरत किसको है। एक बार गोपालमणि की कथा हो रही थी कि भई जब–जब होय धरम की हानि तब–तब बढ़े असुर अभिमानी। तो मैंने उनसे ये सवाल पूछा कि धर्म की हानि तो तब होगी जब कोई धर्म के विषय में जानता होगा। जिसको धर्म के विषय में जानकारी नहीं है वो धर्म की हानि क्या करेगा। आपके सवाल का मैं स्वागत करता हूँ। और निवेदन करता हूँ कि हम सबको साथ लेकर चलें। मेरे इसी गांव में 9 सदस्य हैं। 4 लोग अनुसूचित जाति के लोग हैं। यहाँ पर बिना अनुमति के दो तूड़ के हरे वृक्ष काटे गये। जबकि नारा दिया गया कि "एक वृक्ष, दस पुत्र समान"। सबने खुलेआम देखा लेकिन ऐसे कुट–कुट कर मरना तो ठीक नही है। आप सब लोगों का स्वागत करता हूँ , धन्यवाद।

गोपाल– मुझे लगता है कि हम बहुत सारे विरोधाभासों के बीच जीते हैं और फिर उसमें से हम कई सारे चेहरे निकालते हैं। कोई गाँधीवादी, कोई अम्बेडकरवादी, कोई मानवतावादी निकलता है या दूसरे–तीसरे तरह की धारायें निकलती हैं। लेकिन जब व्यवहार का मौका आता है तो हम शायद उसके अनुसार व्यवहार करते ही नहीं हैं। व्यवहार में जो हमारे अन्तः मन में जो बातें बैठी होती हैं कि हम तथाकथित ब्राह्मण हैं, राजपूत हैं या हम दलित या शूद्र जो भी हों उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। बाहर जो हमारी मान्यताओं की पर्तें बनी हुई हैं। ये हमारे चेहरों को दिखाने के लिए बनी होती हैं। ऐसा मुझे हर मीटिंग में लगता है या कहीं किसी आदमी से व्यवहार करते वक्त महसूस होता है। जैसे मैं आपको एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ। किसी शहर में शेक्सपीयर का एक नाटक चल रहा था। उसमें अमिताभ या बिग बी जैसे कोई अभिनेता थे। एक साधु महाराज की नाटक देखने की तीव्र इच्छा थी लेकिन वह संकोच में था कि आखिर वह नाटक देखने कैसे जाए, क्योंकि धर्मात्मा आदमी पर तो प्रतिबन्ध था कि वह नाटक, फिल्म या इस तरह के नाच–गाने नहीं देख सकता। तो उसने चुपके से मैनेजर साहब के पास जाकर कहा, 'भाई साहब क्या इस हॉल में घुसने के लिए कोई पीछे का दरवाजा है?" मैनेजर ने कहा कि "आप जैसे लोगों के लिए हमने पीछे के बहुत सारे दरवाजे बना रखे हैं।" आपको टिकिट और सीट मिल जायेगी। तो इसी प्रकार हम लोग भी जब व्यवहार करते हैं तो साधु की तरह पीछे के दरवाजे की तलाश करते हैं। इस प्रकार हमें पीछे के दरवाजों से घुसने की बुरी आदत लग गई है। जैसे उन्होंने अभी कहा कि ऐसे तीन सूत्र हैं जिनसे बरबाद किया जा रहा है – टी0 वी0, शराब और क्रिकेट। लेकिन मुझे ये लगता है कि आज के दिन विकास की जो आधुनिक धारा चल रही है वो हमें ज्यादा प्रभावित करती है। क्योंकि भई

आपको अँग्रेजी सीखनी है, तब आप इस स्टैण्डर्ड जमाने मे जी सकते हैं तो आपका बच्चा अँग्रेजी क्यों नहीं सीखेगा? क्योंकि उसी से आपको नौकरी भी मिलने वाली है। आपको उसी समाज का स्टेट्स अपनाना पड़ेगा। दुनिया की पद्धति तो उसी आधार पर चल रही है। इसमें आपको कम्प्यूटर भी सीखना ही होगा।

आप पुराने उद्योग–धन्धों के बारे में कह रहे थे कि आजकल हमारा दलित समाज अपने पारंपरिक उद्योग धन्धों को छोड़ते जा रहे हैं तो मैं, भी आपसे वही सवाल पूछता हूं कि आखिर वो उन्हें अपनाए भी क्यों? क्योंकि उन उद्योग–धन्धों में उन्हें सम्मान नहीं मिल रहा है दूसरी बात ये है कि हम लोग कहते हैं कि सारी दुनिया में ईश्वर का वास है लेकिन हम दलित जाति के लोगों के साथ छुआछूत का व्यवहार करते हैं तो इस विरोधाभास के कारण भी उत्तराखण्ड में दलित लोग अपने–आपको लाचार महसूस करते हैं। हिन्दुस्तान के दार्शनिक पक्ष के सूत्रों के अनुसार कुछ लोगों को छोटे समाज का हिस्सा माना जाता है। हम लोग गांधी या अंबेडकर में नहीं फंसना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि एक आदमी जिसको आज तक सम्मान नहीं मिला वो सम्मान का हकदार है भी या नहीं या भगवान ने उसे ऐसे ही बनाकर भेज दिया है और ये कहा है कि उसे समाज में सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार नहीं है। शायद भगवान दलित के लिए यही कहना चाहता है कि 'तू चौरासि करोड़ योनियाँ भुगत के मनुष्य योनि में आ, और उसमें आने के बाद भी गर्त में जा'। कहीं ऐसा तो नहीं कि भगवान ने हमारे साथ धोखा किया हो।

जैसे हम लोग बोलते हैं कि ऐसा ब्राह्मण लोगों ने कर दिया। लेकिन मैं ये पूछना चाहता हूं कि क्या हमारे अपने लोगों का इसमें कोई हाथ नहीं है? ये जाति व्यवस्था हमारे बीच में भी मौजूद है कि कोई धोबी है, कोई नाई, कोई चमार, कोई टमटा, कोई दास और कोई खंडवाल। आखिर इतने सारे विभाजन तो हमने ही पैदा किए हैं। इसी तरह का विभाजन ब्राह्मणों तथा राजपूतों में भी मौजूद है। इस प्रकार ये इतनी मजबूत पद्धति है जिसे दूर करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। धन्यवाद !

सुरेश भाई– इन्होंने ये बात बिल्कुल ठीक कही है कि हमारे समुदाय में न केवल ऊंची जाति और नीची जाति में भेद किया जाता है बल्कि उच्च और निम्न जातियों में आपस में भी छुआछूत मौजूद है। कहीं–कहीं तो वे आपस में रोटी–बेटी का रिशता भी नहीं रखते हैं। इस प्रकार हमारे समाज में दोनों ही प्रकार के लोग हैं। तो दोनों ओर से समस्या का समाधान करने की आवश्यकता है।

कृष्ण कुमार उप्रेती– यहां पर सामाजिक और आर्थिक समानता की बहुत अच्छी तथा गंभीर चर्चायें चल रहीं हैं जो कि बहुत अच्छा है।

जबर सिंह वर्मा– हम लोगों ने मन्दिर प्रवेश का काम करवाया, इसके लिए हमने मंदिर के पुजारियों, कुछ अधिकारियों, कॉल दास और S.S.T. आयोग से बात की लेकिन इस समस्या पर सभी के हाथ खड़े हो गए।

हमने प्रीतम सिंह से पूछा कि उनके वहां स्थित मंदिर में सभी लोगों को प्रवेश की अनुमति है तो प्रीतम सिंह बोले कि इस बारे में हमें तो कुछ भी मालूम नहीं, तो यह कितने आश्चर्य की बात है कि उनके गांव में मंदिर है और उन्हीं को इसके बारे में ज्ञान नहीं है। ऐसे ही समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ ऐसे मंत्री भी हैं जिन्हें अपने समाज की व्यवस्था के बारे में ही ज्ञान नहीं है। हमने पुजारियों से भी बात की, उनसे पता चला कि ये तो पुरानी परंपरा है कई मंदिरों में तो महिलाओं को भी नहीं जाने दिया जाता है।

हमने तीन मुद्दे उठाये पहला–बलि प्रथा बन्द करो, दूसरा महिलाओं का मुद्दा उठाया और तीसरे स्थान पर हमने दलितों का मुद्दा उठाया। लेकिन हमें इसमें कुछ भी सफलता नहीं मिली। फिर हमने जिला न्यायाधीश (D.M.) व मंत्री जी को भी पत्र लिखा, एक सम्मेलन कराया। उसके बाद दबाव पड़ा और डी.एम. आकर मंदिर में प्रवेश कराया। लेकिन तीसरे दिन मंदिर की ओर से खबर आई और पता चला कि उन्होंने ये घोषणा कर दी कि यदि कोई नीची जाति का व्यक्ति मंदिर के अंदर आए तो उसे खूब मारा जाएगा। इस प्रकार समाज में बहुत सारी भ्रान्तियां फैलाने का प्रयास किया जा रहा है।

दूसरा जब मैं दिल्ली में रहने वाले अपने युवा साथियों से बात करता हूँ तो वो कहते हैं कि दिल्ली में तो हमारे साथ 'बहुगुणा' तथा 'शर्मा जी' आदि ठीक ढंग से रहते हैं। दिल्ली में हम सब साथ रहते हैं। खाते–पीते हैं। लेकिन इनके गाँव में जाते हैं तो ये हमको पूछते भी नहीं। अर्थात हमारे समाज में ये पीड़ायें मौजूद हैं। न जाने हमें अपने या उत्तराखण्ड के समाज में आते ही क्या हो जाता है कि वहां से बाहर हम जाति के भेदभाव को ध्यान में रखे बिना व्यवहार करते हैं लेकिन अपने समाज में आते ही वही छुआछूत का व्यवहार करने लगते हैं। धन्यवाद !

सुरेश नौटियाल– अब भुवन भाई अपनी बात रखें।

भुवन पाठक– मैं तो अधोगति में हूँ। अधोगति इसलिए कि मैं जन्मना ब्राह्मण हूँ और जन्मना ब्राह्मण होने के नाते न तो में दलित मित्रों की जैसी तीखी भाषा का इस्तेमाल कर सकता हूँ और न ही मैं ब्राह्मण होते ब्राह्मणवाद की ही बात कर सकता हूँ। लेकिन समाज में होने वाले असमानता और अन्याय के व्यवहार ने मुझे बहुत दुःखी किया है।

जबसे मेरी आँखे खुली हैं तब से मैं उस अन्याय को मिटाने में अपना धर्म समझता हूँ, वो मेरे लिए कोई राजनैतिक सामाजिक कार्यक्रम नहीं है। पूरे दिन भर में मैं कभी आक्रोशित हुआ, कभी उद्वेलित हुआ, कभी पुलकित और हर्षित हुआ और कभी बहुत निराश भी। मुझे लगा कि प्रदीप जी ने जो बात कही उसे हम समझ नहीं पाए हैं क्योंकि ये मेरे हाथ में नहीं था कि मैं ब्राह्मण कुल में पैदा होऊँ और ये प्रदीप जी के हाथ में नहीं था कि वो दलित कुल में पैदा हों तो मुझे लगता है कि ये जो महिमामण्डन है, आलोप–प्रलाप है। इसको करने के लिए यदि सदियाँ भी लगें तो कम हैं। पाँच हजार साल में जो अन्याय हुआ है उसका बखान करने में 500 साल तो लगेंगे ही।

आज की पीढ़ी यह तय कर ले कि आज से 5 साल तक उस अन्याय की बात की जाय, उसके बारे में एक–दूसरे को आरोपित किया जाय, एक–दूसरे के खिलाफ प्रपंच किये जायें या जैसा कि प्रदीप जी ने कहा कि अन्याय को मिटाने के लिए संभावनाओं की तलाश की जाए। मैं ये समझता हूँ कि अन्याय को मिटाने की अपेक्षा वर्ग को मजबूत करने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि वर्ग हित बहुत मजबूत होते हैं और हर वर्ग, हर जाति इस कोशिश में लगी हुई है कि कम से कम उसके वर्गहित तो बचे रहें क्योंकि जो जातिगत संकट है उसमें ये प्राथमिक भी लगती है। अक्सर मुझे ऐसा लगता है कि मैं दलित मित्रों से ऐसे कैसे कहूँ कि आप अपना दलितपन छोड़ दें। क्योंकि यदि हम दलितपन छोड़ दें तो जो संरक्षण है जो हितों का संरक्षण है वो हित भी नहीं बचेंगें। पहचान की राजनीति बहुत की शक्तिशाली राजनीति है।

आजकल हमारे सामने पहचान के कारण कई समस्याएं भी पैदा हो जाती हैं। इस बारे में मेरे अंदर बहुत डर है जैसे कि कल जब हम जिस गाड़ी में जा रहे थे तो उसमें हमारे साथ तीन–चार सवर्ण साथी थे और एक दलित भाई विजय जी भी थे। मैं पूरे रास्ते भर इस बात से डर रहा था कि कहीं हममें से कोई दलितों को गाली न दे दें और विजय को बुरा लग जाए। मैं पूरा दिन यहाँ डर–डर कर बैठा रहा। तिल–तिल कर बैठा रहा। लेकिन मेरा डर काफी हद तक सही भी था क्योंकि हमारे मन में जातिव्यवस्था की जड़ें बहुत गहरी जमी हुई हैं। इसलिए मेरे दिमाग में आया कि कब तक हम सवर्ण लोग आपस में बैठकर आत्मप्रशंसा करते रहेंगें और अपनी आत्ममुगधता में डूबे रहेंगे कि हम दलितों का उत्थान करेंगे। कोई कहता है कि ये हमारी जिम्मेदारी है, आखिर ये मेरे अकेले की जिम्मेदारी क्यों है ? तो अकेले अपने–आप पर जिम्मेदारी ले लेना आत्ममुग्धता है, आत्मप्रशंसा है क्योंकि इससे आपको निंदा करने का अवसर मिलता है। हमें इस पूरे अन्याय को खत्म करने के लिए कर्म का रास्ता खोलने के बारे में विचार करना होगा। इस बारे में हम पिछले 50 साल से संवाद करते आ रहे हैं। इन संवादों के कारण ही उन्होंने मुझे कभी इस नजर से नहीं देखा कि मैं गैर दलित हूँ

और मैंने कभी उन्हें इस नजर से नहीं देखा कि वो दलित हैं। पिछले 100 साल में गाँधी, अंबेडकर, ज्योति बसु, फुले जैसे तमाम बड़े–बड़े लोगों ने इस बारे में बहुत काम किया है। उनके प्रयासों का ही परिणाम है कि आज 10–20 दलित कार्यकर्ता व 10–20 गैर दलित कार्यकर्ताओं को यहां बैठने की हिम्मत मिली है। लेकिन फिर भी कई बार हमें बहुत सी बातें सुनने को मिलती हैं जिन्हें दिल पर पत्थर रखकर भी सुनना पड़ता है। आपने भी सुना होगा जब किसी आदमी ने ये कहा कि दलित प्रगति करना ही नहीं चाहता है तो ये कोई मामूली बात नहीं है। लेकिन फिर भी सुन लिया। मैं दावे के साथ यह कहता हूँ कि यदि आप यही बात महाराष्ट्र में जाकर बोल दीजिए तो आपका सर कलम कर दिया जाएगा। मैंने प्रदीप भाई को पहली बार सुना है। मैं उनसे बहुत छोटा हूँ। लेकिन वो जो बात कह रहे हैं उस बात को समझने की आवश्यकता है और बार–बार हम फिर उसी फेर में फँस जाते हैं कि कैसे खुश किया जाय? उसमें सकल समाज का हित और सकल समाज का भला तो बिल्कुल भी नहीं है। जाति के सवाल, राजनैतिक सवाल हैं वो भावनात्मक रूप से हल नहीं हो सकते हैं। भावनात्मक रूप से वर्ग संघर्ष हो सकता है। ये वैचारिक समानता का मामला है, आरक्षण का मामला है, प्रतिनिधित्व का मामला है, मानसिक समानता का मामला है, ये राजनैतिक संघर्ष है, राजनैतिक लड़ाई है। इसलिए हमें इस बात पर विचार करने के बारे में सोचना होगा। इसके लिए हम सबको मिलकर प्रयास करना होगा।

सुरेश नौटियाल– अध्यक्ष जी से आग्रह है कि आप अपनी बात रखें।

त्रिभुवन सिंह– मैं बड़ा भारी सौभाग्यशाली हूं कि मुझ जैसे अल्प बुद्धि व्यक्ति को इस सभा की अध्यक्षता करने का मौका मिला जिसके लिए मैं आपका आभार व्यक्त करता हूं। आपने आदरणीय टम्टा जी को सुना होगा मुझे लगता है कि निश्चित तौर पर वे उत्तराखण्ड के दलितों की जान हैं। उत्तराखण्ड के हरिद्वार और ऊधमसिंह नगर जिलों को छोड़ दिया जाए तो पर्वतीय क्षेत्रों के 11 जिलों के लगभग सभी लोग उन्हें जानते हैं। भुवन भाई उनकी विचारधारा के अनुरूप काम कर रहे हैं।

आप उत्तराखण्ड के अंदर दलितों के संबध में काम कर रहे हैं। मैं थोड़ा सा दलित शब्द के बारे में कहना चाहूंगा। यह शब्द असंवैधानिक है। ये समाज में ही गढ़ा गया है। नौजवान लोगों को एटकिंसन ऑफ हिमालयन गजेटियर जरूर पढ़ना चाहिए। हमें दलितों के हितों में काम करना चाहिए।

यह जानकर मुझे बहुत अच्छा लगा कि इसमें आप जैसे क्रान्तिकारी लोग आगे आ रहे हैं। आपने राजनैतिक पहचान की बात की, इस काम को नालायक आदमी तो नहीं कर पाएंगे। इसके लिए सभी को जिम्मेदारी लेनी होगी। ऐसी सभाओं के माध्यम से बात करनी पड़ेगी। कैबिनेट में एक भी सदस्य नहीं है। प्रीतम सिंह जी को पता

नहीं है कि एनौर के मन्दिर में क्या लिखा हुआ है। एडकिंसन ने अपनी किताब में लिखा हुआ है कि कई क्षेत्र किसी जनजाति के नाम से जाने जाते हैं। उसी क्षेत्र में एक गाँव अनुसूचित जाति के प्रधान का घोषित हुआ है और उसी गाँव में जनजाति का प्रधान बन गया। ऐसे में चाहे सरकार किसी की भी रहे लेकिन प्रतिनिधित्व सही आदमी तक नहीं पहुंच रहा है। यहाँ की अनुसूचित जाति का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व होना चाहिए तभी यहाँ के कोदा–झँगोरा का पता चलेगा। प्रेशर ग्रुप के रूप में बात रखना चाहता हूँ। कि उत्तराखण्ड में 70 एम.एल.ए. बन रहे हैं। उसमें कैबिनेट सदस्य होने चाहिए। इसके अलावा आप लोगों ने भी बहुत अच्छे विचार दिए जिनका मैं स्वागत करता हूं। धन्यवाद।

सुरेश नौटियाल– सभा के औपचारिक समापन की घोषणा व आप सब लोगों का बहुत–बहुत धन्यवाद।

प्रदीप टम्टा विधायक, सोमेश्वर – गाँधीजी व अम्बेडकर में एक के सामने देश की राजनैतिक आजादी का सवाल था और एक के सामने देश के करोड़ो लोगों की मुक्ति का सवाल था। ये दोनों सवाल एक ही साथ, एक ही समय देश के लोगों को आन्दोलित कर रहे थे। शुरूवाती दौर में गाँधीजी भी इस सवाल को बहुत ज्यादा महत्व नहीं देते थे। गाँधीजी ने भी कहा कि जाति व्यवस्था जन्मना है। ये शुरूवाती दौर की बात है। उस व्यक्ति 'गाँधी' का भी धीरे–धीरे रूख बदला। जब डॉ0 अम्बेडकर का आंदोलन बढ़ता गया। जो संगठन सबसे पहले 1885 में पैदा हुए, दलित मुक्ति का सवाल उसके एजेन्डे में 1917 में आया। 1885 में काँग्रेस की स्थापना हुई। 1917 में पहली बार महाराष्ट्र के अन्दर दलित मुक्ति का सवाल उठा। वो तब उठा जब महाराष्ट्र में ज्योतिराव फुले हुए, उन्होंने इस सवाल को अँग्रेजों के सामने उठाया। काँग्रेस ने कहा – हमको स्वराज चाहिए। ज्योतिराव फुले ने कहा, 'नहीं स्वराज नहीं, हमको अँग्रेजों के साथ मिलकर हिन्दुस्तान को मुक्त करना है'। अम्बेडकर जी ने तो यहाँ तक कह दिया गया था कि 'ये ब्रिटिशों की देन है या अँग्रेजों के एजेन्ट हैं'। ये इसीलिए आता है, जब हम चीजों का मूल्यांकन समग्रता से नहीं करते और हुआ भी यही, देखिए इस देश के संविधान में दो तरह की धारायें आयी, जब देश के संविधान को बनाने की बात आयी और यह प्रश्न उठा कि ड्राफ्टिंग कमेटी का अध्यक्ष किसको बनाया जाय। जब काँग्रेस के सारे लोग मिले तो बहुत सारे नाम आये। उसमें डॉ0 जेनिंग है वे ब्रिटिश संविधान के अच्छे ज्ञाता हैं। उनका नाम भी आया और काँग्रेस के बड़े लीडरों की जो पसंद थे, वो वही थे। लेकिन गाँधीजी की सहमति के बिना कुछ नहीं हो सकता था। सब लोग उन नामों को लेकर गांधी के पास गए और उस समय

कॉंग्रेस में संविधान के विशेषज्ञों की कमी नहीं थी। अंत में गांधीजी ने अम्बेडकर के नाम चिट्टी लिखी।

कामेश्वर बहुगुणा – अधिकतर लोग इस बात को जानते ही नहीं हैं।

प्रदीप टम्टा – गाँधी जी ने ये चिट्ठी लिखी कि डॉ0 अम्बेडकर इस देश के संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष बनेंगे। अब आप बताइए ऐसा क्यों हुआ होगा? गांधी जी को उनके राजनैतिक जीवन में सबसे बड़ी चुनौती डॉ. अम्बेडकर से ही मिली थी। उसके अलावा किसी ने नहीं दी।

लेकिन उसी गाँधी ने अन्त में उसी आदमी को ड्राफ्टिंग कमेटी का अध्यक्ष बना दिया। यहीं पर दो बड़े लोगों का मिलन होता है। इसी चीज को समझने की कोशिश कीजिए। अम्बेडकर ने गाँधीजी के सामने ये चुनौती रखी थी कि समाज में मौजूद वर्ण पर आधारित संविधान व्यवस्था जिसे हम मनु का संविधान कहते हैं वो आपके वर्ग ने लिखी, जहाँ मेरे वर्ग के लिए समानता की कोई जगह नहीं है। और हमारे यहाँ जाति व्यवस्था इसलिए चली क्योंकि यहां इसे धार्मिक मान्यता प्राप्त है। आम गरीब आदमी भी इसे इसलिए मान लेता है कि ये तो मेरे धार्मिक अनुष्ठान का एक हिस्सा है। उसी चीज को तोड़ने के लिए डॉ0 अम्बेडकर की चुनौती को गाँधीजी ने स्वीकार्य किया। हम एक नये देश का कानून बना रहे हैं, अगर डॉ0 अम्बेडकर को ये जिम्मेदारी दे दी जाय तो पूरे देश और दुनिया में ये सन्देश जायेगा कि जिसने हिन्दुस्तानी समाज को बहुत बड़ा कहकर चुनौती दी उसी को नेतृत्व दे दिया।

आज, गांधीजी के मार्फत दलितों को जो हथियार हैं, दलितों के पास आज उससे भी कई बड़े हथियार हैं। और जैसे यहाँ पर भी हमारे साथी लोग कहते हैं कि संविधान को डॉ0 अम्बेडकर ने ही बनाया। जबकि मैं आपको बताऊँ कि जब ड्राफटिंग कमेटी के अध्यक्ष अम्बेडकर नहीं थे, उस समय अम्बेडकर का वास्तविक संविधान देखेंगे तो 'राज्य और अल्पसंख्यक' के नाम से उनकी एक छोटी सी पुस्तक है। जब हमारी संविधान सभा बन गई तो अंबेडकर जी उस सभा के सदस्य थे। और 'राज्य और अल्पसंख्यक' उनकी आत्मा होती थी। देश में ड्राफटिंग कमेटी के अध्यक्ष के रूप में डॉ0 अम्बेडकर आये इसलिए दोनों चीजें है। हम पूरे संविधान को डॉ0 अम्बेडकर का नहीं कह सकते पर संविधान पर डॉ0 अम्बेडकर की अमिट छाप है। क्योंकि हमारा संविधान दो चीजों की बुनियाद पर है– एक राजनैतिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन का दस्तावेज। हिन्दुस्तानी समाज के लिए कॉंग्रेस व गाँधीजी का ठोस योगदान है। और दूसरा है सामाजिक समानता का सिद्धान्त। वो हिन्दुस्तानी समाज के लिए डॉ. अम्बेडकर का ठोस योगदान है। इसलिए न्याय शब्द है उसके बाद जो शब्द है वो

राजनैतिक नहीं है वो आर्थिक सामाजिक है। हमारे अपने देश के लोगों को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक न्याय देने का काम करेंगे। इसलिए हम इन दोनों को एक–दूसरे के पूरक के रूप में देखने की कोशिश करें। डॉ. अम्बेडकर ने देश के सामने यही चुनौती रखी। जब तक ये जातिविहीन नहीं बनेगा तब तक लोकतांत्रिक नहीं बनेगा।

हिन्दुस्तान में जाति व्यवस्था रोटी और बेटी पर खड़ी है। मैं भी राजनैतिक हूं, एम.एल.ए. हूं उसी प्रकार से कोई प्राफेसर है, कोई आई.एस. है। लेकिन हमारे बीच में ऐसा कोई भी भेदभाव नहीं है। जब हम अपने बेटे के रिश्ते की बात करते हैं तो हम लोग अपनी–अपनी जातियों में चले जाते हैं। तो ये लम्बी लड़ाई है इस लम्बी लड़ाई को लड़ने के लिए नौजवानों को आगे आना होगा। जब तक हिन्दुस्तानी समाज में रोटी और बेटी का सम्बन्ध नहीं होता तब तक इस स्थिति को सुधारना बहुत कटिन है क्योंकि हमारे यहां जब दो परिवारों में रिश्ता बन जाता है, तो दोनों परिवार एक–दूसरे के सुख–दुख में शरीक हो जाते हैं। दो परिवारों का मिलन, दो गाँवों का मिलन, दो समाजों का मिलन। इस प्रकार ये हिन्दुस्तानी समाज की इक्कीसवीं सदी की अभी भी चुनौती है।

डॉ अम्बेडकर ने गाँधीजी को चुनौती दी थी वो चुनौती आज भी बरकरार है। 1934–35 में गाँधीजी ने कहा था कि इस जाति समस्या का हल, हिन्दुस्तानी तथाकथित सवर्ण समाज को ढूढँना होगा, ये हमारा कर्तव्य है। जब गाँधीजी ने आरक्षण का सैद्धान्तिक विरोध किया था उन्होंने कहा कि ये बुनियादी रूप से हिन्दुओं की समस्या है और हिन्दू समाज के सवर्ण समाज को इसका हल निकालना है। क्योंकि इसके लिए ये ही जिम्मेदार हैं। जब देश आजाद होगा तो उस देश में राजनैतिक और प्रशासनिक तन्त्र में सबकी भागीदारी होगी।

मैं आपको एक चीज बताना चाहता हूँ। हिन्दुस्तानी समाज में आरक्षण कहाँ से आया अचानक तो आया नहीं। 1885 के आस–पास जब काँग्रेस बनी तो निर्णय हुआ कि प्रशासनिक सेवाओं का भारतीयकरण किया जाये। उसी समय अँग्रेजों ने भारतीय नागरिक के लिए 12 या 15 प्रतिशत आरक्षण कर दिया। इससे भी पहले हमारे यहाँ एक कोलापुर के राजा थे। उन्होंने अपने यहाँ सबसे पहले प्रतिनिधि के हिसाब से सिक्खों के लिए आरक्षण की बात आगे रखी। तो फिर यह बात आने लगी कि जो अल्पसंख्यक हैं उनकी भागीदारी हो। कल्पना कीजिए अगर आरक्षण न होता तो क्या ये समाज उतना आगे बढ़ पाता ? आज उत्तरकाशी में जिला पंचायत के अनुसूचित जाति परिवार से हैं। 50 साल में पहली बार जब राजीव गाँधी ने देखा। देश की संसद का सामाजिक ढांचा, विधानसभा का देखा। उन्होंने कहा– लोकतन्त्र की बुनियादी इकाई पंचायत है वहाँ न महिलाओं का प्रतिनिधित्व है न समाज के कमजोर लोगों का। राजीव गाँधी ने फिर वहाँ आरक्षण के सूत्र को अपनाया। मैं जिस अल्मोड़ा जिले से हूँ।

वहां ताकुला ब्लाक की एक अनुसूचित जाति की अँगूठा छाप बहिन ब्लाक प्रमुख बनी। इससे पहले तो नहीं रही। आरक्षण दया नहीं है ये भी रोजगार सशक्तीकरण का एक जरिया है। ये जनता के कमजोर वर्गों को शासन–प्रशासन में प्रतिनिधित्व देने का एक जरिया है। और इसकी रक्षा करना इस देश के तमाम प्रगतिशील लोगों का दायित्व है। क्योंकि इसको हम नहीं करेंगे तो प्रशासन विद्रोह की किरण फैलेगी। आज प्रशासनिक तन्त्र में जो थोड़े से सशक्त हो गये हैं, उनके साथ कोई भेदवाव नहीं करता है। आरक्षण गरीबी दूर करने का हथियार नहीं है।

पंचायतों के बारे में आपको बताना चाहता हूँ, जब पहली बार पंचायती आरक्षण लागू हुआ। तब तो हम उत्तर प्रदेश के हिस्से थे। 22 प्रतिशत आरक्षण था, लेकिन आपके पास क्या कोई जिला पंचायत की सीट आरक्षित थी, एक भी नहीं थी। 21 प्रतिशत आरक्षण मात्र था। पूरे उत्तराखण्ड में मात्र 346 ग्राम प्रधान थे। करीब 6000 से लेकर 7000 तक ग्राम प्रधानों के पद थे, हमें 21 प्रतिशत हमको आरक्षण था। आरक्षण विरोध की नींव पर हम इस उत्तराखण्ड राज्य को नहीं चाहते। क्योंकि इससे सबसे कमजोर वर्ग के भीतर यह भावना पनपेगी कि नये राज्य में मेरे अधिकार सुरक्षित नहीं हैं। हमने जंतर–मंतर पर धरना दिया और राष्ट्रपति को ज्ञापन भी दिया कि उत्तराखण्ड राज्य नहीं बनना चाहिए। एक विशेष सन्दर्भ में, मैं पौड़ी में गया था साथियों ने कहा कि 1100 ग्राम प्रधानों के पद हैं और 21 प्रतिशत आरक्षण है; पर केवल 40 ग्राम प्रधान अनुसूचित जाति से हैं। मैंने उत्तर प्रदेश पंचायत राज के कमिश्नर को, डायरेक्टर को फोन किया। उन्होंने मुझे पूरे के पूरे आँकड़े दिये। उन दिनों नैनीताल के एक डायरेक्टर मेरे मित्र थे। जब उन्होंने तेरह जिलों के आँकड़े दिये तो मुझे दुःख भी हुआ कि पर्वतीय जिलों में न्यूनतम 3 प्रतिशत व अधिकतम 6 प्रतिशत आरक्षण था, ऊधम सिंह नगर में 12 प्रतिशत। मतलब जैसे–जैसे मैदान आ रहा था हमारा कोटा बढ़ रहा था और जैसे–जैसे पर्वतीय क्षेत्र आ रहा था हमारा कोटा घट रहा था।

जब मैंने ये बात प्रदेश अध्यक्ष हरीश रावत जी से कहीं तो उन्होंने कहा ये संभव नहीं है। मैंने कहा संभव नहीं है, ये तो मैं भी कह रहा हूँ लेकिन ये आँकड़े हैं और इसको उन्होंने भी माना। तो तब काँग्रेस पार्टी ने घोषणा पत्र में ही कहा कि अगर हमारी सरकार बनी तो पहली बार हम इस आरक्षण को लागू करेंगे। आज आपको आश्चर्य होगा कि उन्हीं 346 पदों में से आज 1362 ग्राम प्रधान आरक्षित हैं। अब वो ग्राम प्रधान अच्छे हैं, बुरे है, क्या हैं, क्या नहीं, मैं नही कहता। लेकिन जैसा समाज है वैसे वो भी रहेंगे। तो ये कुल मिलाकर समाज को साथ चलने की कोशिश है। आज हमने उत्तराखण्ड राज्य बना दिया। ये राज्य स्वर्ग तो नहीं हो गया लेकिन आज हमारे पास एक विकल्प तो है कि अपना राज्य है। हम लड़ेंगे, खपेंगे और इसको मजबूत राज्य बनायेंगे। तो मित्रो! मैं ज्यादा न कहकर आज सब लोगों को एक बार फिर बधाई

देता हूँ। परिवार नामक एक संस्था हमारे यहाँ है तो क्या परिवार में तमाम तरह की दिक्कतें आने के बाद भी हम ये कहते हैं कि परिवार को समाप्त कर दिया जाय। उसी तरह राजनीतिक संगठन हैं। राजनीतिक संगठन में जो लोकतांत्रिक पद्धति है वो किसी देश की नहीं है। ये बीसवीं सदी के मानव की सबसे बड़ी खोज है। इसे न तो हम भारतीय कह सकते हैं और न ही पश्चिमी ही कह सकते हैं। क्योंकि अगर आप 14वीं 15वीं, 16वीं, 17वीं, 18वीं, 19वीं, शताब्दी के इग्लैण्ड के बारे में जानेंगे तो वहाँ कभी भी लोकतान्त्रिक ढंग से राजा का चुनाव नहीं होता था। ये सिर्फ राज परिवार या इंगलैण्ड में ही पिछले 500 सालों से यह 500 साल की परम्परा रही है। वहां पर राजा व वक्ता के माध्यम से लोकतांत्रिक पद्धति शुरू हुई। यदि पार्टी का लक्षण ठीक न हो तो जाति, धर्म, पैसे, दारू के नाम पर या फिर अच्छी पृष्ठभूमि के आदमी को ही वोट देते हैं। हमारे तो भगवान राम भी राज परिवार से थे। और आज हम इस पद्धति तक आ गये कि आज हम अपने जनप्रतिनिधित्व को अपने शासकों को स्वंय तय करें। जैसा समाज है वैसा राजा है या जैसा राजा है वैसी प्रजा है। हमारे यहाँ सबसे नजदीकी सामाजिक इकाई है, कि 'मेरी जाति का है इसको वोट दे दो' लेकिन हमेशा ये चलता नहीं है। जब काँग्रेस ने एक बड़ा आंदोलन चलाया तो लोग जाति के हिसाब से वोट नहीं देते थे। जब कोई बड़ा आंदोलन होता है, तो लोग इससे ऊपर उठते है। और जब आंदोलन नहीं होता है तो जाति के हिसाब से अपनी जाति के नेता को लोग वोट देते हैं। आज ताकतवर का युग है। आज पूरी दुनिया में एक देश सोचता है कि पूरी दुनिया का ठेका मेरे पास है। आज प्रधानमंत्री चाहे किसी भी पार्टी का हो, मजदूर के सम्मेलन में जाने में उतनी शान महसूस नहीं करता है जितनी कि किसी उद्योगपति घराने की बैठक में। आज समाजवाद को लोग उतने जोर से नहीं कहते, 'समाजवाद जिन्दाबाद'। जितने जोर से लोग बाजारवाद को आगे ले जाते हैं। लेकिन ऐसा तो नहीं है कि दुनिया में असमानतायें समाप्त हो गयी हैं। आज गेट (GATT) के खिलाफ हमारे बड़े–बड़े किसान नहीं बोल रहे हैं। आज ये पूरी दुनिया में विरोधाभासों की लड़ाई चल रही है। लेकिन दो चीजें अर्थात पूँजी और श्रम की लड़ाई शाश्वत है। इन दोनों चीजों से ही विकास होता है, किसी के पास पूँजी है किसी के पास श्रम है। पूँजी में जब श्रम लगता है तब नयी पूँजी बनती है। नहीं तो मेरी जेब में एक लाख रूपया डाल दीजिए, दस साल तक वो एक ही लाख रहेगा। आज ग्लोबलाइजेशन के दौर में भी भारत के पास, पाकिस्तान के पास, एशिया के पास हाथों की कमी नहीं है; यूरोप, अमरीका के पास पैसे की कमी नहीं है। अगर वो अपना पैसा हमारे देश में लाना चाहते हैं तो हमारे हाथों को हमको उनको अपने देश में लाने में छूट देनी होगी। थोड़ा सिद्दत के साथ। सीमा पर कौन लड़ रहा है वो भारत के भी किसान का बेटा या पाकिस्तानी का भी किसान का बेटा है। तो इस दुनिया की इस बयार को भी बदलना

पड़ेगा। कोई राजनैतिक दल पूरी तरह से उपयुक्त नहीं होता। सबको एक दूसरे की जरूरत होती है, तो एक बार फिर धन्यवाद के साथ। इस सिद्दत के साथ इस सवाल को आगे ले जायें। मैं तो सबसे कहता हूँ हमारे वश में नहीं था कि किस जाति में पैदा हों। ये हमारे वश में नहीं था कि हम किस देश में पैदा हों। लेकिन ये हमारे वश में है कि हम जातियों की, धर्मों की, देशों की सीमाओं से परे हटकर के एक ऐसे समाज को बनाने के लिए अग्रसर हों और इसके लिए हम सब लोग जो नौजवान लोग, नयी पीढ़ी के लोग हैं इनका दबाव भी सबसे बड़ा काम करेगा। राजनीतिज्ञों पर दबाव नहीं पड़ेगा तो राजनीतिक आदमी सब कुछ भूल जायेगा। मैं भी भूल जाऊँगा। दबाव बहुत बड़ी चीज है। समाज के अंदर हर जगह दबाव बना रहना चाहिए। बहता हुआ पानी शुद्ध है, साफ है, रुका हुआ नहीं है। बहते पानी में जीवन है। छाम से नीचे ऐसा पानी था सड़ा हुआ, पानी वही है नदी वही है तो हम सब लोगों को बहते हुए नौजवानों की तरह समाज के बुनियादी सवालों को उठाना चाहिए इसमें थोड़ी सी तकलीफ जरूर आयेगी क्योंकि हम अपने आप से लड़ रहे हैं। अँग्रेजों के साथ आमने–सामने का संघर्ष था लेकिन अपने समाज का संघर्ष मुश्किल काम है लेकिन यही काम है इसके लिए हम सब लोगों को मिलजुल कर काम करना होगा। इस तरह की गोष्ठियों का भी बहुत बड़ा महत्व है क्योंकि जब तक वातावरण नहीं बनता है, बुनियादी परिवर्तन संभव नहीं है। हम आज जो पौधा रोप रहे हैं हो सकता है कल हम इसको एक बड़े वृक्ष के रूप में देखें। जय हिन्द! धन्यवाद!

सुरेश नौटियाल जी – प्रदीप जी आपका बहुत–बहुत धन्यवाद । प्रदीप जी ने बहुत अच्छी तरह से समझाते हुए हमारे सामने जिस तरह की विवेचना रखी है उसे सुनकर मैं मन मे सोच रहा था कि यदि प्रदीप जी राजनीति के बजाय किसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होते तो कितना अच्छा होता। तो साथियों प्रदीप जी तो मेरे पुराने साथी हैं। मुझे बहुत खुशी है कि उनके भीतर जैसी ऊर्जा पहले थी वो आज भी कायम है।

एक साथी – मैं विशेष रूप से उत्तराखण्ड दलित समाज की ओर से विधायक जी को बहुत–बहुत धन्यवाद देना चाहूँगा। इनके नेतृत्व में दलित समाज ने 3–4 उपलब्धियाँ प्राप्त की। नम्बर एक हमारी विधानसभाओं का परिसीमन राज्य बन रहा था। तो भारत सरकार परिसीमन आयोग से यहाँ की सीटों का निर्धारण कर दिया। दूसरे परिसीमन में मैदानी व पहाड़ी सीटों का तारतम्य नहीं बन पाया और इसमें दमदार ढंग से लड़ाई लड़ी व पहाड़ों में भी प्रत्येक जिले में आरक्षित सीटें मिली। पंचायतों के प्रधानों की स्थिति में भी जो वृद्धि हुई वो सब आपकी ही देन है। भाई जब भी विधानसभा में

छोटे–बड़े मसले रखते हैं तो उसका निश्चित रूप से यहाँ के दलित समाज को एक परिणाम मिलता है। तो सदन के माध्यम से हम उनका धन्यवाद अदा करना चाहते हैं।

एक साथी (ढलवान जी) – आज हमारी अनुसूचित जाति के सारे व्यवसायों का बाजारीकरण हो गया है। नार्ट का काम बाजार में नाई की दुकान चलाना है। लोटा का काम, बाजार में बगाड़िया लोग कर रहे हैं। दर्जी का काम बाजार का टेलर कर रहा है। सोने का काम बाजार का सुनार कर रहा है। सारे काम का व्यवसायीकरण हो गया है। उत्तराखण्ड में सारे काम खत्म होने के बाद यहाँ के शिल्पकार, अनुसूचित जातियों की अच्छी स्थिति नहीं है। अगर एक तबका कमजोर हो जाता है तो ये नहीं कहा जा सकता है कि ये समग्र समाज है वो अपंग ही रहेगा जब तक अवसर की समानता नहीं देंगे। कुछ लोग आरक्षण की वजह से आगे बढ़े हैं। दलितों की, महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। हमको अपने हृदय परिवर्तन भी करने पड़ेंगे ऐसा नहीं कि सिर्फ मंचों पर बोल देने से ही सब काम हो गया। प्रत्येक व्यक्ति का हृदय परिवर्तन भी जरूरी है। आज भी पूर्व की जैसी स्थिति है तो कहीं तो गड़बड़ है, विचारधारा में या व्यवस्था में। ब्राह्मण व्यक्ति चाहे अनपढ़ ही क्यों न हो उसको समाज में समानता प्राप्त है। दलित वर्ग का व्यक्ति कितना ही पढ़ा–लिखा क्यों न हो उसको समानता प्राप्त नहीं है। जाति के नाम पर वो आज भी अछूत है। आर्थिक सक्षमता से अस्पृश्यता खत्म नहीं हो जाती। जब तक हमारे दिलो–दिमाग से ये बात नहीं जाती तब तक दीवारें रहेंगी। किसी पंडित से किसी को कोई दुश्मनी नहीं है लेकिन व्यवस्था ठीक नहीं है। समाज विकसित होगा तो इस व्यवस्था को बदलना पड़ेगा। मैं ज्यादा न कहकर अपने विचारों को समाप्त करता हूँ

सुरेश नौटियाल जी – अब के0 बी0 शाह जी संक्षिप्त में अपनी बात रखें।

के0 बी0 शाह जी – परम श्रद्धेय बहुगुणा जी। आज का विषय दलितों की सामाजिक स्थिति है और आर्थिक स्थिति तो बाद की बात है। सर्वप्रथम तो मैं ये कहना चाहूँगा कि हमारे समाज की जो जातिवादी व्यवस्था हो उस जातिवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अभी टम्टा जी ने इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वो जातिवादी व्यवस्था इसलिए रची गयी थी कि समाज को किस तरह चलायें, एक ही परिवार के चार व्यक्तियों में एक पंडित भी हो सकता था, एक ठाकुर भी हो सकता था, एक वैश्य भी हो सकता था और एक शूद्र भी। तो ये व्यवस्था थी उस समय की जब ये समाज कभी 5000 साल पहले बना था। अब तो नासा ने ग्रहों की स्थिति के आधार पर 5000–5500 हजार साल पहले रामायण का काल भी निश्चित कर लिया था। वो पुल जो श्रीलंका

और भारत के बीच बना था उसका भी फोटो निकाल कर दिया है उस समय तो इस तरह की प्रवृतियां नहीं थी और दो हजार साल पहले का जो लिखित वर्णन मिला है उसमें भी जाति का वर्णन किया गया है। उन्होंने समाज को बांटने का काम किया गया। जहाँ तक बाँटने का काम है 2000 साल में भी 800 या 1200 ई0 तक भी इस देश में मुसलमान आये हैं तब से उससे पहले जो यहाँ के मूल निवासी थे, यहाँ के रहने वाले थे उनका कोई इतिहास नहीं है इतिहास बाद में बना है। 17वीं शताब्दी में बना या 18 वीं शताब्दी में बना जिसने जैसा लिखा है वैसा बना है। मैं इस बात में न जाकर मेरा तो यह कहना है कि समाज की जो व्यवस्था की गई है आज अपनी ही लड़ाई को कमजोर कर देंगे। तो उससे तो बड़ा फर्क पड़ जायेगा। वर्ण से ही जातियाँ बनी हैं। आज के सन्दर्भ को समझ कर लड़ाई लड़ें। लड़ाई हमेशा वो लड़ता है जो असन्तुष्ट होता है जिसका पेट नहीं भरा होता है। पता चला कि कहीं हम खुद को ही गलियां दे रहे हैं। जो शिल्पकार, दलित समाज है, उसके हाथ से पूरे क्षेत्र छीन लिये गये हैं। पुरानी पद्धतियाँ समाप्त हो गई हैं। सारी चीजों का बाजारीकरण हो गया है। जैसे अभी ढलवान जी बता रहे थे। तो ये समाज जाये तो जाये कहाँ। जब उसके 9.5 अफसर को, नेताओं को समाज में मंत्रीमंडल में सम्मान नहीं दिया जाता है। तो क्या कभी इस बात पर किसी ने विचार किया? जो गाँव का अच्छा आदमी होता है, उसको प्रधान नहीं बनाया है, जो सबसे बेवकूफ आदमी होता है, उसको प्रधान बनाया गया है तो क्या हमारी समाज व्यवस्था बदलेगी। इसमें नाराजगी का कोई मतलब नहीं हैं। जिस प्रान्त की आप बात कर रहे हैं, क्या उसमें अनुसूचित जाति का कोई सचिव है? ‘नहीं’! तेरह जिलों में आप नजर घुमा लीजिए कोई जिला अधिकारी है ही नहीं। आपके एस.पी.जी असुसूचित जनजाति से हैं। आपके पास जितना भी पुलिस महकमा है उसमें कोई है, नहीं। आज आप अखबार उठा कर देखिए। उसमें रोज ये समाचार आ जाता है कि फलां दलित लड़की के साथ बलात्कार हो गया, फलां ये हो गया। अंतिम परिणाम कुछ नहीं। इस जनपद में यहां पर बहुत माननीय और अच्छे लोग मौजूद हैं। मैं आर्थिक रूप की बात नहीं करता लेकिन क्या उन्हें सामाजिक रूप से साथ मिलता है। आर्थिक रूप से वो आदमी कभी सम्पन्न हो ही नहीं सकता। इसलिए नहीं हो सकता कि वह अच्छा आदमी है। अच्छा मिस्त्री है, तो उसको काम मिलना बन्द हो गया। अच्छा कारीगर कहीं है, तो उसको काम नहीं मिलेगा। जिसकी कल्पना अभी भाई साहब कह रहे थे कि गरूड़ का मन्दिर देखिए, बैजनाथ का मन्दिर देखिए, आपके उत्तरकाशी का विश्वनाथ मन्दिर देखिए, केदारनाथ देखिए, बद्रीनाथ देखिए। केदारनाथ के मन्दिर के ऊपर एक चक्र रखा है इतना बड़ा पहिए जैसा पत्थर रखा है। कितना बड़ा पत्थर है वो किसने उसे उठाया होगा। उस जमाने में क्रेन तो होती नहीं थी। या जो भी कलाकारी उस समय शिल्पकारों ने की होगी किस हिसाब से की होगी? किस

तकनीक से की होगी इसका कोई उल्लेख नहीं है। आप जैसे बुद्धिजीवी लोग चर्चा करेंगे, चर्चा के बाद कोई ड्राफ्ट लोकप्रिय शासन के पास जायेगा और क्या लोकप्रिय शासन में कोई सहृदयी लोग होंगे वो लागू करेंगे। हमारे माननीय विधायक जी यहाँ बैठे हैं। वो सोच रहे होंगे, हम पर टिप्पणी कर रहे हैं, ऐसा कुछ नहीं है। सबसे पहले तो हमको ये सोचना चाहिए कि भई जिस समाज में हम लोग रह रहे हैं, उस समाज में गाय का बहुत बड़ा महत्व है। उसी समाज में हमें भी ये कहा जाता है कि 'साहब गाय हमारी माता है'। बैल को किसी ने बाप नहीं कहा। काफी लोग यहाँ बैठे हैं उन्हें भी पता होगा कि हमारे यहाँ काफी स्लोगन लिखे रहते हैं कि 'गर्व से कहो मैं हिन्दू हूँ'। यदि कहीं हिन्दुओं का उल्लेख हो तो उनकी धर्म की पुस्तक के रूप में गीता, रामायण या महाभारत उठा लिजिए, महाभारत का नाम जरूर आता है। मैं आपको एक बात और बताता हूँ तो जब समाज के लोग मुसलमानों से त्रस्त थे तो ब्राह्मणों पर टैक्स नहीं लगता था– 'जजिया कर'। क्यों नहीं लगता था क्योंकि मुसलमानों से कह दिया गया था कि हम विदेशी हैं। बाहर से आये हैं तो आज कैसे कह रहे हैं भई कि हम इस देश की राजनीति में सामाजिक समरसता लायेंगे। या हम फिर ये विवेकानन्द जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है बकायदा जब अंग्रेजों से 1700–1800 की लड़ाई लड़ने की बात, स्वतन्त्र करने की बात हुई तो उस समय उन्होंने कहा कि हाँ हम इस देश के हैं। वहीं जब समाज हमारे ऊपर शासन कर रहा है तो हम कैसे कह सकते हैं कि भई ये जातिवादी समाप्त हो गयी है। ये तब तक नहीं हो सकते, जब तक सारे लोग एक साथ ना आयें। गाँव का प्रत्येक बच्चा पढ़े और पढ़ने के बाद इस स्तर तक आ जाय कि समझने के स्तर तक आ जाय।

छुआछूत और मन्दिर को मैं इसलिए नहीं मानता हूँ कि मेरे जाने से यदि भगवान का दरबार अपवित्र हो रहा है। तो ऐसे भगवान के दरबार में जाने की जरूरत क्या है। अभी एक शब्द और भाई साहब कह रहे थे कि ''अहं ब्रह्मास्मि'' ब्रह्मा जी ने कहा है कि जैसा मैं हूँ वैसा ही तुझको बना रहा हूँ। जैसे अच्छे काम मैं करूँ वैसे तू कर। जितने भगवान हुए हैं, उनकी कोई जाति नहीं है। भई कृष्ण भगवान जिसने गीता लिखी वो तो यादव थे, और यादव दलित है। जब उसके लक्ष्य पर हम सारा काम करते हैं तो इसी वर्ग को क्यों पीछे रखा गया है ? मनुस्मृति यहाँ बहुत लोगों ने पढ़ी होगी उसमें में एक प्रसंग डालता हूं जिसमें लिखा गया है कि 'जब पण्डित जी के लड़के का नामकरण होगा तो सम्मान सूचक रखा जायेगा जैसे लक्ष्मीप्रसाद या प्रभुनारायण रखा जायेगा; ऐसे किसी क्षत्रिय का नामकरण हो तो शौर्य–सूरवीर सिंह, पृथ्वीपाल सिंह; ऐसे ही वैश्य के लिए उसका नाम धनमल रखा जायेगा और जब वहीं पंडित जी शूद्र के बच्चे का नामकरण करेंगे तो घृणा सूचक नाम रखा जायेगा और

पंडित जी कहीं पर लिख देंगे और कहेंगे कि लिख दिया है पढ़ लो तो लिखा होता है– ग्वाडू, मूताडू, कुत्ता।'
प्रदीप टम्टा जी – एक बात है कि मनुस्मृति में अस्पृश्यता कहीं नहीं लिखा गया है।

शाह जी – नहीं अस्पृश्यता नहीं लिखा गया है मगर मेरा नाम है कामता प्रसाद तो आप प्यार से मिलेंगे। अगर मेरा नाम कुत्ता तो आप नहीं मिलेंगे। लोग अक्सर यह कहते मिलेंगे कि 'क्या साला जिसका नाम कुत्ता है; वो तो कुत्ता है ही तो वो तो काटने को आयेगा।' और आप कह रहे हैं कि ऐसा नहीं लिखा है। आप कह रहे है ऐसा नहीं लिखा है।

प्रदीप जी – मैं दो चीज कह रहा हूँ कि हम अपने ही सन्दर्भ को कमजोर कर देंगे।

शाह जी – मेरा वो मतलब नहीं है। मतलब है कि किस तरह से सुधार लायें। वर्ग के लोगों को सम्मान दिया जाय। तभी उत्थान हो सकता है। आपने मुझे बोलने का मौका दिया इसके लिए धन्यवाद।

नौटियाल जी – मेरा एक निजी आग्रह है कि महिलाओं की तरफ से कोई टिप्पणी नहीं आयी। इसके बाद महिलाएं अपनी बात रखने की तैयारी करें। आइए शोभन जी आप अपनी बात रखें।

शोभन सिंह नेगी – सभा के अध्यक्ष! मुख्य अतिथि। यहां दलित की और स्वर्ण की बात आयी पर मुझे लगता है कि सबसे पहले समाज की रचना करने की बात अस्तित्व में आयी होगी। इतिहास के माध्यम से अपने तथा दूसरे को समझना आसान होता है। इतिहास मात्र दुभाषिये का काम करता है। आज इस गोष्ठी के दौरान यहां जितने भी आदमियों ने भाषण दिए यदि हम उन्हें समाज में सुनायेंगे तो एक जैसा नहीं सुना पाएंगे और न ही लिखने पर वो एक जैसा ही हो पाएगा। इतिहास पर हमेशा ही अंतहीन विचार होता है। एक बार इस पर बहस शुरू हो गई, तब हमें इसकी सीमा भी समझ में आयी। अब मैं दूसरी बात पर आता हूं, मेरे लिए समाज हमेशा जीवन्त रहता है, मरता नहीं है, चाहे वो हिन्दुस्तान का समाज हो या किसी और देश का समाज की क्यों न हो।

मैं सुबह से सुन रहा हूँ, कि आप लोग ऐतिहासिक दृष्टि की चर्चा कर रहे हैं। उन्हें सुनकर हमारी जानकारी बढ़ी है। जहां पर आपने बात की मैं उसे वहीं से शुरू करता हूं। जन्म लेने से पहले मुझे भी यह पता नहीं था कि मैंने किस वंश या गोत्र में

जन्म लेना है क्योंकि ये सब कुछ मेरे वश में नहीं था। भले ही मैं ये कल्पना कर लूं कि मुझे यूरोप में जन्म लेना है। लेकिन वास्तव में वो सब मेरे वश में नहीं है। आप में से अधिकतर लोगों ने कहा कि हमें समाज में मौजूद जातिगत भेदभाव को मिटाने के लिए वातावरण बनाने की जरूरत है। हमारे उत्तराखण्ड में भी वो एक बड़ा मुद्दा है। मैंने भी अपने पिछले 15 साल के सार्वजनिक जीवन में ऐसी कई घटनायें देखी हैं जिनमें जातिगत भेदभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इन बातों से स्पष्ट हुआ कि समाज दलित व सवर्ण में बंटा हुआ है। समाज में यह विभाजन तो मौजूद ही है लेकिन उससे पहले हमारे परिवार में भी यही विभाजन मौजूद था क्योंकि एक ही परिवार में कई मत–मतान्तर वाले लोग होते हैं जिससे परिवार में भी कई ध्रुव बन जाते हैं इस प्रकार जब परिवार में कई ध्रुव हो सकते हैं तो समाज में भी कुछ और प्रकार के विभाजन आने लगते हैं। समाज में मौजूद इन विभिन्नताओं को दूर करने के लिए हमें समाज के आधारभूत ढांचे को समझना बहुत जरूरी है जैसे यूरोप में सम्पूर्ण समाज को समझने के लिए उसके एक खण्ड को समझा जाता है। वहीं भारतीय परम्परा में सबसे पहले सम्पूर्ण को समझो और उसके बाद एक को समझो।

मैं, अपने समाज के बारे में विचार करता हूं और फिर उसी के आधार पर अपने राजनीतिक कार्यक्रम को तय करता हूं। मुझे लगता है कि मैं, जहां रहता हूं मुझे इन बातों के लिए वहां की स्थितियों को देखना होगा। और उसके आधार पर सम्बन्धों की विषमता को दूर करने का तरीका खोजना होगा। मुझे लगता है कि हमें भारत की पुरानी सभ्यता को हल्केपन से नहीं लेकर उसको गहराई से समझकर समाज में मौजूद समस्याओं का हल ढूंडा जाना चाहिए। क्योंकि समाज में मौजूद वैमन्यता को आधुनिक शिक्षा पद्धति से तो दूर किया ही नहीं जा सकता, चाहे हम डाक्टर या इंजीनियर ही क्यों न बन जाएं लेकिन अपने समाज को समझने के लिए हमें अपने प्राचीन इतिहास को समझना ही पड़ेगा।

पूनम – जिस प्रकार से आजकल 'किशोरी उत्थान' जैसी योजनाएं खुल रही हैं वैसी ही योजनाएं सरकार को हमारे लिए भी खुलवानी चाहिए। इससे काफी लड़कियाँ प्रशिक्षित हो रही हैं, उनको समाज के बारे में, अपने अधिकारों के बारे में ज्ञान हो रहा है।

मैं ये पूछना चाहता हूं कि क्या जिन सवर्णों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है वो दलितों में शामिल नहीं होते हैं? यदि वे दलितों में नहीं आते तो किस वर्ग में आते हैं ? ऐसा भी नहीं कि सभी सवर्णों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो या सभी दलितों की स्थिति कमजोर हो। इनके लिए सरकार की तरफ से रोजगार की योजनाएँ आनी

चाहिए जिससे ये अपना विकास कर सकें। दलितों का विकास होगा तो समाज सुधरेगा, देश सुधरेगा और हमारी व्यवस्था भी सुधर जाएगी। धन्यवाद !

जगदीश जी – दलित व सवर्ण दोनों चाहते हैं कि सही व्यवस्था हो। पदयात्राओं में दोनों वर्गों के लोग शामिल होते हैं। मेरा ये सुझाव है कि दोनों ही वर्गों को साथ मिलकर इन समस्याओं को सुलझाना चाहिए। धन्यवाद।

नत्थीलाल ढलवान जी– हम जनता के प्रतिनिधि हैं और जनता हम पर लगाम लगाए रखती है इसलिए हम खुलकर नहीं बोल सकते हैं। मुझे लगता है कि इस तरह की गोष्ठियाँ को गाँव–गाँव में आयोजित करवाना चाहिए। इससे गाँव में प्रभाव पड़ेगा और लोग स्वतः सुधरना चाहेंगे।

मुकेश बहुगुणा – अब मैं विजय जी से आग्रह करूँगा कि वे अपनी बात रखें।

विजय कुमार – मैं यहां पर अपने व्यक्तिगत अनुभव बाँटना चाहता हूँ। कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक। मुझे अपने दलित होने का पहली बार एहसास तब हुआ जब में दूसरी या तीसरी कक्षा में पढ़ता था। वहाँ पानी पीने के लिए दो गिलास रखे जाते थे, एक सवर्णों के लिए और दूसरा दलितों के लिए। जो गिलास दलितों के लिए होता था वो टूटा हुआ होता था। उस गिलास की ही इज्जत नहीं थी तो हमारी क्या इज्जत होती। तो पहली बार मुझे अहसास हुआ कि मैं किसी गलत समाज में पैदा हो गया हूं। मैं, अपने साथियों से भी इसी बारे में बात करता रहता हूं। आज की तारीख में मुझे उस स्थिति में थोड़े बहुत सकारात्मक बदलाव भी दिखाई देते हैं। जो कि मैंने सरकारी तन्त्र या संस्थाओं के काम से नहीं बल्कि अपने व्यक्तिगत अनुभवों से देखे।

मैंने बचपन में गाँधी व विनोबा को पढ़ा तो मुझे एक ऐसी सनक चढ़ी कि गांव में रहा जाए, गाँव में काम किया जाय। तो हम साथियों ने मिलकर एक स्कूल का शुभारम्भ किया। मेरा दूसरा साथी सवर्ण था तो हम दोनों साथी वहां पर पढ़ाते थे। बच्चों से दिन का भोजन मँगाते थे। तो एक दिन हम दोपहर में बैठकर भोजन कर रहे थे, एक बच्ची ने बोला छिः इसे छूकर नहीं खाते। ये बात मेरे साथी की नजर में आ गयी। शाम को हमारी चर्चा हुई। एक दफे तो ऐसा मन हुआ कि झोला–झमटी पकड़ के निकल लूँ वहाँ से। दोनों के बीच में बातचीत हुई तो रास्ता निकाला कि सारे बच्चों में नाश्ता इक्ट्ठा कर बांट देते हैं। हमने ऐसा ही किया तो सारे बच्चों ने खाया। तो दूसरी बार जब हमने अभिभावकों की बैठक की तो इस बात को रखा। किसी को कोई

आपत्ति नहीं हुई। वो मध्याह्न भोजन पर आपत्ति हो रही है पता नहीं क्या कारण है ? उनके कुछ सरकारी कारण भी हो सकते हैं। ये भी एक ध्यान देने योग्य बात है।

दूसरी बात उत्तराखण्ड देव भूमि है। इस देवभूमि के माथे पर एक बहुत बड़ा कलंक है। उस कलंक को याद करना बहुत जरूरी है 'कफल्टा काण्ड'। जिसमें 19 दलितों की हत्या कर दी गयी थी। आज भी जब ब्राह्मण, ठाकुर, दलित की छोटी सी रंजिश होती है तो धमकी दी जाती है कि 'कफल्टा काण्ड' हो जायेगा। ये पहेली बन गयी है। जब इस तरह के सकारात्मक पक्ष भी हैं तभी ये देवभूमि अभी तक बनी हुई है।

मुकेश बहुगुणा – धन्यवाद विजय भाई, मुझे तो इनके साथ एक महीना गुजारने का मौका मिला है। इसलिए इनकी बात को मैं अच्छी तरह से समझ पा रहा हूँ। अब मैं, भट्ट जी से आग्रह करूँगा कि वो अपनी बात रखें।

लक्ष्मीदत्त भट्ट जी – मेरा नाम पूर्व सूबेदार लक्ष्मीदत्त है। मैं जनपद बागेश्वर का रहने वाला हूँ। मैं बहुत सौभाग्यशाली हूं कि आप लोगों ने मुझे यहाँ पर आमंत्रित किया। मुझे अपने भाइयों की भावनाओं या उनके विचार सुनकर बहुत ही ग्लानी होती है और मैं ये प्रश्न करने लगता हूं कि हम इस देश के लिए क्या करेंगे, और अपने लिए क्या करेंगे और अपनी भावी संतान के लिए क्या करेंगे जब हमारी सोच ही ऐसी है तो।

मैं अपनी बात कहता हूँ, मैं जीवनशाला का अध्यक्ष हूँ। यहां मौजूद जगत और विजय मेरे अपने बच्चों की तरह हैं। मैंने 28 साल तक नौकरी करने के बात ऐसी बात पहली बार सुनी है; ऐसे में हमारे लिए धिक्कार है। हम प्रतीत करते थे कि कुमाऊँ पीछे है, पर आज प्रतीत करता हूँ कि गढ़वाल तो उससे भी कई किलोमीटर पीछे है। मैं चाहता हूं कि हमारी शिक्षा ऊँची हो, सब रूपरेखा बदल जाये, जो स्कूल आज खाली पड़े हैं वहां बच्चे अच्छी शिक्षा का अनुसरण कर समाज में अपना नाम कमाएं। और एक दिन हमारे समाज से ये छुआछूत जैसे भेदभाव दूर हो जाएं। इन्हीं शब्दों से मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ धन्यवाद।

अमर दास जी – इस सभा में मैं सबसे उम्रदार हूँ। पुराने जमाने में पिताजी रामायण, महाभारत पढ़ते थे। लेकिन अब देखा दूसरों को जगाने के लिए पहले खुद जगना होता है। आपको मालूम होना चाहिए हमारे जो बड़े महान नेता हुए। गाँधीजी ने कहा था कि डॉ0 अम्बेडकर को प्रधानमंत्री बना दो और जिन्ना को राष्ट्रपति बना दो। तो वे अनुभवी आदमी थे। उसने कहा कि इससे दलित भी खुश हो जायेंगे और मुसलमान भी खुश हो जायेंगे। जिन लोगों की स्मरण शक्ति कम थी या जो मनुवादी प्रथा वाले थे

उन्होंने न तो जिन्ना को प्रधानमंत्री बनने दिया और न ही डॉ0 अम्बेडकर को। उसका प्रभाव आज हम सभी को भुगतना पड़ रहा है।

आप तो आज का जमाना देख रहे हैं आज तो इन लोगों को काफी सद्‌बुद्धि आ गई है कि ये हरिजनों के बीच बैठने लगे हैं वरना एक समय था जब ये अपने–आप पर हरिजनों की छाया तक नहीं लगने देते थे। हम उन बातों को आपके कानों तक नहीं पहुँचाना चाहते। हम आपको नयी बात बतायेंगे। अगर वैसा हो जाता तो पाकिस्तान न बनता वैसा हो जाता तो हरिजन भी ठीक ही रहते। गोष्ठियाँ होती हैं, मैं काँग्रेस का हूँ। इसलिए क्योंकि कुछ काँग्रेस के लोगों ने अच्छा किया है। बहुत सारे भाई ऐसे है जो कुर्सी मिल जाती है तो भूल जाते हैं लेकिन कुछ लोग याद रखते हैं।

आखिर सोचा जाए तो समाज में यह छूआछूत किसकी कमी से हुआ? सवर्णों की कमी है? मैं तो सवर्णों को दोष नहीं देता हूँ। मैं तो एक ही चीज से प्रसन्न हुआ कि जब भगवान रामचन्द्र जी वनवास जा रहे थे तो वनवास जाते वक्त सब लोगों को कहा– नर और नारी जाओ, रहो आनन्द सुखारी। तब उसमें 14000 हिजड़े भी शामिल थे, उस समय हिजड़ों के एक नेता ने कहा कि अरे हम तो न नर है न नारायण; न कुछ न कुछ। हमारे लिए भगवान ने कुछ नहीं कहा तो वो वहीं रहे। उनकी आज्ञा मान ली। यदि अनुसूचित जाति का आदमी तुम्हें कोई रास्ता बतायेगा तो आप भले ही उल्टे रास्ते पर चल पड़ें लेकिन उसके कहे अनुसार नहीं चलेंगे। मैं 74 वर्ष का हूँ। मेरी ये जिम्मेदारी है कि मैं हरिजनों को भी आगे आने का मौका दूं। यदि ऐसा न हुआ तो जैसे आज हरीश रावत जैसे लोग सत्ता संभाल रहे हैं। वे लम्बे–लम्बे कुर्ते पहन कर उत्तराखण्ड को सुधारने निकलते हैं। मैं कहता हूं कि अरे! पहले अपने गाँव को सुधारो, परिवार को सुधारो पट्‌टी को सुधारो तब हमारी बात करना। तो हरिजनों से मेरा निवेदन है कि हमें उन लोगों की आलोचना नहीं करनी चाहिए क्योंकि एक समय आयेगा जब पेड़ ऊपर उभरेगा तो टहनियाँ नीचे झुकेंगी। सवर्ण भी ऐसे ठेठ हैं तो अँगूठा लगाते हैं। अरे मेरा बाप तो थोकदार था, मेरा बाप तो बहुगुणा था। अरे भाई बताओ तो सही बहुगुणा ने क्या तोप फाड़ दी और भट्ट ने क्या तोप फाड़ दी। आरक्षण की नीति तो बना दी दलितों के भगवान अम्बेडकर ने। हम एक बार बिहार गये वहां किसी सभा में दादा धर्माधिकारी भाषण दे रहे थे कि हरिजनों की मनुवादी प्रथा का तो कोई भगवान ही नहीं हुआ। जब कानून बना, बहुत वकील जानते ही नहीं कि डॉ0 अम्बेडकर कौन था। ले भई ये कानून किसने बनाया तो कहना हैं कि हम सवर्णों से लड़ाई करना छोड़ दें जो छुआछूत करता है। उसका दिमाग उतना ही है। कफल्टा काण्ड में मैं खुद गया था। अगर मुझ जैसा आदमी होता तो काण्ड नहीं होना था। देवता का मन्दिर था जब उस घोड़े के ऊपर कोई नहीं जाता। ये परम्परा है तो हमको भी तो उतरना चाहिए था। जब किसी पुजारी ने कहा कि बेटा उतर जाओ तो उतर

जाना चाहिए था। तो मैं ज्यादा कह गया हूँ। मैं जवाहर लाल जी के साथ रहा सन् 60 में उन्होंने मेरे कान में कहा कि तुम नेता बनना चाहते हो तो पहले अपने परिवार को सुधारना ताकि गाँव वाले कुछ न बोलें। तो वहीं सबक सीखा। अगर मैंने कुछ गलत कहा तो सबसे माफी चाहता हूँ। जय हिन्द।

मुकेश बहुगुणा – बहुत प्रेरणा मिली। आपने कहा कि केवल संघर्ष से कुछ नहीं होता। अब उत्तमलाल जी अपनी बात कहेंगे।

उत्तमलाल – मैं सबका स्वागत करता हूँ। आप सभी लोग जानते होंगे कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश हमारे देवता हैं लेकिन फिर भी हम सबसे पहले गणेश जी की पूजा की जाती है क्योंकि वे सबसे पहले अपने माता–पिता की पूजा करना चाहते थे। यदि हम भी वास्तव में इसी भावना को अपनाना चाहते हैं तो हमें ब्राह्मणवाद मिटाने के बारे में बात करनी होगी।

हम ऐसे ब्राह्मणों या ठाकुरों को नहीं मानते जिन्होंने जगह–जगह पर दलितों के साथ अत्याचार किये, जिन्होंने हमारे घर जलाए। सरकार दलितों के लिए कई योजनाएं चला रही है लेकिन अभी भी हमारे गांवों के स्कूलों में सरकार द्वारा चलाई योजना के तहत बच्चों को दिन का भोजन उपलब्ध कराया जाता है लेकिन वहां दलितों और सवर्ण जातियों के बच्चों को अलग–अगल जगह खाना खिलाया जाता है। मैंने अपनी आंखों से ऐसा होते हुए कई बार देखा है। हमने इस बारे में वहां के अध्यापकों से पूछा उन्होंने कहा कि हम ऐसा कुछ भी नहीं करते हैं बल्कि ये बच्चे अपने–आप ही कहीं पर भी बैठ जाते हैं। उनकी इस बात की सच्चाई जानने के लिए मैं एक बार स्कूल में गया वहां जाकर मैंने देखा कि वे स्वंय ऐसा नहीं करते हैं बल्कि ऐसा करने के लिए उन्हें विवश किया जाता है। और हम दलित लोग इस बात का विरोध भी नहीं करते हैं। आपने देखा होगा यदि कहीं पर किसी दलित की पिटाई हो रही हो तो अन्य उसका साथ देने की बजाय वहां से भाग जाते हैं कि कहीं उनकी भी पिटाई न हो। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि यदि आप समाज में समानता कायम करने की दीवार बनाना चाहते हैं तो एक ऐसी दीवार बनाओ जिसकी बुनियाद बहुत ही मजबूत हो जिससे दीवार ढहे नहीं और ऐसा वृक्ष रोपो जिसके फल को खाकर सबको संतुष्टि मिले और सभी लोग उसे प्यार–प्रेम से खाएं। धन्यवाद !

परशुराम जगूड़ी – आदरणीय अध्यक्ष मण्डली। मैं कल से इस गोष्ठी में बैठा हूँ और मैं अपना सौभाग्य मान रहा हूँ कि जब से सुरेश भाई के सम्पर्क में अया तब से ऐसी गोष्ठियों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहां सभी लोगों ने प्रभावशाली बात रखी

पर सबसे अधिक मैं अपने पिता के समान बुजुर्ग की बातों से प्रभावित हुआ। यहां मौजूद सभी लोगों ने कहा कि कुछ आप बढ़ो, कुछ हम उठेंगे, कुछ हम झुकेंगे। इस तरह से परस्परता की भावना आयेगी।

मैं आपको अपने यमुना घाटी का एक दृष्टान्त दूँ। हनुमान चट्टी के पास एक गांव है। एक बार उस गांव के लोगों ने श्रीमद् भगवद् कथा का आयोजन करना चाहा। जिसके लिए अनुसूचित जाति के लोगों से भी पैसे इक्ट्ठे किए गए। लेकिन उन लोगों से यह कहा गया कि जिस स्थान पर व्यास बैठे होंगे, उस स्थान पर वे लोग परिक्रमा नहीं करेंगे। इस बात को सुनकर अनुसूचित जाति के सभी लोग बड़कोट आए और उन्होंने थाने में एफ.आई.आर. दर्ज करायी। इस प्रकार जिस दिन व्यास जी को आना था उसी दिन उन लोगों ने एफ.आई.आर. दर्ज करायी। उस दिन एस.ओ. बड़कोट थे फिर एस.पी. को बताया गया और उनपर दबाव डाला गया फिर जाकर झगड़े को कुछ हद तक शांति किया गया।

हम लोग गाँव में छुआछूत पर जनजागरण करते हैं क्योंकि मैं छुआछूत को नहीं मानता हूँ। मैं कहता हूँ कि जब बच्चा माँ की गोद से जन्म लेता है तो वह खून से लथपथ होता है। तो उस समय केवल यही बोलते हैं कि लड़का हो गया, लड़की हो गयी। तो स्त्री–पुरूष की दो जाति है। लड़ाई–झगड़े से इस का समाधान नहीं हो सकता। हम गाँव–गाँव जाकर अभियान करेंगे, सड़कों पर उतरेंगे। इस प्रकार से इस समस्या का समाधान हो सकता है। इसी उद्देश्य के लिए मैंने अपने नाम के आगे जगूड़ी शब्द जोड़ना छोड़ दिया, अब से आप लोग मुझे परशु भाई कहकर पुकारेंगे। धन्यवाद !

मुकेश बहुगुणा – अब भुवन भाई कम से कम समय में अपनी बात रखेंगे।

भुवन पाठक – मुझे भी लगता है कि मैं बहुत ज्यादा नहीं बोलने वाला हूँ। अभी मैं बहुत खुश हूँ क्योंकि मुझे सवर्ण होने का भय था जो लगभग खत्म हो गया और ये मेरे लिए इस पूरे आयोजन की एक बड़ी उपलब्धि है। सवर्ण होने का जो डर मेरे मन में था वो निकल गया। मुझे लगता है आज से 5–7 पहले मेरा इस सवाल के साथ रिश्ता शुरू हुआ। उससे पहले मैं दूसरे तरह का आदमी था पिछले 5–7 साल में मेरा शिक्षण दूसरे तरह से हुआ तो मैं दूसरी तरह का हो गया। जिन 50–60 साथियों के साथ मैं काम करता रहा उनके बीच मेरा परिष्कार हुआ। मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई और मैं दूसरे तरह का हो गया। मेरा ये निजी अनुभव है बिल्कुल नितान्त अनुभव है। मेरे मन में छोटे–बड़े का भेद था जो कि खत्म हो गया। उसी प्रकार से मेरे मनसा, वाचा और

कर्मणा में जो भी भेद थे वो धीरे–धीरे खत्म हो गए और वो घटने का क्रम आज भी जारी है और मैं मानता हूं कि वो मेरे लिए मेरी नितान्त निजी सम्पत्ति है।

दूसरा, मैं जातिगत असमानता को दूर करने की बात को आगे बढ़ाने के बारे में सोचता हूं। पहले मुझे लगता है कि ये संवैधानिक प्रयास है और वो बहुत साफगोयी से किये जाने चाहिए। मुझे लगता है कि जातिगत असमानता को संवैधानिक और कानून के अलावा राजनैतिक रूप से संगठित होने के प्रयास किए जाने चाहिए। जैसे काँग्रेस पार्टी के एक प्रतिनिधि, कार्यकर्ता और नेता प्रदीप भाई ने साफ–साफ कहा कि काँग्रेस पार्टी ने पिछले 50–100 साल में ये काम किये हैं। मुझे लगता है कि वो काम भी ठीक है इसके अलावा मायावती व कांशीराम ने भी ठीक काम किए। तमाम वामपंथी राजनैतिक संगठनो ने जातिगत असमानता को खत्म करने के लिए जो कुछ भी किया, वो भी ठीक है। इस काम में सर्वोदय के साथियों ने भी ठीक काम किया है। मुझे लगता है कि ये जो तमाम अलग–अलग तरह के काम हो रहे हैं ये काम आगे बढ़ते ही रहने चाहिए। ऐसा नहीं है कि इस काम में कुछ एक राजनैतिक दल ही शामिल हैं बल्कि इसमें बसपा के, कांग्रेस के संगठित प्रयोग भी किए जा रहे हैं। कुछ लोग आर. एस.एस. और भाजपा की बहुत आलोचना करते हैं उन्हें लगता है कि ये दोनों पार्टियां इस बारे में कुछ काम नहीं कर रही हैं। लेकिन मैंने देखा है कि ये लोग भी जातिसूचक शब्दों का इस्तेमाल नहीं करते हैं। यद्यपि में सैद्धान्तिक रूप से भारतीय जनता पार्टी के बहुत खिलाफ रहता हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि इस संघ में हमारा भला करती है।

समाज में होने वाले कुछ ऐसे ही प्रयासों के कारण हमारे समाज में जाति के नाम पर कुछ परिवर्तन भी हुए हैं। मैं अपने गाँव का उदाहरण देता हूं हमने एक दलित बस्ती के नौले को जगह हैण्डपम्प में बदल दिया और वहां पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं होता है। सभी लोग वहां पानी भरने जाते हैं। मैं आधुनिक तकनीकी का सबसे मुखर विरोधी हूँ। मुझे लगता है कि आधुनिक विज्ञान और तकनीक ने मानव जाति का सबसे ज्यादा नुकसान किया। लेकिन मुझे ये भी अच्छा लगता है कि इस विज्ञान और तकनीक ने मानव को मानव के नजदीक लाने में भी मदद की। कुल मिलाकर मैं ये चाहता हूं कि जो जातिगत भेदभाव मुझे भट्ट जी, सुरेश भाई जैसे लोगों से अलग कर दे हमें उसे खत्म करने का प्रयास करने चाहिए और मुझे लगता है कि उसमें हम सबको या व्यक्तिगत रूप से मुझे सहयोग करना चाहिए।

दूसरी बात ये है कि कल तक मुझे लगता था कि कोई क्या कहेगा लेकिन अब मुझे उन बातों का कुछ फर्क नहीं पड़ता है, समाज में समानता लाना मुझे मेरी जिम्मेदारी महसूस होती है। अगर आज कोई दलित मुझे गाली देता है तो मुझे कोई दिक्कत नहीं होती। क्योंकि मुझे मालूम है कि मैं भी इस अन्याय का एक पक्ष हूं और

मैं भी पीड़ित हूं। इसलिए चाहे कोई दलित मुझे गाली दे, मुझसे झगड़ा करे या मुझे अपमानित करे लेकिन मुझे बुरा नहीं लगता है। जिन्होंने मुझे तथा मेरे पारिवारिक जीवन को बहुत नजदीक से देखा है उन्होंने कई बार मुझसे कहा कि तुमने ऐसा काम करने के बारे में क्यों सोचा यदि काम करना है तो सुन्दर लाल बहुगुणा की तरह काम करो लेकिन मैं ऐसा नहीं सोचता मुझे लगता है कि ये एक चुनौती भरा काम है, मैंने कभी भी इस बात का ढिंढोरा पीटने की कोशिश नहीं की कि मैंने अपने जीवन और अपने पारिवारिक जीवन को कैसे बदला ? मैं, इन सब बातों पर ध्यान नहीं देता हूं क्योंकि इन बातों से कुछ निकलने वाला नहीं है।

जाति के नाम पर होने वाले भेदभावों को दूर करना मुझे अपनी जिम्मेदारी लगती है। इसलिए अब मैं किसी भी बात की परवाह नहीं करता हूं। कल तक जहां मैं ये सोचता था कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते होंगें वहां आज मेरे मन में ऐसी कोई भी भावना नहीं है और आज यहां आकर तो मैं बहुत ही खुश हूं जहां पर दलित और गैर दलित आपस में एक ही मंच पर बैठकर अपनी–अपनी बात रखने के लिए स्वतंत्र हैं। इसलिए आज मेरा यह डर पूरी तरह से निकल गया। मैं, चाहता हूं कि जहां भी मैं रहता हूं वहां एक ऐसा बाजार हो, एक ऐसा गांव हो और एक ऐसा कस्बा हो जहां सब लोग मिलकर रहते हों। यहां हमारे दलित साथियों ने हमपर या सवर्ण जाति पर कई आरोप लगाए और हमने उनकी बातों को शांति से सुना और मुझे लगता है कि हमें ऐसा सुनना ही होगा क्योंकि हमारी जाति के लोगों ने आज तक उनपर कई तरह के अत्याचार भी तो किए हैं। और यदि हम उन्हें नहीं सुनें तो हमें कैसे पता चलेगा कि हमने उनपर किस–किस तरह के अत्याचार किए हैं।

अभी सुरेश भाई ने ये संकेत दिया कि हम लोगों को पदयात्राएं करनी चाहिए। और मुझे लगता है कि यदि हमारे साथियों को ठीक लगे तो एक बड़ी टीम बनायी जानी चाहिए। जिसमें इस तरह की सभाएं और गोष्ठियां होनी चाहिए, संवाद होने चाहिए।

मैं यदि चाहूं तो मैं एक ब्राह्मण नेता बन सकता हूं और मैं बहुत ही तेजस्वी हिन्दू नेता बन सकता हूं। यदि मुझे वो बनना होता तो मेरा अलग रास्ता होता। लेकिन मेरे लिए वो दोनों रास्ते नहीं हैं। मेरे लिए एकमात्र यही रास्ता है कि मैं समाज में दलितों पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाऊं और उनके कल्याण के लिए कुछ साथियों का संगठन बनाकर दलितों की भलाई के लिए कुछ काम कर सकें। मुझे लगता है कि हम सवर्ण जाति द्वारा छोटी जातियों के साथ मन, वचन या कर्म से किया गया छुआछूत का व्यवहार भी एक तरह की हिंसा ही है इसलिए हमें उनके प्रति होने वाली इस हिंसा को खत्म करना होगा। इस असमानता को दूर करने के लिए

आप जिस भी तरह का उपाय या रास्ता बताएंगे, मैं उसे अपनाने के लिए तैयार हूं। धन्यवाद !

सुरेश नौटियाल – मुझे आज की बैठक में उतनी ऊर्जा दिखायी नहीं दे रही है जितनी कि कल थी। मैं चाहता हूं कि वो ऊर्जा लौटे और आप सब लोग यहां से एक प्रेरणा लेकर जायें।

शैलेन्द्र कुमार – आदरणीय अध्यक्ष मण्डल ! और साथियो। इतिहास के पन्नों को पलटना आवश्यक है। क्योंकि इतिहास के पन्नों में बहुत सारे हारे हुए लोग मिलते हैं। और इस देश की बहुसंख्यक जनसंख्या हारी हुई है। मुझे लगता है कि उन हारे हुए लोगों के पास अद्‌भुत अनुभव होते हैं, उन हारे हुए लोगों के अनुभवों से विश्लेषण करके एक नयी दिशा तय करने की आवश्यकता है। मैं बार–बार बड़ी जनसंख्या के बारे में बात करना इसलिए पसंद करता हूँ क्योंकि लोकतंत्र और खासकर इस देश के भीतर जो लोकतंत्र है उसका आधार संख्या ही है। मुझे मूल रूप से एक दो बातें करनी हैं। हम लोग कार्यक्रम तो बनायेंगे लेकिन हमें कार्यक्रमों का एक लक्ष्य निश्चित करना होगा। निश्चित रूप से दलितों की समस्या अलग–थलग सी नहीं है। गैर सवर्णों की समस्या सवर्णों से अलग हो ही नहीं सकती। लोग साथ रहते हैं साथ जीवन व्यतीत करते हैं। यदि हम दलितों की समस्याओं को गैर दलितों के दृष्टिकोण से देखेंगे तो हम समस्या को समझ ही नहीं पाएंगे और यदि दलितों की समस्या को दलितों की ही दृष्टि से देंखें तो उनकी समस्या को सही तरीके से समझा जा सकता है और फिर उसी के आधार पर उनका समाधान भी ढूंडा जा सकता हैं और तभी सही दिशा में आगे भी बढ़ा जा सकता है।

प्रदीप टम्टा– बहुगुणा जी ने कहा कि हमारी पहले की सामाजिक मान्यतायें और राजनैतिक पद्धतियां एक जैसी थीं। इसलिए कष्ट होते हुए भी पीड़ित व्यक्ति भी उसको आत्मसात करके जी रहा था और विरोध की प्रवृति नहीं थी। आज सामाजिक पद्धति को पूरी तरह से बदला नहीं गया है और राजनैतिक पद्धति ने हमको समानता की ओर बढ़ा दिया है। इसलिए दलितों और सवर्णों में एक संवाद होना चाहिए।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि आज तक हमारे समाज में समानता नहीं थी। आज हमको इसे समानता के आधार पर लाना होगा। दूसरा जब तक पीड़ित वर्ग अपने पांव पर खड़ा नहीं होता तब तक वो संवाद करने की स्थिति में नहीं रहता है। वो अपने हक के लिए लड़ने की परिस्थिति में नहीं रहता हैं। इसलिए मुझे लगता है कि जो भी पीड़ित तबके हैं चाहे वो दलित हों या महिलायें हों, उनके हिस्से में भी जमीन

का वितरण होना चाहिए, नौकरी में उसकी भागीदारी होनी चाहिए। सामाजिक क्षेत्र में उसकी भागीदारी होनी चाहिए। इन सबके उत्थान के लिए सरकार द्वार चलाए जा रहे कार्यक्रमों का समर्थन करना हमारा दायित्व है। ऐसा करने के बाद ही हम समाज में आगे बढ़ सकते हैं। धन्यवाद !

स्टीफन– मैंने जाति–पाति के बारे में एक कहानी पढ़ी थी। एक समय की बात है जब हमारे समाज में जाति–पाति की कोई भी भावना नहीं थी उसे समय एक गांव में एक लौहार रहता था, वह पूरे गांव के हथियार बनाया करता था। उस समय उसके पास दूर–दराज के लोग हथियार बनाने आते थे और कभी–कभी ऐसा भी होता था कि वो लोग वापस नहीं जा पाते थे तो वे वहीं रह जाते थे। तो इस प्रकार उस लोहार की जितनी भी कमाई होती थी वो उन लोगों को चाय–पानी पिलाने और नाश्ता कराने में या उनकी मेजबानी करने में लग जाता था। ऐसा करने से उसकी माली हालत बिगड़ती गई फिर एक दिन गांवों वालों ने ढ़ोल–नगाड़ों के माध्यम से ये ऐलान कर दिया कि आज के बाद जो भी लोहार से अपना काम करवाने आयेगा लोहार उन्हें न तो चाय–पानी पिलाएगा और न ही उनकी किसी भी तरह की खातिरदारी ही करेगा। आगे चलकर उनकी इस बात से वहां के समाज में ऊंच–नीच की भावना पैदा हो गई और धीरे–धीरे ये प्रथा बन गई कि लोहार के घर में कोई भी सवर्ण न तो खाना खाएगा और न ही उसके हाथ से पानी ही पीयेगा। इस प्रकार धीरे–धीरे समाज में छुआछूत की भावना का जन्म हो गया।

लेकिन आज यह समस्या बहुत ही विकराल रूप ले चुकी है इससे निपटने के लिए हम बुद्धिजीवी, सामाजिक कार्यकर्ता तथा जागरूक लोगों को आगे आकर एक कार्यक्रम के द्वारा इस समस्या से निवारण करना होगा। मैंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी इसी तरह का प्रयास किया है। मैंने अर्न्तजातीय विवाह किया है। मैंने अपनी जाति से बड़ी जाति की लड़की से विवाह किया है। आज उस शादी के कारण हम दोनों के परिवार में बहुत ज्यादा प्यार हो गया है जबकि पहले ऐसा कुछ भी नहीं था। इस प्रकार हमें अपने साथ–साथ पूरे समाज में भी इसी मानसिकता को विकसित करना होगा।

सुरेश नौटियाल – राम प्यारी जी से आग्रह है कि वो अपनी बात रखें।

रामप्यारी– आज इस बैठक में बहुत आनन्द आया। हालाँकि में 17 साल से सामाजिक जीवन में हूँ। आज की बैठक में टम्टा जी के भाषण से मैं गद्‌गद हो गयी हूँ। सभी भाइयों के विचार आये हैं जो कि गरीबी, छुआछूत, महिलाओं आदि के बारे में आये हैं। लेकिन मुझे लगता है कि सबसे पहले हमारे दलित भाइयों व बहनों को शिक्षित होना

जरूरी है। यदि हमारे समाज में शिक्षा की कमी न हो तो अधिक से अधिक लोगों को नौकरी मिल सकती है क्योंकि गरीबों के साथ भी छुआछूत होती है और अशिक्षितों के साथ भी, महिलाओं में भी बहुत छुआछूत है। सवर्ण भाई, अपनी पत्नियों को ये शिक्षा देते हैं कि अपने गांव की दलित महिलाओं को रोटी भी फेंक कर दी जाती है।

हमारे अम्बेडकर जी ने कहा था कि शिक्षित बनो, संगठित रहो और बाद में संघर्ष करो, हमारे पास कोई न कोई पद होना भी जरूरी है और पद तभी मिलता है जब हम पढ़े–लिखे होंगे। इन्हीं शब्दों के साथ, धन्यवाद।

जबर सिंह– माननीय टम्टा जी का भाषण हम सब लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा। राजनीतिक क्षेत्र में बहुत सारी विसंगतियाँ है। अभी हम लोग सोचते हैं कि आरक्षण है इसलिए हम लोग प्रतिनिधित्व करेंगे, महिलायें प्रतिनिधित्व करेंगी। लेकिन जो दलित आरक्षण से निकल कर जाते हैं फिर चाहे वो विधानसभा में जाएं या पंचायत में जाते हैं उनकी स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं होता है। चाहे वो आरक्षित सीट से चुनाव लड़ें और जीत भी जाएं लेकिन फिर भी उनको समाज में वो सम्मान नहीं मिलता है जो कि किसी सवर्ण जाति वाले को मिलता है। पहले तो सवर्ण जाति वालों को लगता है कि यह व्यक्ति किसी भी काम को ढंग से नहीं कर पायेगा और इस काम के लिए जितनी ऊर्जा, सार्म्थय या आर्शीवाद की आवश्यकता होती है वह तो उनमें है ही नहीं। उन्हें ये लगता है है कि किसी भी चुनाव को जीतने के लिए बड़े और छोटे के आर्शीवाद के साथ–साथ शराबी–कबाबी का भी आर्शीवाद लेना चाहिए अर्थात वो चरण स्पर्श संस्कृति की बात करते हैं। इसके अलावा यह भी सोचा जाता कि यदि आप चरण स्पर्श संस्कृति से न जुड़े हों तो या तो आपके पास बहुत अधिक पैसा हो, या आप ठेकेदार आदि से जुड़े हों, तभी आपको वोट मिलेगा वरना नहीं मिलेगा। लोगों को लगता है कि तेजतर्रार आदमी चला गया तो हमें कोई पूछेगा ही नहीं। हमें यह भी देखना होगा कि विशेष घटक योजना के तहत जो योजनाएं आ रही हैं उनका दलितों को कितना लाभ मिल रहा है। आमतौर से यह देखा गया है कि गुणवता व विद्वता के आधार पर किसी को स्थान नहीं दिया जाता है। कुछ लोग दलितों के यहां दूध तो पीते हैं लेकिन चाय नहीं पीते हैं क्योंकि उसमें पानी डाला होता है अब कोई उनसे पूछे कि क्या दूध में पानी नहीं होता है तो वे कहते हैं कि हमें पता नहीं। तो इस प्रकार लोग किस तरह का ढ़ोंग करते हैं और वहीं समाज में कुछ लोग कितने अधिक नासमझ हैं।

कुछ सवर्ण लोग छोटी जाति के लोगों को और भी अधिक छोटा बनाने का प्रयास करते हैं। जैसे कुछ दिन पहले मासू देवता के मंदिर में बोर्ड लगा था कि 'जूता, महिला व दलितों का अंदर जाना मना है'। एक बार दिल्ली में नौकरी करने वाला एक

दलित लड़का गांव में शादी करने गया उसे मालूम नहीं था कि मासू देवता के मंदिर में दलितों का जाना मना है और वह बारात जाने के रास्ते में मासू देवता के मंदिर में घुस गया। कुछ समय बाद पता चला कि पूरे गांव वालों ने उन्हें घेर लिया और 500 रुपये का जुर्माना और एक बकरा ले लिया। जिससे उन लोगों ने 500 रुपये की दारू पी और बकरे को काटकर खाया और दलित बारातियों का रो–रो कर बुरा हाल था। जो कि बहुत ही शर्मनाक बात है। मैं बस इतना ही कहना चाहता हूं। धन्यवाद!

सुरेन्द्र भट्ट जी– आज सवर्ण लोग दलितों की स्थिति के बारे में चिंता व्यक्त करते हैं और उनकी स्थिति के लिए चिंतित भी दिखाई देते हैं। वैसे तो ऐसा करके वो उनपर कोई अहसान नहीं कर रहे हैं। क्योंकि हजारों सालों तक उन्होंने दलितों पर जो अत्याचार किया है ये उन अत्याचारों का प्रयाशचित है। प्रायश्चित की इसी भावना से गांधीजी ने 'हरिजन सेवक संघ' अर्थात हरिजनों की सेवा करने वाला संगठन बनाया। उस समय 'तालीम संघ' आदि कई संघ थे जो सभी 'सर्व सेवा संघ' में मिल गये। उसके बाद ये थोड़ा सा शिथिल पड़ा, यदि ये संगठन शिथिल न पड़ा होता तो जैसी आज की स्थितियां हैं वो न रहती और हम लोग काफी आगे बढ़ गए होते। धन्यवाद !

प्रेम पंचोली– 'हरिजन सेवक संघ' का नाम आया है। हमारे गांव में टिहरी के सबसे पहले परिपूर्णानन्द पैनोली जी का स्कूल खुल रहा है; 'हरिजन आश्रय स्कूल'। अभी शैलेन्द्र भाई ने बोला कि विकल्प क्या हो। यदि मैं विकल्प की बात करूँ तो उस आश्रय स्कूल का पैसा 'हरिजन सेवक संघ' से आता है। मेरा भाई और बहिन वहाँ पढ़ते थे वो इतने बीमार हो गये कि आज भी उनकी स्थिति सुधरी नहीं। इसका एक कारण है अब पैनोली जी बुजुर्ग हो गये हैं, उनके कान में जैसी बात डाली जाए वो वैसा ही मान जाते हैं। वहाँ राम प्रसाद मैठाणी नामक एक कार्यकर्ता रखा गया। उनके अंदर छुआछूत की इतनी अधिक बू है कि वहां तीन चूल्हे जलते हैं एक वहां के मास्टरों के लिए, एक अन्य कार्यकर्ताओं के लिए और एक उन बच्चों के लिए जो कि हरिजन हैं। जब मैंने वहां का खाना चखा तो वह बहुत दिनों को बासी था। मैंने उसका विरोध किया। उसके बाद रामप्रसाद मैठाणी जी ने ही मुझपर कोर्ट केस कर दिया जिसमें देहरादून के एडवोकेट सूरत सिंह नेगी वकील थे। देहरादून कोर्ट में ये केस हुआ कि 'हरिजन सेवक' क्यों टूटा? इसलिए टूटा क्योंकि वहाँ पर राम प्रसाद मैठाणी जैसे लोग आये। यदि आप आज भी उस आश्रम में जाएंगे तो आप देखेंगे कि कम्बल को झाड़ते ही उसकी जूं की ढांग गिरेगी। क्योंकि वो हरिजनों के बच्चों के लिए है और उन्हें सफाई की जरूरत ही नहीं होती है।

मैं कहता हूं कि यदि आपको कार्यकर्ताओं का ही निमार्ण करना है तो आप 'हिमालय पर्यावरण शिक्षण संस्थान' जैसे संस्थानों का निमार्ण करें। मैं इनकी तारीफ नहीं कर रहा हूं लेकिन आप सुरेश भाई के कार्यकर्ताओं के साथ उनके पचास गांवों में जाएं तो वो जिस भी गांव में जाएं चाहे वो हरिजनों का गांव हो, ठाकुरों का हो, या ब्राह्मणों का ही क्यों न हो, उन गांवों में कोई किसी भी जाति वाले के साथ किसी भी तरह की पूछताछ नहीं की जाती है। जबकि मैं जब अन्य गांवों में जाता हूं तो लोग पूछताछ जरूर करते हैं।

भुवन भाई की तरह मैं भी किसी सभा इत्यादि में जाने से डरता था न जाने वहां लोग किस तरह का व्यवहार करेंगे कभी–कभी तो लगता था कि यदि गांधी को मानने वाले और अंबेडकर को मानने वाले लोग आपस में मिलें तो शायद गोलियां चल जांए, लेकिन अब मेरा वो डर खत्म हो गया है। आज समाज में वो परेशानियां कुछ हद तक समाप्त हो गई हैं। अब ये संवाद शुरू हो गया है और ये बना रहना चाहिए। और यहां काम करने वाले लोग हरिजन सेवक संघ के कार्यकर्ताओं अर्थात रामप्रसाद मैठाणी की तरह नहीं होने चाहिए।

नामेन्द्र सिंह– इस गोष्ठी में आने के बाद भुवन भाई का डर खत्म हुआ, पंचोली जी का डर खत्म हुआ और उसके साथ–साथ मेरा भी डर खत्म हो गया है। वो डर इस प्रकार का है कि साथियों हम इस मुद्दे को कितनी गम्भीरता से ले रहे हैं वो प्रत्येक आदमी के मन में है लेकिन मुझे वो दृष्टांत याद है जब कृष्ण भगवान की गेंद काली में गिर जाती है और फिर शेषनाग उसे अपने पास रख लेता है, उस गेंद को लेने के लिए कृष्ण जी उसके सिर के ऊपर काफी देर तक नाचते हैं, वो इतनी भयंकर तरह से नाचते हैं कि उनसे गले और पूछ से खून आने लगता है वो इतना अधिक घायल हो जाता है कि मजबूरन उसे समुद्र छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिए मुझे भी ऐसा लगता है कि कहीं दलितों पर होने वाले अत्याचार उन्हें भी समाज से दूर न धकेल दें।

मुझे लगता है कि दलितों के ऊपर होने वाली कार्यशालाओं से क्या हासिल हो रहा है उसके बारे में पता लगाना चाहिए। क्योंकि इतनी कार्यशालाओं के बाद भी कोई सवर्ण अपने घर में दलित समाज के व्यक्ति को नहीं घुसने देता है, कोई उसको छूता भी नहीं है। उसके पास अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए जितने भी काम थे, उन्होंने वो भी छोड़ दिए हैं। लेकिन मुझे ये बात बिल्कुल भी पसंद नहीं है। सवर्णों ने इज्जत पाने के लिए उन कामों को छोड़ा लेकिन इसका नतीजा कुछ भी नहीं निकला, उल्टे सवर्णों ने उनके काम को अपना लिया है और दलितों के साथ होने वाले व्यवहार में कोई फर्क नहीं पड़ा। तीसरा उनके पास जमीन भी नहीं है। वे अपने आस–पास के

वातावरण से अपने–आपको कुण्ठित महसूस करते थे तो ऐसे में उनका विकास कैसे हो पाएगा।

मैं पूछना चाहता हूं कि क्या इस कार्यशाला के मार्फत वे लोग अपने पारम्परिक धन्धों की ओर वापिस आ सकते हैं। यदि दलित भाई ये सोचें कि हम छुआछूत को खत्म कर देंगे तो ऐसा नहीं हो पाएगा क्योंकि इसके लिए सबको साथ आना पड़ेगा।

समाज में व्याप्त छुआछूत मिटाई तो जा सकती है लेकिन अब भी लोगों की मानसिकता में कमी है। जैसे यदि आप भारत या पाकिस्तान के बार्डर पर देखें तो उसे देखकर कुछ लोग पूछते हैं कि ये लाइन किस चीज की है, या ये तार किस चीज के लिए लगाए गए हैं? तो इसके जवाब में उन्हें सुनने को मिलता है कि यहां से पाकिस्तान अलग होता है, यहाँ से भारत अलग होता है। उनके इस जवाब को सुनकर एक बार भारत का एक साथी बोला कि ऐसा भी कहा जा सकता है कि यहां से भारत जुड़ जाता है या पाकिस्तान जुड़ जाता है। इस प्रकार यदि हमारी अपनी मानसिकता में ही परिवर्तन नहीं आए, तब तक आप कितनी भी गोष्ठियाँ, पदयात्रायें कर लें लेकिन कुछ लाभ होने वाला नहीं है। धन्यवाद !

मुकेश बहुगुणा– अब मैं द्वारका प्रसाद सेमवाल जी से आग्रह करूंगा कि वे अपने विचार रखें।

द्वारिकाप्रसाद सेमवाल– सभी को मेरा प्रणाम! लगता है कि बार–बार दलित कहने से ज्यादा ही उत्पीड़न हो रहा है। जब हम आपस में ही दलित–दलित कहेंगे तो ज्यादा उत्पीड़न होगा। ताऊजी ने कहा कि आई.एस. बनकर दिखाइए। लेकिन हमारे गांवों में कुछ लोगों को तो रोटी ही नहीं मिलती है, तो हम बड़ी बात कैसे करें ? यहां पर सभी लोग हाथ–मुंह धोकर आएं हैं जिन्हें देखकर ये लगता है कि उनके घर में सब ठीक है लेकिन ऐसा नहीं है। मुझे लगता है पहले हमें खुद सुधरने की आवश्यकता है। यदि मैं सुधरा हुआ हूं तो मैं अपने भाई से भी सुधरने के बारे में बात कर सकता हूं। इसलिए हमें जागरूकता फैलाने का काम करना चाहिए। यदि हम लोग गांवों–गांवो में जाकर यह बात करें और यदि हमारे गांवों में रोजी–रोटी, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएं उपलब्ध हो जाएं, उसके बाद ही हम अपने अधिकारों की बात कर सकते हैं। इसलिए सबसे पहले बुनियादी जरूरतों की बात की जानी चाहिए। धन्यवाद !

मुकेश बहुगुणा– अब शोभन भाई जी अपनी बात रखेंगे।

शोभन भाई– मेरे मन में कुछ बिंदुओं के आधार पर संतोष तथा असंतोष का भाव पैदा हो रहा है। इन्हें समझ के आधार पर ही समझा जा सकता है। मुझे ऐसा लगता है कि हम संवैधानिक लड़ाइयां लड़कर उत्तराखण्ड और भारत को बदल सकते हैं उसी प्रकार परिवार भी अपने आप में एक छोटा संविधान है। लेकिन आज बाजार के कारण सब अलग होते जा रहे हैं। लगभग हर आदमी अलग है उसकी अपनी सोच है, वह अपनी मर्जी से काम करता है।

आज हम यहां पर मानव सभ्यता को खड़ा करने जा रहे हैं उसके लिए कार्यक्रम बनाने जा रहे हैं पर मुझे लगता है कि इसके लिए बहुत ज्यादा जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। हमें एक ऐसी दृष्टि बनाने की जरूरत है जिसमें समाज का हित हो। क्योंकि आज समाज में अल्पदृष्टि मौजूद है। यदि ऐसी दृष्टि में कार्यक्रम बनाया जाए तो वो चल नहीं पाएगा। जिस समाज में हम रह रहे हैं वो समाज कमजोरियों का व्याख्यान करता है जिससे उसकी अधोगति होती है। यदि आप यूरोप, अमेरिका या हिन्दुस्तान का इतिहास देखें तो आपको स्पष्ट हो जाएगा कि इन समाजों की ऐसी स्थिति के पीछे यही एक कारण है।

हम अपने समाज में कभी–कभी दलित समाज की बात करते हैं जिसे सुनकर मेरे मन में असंतोष का भाव पैदा होता है और ऐसे लगता है कि जैसे ये शब्द जबरदस्ती मेरे मुंह में ठूंसा जा रहा है। यदि हमारी शिक्षा–दीक्षा ही इस तरह की हो तो भले ही आप अपने समाज में कितनी ही भौतिक सुविधाएं और कानून ले आएं लेकिन समाज की स्थिति बदलने वाली नहीं है। मुझे लगता है कि आप डंडे के जोर पर भले ही किसी से कुछ भी करवा लें लेकिन समाज में कोई भी परिवर्तन तभी आएगा जब लोग दिल से और अपने आस–पड़ोस से उस समस्या के बारे में और उसे सुधारने के बारे में सोचें।

मुझे लगता है कि इस तरह की सभाओं के माध्यम से अल्प दृष्टि को पूर्ण दृष्टि में परिवर्तित किया जा सकता है और वो दृष्टि भाषण के लिए नहीं बल्कि जीने के लिए हो। जीने का मतलब मेरा रिश्ता बराबरी से है, ऐसा नहीं कि सिर्फ मुंह से ही भाईसाहब कह दिया जाए और वास्तव में दिलों में बड़े अंतर हों। भारतीय समाज में परिवार से लेकर देश के रिशतों में भी लोगों के बीच मतान्तर है। सब अपनी–अपनी मर्जी से चलना चाहते हैं, मेरा अपना भाई मेरी बात को मानने के लिए तैयार नहीं होता है। इस प्रकार हम लोगों को राजनैतिक रूप से संगठित तो कर सकते हैं लेकिन समाज को बदलने के लिए सामाजिक दृष्टि की भी आवश्यकता है। अगर हम अपने घरेलू स्तर से समाज को बदलने का प्रयास करें तभी हम समाज में कोई बड़ा बदलाव ला सकते हैं अन्यथा नहीं। धन्यवाद !

बच्चन लाल– यहां पर हम सभी लोगों के लगभग एक ही जैसे विचार हैं। आजादी के बाद से दलितों को संवैधानिक अधिकार मिलने के बाद कई योजनाएं बनी हैं और बन रही हैं ताकि अस्पृश्यता दूर की जा सके। लेकिन मुझे लगता है कि सिर्फ कानून बनाने और योजनाएं बनाने भर से वो खत्म होने वाली नहीं हैं। इसके लिए समाज को साथ लेकर एक आंदोलन करने की जरूरत है। समाज में जाकर ही हमें समाज के विचारों का ज्ञान होगा और उन्हीं के आधार पर हम आगे के कार्यक्रमों की रूपरेखा बना सकते हैं। मुझे लगता है कि हमें एक निर्देशक समिति की स्थापना करनी होगी जो यह देखेगी कि दलितों के लिए बनी योजनाओं का लाभ उन्हें मिल पा रहा है या नहीं।

रामप्यारी– मुझे ऐसी बैठक में बैठकर बहुत ही खुशी मिल रही है जिसमें सवर्ण और असवर्ण लोग आपस में एक साथ बैठकर बात कर रहे हैं। इस तरह की बैठकों से दोनों पक्षों को बल मिल रहा है अर्थात किसी के भी मन में डर नहीं है वो पूरे उत्साह और निर्भीकता से अपने मन की बात कह रहे हैं। मुझे लगता है कि हमें सबसे पहले अपने मन से इन छुआछूत की भावना को निकालना होगा। क्योंकि इससे बहुत पीड़ा होती है, मुझे तो लगता है कि जैसे छुआछूत भेदभाव एक एडस् की बीमारी है जिसे हम सबको मिलकर हटाना होगा। धन्यवाद !

ढलवान जी– मेरा सुझाव है कि संगठन के माध्यम से जब पदयात्रायें या गोष्ठियाँ की जाती हैं तो वहां के समाज कल्याण अधिकारी, मुख्य विकास अधिकारी और सी.ओ.डी. साहब को यह पूछें कि विशेष घटक योजना के अन्तर्गत चुने गए गांवों की सूची के बारे में पता करें। जिससे हम समीक्षा के लिए उन गांवों में जा सकें और देख सकें कि सरकारी योजनाओं से गांव वालों को कुछ लाभ मिल भी रहा है या नहीं। इससे छोटे से लेकर बड़े अधिकारी तक के मन में भय पैदा होगा जिससे योजनाएं सही लोगों तक पहुंच पायेंगी। इससे समाज में परिवर्तन भी आएगा क्योंकि यदि किसी मंदिर में एक कुत्ता पेशाब कर जाए तो उसे तो माफ किया जा सकता है लेकिन एक दलित को पूजा करने के लिए भी नहीं जाने दिया जा सकता, आखिर इस अन्याय को खत्म करने के लिए हम प्रबुद्ध जनों को अपना हृदय परिवर्तन करना होगा। धन्यवाद !

सुरेश नौटियाल– अध्यक्ष मण्डल व साथियों! यदि कल से शुरू हुई बातचीत को देखा जाय तो मैं काफी उत्साहित हूँ। कल का जोश आज होश में बदल गया या हम लोग थक गए हैं। मैं यही मानकर चल रहा हूँ कि हम लोग थोड़ा होश में आ गये हैं। अच्छे सुझाव आये हैं। सबसे पहले मैं सुझाव देता हूँ कि एक संगठन बनाने की बात आ रही

है यहाँ पर उसका नाम 'सर्वजन समता आन्दोलन' हो। इसमें संशोधन भी किया जा सकता है। आन्दोलन होगा तो आगे बढ़ेगा उसके कुछ परिणाम सामने आयेंगे, कुछ लोगों की कमेटी बना दी जाय और उस कमेटी पर सभी लागों का भरोसा हो और वो कमेटी इस बैठक के बाद डेढ़ घण्टा बैठे और आपको ये मानना होगा या विश्वास करना होगा कि उन्होंने जो बनाया है वो सब लोगों के भले के लिए ही बनाया होगा। इसमें दो संयोजक हों। एक दलित वर्ग से और एक गैर दलित वर्ग से। क्योंकि मुझे आज भी 1980 का वो चुनाव याद है जिसमें हम बहुगुणा जी के साथ कई गांवों में जाते थे और कहीं–कहीं से पिटकर भी आते थे। इसलिए उस हिसाब से भी कार्यक्रम बनाना होगा। जब समाज का जागरूक तबका दिशा देगा तो रास्ता बदलेगा व चीजें भी बदलेंगी। धन्यवाद।

चन्दर सिंह– उत्पीड़न तो होता ही आ रहा है क्योंकि जो ऊँचे तबके के लोगों ने भी छोटे तबके के लोगों को लड़ाने का षडयन्त्र रचा है। हमारे घरों में ब्राह्मण रोटी तो खा लेते हैं लेकिन भात नहीं खाते। लेकिन वही लोग जब बाहर जाते हैं तो होटलों में हमारे साथ खा लेते हैं, लेकिन घर में नहीं खाते हैं। छुआछूत को मिटाने का कार्यक्रम लाठी–डण्डों से तो नहीं प्यार–प्रेम से हो सकता है। स्कूल में भी यह देखना चाहिए कि मध्ह्मान भोजन के समय सभी बच्चों को एक ही साथ खाना दिया जाए। धीरे–धीरे ऐसा आन्दोलन चलाया जाए जिससे सभी लोग एक हो जाएं। क्योंकि नाम से नहीं बल्कि काम से ऐसा संभव हो सकता है। धन्यवाद !

अनीता जी– कल से जो शिविर चल रहा है। उसमें ये बात उठायी जा रही है कि गांव–गांव जाकर इस समस्या को सुलझाया जा सकता है लेकिन मैं ये कहना चाहूँगी कि 'कौन है जो दौड़–दौड़ कर गाँव–गाँव जायेगा, रक्त–क्रान्ति के वहम से लोगों को बचायेगा।' ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे।

हमारे मार्गदर्शक सुरेश भाई जी हैं। हम गांव में जो भी काम करते हैं, फिर चाहे दलित भाई हों, चाहे सवर्ण भाई हों, सबके बीच में समानता से बात करते हैं। हम इस काम को आगे ले जाने की भावना रखते हैं। लेकिन हम जहां पर भी काम करते हैं वहां हमारे तथा गांव समूह के द्वारा काफी समानता आयी है। मैं ये नहीं मानती हूं कि कोई दलित है और कोई सवर्ण मैं तो ये मानती हूँ कि जिसके पास रोजगार के संसाधन नहीं हैं वो दलित है, गरीब है। और जिसके पास रोजगार हैं या संसाधनों की भरमार है वो गरीब नहीं है। मुझे लगता है कि समाज में कुछ हद तक छुआछूत की भावना में कमी आयी है। इस असमानता को और अधिक कम करने के लिए मिलकर

आवाज उठानी होगी। मेरा सुझाव है कि यदि हम बात को जनजागरण द्वारा गाँव में फैलायें तभी जाकर समानता कायम की जा सकेगी।

दिनेश लाल– सम्मानित साथियो यहां तो चिन्तन शिविर चल रहा है लेकिन हमारे साथ दलित वर्ग पर आधारित एक घटना घटी। अभी डिग्री कॉलेज बड़कोट में चुनाव हुआ और हमने अपने एक अनुसूचित जाति के व्यक्ति राजेन्द्र कुमार को अपना प्रत्याशी बनाकर चुनाव लड़ाया और बाद में वह जीत भी गया लेकिन उसके विरोध में बड़कोट में 27 दिन तक हड़ताल चली। वहां पर मैं और काँग्रेस के वो सारे लोग थे जो अपने को मुखिया कहते हैं, नेता मानते हैं। उन्होंने चौराहे पर बैठकर 27 दिन तक हड़ताल की और कॉलेज बन्द रहे। धरने का नेतृत्व करने वाले वहाँ के जिला पंचायत सदस्य रूकम सिंह चौहान, आनन्द सिंह राणा और अन्य कई काँग्रेसी भी थे। तभी उसके पास केदार सिंह जी आये और उन्होंने कहा कि हमारी पार्टी में आ जा लेकिन मैंने ये कहते हुए मना कर दिया कि मैं किसी भी पार्टी का आदमी नहीं हूं। और हमने उस लड़के को 22 दिन तक पुरोला में एक कमरे में बंद रखा। जब 27 दिन बाद हड़ताल खत्म हुई तो तब उसे बाहर निकाला गया और उसे शपथ दिलाई गई जिसमें भाजपा ने भी साथ दिया। इसके अलावा वहाँ भाजपा के एक मंत्री परशुराम जगूड़ी जी ने भी सहयोग दिया। इस प्रकार आज भी हमारे समाज में इस तरह की सोचनीय स्थिति है। धन्यवाद!

त्रिभुवन सिंह– सुरेश नौटियाल जी से मैं आग्रह करूँगा कि अभी दिनेश जी ने जो बात बताई यदि उसे ध्यान में रखा जाए और उसके बारे में सोचा जाए तो निश्चित तौर पर दलितों पर बड़ा उपकार होगा। ध्यान दीजिए कि वो लड़का डिग्री कॉलेज के अध्यक्ष का चुनाव लड़ा और जीत भी गया लेकिन सच यह है कि हमारे समाज में आज भी प्रतिभावान दलित लोगों को आगे नहीं आने दिया जाता है। मैं, आपको बता दूं कि उस गांव की जनसंख्या में 55 प्रतिशत लोग अनुसूचित जाति के हैं उसके बावजूद भी अनुसूचित जाति के उस लड़के के साथ इस तरह का अपमान का व्यवहार किया गया। हमारे देश में दलितों की संख्या लगभग 25 करोड़ है लेकिन फिर भी इस देश में उनकी बुद्धियों को ऐसे दबाया जाता है कि उसके बारे में मैं विस्तार से बोलना नहीं चाहता हूं। लेकिन इस लड़के की बात ने मुझे झकझोड़ कर रख दिया।

सुरेश नौटियाल– आप लोगों ने मुझे इस गोष्ठी का श्रेय देने की कोशिश की लेकिन ऐसा नहीं है, समाज के वंचित वर्ग पर चार दिन का एक सम्मेलन होने के बाद ही यह विचार मन में आया था। हमें लगा कि उत्तराखण्डी होने के नाते क्यों न हम अपनी

बात को उत्तराखण्ड से ही शुरू करें। जहाँ तक मेरा सार्वजनिक जीवन है मैं इस तरह की पहली बैठक में उपस्थित हो रहा हूँ। गोष्ठियाँ हुई होंगी पर या तो दलितों ने दलितों के लिए की होंगी या सवर्णों ने सवर्णों के लिए की होंगी। लेकिन इस तरह का समन्वित प्रयास नहीं हुआ। पहले सत्र में जब गर्मागरम बहस हो रही थी तो मुझे बड़ा आनन्द आ रहा था और वो इसलिए आ रहा था कि हमारे मन की गाँठें तो खुलनी ही चाहिए थी। तब जाकर कुछ निकल पायेगा। और जो पीड़ा हमें एक खास तरह के चश्मे, खासतौर से सवर्णों के चश्में से देखते रहेंगे तो उसका समाधान हमें मिलने वाला नहीं है और उसमें एक परिदृश्य बदलना बहुत जरूरी है। मुझे इस बात का तो ज्ञान नहीं है कि हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था कैसे शुरू हुई? कहाँ शुरू हुई ? और क्यों हुई? ये भी मैं नहीं जानता लेकिन इतना जरूर जानता हूँ कि मैंने इसे अपनी आंखों से देखा है और इसके लिए मैं दो–तीन छोटे–छोटे उदाहरण दूँगा।

जब मैं सातवीं व आठवीं में पढ़ता था तो मैं अपने एक दलित मित्र के घर गया और मैंने वहाँ चाय पी। ऐसा नहीं कि मुझे समाज की सामाजिक वंशानुगति के बारे में जानकारी नहीं थी लेकिन फिर भी मैं जानबूझकर वहां गया। इसके बारे में किसी ने मेरी माँ को बात बता दिया और मेरी माँ ने सार्वजनिक रूप से मेरी पिटाई की। पिटाई कम और प्रदर्शन ज्यादा किया। लेकिन मुझे लगता है कि कहीं न कहीं किसी को पहल जरूर करनी पड़ती है। तब जाकर इस तरह की वर्जनायें रुकती हैं।

इसी तरह मैं दिल्ली का एक उदाहरण देता हूं। मैं बहुत संघर्ष में पला बढ़ा हूँ इसलिए नहीं कि मैं गरीब घर का था बल्कि इसलिए कि मैं विद्रोही किस्म का था और मैं परिवार से अलग हो जाता था। मैंने गुरूद्वारे में खाना खाकर काफी समय गुजारा। उन दिनों मेरा एक दलित मित्र था उसने अपनी पत्नी और भाभी को यह बताया कि जब भी सुरेश आए उसे खाना जरूर खिलाना क्योंकि वो भूखा आया होगा। मैं उनके घर में खाना खाता रहता था। बाद में मैंने अपनी माँ को बताया कि यदि आज में दिल्ली में जिंदा हूं तो उस दलित मित्र की वजह से ही हूं। और जब मैं छठी में पढ़ता था तो चार दिन लगातार भूखा रहा था क्योंकि मैं किसी से माँग नहीं सकता था। और वो भी एक घटना है कि मैं जिस मकान में रहता था वो भी दलित का मकान था और उस आदमी ने मुझे खाना देना बन्द कर दिया उन्होंने मुझे खाना बनाना बताया। इस तरह से मैंने इतनी सारी पीड़ा देखी हैं।

तो मेरी तरह गांव के कई लोग इस तरह की पीड़ा झेलते हैं। मान लो आपके धारे पर कोई व्यक्ति आ रहा है और उसको प्यास लगी है। उस समय उसको पानी पिलाने से पहले उसकी जाति वगैरह पूछी जाये और उसको अलग से पानी दिया जाए तो उस समय उसे कितनी पीड़ा होती होगी यह महसूस करने की बात है। हम कुछ भी कह लें लेकिन हमारे समाज में कहीं न कहीं ये बात जरूर मौजूद हैं।

मैं तो बहुत साफगोयी से बात करना जानता हूँ। मुझे लपेटे लगाने नहीं आते हैं। इसलिए राजनीति में असफल रहा हूँ। मैं ये कहता हूँ कि हम लोगों का दोहरा चरित्र है, और उसमें मैं भी शामिल हूं। यहाँ पर तो ठीक है पर क्या मैं अपने घर में यही करने का साहस जुटा पाता हूँ। वहाँ मेरी माँ है, पत्नी है और दूसरे लोग हैं। क्या वहाँ मैं उनसे लड़ने की हिम्मत जुटा पाता? ये न तो मेरा और न ही सुरेश नौटियाल का सवाल है। मैं एक आम आदमी की हैसियत से ये बात कर रहा हूँ। तो ये दोहरा चरित्र कब टूटेगा? हम यहाँ इस तरह की गोष्ठियों में तो तमाम तरह की बातें करते हैं, जाति तोड़ने की बातें करते हैं, या समाज में एकता, और समानता लाने की बात करते हैं लेकिन जब अपने पर आती है तो फिर हम लोग ब्राह्मण, ठाकुर वगैरह हो जाते हैं। तो ये संकट वाली स्थिति है, इसीलिए विश्वास की भावना बन नहीं पा रही है। मैं ये भी नहीं कहूँगा कि ये एकदम से टूट जाएगा क्योंकि जो गुत्थियाँ और जटिलतायें हजारों साल से हमारे मन में बैठी हैं। जिसमें हम जी रहे हैं उसको एकाएक तोड़ना भी एक जटिल काम है। लेकिन इस तरह की निरन्तरता बनी रहे तो अगले 20–25–30 साल में स्थिति बदलेगी। और पिछले 40–50 साल में स्थिति बदली भी है। ये वर्जनाएँ कहीं न कहीं कमजोर भी हुई हैं।

मुझे याद है जब मैं स्कूल में पढ़ता था वहां चाय की दुकान हुआ करती थी और जब कोई दलित साथी वहां चाय पीने जाता तो उनसे अपना गिलास खुद धोने के लिए कहा जाता और वो ऐसा करते भी थे लेकिन आज वैसा नहीं होता है। मेरे गाँव में तो दलितों को निमंत्रण भी दिया जाने लगा है। वे हमारे बीच आते–जाते हैं, लेकिन वहाँ भी अस्पृश्यता है। यदि कोई दलित हमारे गाँव की शादी में आयेगा तो उसको अलग से भोजन दिया जायेगा और यदि कोई सवर्ण दलित की शादी में जाएगा तो वहां से खाना खाए बिना ही आयेगा। लेकिन पहले तो ऐसा भी नहीं होता था।

हम लोकतन्त्र को सामाजिक परिवेश से जोड़कर देखें तो मुझे ऐसा लगता है कि भारत में अभी तक लोकतंत्र आया ही नहीं है। जिस समाज में इस तरह की असमानता हो, उस समाज को लोकतन्त्रिक कैसे कहा जा सकता है। मैं आर्थिक समानता की बात नहीं कर रहा, राजनैतिक समानता की बात नहीं कर रहा क्योंकि वो तो बाद की परिस्थितियाँ हैं मैं तो उस समाज की बात कर रहा हूं जिससे आपका रोज का नाता है।

बहुगुणा जी सिद्धान्त रूप में राजनैतिक दलों के बारे में कहते हैं कि वो गलत नहीं हैं। और मेरा भी मानना है कि राजनैतिक पार्टियों का चरित्र वही तानाशाह जैसा है। आपको एक तानाशाह व दूसरे तानाशाह में से किसको चुनना है। चाहे कोई पार्टी हो, सिर्फ पर्दे और मुखौटे बदलते जायेंगे। इससे समाज में बदलाव नहीं आ सकता। उत्तराखण्ड का दलित प्रश्न मैदानों की अपेक्षा कम दिखाई देता है या वह मैदानों की

तुलना में कम भयावह रूप में मौजूद है लेकिन उसका अस्तित्व मौजूद तो है ही। हम आगे कैसे बढ़े? एक समरस समाज की रचना कैसे करें? हम बाहर जाकर बहुत कहते हैं कि हम उत्तराखण्ड के हैं और हमारी भूमि आन्दोलनों की भूमि है। निःसंदेह हमारी भूमि आन्दोलनों की भूमि है और इस विषय पर भी उत्तराखण्ड में एक आन्दोलन शुरू होना चाहिए। उसके लिए किस तरह की पहल की जाए इसके बारे में भी बातचीत करनी चाहिए और यहां से एक राजनैतिक निर्णय निकलना चाहिए। इस समस्या से निपटने के उपायों के बारे में सोचना चाहिए क्योंकि इस बात में सबसे बड़ी समस्या है इस समाजिक समानता के इस विषय को सवर्ण समाज के सामने ले जाना एक खतरे का काम है। धन्यवाद!

मुकेश बहुगुणा– मैं सुबह से ही सुन रहा था कि यहां सब लोग समरस समाज की बात कर रहे हैं। बात सामाजिक दृष्टि और समरसता की है। जब हम छोटे थे और गांव में मेला या तमाशा लगा होता था तो उसे हम देख नहीं पाते थे, क्योंकि हमारे आगे बहुत बड़े–बड़े लोग खड़े होते थे। ऐसे में गाँव के बुजुर्ग लोग हमें अपने कन्धों पर उठा लेते थे तब जाकर हमें कुछ दिखाई देता था। ये बात इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जिस तरह से हमारे आगे कई बड़े और अलग–अलग तरह के लोगों के आ जाने के कारण हम कुछ देख नहीं पा रहे थे उसी तरह से आज हम कभी किसी समस्या को सुलझाने के लिए गाँधीवादी हो जाते हैं, अम्बेडकरवादी हो जाते हैं, मार्क्सवादी हो जाते हैं या माओवादी हो जाते हैं। ऐसे में हम अपनी दृष्टि को बाधित कर देते हैं।

इन सब लोगों ने अपने–अपने कालखण्ड में समाज को समझने और उसे दिशा देने की बात की है। कोई भी एक व्यक्ति शाश्वत नहीं हो सकता है। हर एक का अपना एक कालखण्ड होता है और वो उसी कालखण्ड के अनुसार सोचता है और अपनी दृष्टि बनाता है। और यदि हम सामाजिक समरसता देखना चाहते हैं तो हमें गांधी या मार्क्स के कंधों पर खड़ा होना होगा या उनके विचारों के आधार पर काम करना होगा। ये हमारे बुजुर्ग हैं जब हम इनके कन्धों पर सवार होंगे तब हम उनके आगे देख पायेंगे। यदि हम केवल चरण बन्दन करने लग जायेंगे तो वहाँ तक भी नहीं पहुँच पायेंगे, जहाँ वो पहुँचे हैं। सवाल खूँटों व दायरों से मुक्ति का है। समरसता में ही सारे रस आयेंगे, धन्यवाद।

प्रेमा नौटियाल– चाहे उत्तराखण्ड की बात करें या सम्पूर्ण भारतीय समाज की बात करें। इस समाज में अभी कई बुराइयाँ हैं। लेकिन हमारे राज्य की जैसी भी स्थिति है उसके लिए हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है। क्योंकि सरकार के द्वारा पैसा प्रस्तावित तो

किया जाता है लेकिन सरकार उस पैसे को कागजों में तो पूरा कर देगी, और गांव में तो 1 प्रतिशत काम भी नहीं हो पाता है। हम इस बात को जानते हुए भी चुप रहते हैं। हमारे लघु उद्योग इसलिए ही विलीन हो गये हैं क्योंकि हमारे यहां परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं। हम चाहते हैं कि लघु उद्योगों को बढ़ावा दें तो हमारे पास आर्थिक स्थिति भी तो वैसी होनी चाहिए। हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होगी तो उसको कैसे आगे बढ़ायेंगे। घर से बाहर बर्तन माँजेंगे यहाँ पर इज्जत की, मेहनत की जिन्दगी जीना अच्छा नहीं मानते। हमारे अन्दर ये भावना होनी चाहिए कि हम अपना उत्थान स्वयं कर सकें।

प्रदीप टम्टा– मैं यहां मौजूद सभी सदस्यों को धन्यवाद देता हूँ। जब से ये बना है तब से ये बहुत ही जवलन्त प्रश्न है और आज भी उसकी स्थिति वैसी ही है। यहाँ नौजवान किस्म के लोग हैं। हम लोग भी जब विद्यार्थी थे तो उस समय के तमाम सवालों– जल, जंगल, जमीन से जुड़े उत्तराखण्ड के सर्वोदय आन्दोलन के साथ हमारा विचार–विमर्श होता था। जब हम वन आन्दोलनों में जुड़े तो एक सर्वोदयी धारा थी। दूसरी तरफ 72–75 का दौर था जिसमें जयप्रकाश का आन्दोलन व वामपंथी विचारधारा ने जोर पकड़ा, जिसे आप लोग माओवादी विचारधारा कहते हैं। उससे भी हम लोगों का संवाद था। हमने उसमें अपने–आपको तराशने की कोशिश की। हम जिस भी विचारधारा का अनुसरण करते हैं। उसमें हमको अपने दिमाग की खिड़की खुली रखने की जरूरत है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि सारी पुस्तकें देवी हैं। जैसे हमारी मान्यता है चार वेद देवी हैं; बस उनका संकलन किया गया है। कुरान के बारे में भी है कि वो भी देवी वाणी है, बाइबिल के बारे में भी ये है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि हमें इस बात को बहुत ज्यादा तवज्जो नहीं देनी है। क्योंकि मनुष्य प्रगतिशील है। हमको आज के मनुष्य पर विश्वास करना चाहिए। और हमें वर्तमान के ज्ञान की प्राथमिकता को भी समझना चाहिए।

जब हम इस चीज को समझ लेते हैं तो उन सब से हम गाँधीं, अम्बेडकर और मार्क्स के विचारों को समझकर, अपनी जरूरत और आज के संदर्भ में जो काम की चीज है उसका प्रयोग करते हैं और बाकी को तिलांजलि दे देते तभी हम उसका एक विज्ञान के रूप में प्रयोग कर सकेंगे। खैर मैं खुश हूं कि मैं अपने उन नौजवान मित्रों के साथ बैठा हूं जो उतराखण्ड के बहुत से सन्दर्भों में अपना योगदान दे रहे हैं। ये सरकार के विषय में अपनी–अपनी धारणायें रख रहे हैं फिर चाहे वो आलोचनात्मक हो या उनके पक्ष में हो।

मैं 10 दिसम्बर को 'मानव अधिकार दिवस' के अवसर पर अल्मोड़ा में पी.एस. एफ.के साथियों के साथ भी था। उन्होंने मुझे फोन किया कि चार–पांच संगठन

मानवाधिकार दिवस मना रहे हैं क्या आप उस मौके पर आएंगे? उसके जवाब में मैंने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मैं उन लड़कों की पृष्ठभूमि के बारे में भी जानता था। दलित प्रश्न राष्ट्रीय प्रश्न है, उसमें उत्तराखण्ड इसलिए आ जाता है क्योंकि हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र उत्तराखण्ड है। इसलिए यहाँ पर दलित समस्या के ढांचे को समझना होगा क्योंकि उत्तरांचल व केरल में समानता हो सकती है वहां के समाज में ब्राह्मण सबसे ऊंचे दर्जे पर हैं और सबसे नीचे के दर्जे पर शिल्पकार हैं। उत्तराँचल में राजपूत है, वहीं केरल में राजपूत नहीं है। वहीं पूरे उत्तर भारत को देख लीजिए वहां ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य और शिल्पकार आदि पूरे चार वर्ण मौजूद हैं। वहीं दक्षिण में कुछ और ही है। इसलिए हर राज्य को अपनी–अपनी सामाजिक समझ से इस समस्या से लड़ना होगा। लेकिन बुनियादी समानता सब जगह एक ही है कि सभी क्षेत्रों में जाति व्यवस्था मौजद है।

मैं बहुगुणा जी की इस बात से सहमत हूँ कि आज से ढ़ाई–तीन हजार साल पहले हमारे देश में राज्य और समाज का गठजोड़ था। राजनयिक वर्ग व पुरोहित वर्ग ने गठजोड़ करके समाज को बाँटा। भारतीय समाज को इस बात को समझना पड़ेगा कि जाति का ऐसा ढ़ांचा हमारे अलावा दुनिया में कहीं नहीं है। जातिव्यस्था को जिस सिद्धांत से मानने वाले उत्तर भारत में मिलेंगे वैसे ही दक्षिण भारत में भी मिलेंगे और उत्तराखण्ड में भी मिलेंगे। लेकिन उत्तराखण्ड बिहार व उत्तर प्रदेश में वो इतनी भयावहता में क्यों आ जाता है क्योंकि वहाँ दो चीजें हैं एक तो वहां पर जमीन बहुत है। वहाँ एक जमींदार वर्ग है जिसके पास जमीन है वो मालिक है ऊँची जाति का है। और जो भूमिहीन है वो छोटी जाति का है। इसलिए वहाँ पर उसका आर्थिक शोषण व जातीय शोषण दोनों एक साथ मिलकर होते हैं। हम किसी से अपनी जातीय पहचान कहते हैं आपने कहा आपका नाम क्या? मैंने कहा रहमत अली तो मैं वहीं पर रुक जाता हूं। स्टीफन साहब से पूछा तो उन्होंने कहा कि स्टीफन हूँ। मुझसे पूछा तो मैंने कहा प्रदीप कुमार। उसके बाद जब हमारा परिचय आगे बढ़ता है तो यह पूछा जाता है आपकी वर्ण–जाति क्या है? मैं इसी तरह की बात सुनकर अपने संबधों को आगे बढ़ाने की सोचता हूं या फिर उन्हें काटने की सोचता हूं।

जाति व्यवस्था ने हिन्दुस्तान के किसी भी धर्म को अछूता नहीं छोड़ा। आज हिन्दुस्तान के इस्लाम के मानने वाले, ईसाई मत के मानने वाले बड़े गर्व के साथ ये नहीं कह सकते हैं कि हमारे यहाँ जाति व्यवस्था नहीं है; सब जगह है। हिन्दुओं में भी जाति व्यवस्था है तो दलित में भी है। यहाँ जाति व्यवस्था सीढ़ीनुमा है। सबसे ऊपर ब्राह्मण हैं फिर राजपूत हैं। राजपूत के सामने ये है कि अगर ब्राह्मण मेरे से बड़ा है तो मेरे पीछे एक लम्बी कतार है। वैश्य समझता है दो मेरे ऊपर है बाकी तो मेरे से नीचे हैं। शूद्र में भी दो वर्ग हैं एक जिसको हम अछूत कहते हैं और एक जो पिछड़े वर्ग के

नाम से जाना जाता है। शिल्पकारों में भी लोहार है टमटा है, ओड़ का काम करते हैं वो ऊपर हैं और जो दास हैं वो सबसे नीचे हैं। इसने किसी धर्म को किसी जाति को नहीं छोड़ा है। अपने यहाँ राजनैतिक लोकतन्त्र रेगिस्तान में है।

हिन्दू समाज के लोगों को सोचना पड़ेगा कि हम प्रगति के नाम पर इतनी बड़ी मानव सम्पदा होते हुए और इतने पुराने लोग होते हुए भी सबसे पीछे हैं। आज हिन्दुस्तान में कुपोषण का सबसे अधिक शिकार बच्चे हैं। डॉक्टरों की कमी हिन्दुस्तान में है। इतिहास देखें तो पता चलता है कि यहाँ ब्राह्मण भी बाहर से आये हैं। राजपूत भी बाहर से आये है लेकिन एक जाति के बारे में ये साफ कहा जा सकता है कि ये जाति यहाँ की निवासी है।

बैजनाथ का मन्दिर है, जागेश्वर का मन्दिर है, बद्रीनाथ का मन्दिर है यहाँ उत्तरकाशी का मन्दिर है, गोपेश्वर का मन्दिर है, इनके बारे में हम सब कह सकते हैं कि ये स्थापत्य कला करीब 500 साल पुरानी, स्थापत्य कला की दृष्टि से ये कितनी सुन्दर आकृतियाँ हैं। आज से 600–1000 साल पहले तक तो जे.पी. का सीमेंट नहीं रहा होगा, पत्थरों को तराशने की मशीनें नहीं रही होंगी। तो उस समय कौन लोग थे जिन्होंने इतनी सुन्दर स्थापत्य कलाओं का निर्माण किया? तो मुझे लगता है कि वो यहीं का शिल्पकार समाज था। जो नृत्य करने वाले लोग हैं गीत, संगीत के, वाद्ययन्त्रों को बजाने वाले लोग हैं; हमने ढोल बजाने वाले को, हुड़का बजाने वाले को समाज के सबसे निचले पायदान में रखा है। अगर वो न होता तो उत्तराखण्ड की कला, संगीत का नाम तक न रहता। क्योंकि यहां का शिल्पकार समाज विशिष्ट हैरीटेज का स्वामी था। आज हम किसी को जियोलॉजिस्ट कहते हैं, किसी को भूगर्भशास्त्री कहते हैं, किसी को इन्जीनियर कहते हैं लेकिन आज से 2000–2500 साल पहले इस क्षेत्र में लोगों को एक ज्ञान था कि लोहे को कैसे अलग किया जा सकता है। ताँबे को कैसे अलग किया जा सकता है और उनके पास वह ज्ञान आज भी है। तो जो इतनी बड़ी वैज्ञानिक परम्परा के धनी लोग थे वो एकाएक अछूत कैसे हो गये? इस प्रकार जिस तरह से राज व्यवस्था में बाहर से आए हुए लोग अपने हथियारों के दम पर वहां पहले से रहने वाले लोगों को गुलाम बना लेते हैं उसी तरह से उत्तराखण्ड में भी हुआ, बाहर से आए हुए लोगों ने वहां रहने वालों पर अपना कब्जा जमा लिया।

इतिहास से पता चलता है कि यहां जाति व्यवस्था 10 वीं शताब्दी के बाद बनी उससे पहले नहीं थी। वहां के दो समाजों अर्थात शिल्पकार तथा महिलाओं के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। दलितों को तो समाज के सवर्णों ने अपना गुलाम बनाया वहीं महिलाओं को अपने परिवार या पिता की मर्जी पर चलने पर दबाव डाला गया। वहीं दलितों की स्थिति जाननी हो तो एकलव्य का उदाहरण लिया जा सकता है कि एक गुरू ने गुरू दक्षिणा के बहाने अपने शिष्य एकलव्य से उसका अंगूठा इसलिए ले लिया

ताकि वो सवर्णों की बराबरी न कर सके। और समाज में वो गुरू इतना प्रसिद्ध हुआ कि आज जब भी कोई खिलाड़ी प्रशिक्षण करता है तो तो गुरू का पुरस्कार द्रोणाचार्य के नाम से मिलता है और वहीं अर्जुन पुरस्कार खिलाड़ी को मिलता है। उसी प्रकार कर्ण जैसा दानवीर और वीर तो कोई नहीं हुआ पर आपको मालूम होगा कि जब वो स्वंयवर में शामिल हुआ तो उसे वहां शामिल होने की मनाही कर दी गई क्योंकि वो सूत पुत्र था। इस प्रकार हमारे समाज की ऐसी स्थित वर्षों पहले से चली आ रही थी महाभारत के समय भी ऐसी ही वर्ण व्यवस्था, छुआछूत की प्रथा मौजूद थी। पहले–पहल एक श्रेणी पद्धति थी पर धीरे–धीरे वह जाति व्यवस्था में बदल गया। हमारे बुजुर्गों ने जो सामाजिक व्यवस्था बनायी थी वो लोकतांत्रिक व्यवस्था नही थी। और जब तक हम इससे बाहर नहीं निकलेंगे तब तक हिन्दुस्तान दुनिया का मजबूत राष्ट्र नहीं बनेगा।

हमें अपने समाज को योग्यता पर आधारित समाज बनाने की कोशिश करनी होगी क्योंकि अवसर की समानता के लिए ही इस देश में आजादी के लिए संघर्ष हुआ। उस समय शासन के सारे सूत्र और नीति निर्धारक अंग्रेज ही थे उन्होंने भारत में सभी बड़े ओहदों पर अपने देश के लोगों को ही रखा लेकिन आम भारतीयों को श्रम आधारित या लिपिकीय पदों पर रखा जाता था। इसलिए उस समय देश की आजादी का सवाल खड़ा हुआ कि सात समुद्र पार से इस देश में आने वाले लोगों को यहां के लोगों को अपना गुलाम बनाने का अधिकार नहीं है। हमारे देश के भीतर एक ऐसे वर्ग का निमार्ण किया गया जिसे मानव कहलाने तक का अधिकार नहीं दिया गया। क्योंकि वो अछूत था। और वहीं डॉ. अंबेडकर भी थे जिन्हें बड़ौदा के राजा द्वारा प्राप्त छात्रवृति के आधार पर कोलंबिया विश्वविद्यालय में कानून की पढ़ाई तथा लंदन स्कूल से अर्थशास्त्र की डिग्री हासिल करने के लिए भेजा गया। और उस समय उनके सामने यह शर्त रखी गयी थी कि जब आप डिग्री प्राप्त कर लेंगे तो आपको मेरे ही राज्य में नौकरी करना अनिवार्य होगा। बाद में वे राजा के सलाहकार बनें और उन्हें राज परिवार में काम करने का मौका मिला। लेकिन जब वहां के लोगों को पता चला कि वो अछूत समुदाय से है तो उन्हें रहने के लिए घर ही नहीं दिया गया। जब चपरासी उनके पास फाइल ले जाता था तब वो देने की बजाय दूर से फेंक दिया करता था। इस प्रकार बाबा अंबेडकर जैसे इतने विद्वान आदमी के साथ भी जब ऐसा ही व्यवहार किया जाता था तो साधारण आदमी के साथ तो ऐसा होना ही था।

जब हमारे देश में शुरू–शुरू में ब्रिटिश आए तो उन्होंने महाराष्ट्र में जीतने के लिए फौज बनाने की तैयारी की। उस समय उन्होंने अपनी फौज में 'महर' नामक दलित जाति के लोगों को शामिल कर 'महा रैजीमैण्ड' बनायी। उसी तरह उन्होंने बिहार में 'निषाद' जाति के लोगों को शामिल कर सेना बनायी और हिन्दुस्तान को चारों

और से गुलाम बनाने का प्रयास शुरू किया। लेकिन जब उनके प्रशिक्षण के संबध अंग्रेजों और भारतीय शासकों का समझौता हुआ तब भारतीय शासकों ने एक शर्त रखी कि आज से भारतीय सेना में अछूतों की भर्ती बंद की जाए और अंग्रेजों ने इस बात को मान लिया। इस बात का पहला विरोध डॉ. अंबेडकर के दादा रामपाल ने किया। उस वर्ग के सामने ये सवाल था कि जब हिन्दुस्तान आजाद हो जाएगा तब हमारा क्या होगा? इसी प्रकार का समझौता कुमांऊ में भी हुआ था। इसी प्रकार डॉ. बद्रीदत्त पाण्डे की इतिहास की पुस्तक में यह दर्ज है कि जब स्वतंत्रता सेनानी हर्षदेव ने अंग्रेजों के साथ समझौता किया तो उसने भी यही शर्त रखी कि अछूतों को मंदिर और स्कूल में नहीं जाने दिया जाएगा।

यदि हम अपने देश में समानता कायम करना चाहते हैं और वर्षों से होने वाले अत्याचार को दूर करना चाहते हैं तो हमें दलितों को सशक्त बनाने के लिए जमीन का वितरण उनके पक्ष में भी किया जाना होगा।

सुरेन्द्र भट्ट— एक बार मैं केदारनाथ में चल रहे प्रवचन को सुन रहा था। उस प्रवर्चन में शंकराचार्य जी ने कहा कि वेदमन्त्र पढ़ना महिलाओं के लिए पाप है उनको तो घर का काम—काज करना चाहिए। उनकी इस बात को सुनकर मुझे बहुत गुस्सा आया और मैं खड़ा होकर चला गया। इस बैठक के समाप्त होते ही मैं शंकराचार्य के पास गया और अपना परिचय देते हुए मैंने कहा कि मैंने आपका भाषण सुना लेकिन उसमें एक प्रसंग को सुनकर न केवल मुझे बल्कि वहां बैठी सभी महिलाओं और समझदार लोगों को भी बुरा लगा और उन्हें दुख हुआ। क्योंकि ये भाषण देश को तोड़ने वाले थे जोड़ने वाले नहीं थे। आप लोगों को सदाचार के उपदेश दें, अन्य उपदेश दें, लेकिन ऐसा भाषण न दें कि जिससे देश टूटे और देश का विघटन हो। आपने कहा कि माहिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है और यदि वो ऐसा करती हैं तो वो पाप है। वो तो ठीक है कि हमारे देश में इस संबध में कोई कानून नहीं है यदि इस संबध में कोई कानून होता तो आपको पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता और आपको जमानत करवानी पड़ती। मेरी बातों को सुनते ही वो बोले कि मैंने तो ऐसा शास्त्र सम्मत रूप से कहा, कर्म सम्मत रूप में नहीं कहा। उनकी यह बात सुनकर मैंने पुनः कहा कि ऐसा तो गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से नहीं अपितु कर्म से शूद्र होता है। हम बात ही कर रहे थे कि तब तक शंकराचार्य के चेले खड़े हो गए और मैंने उस प्रश्न को उन्हीं से करना शुरू कर दिया मैंने कहा भई! नौजवानों आप ही बताइए कि आपकी क्या राय है इस बारे में? ये सुनकर वो हंसने लगे और उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। मैंने स्वामी जी से कहा कि आप ऐसा प्रवचन दीजिए जिससे देश बचता हो या देश को जोड़ा रखे जा सके ऐसा प्रवचन न दें जिससे देश में विभाजन पैदा होता हो।

आप लोग अक्सर अपने कार्यक्रमों के बारे में बात करते रहते हैं लेकिन मैं कहता हूं कि हमारा सबसे पहला कार्यक्रम तो अस्पृश्यता निवारण का होना चाहिए।

मुझे लगता है कि यदि हम व्यवस्थित तौर पर बात करें तो इतने थोड़े से समय में पूरी चर्चा नहीं कर पायेंगे। और मुझे यह बात अक्सर खलती है जब हम लोग इस तरह के आयोजन करते हैं तो हम उस परिवेश के प्रगतिशील विचारों के वृद्धजन नौजवानों और महिलाओं को उसमें शामिल नहीं कर पाते हैं। और शायद उन्हें ये लगने लगता है कि हम उनके खिलाफ कोई षडयंत्र कर रहे हैं तभी वो हमें नहीं बुला रहे हैं। भुवन को याद होगा कि इसी तरह का एक आयोजन सिल्यारा गाँव में हुआ था और गांववालों को पता ही नहीं था कि उनके गांव में क्या हो रहा है। ये मैं इसलिए भी कह रहा हूँ ताकि हम उन लोगों को भी साथ लेकर कुछ विशेष काम कर सकते हैं जिनमें हमें सफलता मिल सकती है। जैसे आज हमारे सामने अस्पृश्यता एक बड़ी समस्या बन गयी है उसके कारण अनुसूचित जाति के लोगों को कई अपमान झेलने पड़ रहे हैं। आप ही सोचिए जब किसी स्कूल में मध्याह्न भोजन के दौरान हरिजन व सवर्ण बच्चों को अलग–अलग बिठाया जाता होगा तो उन बच्चों के कोमल दिल पर क्या प्रभाव पड़ता होगा? सरकारी विद्यालयों में ऐसा जुर्म हो रहा है और हम चुपचाप हैं। मुझे लगता है कि समाज में होने वाले इस अन्याय के लिए हम सबको आगे आना होगा। स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ मिलकर हमें इस घृणित काम को करने वाले शिक्षकों तथा गांव के लोगों को दण्डित किया जाना चाहिए, इस काम में सवर्ण वर्ग के कार्यकर्ताओं को भी आगे आना होगा।

कामेश्वर बहुगुणा – मैं आप सभी से प्रश्न करता हूं कि क्या हमने केवल मात्र विकास के लिए ही अलग राज्य की मांग की थी ? क्या विकास का प्रश्न, मनुष्य के सम्मान, गौरव व समाज में समभाव के सवाल से जुड़ा हुआ नहीं है ? क्या हम केवल विकास के लिए इनका सौदा कर सकते हैं ? कल्पना कीजिए यदि अवर्णों को कानूनन् मिलने वाले अधिकार मिल भी गए तो क्या हम इससे संतुष्ट हो जाएंगे? क्या इससे हमारा समाज समरस समाज बन पायेगा ? मैं चाहता हूं कि आप इस सवालों पर समूह में या अकेले में विचार अवश्य करें।

आप पृथक राज्य 'उत्तराखण्ड की मांग' के लिए होने वाले आंदोलन को याद करो। उस समय हमने कहा था कि उत्तर प्रदेश के साथ रहकर हमारा विकास सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। इसलिए हमने पृथक राज्य की मांग की ताकि उससे हमारे पहाड़ी इलाके का सही से विकास हो पाए। लेकिन उस विकास का अर्थ यह नहीं है कि उस होने वाले विकास के लिए हम अपने आत्मसम्मान, भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाजों के हक को त्याग दें। ये तो हमारे नैसर्गिक हक हैं। ये सही है कि मनुष्य

को जीने के लिए रोटी की जरूरत होती है लेकिन मनुष्य के लिए रोटी की अपेक्षा सम्मान ज्यादा प्यारा होता है। इसीलिए रोटी के बदले सम्मान का सौदा नहीं हो सकता।

ये बुनियादी बात है दूसरी बात आज की व्यवस्था है। जीव जगत में मनुष्य, पशु और मानव होते हैं जिनके अपने–अपने गुण होते हैं और किसी भी व्यवस्था में इन गुणों की रक्षा की जानी चाहिए और उत्तराखण्ड में मौजूद व्यवस्था से इन गुणों का सम्यक विकास नहीं हो पा रहा है। हमें यह देखना होगा कि आज की व्यवस्था हमें इन तीनों गुणों के विकास करने का कितना मौका दे रही है? आज सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था में अंर्तविरोध बढ़ गया है। मैं ये कहना चाहता हूँ कि यदि आप समरस समाज चाहते हैं तो आपको खाने–कमाने की भी एक समरस पद्धति खड़ी करनी होगी। और सामाजिक उपायों के बगैर आप समरस समाज की रचना कैसे करेंगे? इसीलिए एक भाई ने कहा कि जमीन का सवाल मूल सवाल है। हम सर्वोदय वाले लोग आज से नहीं वर्षों से ये बात कह रहे हैं कि जल, जंगल और जमीन इसका अन्तरंग सम्बन्ध है। यदि हम वास्तव में ही अपने लोकतांत्रिक ढ़ांचे के माध्यम से कुछ परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हमें हिम्मत करनी होगी और आज के ढ़ांचे को नकारना होगा। उसकी पहली शर्त भी यही है कि परिवर्तन और समझौते में अंतर होता है। लेकिन आप इस पद्धति की मदद से सचमुच का परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। समाज में दल पद्धति के रहते हुए जाति व्यवस्था, जाति व्यवस्था और साम्प्रदायिकता टूट नहीं सकती क्योंकि हर दल मूलतः साम्प्रदायिक होता है। दलतन्त्र और लोकतन्त्र का 36 का आंकडा होता है, इसलिए मैं इस दलतंत्र को अच्छा नहीं समझता।

हम सबको मिलकर इन सवालों के बारे में सोचकर विकल्पों की तलाश करनी होगी। आज की व्यवस्था समाज को मजबूत करने की बजाय सरकार को मजबूत करने वाली है। उत्तराखण्ड का विकास दलों के भरोसे पर तो हो ही नहीं सकता है। इसलिए मैं समाज के लिए काम करने वाली संस्थाओं से भी निवेदन करता हूं कि प्रत्येक संस्था गावों के लोगों की भलाई के लिए या जातिगत भेदभाव को समाप्त करने के लिए गांव–गांव जाकर अभियान चलाए। क्योंकि हमें लगता है कि केवल राजनैतिक दलों पर ही आश्रित रहकर ऐसा नहीं हो पाएगा। हमें आज राजनैतिक पार्टी की जरूरत नहीं है। हमें नए राजनैतिक विकल्प को जरूर तलाशना चाहिए। धन्यवाद !

प्रदीप टम्टा– आज उत्तराखण्ड में एस्कॉट फॉम का मामला चल रहा है। आपको पता होगा कि वहां पर 1953 में काशीपुर के राजा की 1200 एकड़ भूमि को एस्कॉट फॉम को बेचा गया। उस भूमि को सरकार ने लिया और लीज पर दे दिया ताकि वो खेती का विकास कर पाए। लेकिन वो खेती का विकास नहीं कर पाये। बाद में उस भूमि

को सीलिंग के आधार पर सरकार ने ले लिया। उसके खिलाफ वो ए.डी.एम. के पास गए। फिर कमिश्नर कार्यालय में कमिश्नर से उच्च न्यायालय में गया। उच्च न्यायालय से देश के सर्वोच्च न्यायालय के पास गया। 'एस्कॉट फॉम' वाले ने इस भूमि को अपना कहा। वहीं उच्च कब्जाधिकारी लोगों ने कहा कि इस जमीन को हमने खरीद लिया है। अब हम पर सीलिंग कानून लागू नहीं होता है। तो इस तरह से उस जमीन को न्यायालय की दीवारों में फँसाया गया। सुप्रीम कोर्ट ने आज से 2 साल पहले 20 फरवरी 2004 को एक निर्णय लिया कि 1100 एकड़ भूमि पर न तो 'एस्कॉट फॉम' का और न ही कब्जेधारियों का कोई अधिकार है। इन दोनों ने ही इस भूमि पर अवैध कब्जा जमाया हुआ है। हमने सीलिंग की सारी जमीन को फालतू जमीन घोषित करने की बात की और उत्तरांचल सरकार को ये आदेश दिया कि आप इस 1100 एकड़ भूमि पर अपना नियन्त्रण लें। यह निर्णय आने के बाद हमारे विधानसभा में मौजूद भाजपा के विधायकों तथा कब्जेधारी लॉबियों ने सरकार पर दबाव डाला कि इस फैसले को लागू न किया जाए, किसानों को जमीन से बेदखल न किया जाय। उस समय मैंने मुख्यमंत्री जी से कहा। हमारी सोनिया जी और उत्तरांचल सरकार ने यह कहा कि जब भी हमारी सरकार आयेगी हम तराई में भूमि अधिग्रहण कानून लागू करेंगे और आज सुप्रीम कोर्ट ने भी ऐसा निर्णय दे दिया। तो आप इस जमीन को नियन्त्रण में लो। इसकी 50 प्रतिशत जमीन पर्वतीय भूमिहीनों को बाँटो और 50 प्रतिशत स्थानीय भूमिहीनों को बाँटो क्योंकि उत्तराखण्ड के पर्वतीय या तराई वाले इलाके में रहने वाले अधिकतर अनुसूचित जाति के लोगों के पास आज भी भूमि नहीं है। इसलिए मैंने कहा कि उन लोगों को वरीयता दी जाए। और तब से न केवल हम बल्कि वो लॉबियां भी दबाव बना रही हैं जो कि सुप्रीम कोर्ट तक भी चले गए थे। आज जब सरकार ने इसको नियन्त्रण में लिया तो पूरे देश के अन्दर ये प्रचार किया जा रहा है कि तराई के अन्दर किसानों के साथ बहुत अत्याचार हो रहा है। जिस जमीन को भूमिहीनों को देना था या जिस जमीन पर उनका हक था वो उन्हे न देकर किसान लॉबियों को दिए जाने की कोशिशें चल रही हैं। सरकार भी दबाव में आयी है उनको बेदखल करने के बाद भी बहुत सारे लोग भूमिहीन हो रहे थे उन लोगों में 400 एकड़ जमीन बाँट दी। मैंने फिर मुख्यमंत्री जी से कहा कि ये भूमि भूमिहीनों खासकर दलितों में बाँट दी जाय। क्योंकि कोई भी दलित तभी ताकतवर बनेगा जब उसके पास किसी भी तरह की शक्ति आयेगी और भूमि से अधिक मजबूत शक्ति तो कोई हो ही नहीं सकती है। ये बात तो आप भी जानते होंगे कि जिन लोगों के पास कुछ संसाधन होते हैं या जिनके पास कोई रोजगार आदि होता है तब उनके साथ उस तरह का भेदभाव नहीं किया जाता है। हम दलितों के सच्चे हिमायती हैं और हमें लगता है कि हमें भूमिहीनों को जमीन मुहैया कराकर उनके पक्ष को सुधार सकते हैं और हम चाहते हैं कि हमारी

यह छोटी सी किरण देश में एक प्रचण्ड ताकत बने। इसी के साथ जय हिन्द ! धन्यवाद !

सुरेश भाई मातली – ग्राम सभा से हटकर दलितों के अधिकारों को नहीं बचाया जा सकता। ग्राम सभा हमारी मूल सभा है जहाँ पर प्रत्येक बच्चे का, प्रत्येक पुरूष का, प्रत्येक महिला का और गांव में रहने वाले प्रत्येक दलित का भी अधिकार है।

इस बैठक में युवा विमर्श से जुड़े लोक विद्या पीठ के सदस्य हैं, मानवीय सरोकारों के लिए काम करने वाले सिद्ध के लोग, हिमालय पर्यावरण शिक्षा संस्थान के लिए काम करने वाले वसुधैव कुटुम्बकम् के लोग और कई राजनैतिक कार्यकर्ता हैं। मुझे लगता है कि हम सभी को अपने–अपने क्षेत्र का अध्ययन करना शुरू करना होगा। हमें अपने इस अध्ययन में उस बात को भी शामिल करना चाहिए जिसमें मिड डे मील के माध्यम से पिछड़ी जाति के लोगों को अन्य लोगों की अपेक्षा दूर बैठाकर खाना खिलाया जाता है। मैंने इस बात का विरोध करते हुए मधह्वान भोजन को ही बंद कराने की बात की। लेकिन फिर कुछ लोगों ने कहा कि आप तो देश की अदालत के खिलाफ बोल रहे हैं। ये हमारी कोर्ट का ही आदेश है कि देश के हर बच्चे को भोजन मिले। इस प्रकार इसके लिए गंभीर अध्ययन करने की जरूरत है।

मैं आपको बताना चाहता हूं कि उत्तराखण्ड में दलितों की स्थिति कैसी है ? हम लोगों ने दस साल तक कापला और भात खाकर अपना समय काटा। यहां तक कि उसमें नमक तक भी नहीं मिला होता था। मेरी मां ने हमें बड़ी मेहनत से से पाला। जब बाद में हम थोड़े सक्षम हुए तो मैंने अपने भाई को इलाहबाद, दिल्ली और देहरादून में पढ़ाया। जब हम लोग सो जाया करते थे तब भी मेरा भाई पढ़ता रहता था, उसने रात को दो–ढ़ाई बजे तक पढ़ाई की थी। उसने अपने शरीर का ध्यान रखे बिना ही अपनी पढ़ाई पर ही ध्यान दिया और उसके बाद वह पी.सी.एस. की परीक्षा में पास हो गया। उसे इस मकाम तक पहुंचाने में खुद उसने और हमारे परिवार ने तो मदद की लेकिन यदि उसे आरक्षण नहीं मिल पाता तो वह सफल नहीं हो सकता था। इसलिए हमें बड़े–बड़े सिद्धांतों के बारे में बात न करते हुए जमीनी सच्चाई की बात करनी चाहिए।

बार–बार यह बात आती है कि हमें अपनी मानसिकता को बदलना होगा। और मुझे लगता है कि जिस दिन हमारी मानसिकता में परिवर्तन होगा उसी दिन हमारे गांव के दलित का उत्थान भी हो जाएगा। जैसे अभी मेरे गाँव के धर्मानन्द नौटियाल ने बताया कि जब वे मेरे खास ससुर जी को वहली बार अपने घर में ले गये तो उन्हें देखते ही उनके परिवार के सारे लोग बिदक गये और वो आज से 50 साल पहले की बात है; आज धर्मानन्द 80–85 साल के हो गये हैं और आज भी वो उसी

जोशो–खरोस के साथ दलित उत्थान की बात करते हैं। आज भी उनके प्यार व प्रेम में कोई अन्तर नहीं आया और उनकी जातीयता में भी कोई अन्तर नहीं आया। वो आज भी नौटियाल ही हैं।

लेकिन आज भी हमारे समाज में खासकर प्रबुद्ध समाज में कुछ ऐसी स्थितियां मौजूद हैं जिससे हमें बहुत परेशानी होती है। मैं कई बैठकों में जाता हूं वहां पर लोगों को मेरे विचारों को सुनकर अच्छा लगता है और वो मेरी बातों पर ताली भी बजाते हैं लेकिन उसके बाद वो पूछ ही बैठते हैं कि आपका नाम क्या है? आप कहां से आए हैं? आप किस जाति से संबध रखते हैं? उसके बाद में सकते में पड़ जाता हूं और कहता हूं कि जब आपने मुझे सुना और मेरे विचार आपको अच्छे भी लगे तो फिर यह जाति का सवाल कहां से आ गया ?

हमारे सामाजिक कार्यकर्ता दलितों की स्थिति को जाने बिना ही उनके लिए काम करने की बात करते हैं लेकिन मैं कहता हूं कि उन्हें ऐसा करने से पहले गांवों में जाकर उनकी स्थिति को खुद देखना और महसूस करना चाहिए। वे कहते आए हैं कि नाम में कुछ नहीं रखा है लेकिन मैं उनसे ही कहता हूं कि यदि वे अपने नाम के आगे से बहुगुणा, नौटियाल, रावत या नेगी जैसे शब्दों को हटा दें तो उनको दलितों की स्थिति का अहसास खुद ही हो जाएगा। हमारे नाम के पीछे मौजूद जातिसूचक शब्द जातिवादी व्यवस्था को प्रभावी रूप से आगे ले जाते हैं और आप और हम उसके वाहक बन जाते हैं।

दूसरा, हम लोग पदयात्राएं कर सकते हैं जैसे हमने पंचेश्वर से लेकर फलिण्डा तक की। हम सवर्ण तथा दलित भाई आपस में मिलकर पंचेश्वर से लेकर के हरिद्वार तक की पदयात्रा करें और जाति के मुद्दे पर बात करते हुए जाएं।

हमारे समाज में समानता कायम करने के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन फिर भी आज हमें किसी के चूल्हे में जाने की अनुमति नहीं है। भले ही हम साथ में बैठकर खाना खा लें लेकिन हम किसी के चूल्हे में नहीं जा सकते हैं।

सरकार ने दलितों के लिए बने स्पेशल कम्पोनैन्ट प्लान के तहत कुछ दुकानें बनवायी हैं लेकिन वो दुकानें जानबूझकर ऐसी जगहों जैसे चारों ओर से चीड़ के जंगलों से घिरे स्थान पर बनायी गई हैं जहां कोई भी आदमी दुकानदारी नहीं कर सकता है। मैं दिल्ली में रहने वाले नौटियाल जी से आग्रह करूंगा कि वो यहां के दलितों के लिए बनने वाली योजनाओं के बारे में और उनके आंकड़ों के बारे में हमें हिन्दी में बताएं क्योंकि उत्तराखण्ड के अधिकतर दलित लोग अंग्रेजी नहीं जानते हैं।

यदि हम अपने गांवों में 'सरकार सुरक्षित हो, दलितों के अधिकार सुरक्षित हों' का नारा लगाते हुए आगे बढ़ेंगे तो निश्चित रूप से हम आगे बढ़ सकते हैं। इसके अलावा हमें ग्रामसभा को भी नहीं छोड़ना चाहिए, आखिर ग्रामप्रधान ही हमारा नेता है।

फिर चाहे वो जिस भी समुदाय से क्यों न हो। आखिर पंचायत तो हम सभी की होती है। हमें अपने गांवों की आर्थिक–सामाजिक स्थितियों को सुधारने और दलितों को अत्याचारों से बचाने के लिए निरंतर संवाद करते रहना होगा। धन्यवाद !

तिथि : 30–1–2007

विषय : समता अभियान एवं जन घोषणा प्रक्रिया

स्थान : द्रोण होटल, देहरादून

आयोजकः उत्तराखण्ड समता आंदोलन, हिमालय स्वराज अभियान, सोशलिस्ट फ्रंट, राष्ट्र सेवा दल

फिर हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए,
फिर हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार पर्दों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए,
हर सड़क पर हर गली में हर नगर हर गांव में,
हर सड़क पर हर गली में हर नगर हर गांव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

विजय प्रताप जी – मैं साथी अतुल शर्मा जी से प्रथम सत्र की अध्यक्षता करने का आग्रह करता हूं और सुरेश भाई से आग्रह करता हूं कि वे प्रथम सत्र के संचालन के लिए साथी को मनोनीत करें।

शिविर परिचय – दोस्तो आज की बातचीत की शुरूआत बिना किसी भूमिका से शुरु करते हैं। आज का शिविर कई संगठनों ने मिलकर आयोजित किया है जिसमें मुख्य

भूमिका उत्तराखण्ड समता आंदोलन की है। समता आंदोलन का जन्म हाल ही में हुआ है और वो अभी एक्शन प्लेटफार्म नहीं है। इसमें अलग–अलग ढंग के एक्शन प्लेटफार्म हैं फिर वो चाहे पानी पंचायत हों या अन्य संगठन हों उन सब संगठनों में सामाजिक समता का मुद्दा और उसके पहलू नजरअंदाज न किये जाएं और इसके लिए एक समझदारी बनाने के लिए समता आंदोलन के नाम से एक चौपालनुमा संगठन बनाया गया है। इसमें कोशिश की जाती है कि किसी भी जाति, वर्ग और धर्म के लोग सामाजिक समता के मुद्दे को केंद्र में रखते हुए कितनी भी अप्रिय और कड़वी लगने वाली बात करने की कोशिश भी कर सकते हैं।

इस प्रकार हमारा मुख्य उद्देश्य आपस में अपनेपन की भावना पैदा करना और सच्चाई की एक ताकत पैदा करना है जिससे हम कड़वी से कड़वी बात भी आसानी से कह सकें और एक दूसरे की पीड़ा को समझ पाएं। हम इसे अन्य एक्शन प्लेटफार्म और पार्टियों की प्रतिस्पद्धा में एक पूरक एक्शन प्लेटफार्म नहीं बना रहे हैं बल्कि एक ऐसी चौपाल बना रहे हैं जो संघर्ष और रचना के लिए बने मंचों के माध्यम से समता के विषय पर उन सबसे संवाद चलाए और एक राष्ट्रीय और पहली कड़ी के तौर पर उत्तराखण्ड में और उससे पहले की कड़ी के तौर पर अपने आपस में समता के सवाल पर ईमानदार से बात करें। क्योंकि जब हमने जाति के सवाल पर खासकर दलित प्रश्न पर सुरेश भाई के नेतृत्व में पहला शिविर किया था तो उसका अनुभव बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद रहा।

इसका नतीजा भी वैसा ही रहा जैसा कि अच्छे शिविरों का रहता है लेकिन वो बहुत रोचक भी रहा। अर्थात जब बात शुरू हुई तो उसमें संयोग या दुर्योग से जन्मना के आधार पर बहस केंद्रित थी और वह डेढ दिन तक जारी रही और अंत आते–आते सभी ने ये महसूस किया कि अस्पृश्ता का भाव, अस्पृश्यता का कुसंस्कार, विषमता को सही मानना ये कुसंस्कार सबकी साझी समस्या है। और चाहे कोई किसी भी जाति या कुल में पैदा हुआ हो उसे इससे मिलकर लड़ना होगा। इस विषय पर बहुत ही तीखी प्रतिक्रिया हुई लेकिन किसी भी ईमानदरारी की बहस में तीखापन आ ही जाता है। यदि उसमें ईमानदारी से वैचारिक टकराहट होती है तो उससे नया भावनात्मक और वैचारिक संश्लेषण पैदा होता है। इस प्रकार समता आंदोलन को हम इस तरह का विचार आंदोलन कहेंगे।

तो हम लोग मानते हैं कि सामाजिक काम में संघर्ष, विचार और वोट का काम आदि सब महत्वूपर्ण चीजें हैं लेकिन हर मंच का एक अपना स्वधर्म, अपनी मर्यादा या लक्ष्मण रेखा होती है। इसी प्रकार इसकी भी एक सीमा है कि इसमें हमें सामाजिक समता के सवाल पर ही बात करनी है। भले ही आप किसी भी पार्टी में क्यों न हों लेकिन यहां आप किसी भी पार्टी के नहीं माने जाएंगे। आप यू.के.डी. में हों, कम्युनिस्ट

हों, सोशलिस्ट हों, इंडीपेंडेंट हों, वामपंथी हों, गांधीवादी हों या अंबेडकरवादी हों इसके अलावा आपका कोई भी प्रेरणा स्रोत्र, कोई भी विचारधारा, व्यक्ति या संगठन हो वह आपकी अपनी क्रिया है। यदि आप ये मानते हैं कि हमें सामाजिक समता के सवाल पर ही बात करनी है तो ऐसे में आप चाहे किसी भी वर्ग या समुदाय या पार्टी के हों आप पर किसी भी तरह की पाबंदी नहीं है।

दूसरा हम लोग ये चाहते हैं कि इसमें सबसे पहले, सामाजिक समता पर बात हो, दूसरा इसमें दल और विचारधारा का किसी भी तरह का भेदभाव न हो और तीसरा इसमें ईमानदारी और अपनेपन से बहस होनी चाहिए। इसके अलावा समता को केवल किताबी ढंग से समझने की बात नहीं है। उसे रोजमर्रा के जीवन के आधार पर समझने का प्रयास करना चाहिए। जैसे जो लोग दलित आंदोलन की भीतरी बहसों से परिचित हैं उनमें सब लोग ऐसा सोचते हैं कि उनमें से कोई भी व्यक्ति इस तरह का भेदभाव नहीं करता है। कुछ लोग यह कहते हैं कि अब तो बहुत से उच्च जाति के लोग भी जाति के खिलाफ बोलने लगे हैं क्योंकि अब बहुजन समाज जग गया है और जाति की अस्मिता से अब अगड़ी जातियों का स्थान परिवर्तन होने का खतरा है। ये बात आपके प्रांत में इतनी नहीं कही जाती पर जहां सामाजिक समता की राजनैतिक ताकतें ताकतवर हुई हैं वहां इस तरह की बात आती है तो मैं इसके पक्ष या विपक्ष में मौजूद तर्कों को यहां नहीं लाता हूं मैं सिर्फ ये कहना चाह रहा हूं कि आज से दस साल पहले प्रगतिशील समाज को आगे ले जाने वाली जितनी भी ताकतें थीं उनके बीच में एक सहमति थी। जिस बात को बाबा साहब मानते थे उसी बात को राममनोहर लोहिया भी मानते थे और गांधी जी भी अपने अंतिम दिनों में वही बात मानने लगे कि जाति प्रथा खत्म किए बगैर समाज से अस्पृश्यता के कुसंस्कारों को पूरी तरह से खत्म नहीं किया जा सकता। और आजादी के समय और उसके बाद काफी तीखे विवादों के बाद इस तरह की राष्ट्रीय सहमति बनी और पिछले कुछ सयम तक वो सहमति चलती भी रही। लेकिन अब जिस तरह से बाजार की ताकतें व्यक्ति को अकेला कर देती हैं और जिस तरह से दलित और पिछड़े और कारीगर जमातों के प्रति उच्च जाति में अभी भी गैर जानकारी मौजूद हैं उनके कारण व्यक्ति की एकता के आधार पर एक वास्तविक एकता नहीं बन पायी है।

जो उच्च जाति में ऊपर की सीढ़ी पर बैठे लोग चाहे वे आर्थिक रूप से समर्थ नहीं भी हैं लेकिन फिर भी वे जाति व्यवस्था के खिलाफ अपने परिवार और रिश्तेदारी में बोलते रहते हैं लेकिन उन्हें समर्थन देने का ढ़ांचा या उन्हें सहायता देने के ऐसे स्रोत मौजूद हैं कि वे अपने जीवन की यात्रा को सहज और सरल ढंग से कर सकते हैं। लेकिन जो बहुजन समाज का शोषित तबका है उसको कम्युनिटी का और अभी के माहौल में जो अभी है परंपरा से और जन्म से जो कम्युनिटी पैदा होती है उससे भी

एक सहारा मिलता है तो ये दुविधा समान्य समाज में मौजूद है। मैं कार्यकर्ता समाज की बात नहीं कर रहा हूं। कार्यकर्ता समाज में, हमारे आप जैसे लोग हैं वो तो जोखिम उठा ही लेते ही हैं वो तो धारा के खिलाफ खड़े होते ही हैं वे तो नैतिक, राजनैतिक और वैचारिक बल के भरोसे पूरे समाज से टक्कर लेते हैं। चाहे वो किसी भी कुल में पैदा हुए हों लेकिन न दलित उन्हें अपना मानता है और न ब्राह्मण ही उन्हें अपना मानता है।

यदि हमें समता के संस्कार को पूरे समाज का संस्कार बनाना है तो हमें यह सोचना चाहिए कि आम आदमी इन सवालों और इन दुविधाओं पर क्या सोचता है उसके बारे में हमको समझना है और ऐसा एकाध शिविर से नहीं होगा वो लगातार शिविरों से होगा।

जिन जातियों में अधिकांश लोग शोषित या नीचे की सीढ़ी पर बैठे हैं और जो लोग आर्थिक रूप से, सामाजिक इज्जत के हिसाब से निचली सीढ़ी पर बैठे हैं उनके बारे में भी कई बार उच्च जाति संस्कार के लोग कहते हैं कि उनमें आपसी एकता नहीं है लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि आप उच्च जाति की आपसी एकता को भी तो देखिए, भाजपा तो मुख्यतः उच्च जाति संस्कार वाली पार्टी है उसकी गुटबाजी भी देखिए उनमें उमा भारती, और गोविंदाचार्य और प्रमोद महाजन के झगड़े होते रहते हैं अर्थात चूंकि उनके यहां संगठनवाद का इतना बोलबाला है कि वे टेलीविजन तक पर स्पष्ट दिखाई देता था कि एक दूसरे के खिलाफ बयान दे रहा है और उनका पदाधिकारी कह रहा है नहीं–नहीं हमारे यहां कोई झगड़ा नहीं है। मैं कहना ये चाह रहा हूं चाहे आप अपर कास्ट हों या चाहे निम्न कास्ट हों लेकिन हमें अपनी मानसिकता में जातिवाद को तोड़ते चले जाना है। हमारे यहां ये प्रवृति रही है कि हम छोटे–छोटे समूहों में बंटते चले जाते हैं और अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं।

माना कि अपनी विशिष्ट पहचान बनाना सभी मनुष्यों की प्रवृति होती है लेकिन हमने इसे सामूहिकता का भी रूप दे दिया है इसके कई तरह के तर्क दे दिए हैं। अब सामाजिक न्याय की पार्टियां देखी हैं मुलायम सिंह का भी दावा है कि वो सामाजिक न्याय की पार्टी है। बहुजन समाज पार्टी, जन मोर्चा और लोक जन शक्ति भी सामाजिक न्याय की बात करते हैं। इस प्रकार सामाजिक न्याय की बात करने वाली आधा दर्जन से अधिक पार्टियां हैं तो हमारे मानस में कुछ तोड़क प्रवृतियां मौजूद होती हैं। लेकिन जब हम राजनीति से हटकर ये बात चला रहे हैं तो मुझे लगता है कि यदि इन दलों में वैचारिक आधार पर एकता नहीं होगी और संपूर्ण राष्ट्र के लिए सोचने वाले उसके लिए कुर्बान होने वाले लोग जब तक नहीं होंगे तो कहीं न कहीं सांस्कृतिक मानस में हमारी विकृति होती जाएगी। इस बात का अंदाजा पार्टियों की स्थितियों को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है। बीजेपी और वामपंथी पार्टियों

को देखिए, यू.के.डी. ने कहा कि हम आपको छः सीटें दे रहे हैं लेकिन वो आज तक भी फैसला नहीं कर पाए हैं। इस प्रकार यह वामपंथी पार्टियों का दुर्भाग्य ही रहा कि अधिकांश नेतृत्व अपर कास्ट का था। 1955 के बाद राममनोहर लोहिया ने जब विशेष अवसर की नीति पर काम किया तो पूरा रामविलास, मुलायम सिंह, लालू प्रसाद और नीतीश कुमार ये सब जिस पृष्ठभूमि से भी निकले हों लेकिन वे एक साथ चल पड़े। लेकिन जब जनता ने उनकी बात सुनी और समाज में समता की जो ऊर्जा पैदा हुई उसे अपने–अपने घेरों के लिए इस्तेमाल किया। आज वो सब अलग–अलग हैं। इस बिखराव वाली प्रवृति के बारे में सोचने वाले लोग कोई घटिया लोग नहीं हैं उनमें से अधिकांश के साथ मैंने काम किया है वो भी समाज के बारे में सोचते हैं फिर भी इकट्ठे नहीं हो पाते। हमारे एन.जी.ओ. इकट्ठे नहीं हो पाते।

हम जिस विचार से पूरी दुनिया को हिलाने की बात करते हैं उस विचार से हम समाजवादी जन परिषदें बनाते हैं। हम एन.पी.एम., लोक वाहिनी बनाते हैं फिर भी झगड़े होते रहते हैं। तो मैं ये कहना चाहता हूं कि कहीं न कहीं भारतीय मानस में अपने को तोड़ने और छोटे घेरों में बांटने की प्रवृति बनी और हमें इस तरह के शिविरों में परिवर्तनवादी ताकतों को खुली और ईमानदारी से बात करनी चाहिए।

हम अपने निजी जीवन में अपने निजी संगठनों में संगठन की सत्ता या राजनैतिक सत्ता की लड़ाई में नहीं हैं लेकिन संगठनों की जो सत्ता होती है, साधन के सवाल पर बहस होती है। इसमें किसका नाम होगा, किसकी पहल होगी, कौन नियंत्रण करेगा, कौन दिशा देगा आदि सवालों पर सामूहिकता और आम लोगों की भागीदारी सामूहिकता आम साथियों की भागीदारी वाली सामूहिकता को पैदा करने के बारे में बात करनी चाहिए।

हमारे एन.ए.पी.एम. के मेधा पाटकर वाले संगठन में एक राष्ट्रीय संयोजक और हमारे साथी 'चेन्नयया' ने आंध्र प्रदेश में जमीन पर बहुत काम किया है वो बताते हैं कि वहां बुनकर जातियों, मछुआरों और भूमिहीन खेतिहरों की तीन तरह की अलग दलित पृष्ठभूमि है लेकिन अभी भी उन्हें तीनों का साझा सम्मेलन करने में दिक्कत आ रही है। यदि ऐसा ही होता रहा तो कठिनाई बढ़ जाएगी। यदि हमें अपने समाज में एकता लानी है तो हमें समाज में मौजूद तोड़क अनुभवों को दूर कर एकता कायम करनी होगी।

समता के सवाल के साथ–साथ जल, जंगल और जमीन के सवालों पर भी विचार करना होगा क्योंकि इन चीजों से हमारे आर्थिक तंत्र पर प्रभाव पड़ता है। रवि चोपड़ा जी को बहुत कम समय में ये सूचना मिल पाई और मैं चाहता हूं कि सुरेश भाई के वक्तव्य के बाद रवि जी प्राकृतिक संसाधन और समता के सवाल पर रिश्ते पर

अपनी बात रखेंगे। इससे पहले कि सुरेश भाई अपनी बात रखें मैं चाहूंगा कि इस बैठक के अध्यक्ष, सुरेश भाई इस सभा का संचालन करें। धन्यवाद!

सुरेश भाई : साथियो आज हम लोग 30 जनवरी को गांधी जी की पुण्यतिथि के अवसर पर बैठे हुए हैं और गांधी जी ने एक सौ पच्चीस साल तक जीने की मंशा जाहिर की थी वो अपनी इस मंशा को पूरी तो नहीं कर पाए लेकिन उनकी 125वीं जयंती मनाई गई।

उन्होंने खासकर आजादी के बाद कहा था कि हमारी दूसरी लड़ाई ग्राम स्वराज की होगी और ग्राम स्वराज के तीन घटक हैं स्वावलंबन, समानता और तीसरा संयोग और स्वावलंबन।

आज हम वैश्वीकरण और निजीकरण के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे हैं। उसमें पूंजीपति वर्ग अगुआ हैं वे समाज को कहीं न कहीं समाज को आर्थिक दृष्टि से मदद कर रहे हैं। क्योंकि गांधी ने कहा था पूंजीपति वर्ग पैसे का मालिक नहीं है वो जनता के हित के लिए पैसे को रख सकते हैं। जनता के हित के लिए जब लोगों को जरूरत पड़ेगी तो वो उनकी मदद करेंगे। लेकिन वो ऐसा न के बराबर कर रहे हैं। अभी मैं वर्ल्ड सोशल फोरम की बैठक में गया था हमें लगा कि वहां कई लोग इक्ट्ठा थे। पूरी दुनिया के सामने एक लाख लोगें ने पूंजीपतियों के खिलाफ आवाज उठाई जो कि एक गंभीर चुनौती थी। उसके पैसे का प्रयोग सम्राज्यवादी आर्थिक ताकतों को बढ़ाने के लिए हो रहा है जो कि गांधी के सिद्धांतों के खिलाफ है। आज आम लोगों की ऐसी दशा देखकर हम गांधी को याद कर रहे हैं।

तीसरी बात गांधी ने समानता की बात की थी जिनमें महिलाओं, दलितों, अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्ग के लोगों को राज्य और राष्ट्र की विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की बात की गई थी। आज वो लड़ाई का एक मुद्दा बन गया है और पूरी राजनीतिक पार्टियां और सामाजिक संस्थाएं भी कहती हैं कि हम दलितों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों को आगे ला रहे हैं। कहीं न कहीं हमारे मीडिया के लोग भी यदाकदा तरीके से उस विषय पर लिखते रहते हैं।

इस प्रकार गांधी ने ये तीन तरह की बातें की थी जिसके लिए आज जगह–जगह लड़ाईयां हो रही हैं। हम लोग यहां खास मुद्दे को लेकर बैठे हुए हैं इसलिए हमने गांधी को याद करके अपनी बात शुरू की। इसी विषय को लेकर हम लोगों ने पिछले साल जनवरी में समता आंदोलन के नाम से एक बैठक की थी। उस बैठक में हमने देखा कि दलित वर्ग तीन प्रकार की आवाज उठाते हैं। एक तो वो कहते हैं कि हमारी शिल्पकला का सम्मान होना चाहिए। हम समाज में अछूत नहीं हैं और हमें भी विकास की मुख्यधारा के साथ जोडें और तीसरा हमारे नाम पर जो कुछ

हो रहा है वो हमारे पास आना चाहिए। वो तीन चीजों के लिए लड़ाई लड़ते हैं जब हम महिलाओं को पूछते हैं कि आप क्या लड़ाई लड़ रहे हैं तो वो कहते हैं कि हम घास, लकड़ी, पानी के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। जब हम उससे बड़े अपने पुरुष समाज से पूछते हैं जो कि थोड़ा सा राजनीति में भी प्रवेश कर गए हैं वो गांवों में जन प्रतिनिधि, पंचायत के प्रतिनिधि बन गए हैं। जब उनसे ये पूछा गया तो उन्होंने कहा कि उनकी अधिकांश लड़ाई सत्ता की कुर्सी पाने के लिए है और उसमें मध्यम वर्ग के लोग वोटर्स हैं। लेकिन हम देखते हैं कि अभी चुनाव का समय है और हमने इस विषय पर लोगों से बात की तो पता चला कि हमारे समाज में आज राजनीति को तय करने वाले या निर्णायक वोटर दलित वर्ग के लोग हैं।

हमारे समाज में लोगों की मानसिकता के कारण जो असमानता की भावना पैदा है। इस स्थिति के लिए हमारे स्वर्ण भाइयों के साथ–साथ दलित भाई भी जिम्मेदार हैं क्योंकि वे भी अपने आपस में छूत–अछूत की मानसिकता के साथ जी रहे होते हैं। जिस दिन हम सभी लोग इस बात को त्याग देंगे उस दिन ये असमानता अपने–आप की समाप्त हो जाएगी।

मैं, आपको इसका एक अच्छा उदाहरण देता हूं। मेरे गांव में बूढ़ा केदार के नाम से प्रसिद्ध धर्मानंद नौटियाल थे। वे तेरह साल की उम्र से लेकर आज 85 साल की उम्र तक पिछड़े, दलितों और गरीब लोगों को अपने घर में बिठाते हैं। उन्होंने उनके साथ मिलकर बातचीत का माहौल बनाया, संवाद बनाया और समानता बनायी। इतना ही नहीं एक सवर्ण, ब्राह्मण और एक दलित परिवार करीब 10 साल से एक साथ रह रहे हैं। वे एक साथ खेती करते हैं और यहां तक कि खाना भी साथ ही खाते हैं। उनके इस काम को देखकर उस क्षेत्र में दलित वर्ग में और सवर्ण वर्गों में भी सामाजिक कार्यकर्त्ता पैदा हुए तो प्रत्येक जाति में कहीं न कहीं ये एक चिंगारी उठी जिसे देखकर लगा कि सच में धर्मानंद नौटियाल जी ने सामाजिक परिवर्तन का काम किया है।

लेकिन मुझे ये कहते हुए बहुत की दुख हो रहा है कि धर्मानंद नौटियाल जी को बहुत लोग नहीं जानते होंगे। ये बहुत दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में अधिकतर लोग फिल्मी अभिनेता–अभिनेत्रियों के नाम जानते हैं लेकिन सुंदरलाल बहुगुणा, मेधा पाटकर, राधा बहन, धर्मानंद नौटियाल, उत्तरकाशी में रहने वाले कम्युनिस्ट नेता कमलाराम नौटियाल जैसे लोगों को बहुत कम ही लोग जानते होंगे। इसी प्रकार हमारे प्रदेश में भी बहुत से अच्छे लोग कई संस्थाओं से जुड़कर काम करते हैं लेकिन उन्हें कम ही लोग जानते हैं।

हममें से कई लोग पढ़ते ही नहीं हैं और न ही पढ़ना चाहते हैं। जिससे समाज में व्याप्त असमानता विरोधी ताकतें उन्हें अपने कब्जे में कर लेती हैं जिससे हमारे

समाज की मानसिकता में हमारे वातावरण में असमानता पैदा हो रही है और हम उसके प्रतिभागी बन रहे हैं। जिससे आने वाले दिनों में सबसे बड़ी कठिन समस्या पैदा होगी।

जैसे कि आप राजनीति में ही देख लीजिए टिकटों के बंटवारे के समय दलित वर्ग को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है। ये जरूर है कि कुछ सीटें रिजर्व हो गयी हैं लेकिन जहां दलित वर्ग का वर्चस्व है जहां पर दलित नेता प्रभावी रूप से आगे हैं वहां पर उन्हें टिकट नहीं दिए जा रहे हैं। क्योंकि आमतौर पर ये कहा जाता है कि हां जी आपकी सीट तो रिजर्व है और रिजर्व सीटों की हालत इस प्रदेश में तो है ही पूरे देश में बहुत ही खराब है, इस तरह उन्हें पीछे कर दिया जाता है।

उत्तराखण्ड अलग प्रदेश तो बना लेकिन उसके बाद भी इस प्रदेश में समानता के नाम पर शायद ही कुछ हुआ हो। यहां तक कि यहां की राज्य सरकार ने इस तरह की कोई चर्चा भी पैदा नहीं की। जिस प्रकार सरकार ने जल, जंगल और जमीन की नीतियों को बनाने में बातचीत का माहौल बनाने का प्रयास नहीं किया बल्कि उसे छुपाने की प्रयास किया यदि उनकी इस नीति के खिलाफ कभी हो–हल्ला हुआ भी तो उन्होंने अपने हाथ–पैर सिकुड़ा दिए। उन्होंने जल, जंगल जमीन की नीति नहीं बनाई और उसके लिए बहुत सारी लापरवाहियां बरती हैं उसी प्रकार से दलितों के समानता के सवाल पर हमने देखा कि यहां की प्रदेश सरकार ने कोई ऐसा नियम, कोई ऐसी बातचीत, कोई ऐसा संवाद कायम नहीं किया जिससे यहां कि दलित वर्ग के लोगों और जल, जंगल तथा जमीन से वंचित लोगों का कुछ भला हो सके। वे लोग आज भी मंदिरों में नहीं जा सकते, जहां से सवर्ण पानी लाते हैं वहां से पानी नहीं ला सकते। वे मंदिर तो बनाते हैं, उसकी शिल्पकला में अपना पूरा हुनर डाल देते हैं लेकिन जैसे ही मंदिर बन जाता है उसी मंदिर में उनका प्रवेश वर्जित हो जाता है।

हमने पिछले कुछ सालों के दौरान दलितों के लिए कुछ भी नहीं किया। आज हमने सोचा था कि दलितों के सवाल पर हनोल के मंदिर से अपनी एक यात्रा शुरू करें जिसमें पिथोरागढ़ के उस मंदिर तक भी जाएं जहां दलितों की बारात को रोका गया था, हम चाहते थे कि हम राजनीतिक पार्टियों से पूछें कि उनके एजेंडे में समानता के सवाल पर कुछ लिखा गया है या नहीं। उनके एजेंडे में कहीं पर जल, जंगल और जमीन की नीतियों के बारे में कुछ लिखा गया है या नहीं। लेकिन हमारे साथियों ने बताया कि चुनाव का माहौल होने के कारण शायद हमारी बात न सुनी जाए इसलिए हमने यहां बैठक की। हम चाहते हैं कि बैठकों का सिलसिला इसी तरह से चालू रहे। और इस चुनाव के दौरान हम पूरे प्रदेश भर में इस तरह की बैठकों के माध्यम से लोगों को जागरूक करें। इसी बात पर मुझे सुंदरलाल बहुगुणा जी की एक बात याद आती है वे कहते थे कि हम सामाजिक कार्यकर्ता हैं लेकिन राजनीतिक दल नहीं हो सकते। हम राजनीतिक दलों में अच्छे लोगों की तलाश करने में जुटे हुए हैं लेकिन हम

कान पकड़ने का काम तो कर सकते हैं कान हम हाथ से तो नहीं पकड़ेंगे हम विचार से पकड़ेंगे पर हम ऐसे मौके पर पूछ तो सकते हैं कि आप जिस दस्तावेज को लेकर जनता के बीच में जा रहे हैं वो क्या है। हमारे बीच में ऐसे कितने लोग होंगे जिन्होंने कांग्रेस को या भाजपा को या यू.के.डी. के किसी पार्टी को पूछा कि जरा अपना घोषणा पत्र दिखाओ उसमें क्या कुछ है, मैं ऐसा नहीं कह रहा कि ये बात किसी को भी पता नहीं है। लेकिन उन लोगों की संख्या नाममात्र की है।

चुनाव के समय में लगभग सभी राजनैतिक दलों में समानता की लहरें ज्वारभाटा की तरह पैदा होती हैं लेकिन बाद में सरकार बनते ही वो ज्वार भाटा शांत हो जाता है। मैं धन्यवाद दूंगा विजय प्रताप जी को और अपने अन्य नौजवान साथियों को कि उन्होंने इस परिवेश और चर्चा को पिछले दो–तीन महीने से जारी रखा है। यहां हम समानता के मुद्दे पर चर्चा कर सकते हैं लेकिन समानता भी केवल विचारों से ही नहीं आएगी इसके लिए कुछ काम तो करना ही पड़ेगा। इसकी शुरूआत हम इस बात से कर सकते हैं कि हम जिस संस्था, जिस विचार में काम कर रहे हैं उसमें तो समानता होनी ही चाहिए। लेकिन वास्तव में ऐसा हो नहीं रहा है। हम देख रहे हैं कि यू.के.डी. का नेता यदि ब्राह्मण है तो वहां पर सारे ब्राह्मणों को टिकट मिल रहे हैं, यदि वहां पर कांग्रेस का नेता यदि ठाकुर है तो वहां पर सारे ठाकुरों को वरीयता मिल रही है, हम देख रहे हैं कि भाजपा का नेता यदि किसी दूसरी जाति का है तो वो उसी जाति का ख्याल रख रहा है। ऐसे में महिलाओं, दलित वर्गों और अल्पसंख्यक लोगों के मुद्दे ठंडे बस्ते में चले जाते हैं।

आखिर ये सब कब तक चलता रहेगा! हमें इस प्रकार की चुनौतियों को सामने लाना होगा वो हम तभी ला सकते हैं जब लोग यूनाइटेट होंगे, एक हो जाएं वे ये तय कर लेंगे कि हम तो इस मुद्दे को आगे बढ़ाएंगे। मैं ये नहीं कह रहा हूं कि केवल हमारी मानसिकता ही सवर्ण वर्ग के खिलाफ हो, हम ये कह रहे हैं कि जो समस्याएं सवर्ण भाईयों के कारण से पैदा हुई हैं उन समस्याओं का निदान उनको करना पड़ेगा तो अच्छा है वे उसका नेतृत्व संभालें धर्मानंद नौटियाल तथा सुंदरलाल बहुगुणा जैसे बनें। इनके अलावा कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, केदार सिंह गुंजवाल, कुंवर प्रसून, इंदु टिकेदर जैसे कई लोग रहे जिन्होंने देश आजाद होने के बाद देश में दलितों के उद्दार के काम चलाए।

वे दलितों के मंदिर प्रवेश के हक में थे। उन्होंने कहा कि दलित तो मंदिर बनाते हैं लेकिन जैसे ही उसमें मूर्ति स्थापित हो जाती है वो उसमें प्रवेश नहीं कर सकते आखिर उनके साथ ये अन्याय क्यों? दलितों को मंदिर में प्रवेश कराने के काम में उन्होंने न जाने कितनी बार जूते तक खाए। एक बार उन्होंने बूढ़े केदार के मंदिर में दलितों को प्रवेश कराया। कहते हैं कि उस समय लोगों ने उनकी पत्नी तथा उनके

सिर में इतने पत्थर बरसाए कि उनकी खोपड़ी से खून तक निकलने लगा अंत में थक हार कर वहां पर मौजूद सवर्णों को उनके हाथ–पैर जोड़ने पड़े कि अब इन्हें मत मारो, अब ये मर जाएंगे। क्या आज कोई भी व्यक्ति ऐसा कर पाएगा ?

एक बार की बात है हनोल के एक मंदिर में एक सांस्कृतिक टीम को जाना था ताकि वो उस मंदिर की शिल्पकला के बारे में जाने लेकिन मंदिर में जाने से पहले उन्हें उनकी जाति के बारे में पूछा गया और उन्हें अंदर नहीं जाने दिया गया। आज भी ऐसे कई मंदिर हैं जहां इस तरह की बातें होती हैं। एक बार की बात है पिथौरागढ़ में हरिजनों की एक बारात जा रही थी लेकिन उन्हें डोला पालकी में नहीं जाने दिया गया और कहा गया कि दलित लोग अपनी बारात को पैदल ही ले जाएंगे। उस बात को सुनकर हमारी राजनीतिक पार्टियों और हमारे सवर्ण भाइयों का खून जरा भी नहीं खोला। हमें इस बात का दुःख है कि इस प्रदेश में किसी राजनीतिक पार्टी ने उसपर कोई बयान तक नहीं दिया। इसके बारे में केवल एक ही फोरम से प्रतिक्रिया हुई और मैं उसका नाम लेकर उसका अगुवा नहीं बनना चाहता हूं लेकिन उन्होंने भी हमको केवल फोन ही किया बाकियों को क्या हो गया उसके बारे में कुछ पता नहीं चला। मुझे ये समझ में नहीं आ रहा है कि इस विषय पर नारायण दत्त की सरकार ने, बीजेपी के लोगों ने, यू.के.डी. के लोगों ने और दूसरी पार्टी के लोगों ने फोन क्यों नहीं किया। सुरेश भाई ने फोन इसलिए किया क्योंकि वो उसमें शामिल हैं। ये बहुत ही दुख की बात है कि जब इस बात पर समाज से जुड़े सभी लोगों को सचेत होना चाहिए था फिर चाहे वो राजनीतिक पार्टी हों या सामाजिक पार्टियां ही क्यों न हों लेकिन उनमें से कोई भी आगे नहीं आया।

मुझे लगता है कि हमारे समाज में समानता के मुद्दे को निजीकरण और वैश्वीकरण कुचल है। हम देख रहे हैं कि वैश्विक राजनीति के कारण, साम्राज्यवादी वैश्वीकरण से दलितों की शिल्पकला की बाजार में कोई कीमत नहीं रह गई है। यहां के चर्मकार द्वारा बनाए गए जूते की 'बाटा' के जूते के सामने कुछ अहमियत ही नहीं। वहीं विदेशी कपड़े के सामने यहां के बुनकर के बनाये कपड़े को कोई खरीदने को ही तैयार नहीं है। क्या आज हमारे समाज में कोई ऐसा व्यक्ति मौजूद है जो विदेशी उत्पादों के सामने होते हुए भी दलितों द्वारा बनाए उत्पादों का प्रयोग करें ? क्या ऐसे कोई लोग हैं जो अपनी ब्याह–शादी में दलितों से ड्रम और ढोल बजवाएं और फिर उनके साथ बारात में खाना भी खाएं ? हो सकता है आपको मेरी बात बुरी लगी लेकिन यहां के सवर्ण भाई, ढोली को बारात में ले जाते हैं क्योंकि ढोल के बिना ब्राह्मण की पूजा नहीं होती है। ढोल वाला बाहर ढोल बजाता रहेगा और ब्राह्मण अंदर पूजा करेगा। लेकिन वो ढोली न तो ब्राह्मण के नजदीक आ सकता है और न ही उसे छू सकता है।

मैं इस बात का खुलासा इसलिए कर रहा हूं कि यदि हम ढोली को ब्राह्मण के नजदीक लाने की थोड़ी सी कल्पना करें तो इस समस्या को दूर भगाने का रास्ता ढूंडा जा सकता है। लेकिन यहां तक कि कोई राजनीतिक पार्टी चुनावी समय में अपने घोषणा पत्र में भी इस मुद्दे को शामिल नहीं करती है। हो सकता है आने वाले दिनों में उत्तराखण्ड ऊर्जा प्रदेश, जैविक खाद्य प्रदेश बनें लेकिन ये समानता का प्रदेश कब बनेगा इसके बारे में कोई बात नहीं करना चाहता।

कुछ साथी कहते हैं कि 'रोटी–बेटी' के संबध होने चाहिए लेकिन जब दलितों के साथ ऐसा व्यवहार होता हो तो इस तरह के संबध तो कायम ही नहीं किए जा सकते हैं। कुछ सवर्ण भाई समानता की बात को यह कहकर टाल देते हैं कि हरिजनों में भी कई उपजातियां हैं, उनके भी आपस में झगड़े होते हैं। लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं कि ये बात ठीक है कि उनमें भी कोई अपने को बड़ा और कोई छोटा मानता है लेकिन उनके बीच में छूआछूत की भावना तो नहीं है। वो आपस में घृणा और छूआछूत नहीं करती। मैं, ये भी मानता हूं कि हरिजन जाति के जो लोग थोड़ा पढ–लिखकर ऊंची नौकरियों में आ गए हैं वो अपने ही हरिजन साथियों और भाईयों की तुलना में अपने–आप को बड़ा तो समझने लगे हैं लेकिन वो उनसे छुआछूत और घृणा का व्यवहार तो फिर भी नहीं करते हैं। लेकिन सवर्ण और दलितों के बीच की सबसे बड़ी समस्या छुआछूत की है।

यदि हममें से कोई अपने प्रदेश में व्याप्त इस छुआछूत की समस्या को दूर करने के लिए सुंदरलाल बहुगुणा, विमला बहुगुणा और धर्मानंद नौटियाल की तरह काम करना चाहता है तो चलो जरा हनोल के मंदिर में चलिए और हजार दलितों को मंदिर में प्रवेश कराइए। जहां दलितों को उनकी बारात में डोली से उतारा जाता है जरा उन गांवों में चलकर डी.एम. के ऑफिस के आगे प्रदर्शन करें। चलो जरा जिलाधिकारी या मुख्यमंत्री के साथ पूरे गांव को झकझोडें।

ये काम ग्रासरूट का काम है और केवल मात्र सरकार को हिलाने या चुनावी घोषणा पत्र में ये बात डालने से काम नहीं चलेगा क्योंकि जब तक हमारी राजनीतिक पार्टियों की मानसिकता में बदलाव नहीं आएगा तब तक इस समस्या का सही हल नहीं निकल पाएगा। हम शोभन सिंह नेगी, मुकेश बहुगुणा, सुरेश नौटियाल, जब्बर सिंह आदि साथी भी उत्तरकाशी के बाद राज्य स्तर की ऐसी कोई भी बैठक नहीं कर पाए जिसमें समता आंदोलन या समानता को महत्व दिया जा सके। इस प्रकार हम अभी तक इस विषय पर उत्तराखण्ड में कोई आधार नहीं बना पाए। मुझे इस बात से कुछ फर्क नहीं पड़ता कि मेरी इस बात से कितने लोग सहमत हैं या कितने असहमत, लेकिन मैं जानता हूं कि यहां के दलितों के मर्म और उनके दर्द को जानने में अभी समय लगेगा।

लोग इस बात को यह कहकर टाल देते हैं कि दलितों में भी उप जातियां हैं, उनके भी आपस में झगड़े हैं। लेकिन सच तो यह है कि अभी भी इस विषय पर दलित और सवर्ण वर्ग के सभी लोग आपस में मिलकर कोई भी चर्चा नहीं कर पाए। अभी तक भी दलित लोग हनोल के मंदिर के भीतर नहीं जा सके। आज हम हर काम में सरकार की जवाबदेही चाहते हैं, उच्च वर्ग की निम्न वर्ग के प्रति जवाबदेही चाहते हैं लेकिन हम ये भूल जाते हैं कि समाज की भी अपनी कुछ जवाबदेही होती है। इसलिए हमें ऐसे पर्चे, पोस्टरों और ऐसे अभियानों की जरूरत है जो समाज के हित में हों। हमें एक ऐसी टीम का गठन करना चाहिए जो राजनीतिक पार्टियों और सामाजिक संस्थाओं से भी समानता के लिए काम करवा सके।

मैं इस बात को बहुत ही दुख के साथ कह रहा हूं कि उत्तराखण्ड में वैसे तो लगभग सत्तर हजार संस्थाएं पंजीकृत होंगी लेकिन मैं केवल साढ़े तीन सौ संस्थाओं को जानता हूं जो कि जमीनी स्तर पर काम करती हैं। लेकिन उन संस्थाओं में भी एक समस्या है संस्था प्रमुख जिस समाज से आता है वह प्रमुखता उसी समाज को वरीयता देता है, वहां पर अधिकतर कार्यकर्ता भी उसी समाज से आते हैं उनमें दलितों या दूसरे अल्पसंख्यकों का आना नदारद है। आप प्रत्येक बैठक में देख लीजिए ग्राम सभाओं की बैठकों में भी दलितों की भागीदारी नाममात्र की होती है जिससे उनकी बात को महत्व दिया ही नहीं जाता है।

ये बहुत अच्छी बात है कि आज हम गांधी जी की पुण्यतिथि पर इन समस्याओं पर बात कर रहे हैं। यदि हम गांधी जी के उस ग्राम स्वराज को गांव–गांव तक लाना चाहते हैं जिसके बारे में मैंने अभी तीन बातें बताई कि समानता, संयोग और स्वावलंबन अर्थात यदि हम अपने समाज में इन तीनों बातों को लाना चाहते हैं तो ये तभी संभव होगी जब इसकी शुरूआत दलित वर्ग से हो और इस वर्ग को सभी कामों में शामिल किया जाए। यदि आपमें से कोई दिल्ली स्थित गांधी समाधी में गए हों तो वहां आपने देखा होगा कि समाधि के भीतर प्रवेश करने से पहले लिखा होता है 'आप सबसे पहले अपनी आंख बंद करो और यदि आप कोई सामाजिक कार्यकर्ता हैं तो आप सोचिए कि आपके गांव में यदि कोई दलित, बेसहारा, या समाज का कोई अंतिम आदमी हो जिसके पास शाम को खाना खाने के लिए भोजन नहीं है, जिसके पास कपड़ा नहीं है, जिसके पास मकान नहीं है तो उसकी आप किस तरह से और क्या सेवा करते हैं ? यदि आप आंख मूंदकर इस बात का स्मरण करें तो आपको पता चल जाएगा कि आप कितने बड़े सामाजिक कार्यकर्ता हैं। तो ये गांधी जी का संदेश था। और आज के दिन हम गांधी के संदेश को फिर से दोहरा रहे हैं कि यदि हम सचमुच में दलितों का उद्धार करना चाहते हैं तो गांधी जी की इस बात को हमें भूलना नहीं होगा। और यदि

हमें साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का जवाब देना है तो वो केवल गांधी के आदर्शों और विचारों से ही दिया जा सकता है। धन्यवाद !

संचालकः धन्यवाद सुरेश भाई! आपने जो बात रखी और आपकी बातों में जो पीड़ा थी मेरे ख्याल में हम सभी आपकी बात से सहमत होंगे। मुझे भी लगता है कि आपका यह कहना सही है कि आपकी पीड़ा के लिए हम सभी दोषी हैं। इसके लिए वो सभी लोग दोषी हैं जिन्होंने समाज की ठेकेदारी ले रखी है। आपका यह कहना ठीक है कि जमीन और नेतृत्व को छोडे बिना यदि हम दलित अस्मिता की बात करें तो वह खाली प्रतीकात्मक भर होगी। आज की तारीख में जब लगभग सम्पूर्ण जमीन पर सवर्णों का ही हाथ हो और वो अपने कब्जे को छोड़ने के लिए तैयार न हों तो ऐसी स्थिति में दलितों को आगे लाने की, उनकी भागीदारी की, और असमानता की समस्या के लिए समाधान खोजने की बात केवल प्रतीकात्मक ही रह जाएगी। अब मैं रवि चोपड़ा से अनुरोध करूंगा कि वो अपनी बात रखें।

रवि चोपड़ा :– जिस प्रकार सुरेश भाई ने अपने विचार पेश किए मेरे पास इतनी गहरी सोच–समझ के विचार नहीं हैं। लेकिन मैं कुछ व्यवहारिक बातें जरूर कर सकता हूं।

आज जो परिस्थिति या जो भविष्य नजर आ रहा है वो असमानता का दिखाई दे रहा है। जिस दिशा में हमारा समाज और खासकर हमारा राजनैतिक, आर्थिक तंत्र जा रहा है उससे समाज में असमानता बढ़ रही है और बढ़ने वाली है। हमारी केंद्र सरकार कई बार नारा दे रही है हमारे देश में अर्थव्यवस्था बहुत अच्छी हो गई है और इसमें आठ प्रतिशत, नौ प्रतिशत या दस प्रतिशत वार्षिक उछाल आ रहा है लेकिन वो किसके हाथ में जा रहा है? आईटी इंडस्ट्री के बारे में कहा जा रहा है कि हम विश्व की प्रथम आईटी पावर बनने जा रहे हैं लेकिन क्या उस आई टी पावर में हमारे पहाड़ के लोगों का कोई हिस्सा होगा, जहां पर शिक्षा की व्यवस्था अच्छी न हो जहां पर अधिकांश विद्यार्थी चालीस–पैंतालीस प्रतिशत नंबर लेकर पास होते हैं तो क्या उनको उन कॉलेजों में दाखिला मिलेगा जिससे आगे चलकर उनके बच्चे आई टी इंडस्ट्री में जा सकें ?

मुझे लगता है कि समाज में असमानता का जोर बढ़ रहा है इसलिए दुनिया एक तरफ जा रही है और हम अपनी नैया को दूसरी तरफ चलाने की कोशिश कर रहे हैं। यदि हम अपने राज्य को ही देखें तो अपने राज्य में आज जो परिस्थिति है, उसके अनुसार सरकार का पूंजीपतियों का जितना भी निवेश हो रहा है वो तराई के क्षेत्र में हो रहा है, पहाड़ में कुछ नहीं जा रहा है इसका नतीजा क्या होगा? पंद्रह साल बाद जब 2021 में जनगणना होगी तो हमें ये पता लगेगा कि हमारे पहाड़ तो खाली हो गए

और सब लोग तराई में पहुंच गए। आखिर वो लोग करेंगे भी क्या? यदि वे लोग अपने–अपने पैत्रिक स्थान को छोड़कर चले जाएंगे तो वहां के प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने वाला तो कोई बाकी ही नहीं रहेगा। वहीं दूसरी और पूंजीपति लोग तराई वाले क्षेत्रों में अंधाधुंध तरीके से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते रहेंगे तो ऐसे में वहां के प्राकृतिक संसाधन भी नष्ट हो जाएंगे। ऐसी परिस्थिति में एक अजीब तरह की असमानता बढ़ती जाएगी। जैसे कि आज हमारे लगभग सभी खाद्य संसाधन हमारे हाथों से छीने जा रहे हैं। आपमें से कई लोग उस समय हमारे साथ रहे होंगे जब हमने जलनीति पर अभियान शुरू किया था क्योंकि हो सकता है आने वाले दिनों में ये प्राकृतिक संसाधन भी हमसे छिन जाए।

आज एक और दौर आ रहा है जहां स्पेशल इकोनोमिक जोन की बात की जा रही है। इस मामले में भी सरकार पूंजीपतियों के पक्ष में दिखाई देती है। वो हमारी जमीनों को भी हमसे छीन लेना चाहती है अब ऐसे में हमारी भूमिका केवल विरोध करने की ही रह जाती है जो कि हमने अपना धर्म बना लिया है। लेकिन फिर भी हम लोग एक व्यवस्थित और संगठित ढंग से उसका विरोध नहीं कर पा रहे हैं। इसमें शायद हम लोगों का ही दोष है। मैं अक्सर देखता हूं कि किसी भी आंदोलन, किसी भी अभियान, किसी भी गोष्ठी में चले जाओ तो वो ही चेहरे दिखाई देते हैं। हमारी पहुंच सीमित लोगों तक है उन सीमित लोगों के बीच में कैसे एक प्रभावशाली व्यवस्था कैसे बने जबकि हम आपस में काम बांट नहीं पाएं, हम एक दूसरे को समर्थन नहीं दे पाते हैं। कई बार अपने–अपने स्वर इतने गूंजते रहते हैं हमारे कि हम एक–दूसरे की बात ही नहीं सुन पाते।

मेरा एक अनुरोध है कि हम आपस में विचार करें कि अपने आंदोलनों को व्यवस्थित ढ़ग से कैसे चलाया जाए जिसमें हम एक–दूसरे को भी समर्थन दे पाएं। जब तक हर व्यक्ति का ध्यान कई जगह बंटा रहेगा तो हम कुछ कर नहीं पाएंगे हमको अपनी–अपनी प्राथमिकताएं बांधनी पड़ेंगी अगर आपने जमीन का बीड़ा उठाया है तो आप इसका नेतृत्व कीजिए हम आपके पीछे चलेंगे। अगर आपने पानी का बीड़ा उठाया है आप इसका नेतृत्व कीजिए और लोग आपके पीछे चलेंगे तो इस तरह से कुछ व्यवस्थित ढंग से काम करना पड़ेगा।

अंत में मैं बस यही कहना चाहूंगा कि यह वर्ष सत्याग्रह का वर्ष है, सौ साल पहले गांधी जी ने पहली बार सत्याग्रह का इस्तेमाल किया था और दुनिया को ब्रह्मस्त्र दिया था जिससे कि हिंसा और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ कमजोर लोग भी लड़ सकें इसलिए इस वर्ष को हमें गोष्ठियों में बिताने की बजाय कहीं पर संगठित होकर खुद सत्याग्रह करना होगा। जो बात सुरेश भाई ने कही कि आज यह बैठक हनोल मंदिर के पास होने वाली थी और फिर पिथौरागढ़ तक पदयात्रा करनी थी उस विषय

पर थोड़ा विचार करें तो ये काम जरूर हो जाएगा। यदि दलित वर्ग के लोगों को मंदिर में न जाने देना के विरोध में गांधी जी से संबधित तारीख जैसे कि 2 अक्टूबर को सत्याग्रह किया जाए, दलित वर्ग के साथ बैठें और उन्हें आश्वासन दें कि वे पिछली गलतियों को भूलकर आगे बढ़ें। और हम भी उनको अपने साथ लेकर आगे बढें। यदि मेरी कोई बात आपको बुरी लगी हों तो कृपया मुझे माफ कर दें। धन्यवाद!

संचालक :– धन्यवाद रवि चोपड़ा जी आपने जो बातें कहीं उसमें सबसे प्रेरणात्मक बात जो आपने कही वो ये है कि आज तक हम लोग प्राथमिकताएं बांध नहीं पाए हैं और न ही हम अपने कामों को व्यवस्थित ढंग से बांट ही पाए हैं।

इस संदर्भ में मुझे बहुत पुरानी कहानी याद आई जब हिन्दुस्तान में पानीपत की पहली लड़ाई शुरु होने वाली थी उससे एक दिन पहले बाबर किले का निरीक्षण कर रहा था उस समय इब्राहम लोदी के सामने करीब सवा–डेढ़ लाख की फौज खड़ी थी और बाबर के पास केवल बारह–तेरह हजार आदमी थे इसलिए बाबर यह सोच कर चिंतित था कि मैं इस लड़ाई में जीत भी पाऊंगा या नहीं। तभी उसने देखा कि इब्राहम लोदी के खेमे से जगह–जगह से धुआं उठ रहा है, बाबर ने अपने सिपहसलार से पूछा कि इतनी सारी जगहो से धुआं क्यों उठ रहा है उसने उत्तर दिया कि कई लोग खाना बना रहे हैं, इसपर बाबर चौंककर बोला ये लोग अपना खाना अलग–अलग क्यों बना रहे हैं जवाब में सिपहसलार ने कहा कि हिन्दुस्तान में हिन्दू हैं और उनमें कई जातियां मौजूद हैं इसलिए वे एक–दूसरे के हाथों से बना खाना नहीं खाते और अपना खाना खुद ही बनाते हैं। ये बात सुनकर बाबर बहुत खुश हुआ उसने कहा कि जो लोग एक साथ खाना नहीं खा सकते, वे एक साथ मिलकर काम भी नहीं कर सकते और वे एकसाथ लड़ भी नहीं सकते हैं इसलिए मैं आसानी से जीत सकता हूं।

अभी तक सुरेश भाई ने अपनी बात रखी उनकी बातों के बात मेरे पास कुछ लोगों के नामों की सूची आई है जो कि अपनी बात रखेंगे इनमें राजीव कोठारी, पवन राणा,गोपाल, शैलेन्द्र, जगत सिंह, बादल, प्रेम पंचोली, अमर सिंह अमर, कलावती, मुकेश वर्मा और नागेन्द्र का नाम है इनके अलावा भी जो अपने विचार रखना चाहते हैं वो रख सकते हैं। सबसे पहले मैं राजीव कोठारी जी को आमंत्रित करूंगा कि वो अपनी बात रखें।

राजीव कोठारी वक्ता :– मुझे सूचना मिली थी कि कुछ समाजवादी साथी जो कि हिन्दुस्तान में समाजवादी लड़ाई लड़ते रहे हैं उन लोगों की एक बैठक है। चूंकि मैं भी समाजवादी कैम्प का पुराना साथी रहा हूं और मैंने अपना राजनीतिक जीवन जनता पार्टी में शुरु किया था, मुझे हिन्दुस्तान के जितने शीर्ष समाजवादी साथी, चिंतक रहे हैं

उन लोगों का सानिध्य मिला है। हिन्दुस्तान को समाजवादी देश बनाने की चेष्टा में जो लोग थे वो आज किसी मुकाम पर खड़े हैं। आचार्य नरेन्द्र देव जो अपने समय में मार्क्सवाद के सबसे बड़े विद्वान रहे हैं इनके अलावा आज और आज से पहले जो कम्युनिस्ट पार्टी की सीनियर लीडरशिप रही है, वो सोशलिस्ट कांग्रेस से निकले हुए लोग रहे हैं। उस समय जब आचार्य नरेन्द्र देव जी ने तमाम दुनिया का विश्लेषण किया तमाम दुनिया की आंतरिक धाराओं को देखा और हिन्दुस्तान का मार्क्सवाद का जब विवेचन किया तो उन्होंने हिन्दुस्तान की दशा को सुधारने के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद का रास्ता सुझाया था। फिर चाहे वो अरशद जोशी, मधु दंडवते, चंद्रशेखर, डा.रामविलास, डा.लोहिया और अब उनके अन्य साथी रहे हों उन्हें हम तमाम समाजवादियों ने बहुत करीबी से देखा।

साथियो आज का युग आईटी और सूचना प्रोद्योगिकी का युग है। लेकिन फिर भी पूरी दुनिया में भीषण संकट का दौर चल रहा है और मजे की बात यह है कि अभी भी हिन्दुस्तान में जाति की लड़ाई एक बड़ी लड़ाई बनी हुई है। पूरे दुनिया के अंदर फासिज्म सिर उठा रहा है और हिन्दुस्तान के अंदर 'हिन्दु' का एक अनबुझा सवाल रह गया है। जब आज लोग नए सिरे की राजनीति की बात करते हैं तो हम देखते हैं कि 2001 की जनगणना के अनुसार तेईस प्रतिशत लोग ठाकुर, ब्राह्मण और बनिया समाज से हैं और वो पूरे देश को चला रहे हैं जबकि बाकी बचे लोग बर्षों पहले जहां खड़े थे आज भी वहीं खड़े हैं।

हम अपने समाज में देखें तो आईटी में कई तरह के छात्र हैं लेकिन उनमें किसी तरह का विभाजन नहीं है फिर वो चाहे सवर्ण हों या फिर दलित। इसी तरह आज डॉक्टर, प्रोफेसर आदि में भी कहीं कोई विभाजन नहीं दिखाई देता। इसी तरह हमारे समाज में भी आई.एस.एस. कर रहे या अन्य कोर्सों को कर रहे छात्र या उनकी पत्नियों के बीच में जाति को लेकर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं है। उसी तरह समाज के विभिन्न रिशतों में भी ये भेदभाव खास नहीं दिखाई देता है। लेकिन वहीं राजनीति ने आज भी पूरे समाज को बांटा हुआ है।

यदि हम उत्तराखण्ड को ही देखें तो वहां ठाकुर और ब्राह्मणों की आबादी लगभग 70 प्रतिशत है। इसलिए हम लोग दलितों के शोषक, अन्य पिछड़ी जातियों के शोषक, ब्राह्मणवाद और दलित समाज की बात करते हैं लेकिन हमें नव–ब्राह्मणवाद की बात करनी होगी। यदि हम ध्यान से देखें तो आज पिछड़ों की राजनीति, दलितों की राजनीति को लेकर देश के भीतर जितने भी नेता या राजनीतिक पार्टियां खड़ी हैं राष्ट्रीय स्तर पर उनकी स्थिति देखें तो फिर चाहे मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव हों, नीतिश कुमार हों या फिर रामबिलास हों वे सभी लोग नव–ब्राह्मणवाद के रूप में शामिल दिखाई देते हैं। लेकिन यदि आप उनके मूल में जाएं तो आप देखेंगे

कि उनका कोई चरित्र ही नहीं रह गया है। जिस आदमी को आप इस लड़ाई में लड़ने के लिए नैतिक रूप से तैयार करते हैं, कल वो किसके साथ खड़ा होगा इसके बारे में कुछ पता नहीं है। इसी प्रकार उत्तराखण्ड राज्य के बनने से पहले हमने एक बड़ा आंदोलन किया और हमें पृथक राज्य मिल भी गया लेकिन फिर भी हमारी स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। आज भी हमारे समाज में छुआछूत की समस्या बनी ही हुई है। हमारा सीधा–साधा मानना है कि राजनीतिक दखल के बिना ये चीजें दूर भी नहीं हो सकती हैं फिर हम चाहे कितने ही सुधारवादी या आदर्शवादी ही क्यों न बन जाएं लेकिन जब तक इस बात में राजनीति का पूरी दखल नहीं होगा तब तक हम इन सवालों को हल करने में अक्षम ही रहेंगे। विदुषक के तौर पर बुद्धिजीवी के रूप में बड़े महिमामंडित होते रहेंगे, बड़े व्याख्यान को सुना जाएगा उसके बारे में बड़े लेख छप जाएंगे लेकिन जब वहां दखल का सवाल होगा, जब पार्लियामेंट में बिल बन रहा होगा, पार्लियामेंट में कानून बन रहा होगा तब हम आपको कहीं खड़े दिखाई नहीं देंगे।

मैं समाजवाद से जुड़ा रहा, मैंने मार्क्सवादी क्रांति को सुना, मार्क्सवाद में कहीं भी किसी जाति का जिक्र नहीं है। वहां दुनिया में दो लोगों का जिक्र है। एक शोषक और दूसरा शोषित। तमाम दुनिया में एक तबका दूसरे तबके को या तो दबा रहा है या उसका शोषण करने पर लगा है फिर चाहे वो जाति की बात हो या फिर पूंजीवाद ही क्यों न हो। इसके लिए पूरी दुनिया लड़ रही है। इसके लिए हम सबको मिलकर कोई रास्ता तलाशना होगा, इसके लिए सरकार, राजनीतिक पार्टियों के साथ–साथ एन.जी.ओ. की भी मदद ली जा सकती है। तभी हमारे समाज को कुछ सुधारा जा सकता है। धन्यवाद!

संचालक (मुकेश भाई) :– धन्यवाद भाई आपने बहुत बढ़िया सवाल उठाया कि हमने कुछ लोगों को अपना नेतृत्व दिया था लेकिन जब निर्णायक समय आता है वो लोग किस खेमे में खड़े नजर आते हैं? आज जरूरी है कि हम उनसे भी सवाल करें और सवाल करना इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि उन लोगों को नेतृत्व दिया गया था उन्हें सामाजिक क्षमता और न्याय की बागडोर थमाई गई थी लेकिन वो इसको सुचारू रूप से थाम नहीं पाए।

अब मैं श्री पवन राणा जी से अनुरोध करूंगा कि वो अभी बात रखें, श्री पवन राणा जी राज्य के सरोकार के समन्वयक हैं।

श्री पवन राणा :– धन्यवाद मुकेश भाई! मैं पहले की बातों को न दोहराते हुए चंद चीजों की ओर आपका ध्यान खीचूंगा क्योंकि यहां उठाया गया सवाल और उसकी

प्रक्रिया बहुत ही नाजुक है इसलिए हो सकता है मेरी किसी बात से किसी को ठेस लगे इसलिए पहले ही क्षमा चाहता हूं।

यहां आने से पहले मुझे यहां के कार्यक्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। लेकिन यहां आकर आप लोगों की बात सुनकर बहुत अच्छा लगा। जिस प्रकार सुरेश भाई ने कहा कि हमने आज हनोल के मंदिर से एक अभियान की शुरूआत करनी थी। लेकिन चूंकि ये गोष्ठी आज ही थी इसलिए उसके बदले इस कार्यक्रम का आयोजन किया गया। लेकिन फिर सुझाव आया कि इस कार्यक्रम को 2 अक्टूबर से शुरू किया जाएगा अर्थात वो कार्यक्रम फिर से लगभग एक साल पीछे चला गया है। हम पूरे 300 साल तक अंग्रेजों के गुलाम रहे और लगभग 500–600 साल तक मुसलमानों के और देश के आजाद होने के बाद भी पिछले लगभग 60 साल से स्वतंत्र देश में भी गुलाम हैं। हमारे संविधान में अपने समाज को समतामूलक समाज के नाम से जाना जाता है लेकिन उसके बाद भी हम आज तक अपने समाज में समता कायम करने के लिए केवल मात्र गोष्ठियां ही करने में लगे हुए हैं। सुरेश जी आप मेरी बात का बुरा मत मानिए लेकिन आपने जो महत्वपूर्ण काम करने का सोचा था आप उसे छोड़कर यहां इस गोष्ठी में उपस्थित हो गए हैं, क्या इस तरीके से हम अपने रास्ते अपना मार्ग प्रशस्त कर पाएंगे?

ये ठीक है कि गांधी जी ने जिस सत्याग्रह की बात की उसके बारे में हम किताबों में पढ़ते आये हैं लेकिन पिछले साठ सालों में हमें उस सत्याग्रह से कुछ भी नहीं मिल पाया है यदि उससे मिलना संभव हो पाता तो आज तक मिल चुका होता। जैसे कि आरक्षण के सिलसिले को ही देखिए जो कि केवल 10 साल के लिए था लेकिन वो आज भी हर दसवें साल में फिर से दस साल के लिए बढ़ा दिया जाता है। इसलिए हम सभी जगह यहां तक कि राजनीति में भी कभी 27 प्रतिशत तो कभी 60 प्रतिशत आरक्षण को देखने की कोशिश करते हैं। अब उत्तर प्रदेश की राजनीति को ही देख लीजिए वहां बहन मायावती ने दलितों को आरक्षण देकर और उन्हें अपनी पार्टी में अधिक से अधिक संख्या में टिकट तो दिया है लेकिन जैसे ही वो दलित लोग पार्टी में पहुंच जाते हैं या जीत जाते हैं वो अपनी जाति और उस जाति के लोगों को ही भूल जाते हैं। अर्थात जो भी उस ओर चले जाते हैं उनका चरित्र ही बदल जाता है।

ज्योति फूले ने छोटी जाति के लोगों को दलित शब्द दिया ये वो जाति थी जिनके पास अपनी जमीन नहीं थी या नैसर्गिक संसाधनों पर उनका अधिकार नहीं था। लेकिन बाद में उन्हें कुछ जमीन दे दी गई और उनकी पानी की समस्या हल करने के लिए उनके लिए अलग से कुएं बना दिए गए थे अर्थात उन्हें अलग थोड़ी सी जगह दे दी गई और कहा गया कि तुम यहीं तक सीमित रहो। इस प्रकार दलित लोग मुख्य समाज से अलग एक भिन्न समाज में रहे। उस समय तो वो दलित थे लेकिन आज

नई तरह का दलित वर्ग खड़ा हो गया है। अगर देखें तो सबसे बड़ा पूंजीपति तो यहां की सरकार है, यहां का वन विभाग है, आंकडों के अनुसार उत्तराखण्ड की लगभग 68 फीसदी जमीन तो उन्हीं के पास है। यदि हम उन सभी चीजों को जोड़ लें जिनपर सरकार का नियंत्रण है तो उसके अनुसार तो आज की तारीख में सरकार ही सवर्ण है। आज की तारीख में सवर्ण वो नेता हैं जो सरकार में चले गए हैं और बाकी बचे सभी लोग दलित हैं।

मेरा अपना मानना है कि दलित आज की पुरानी अर्थव्यवस्था और आज की अर्थव्यवस्था में उत्पादक रहे हैं फिर चाहे वो शिल्पकार हों, खेत में काम करने वाले हों, या वे जिस भी अर्थव्यवस्था में रहें वो उत्पादक की तरह ही रहे। जबकि सवर्ण वर्ग हमेशा से ही उपभोक्ता रहे। आज भी उत्पादक दलित ही हैं फिर चाहे वो बीघे या दो बीघे वाला किसान ही क्यों न हो, या फिर किसी खेत में काम करने वाला मजदूर हो, किसी फैक्ट्री में काम करने वाला मजूदर हो वो दलित ही है। और जिनके पास संपत्ति है पूंजी है चाहे वो जिस भी रूप में हो वे सब सवर्ण हैं।

माफ करना साथियो में समता के सवाल को केवल जाति में नहीं देखना चाहता, मैं समता के सवाल को व्यापक तरीके से देखने की बात कर रहा हूं इसके लिए इन गोष्ठियों में बैठने की अपेक्षा बाहर निकलकर काम करना ज्यादा बेहतर है क्योंकि उसी से कुछ हो सकता है। धन्यवाद!

श्री आलम दास :– आदरणीय विजय प्रताप जी, सुरेश भाई और बाकी सभी भाइयों ने अभी तक जो बात की थी उसमें से मुख्यतः हनोल के बारे में थी। मैं वहीं का रहने वाला हूं। मैं दलित वर्ग से हूं हमारा जौनसार भाभर जनजाति इलाका है अब आप ही बताइए ऐसे में जनजाति के अंदर जो अनुसूचित जाति है उनका क्या हाल होता होगा?

मैं काफी साल से अनुसूचित जाति के लिए कार्य कर रहा हूं। मैं सरकारी कर्मचारी भी रहा और वीआरएस लेकर समय से पहले ही घर बैठ गया। इस दौरान मैंने अपने नेता भाईयों द्वारा किए जा रहे बेकार के काम देखे। मैंने देखा कि अनुसूचित जाति तो बहुत ही बुरे हालात में है। मैं कुछ करना चाहता था लेकिन मैं आप लोगों की तरह विद्वान आदमी भी नहीं हूं लेकिन मैं राष्ट्रीय सेवा दल में शामिल हुआ। और मैं उसका प्रदेशाध्यक्ष हूं। मैंने भोपाल, बंबई, दिल्ली, नैन बाग, मसूरी कालसी में लगे लगभग सभी शिविरों में भाग लिया।

आप में से बहुत से लोग कई बड़े शहरों और विदेशों से भी आए होंगे लेकिन मैं तो जौनसार के एक छोटे से इलाके में रहने वाला दलित हूं इसलिए मैं देश–विदेश की बात न कर अपने इलाके की बात ही करूंगा। यदि हमारे यहां मैदानी इलाकों से कोई व्यक्ति हनोल के मंदिर में आता है तो उसे केवल इतना ही पूछा जाता है कि आप

कहां के रहने वाले हो और वो कहता है कि मैं दिल्ली या जिस भी शहर का वो हो उसका नाम बताता है उस व्यक्ति से मंदिर में प्रवेश से पहले उसकी जाति आदि के बारे में कुछ नहीं पूछा जाता है लेकिन यदि मैं ये कहूं कि मैं पहाड़ का रहने वाला हूं तो मुझसे पहले मेरे जिले का नाम, उसके बाद मेरे गांव का नाम और फिर मेरी जाति के बारे में पूछा जाता है और फिर उसके बाद यह प्रतिबंध लगा दिया जाता है कि यहां मत जाना, वहां मत जाना लेकिन जो व्यक्ति मैदानी इलाकों के आता है उसकी जाति पूछे बिना उसे मंदिर में कहीं पर भी जाने की अनुमति होती है।

इसी तरह मैं जौनसार में स्थित मासू देवता के मंदिर की एक बात सुनाता हूं वहां पर लखवार इंटरनेशनल स्कूल है उसके अध्यक्ष राहुल जी ने उस मंदिर के लिए लगभग 80 प्रतिशत पैसा दिया है। तो जौनसार इलाके में मासू देवता बहुत बड़े देवता माने जाते हैं और दो–तीन गांव छोड़कर लगभग हर गांव में उनके मंदिर हैं। एक बार मैं और मेरा एक रिशतेदार लफ्फार गए थे। हम मंदिर में भेंट चढ़ाना चाहते थे इसलिए हम मंदिर में चले गए वहां जाते ही हमने अपने जूते उतारे लेकिन हमने मंदिर में जाने से पहले ही बोल दिया कि हम अनुसूचित जाति से हैं और हमें भेट चढ़ानी है। ऐसा हमने इसलिए किया कि कहीं हम बिना बोले अंदर चले जाएं और बाद में इन्हें पता चले तो हो सकता है हमारी पिटाई हो जाए। मंदिर के पुजारी ने यह सुनते ही हमारे हाथ से भेंट ले ली और स्वंय चढ़ाकर हमारे हाथ में प्रसाद थमा दिया लेकिन हमें अंदर नहीं जाने दिया।

इस बात के कुछ दिन बाद एक दिन मैंने समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ता को मंदिर में जाते हुए देखा। वे खुद भी अनुसूचित जाति से हैं और उनके साथ खुद कई लोग थे जिनमें से कुछ तो मुसलमान थे। मैंने उनके जत्थे को मंदिर में जाते हुए देखा तो मैं भी उनके पीछे–पीछे चला गया यह देखने के लिए कि उन लोगों को मंदिर के भीतर जाने देते हैं या नहीं। अंदर जाकर मैंने देखा कि मंदिर के आंगन में जहां अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति को जाने नहीं दिया जाता था उनके लिए वहां पर कुर्सियां लगी हुई थीं। मैं भी उनके किनारे पर जाकर बैठ गया। फिर उन्होंने कहा कि चलो अब महाराज के दर्शन करते हैं। क्योंकि वो वहां के जाने–माने नेता थे और वहां उनका दबदबा चलता था इसलिए वहां के पुजारी ने उन्हें अंदर जाने की इजाजत दे दी जिनमें के अनुसूचित जाति के साथ–साथ मुसलमान भी थे। उन सभी लोगों ने मंदिर देखा और उसकी बहुत तारीफ की उन्हें देखकर मेरे मन में भी इच्छा हुई कि मैं भी मंदिर को देखूं। मैंने भी हिम्मत कर मंदिर के पुजारी से पूछा कि क्या मैं भी मंदिर के अंदर जा सकता हूं। उन लोगों ने अखबार आदि के माध्यम से मेरे बारे में चर्चा सुनी थी और हो सकता है मुझे देखा भी होगा क्योंकि मैं पिछले चार साल से हनोल के बारे में काम कर रहा था। इस तरह से उन्होंने मुझे देखते ही हाथ जोड़कर कहा

कि आइए साहब आप भी अंदर जा सकते हैं इस प्रकार मैंने अपनी जिंदगी में पहली बार इस मंदिर को भीतर से देखा।

इसी तरह मुझे हनोल के मंदिर की एक घटना भी याद है, एक बार नंदलाल भारती जी का कहीं कोई कार्यक्रम था इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों न मंदिर में जाकर आर्शीवाद ले लिया जाए। तो वे मंदिर में अंदर घुसे और वो मंदिर में जा पाते या नहीं जा पाते इससे पहले ही उन्होंने मंदिर के पुजारी के पैरों को छूकर आर्शीवाद लिया और फिर क्या था पुजारी ने कहा कि मंदिर में जाने या न जाने देने का तो प्रश्न ही नहीं है उल्टे तुमने मुझे अपवित्र कर दिया है। नंदलाल जी मेरे रिश्तेदार थे उन्होंने इस बात को आगे बढ़ाया और फिर वहां के डी.एम.ने देहरादून से आदेश दिया कि इन लोगों को मंदिर में प्रवेश कराया जाए।

इस प्रकार हनोल के मंदिर में जाने के लिए 27 सितंबर का दिन तय हुआ जिस दिन एस.डी.एम. के साथ कई सवर्ण जाति के लोगों के साथ अनुसूचित जाति के लोगों के भरी एक गाड़ी मंदिर के पास रुकी, उनके साथ पुलिसवाले भी थे। अब हनोल मंदिर के पुजारी और वहां के सवर्ण जाति के लोग अनुसूचित जाति के लोगों को मंदिर प्रवेश से मना नहीं कर सकते थे क्योंकि सरकार का आदेश था और उन लोगों के साथ पुलिस के अलावा एस.डी.एम. भी थे। लेकिन वो लोग भी कम नहीं थे उन्होंने भी एक राजनीति खेली, उन्होंने उन लोगों को मंदिर में आने तो दिया लेकिन जैसे ही वो मंदिर के दरवाजे से अंदर घुसने लगे तभी वहां खड़े दो–तीन सवर्ण लोगों पर देवता आने लगा और उसने ये आदेश दे दिया कि तुम निचली जाति के लोग भीतर नहीं जा सकते हो, यदि तुम अंदर गए तो तुम्हारा विनाश हो जाएगा, तुम लोग जिस गाड़ी में आए हो वो भी जमीन के नीचे धंस जाएगी और तुम्हारा घर–परिवार नष्ट हो जाएगा आदि। लेकिन हम लोग उनका तमाशा जानते थे खुद एस.डी.एम. भी उनकी बातों को समझ गए कि वो लोग झूठा नाटक कर रहे हैं। एस.डी.एम. सहित हम लोग वहीं पर खड़े रहे और फिर हमने कहा कि चलो यदि ये लोग हमें अंदर नहीं जाने देते तो हम देहरादून जाकर डी.एम.साहब से शिकायत करते हैं, ये बात सुनकर वो सन्न रह गए।

हमें मालूम था कि मासू देवता बहुत शक्तिशाली हैं और वहीं रहने वाले एक आदमी पर देवता आता है जो कि पालकी में आता है और पालकी में ही जाता है। फिर उसे बुलाया गया और वो नाचा तो उसने सब सच–सच बता दिया कि मंदिर के भीतर वाले पुजारी और अनुसूचित जाति के लोगों को अंदर जाने से रोकने वाले सभी लोग ढोंग कर रहे हैं। उस आदमी के भीतर आए मासू देवता ने कहा कि सब लोग मेरे भक्त हैं और उसमें कोई छोटी या बड़ी जाति का नहीं है इसलिए सभी लोगों को मेरे मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार है। इस प्रकार वहां मौजूद अनुसूचित जाति के सभी लोगों ने मंदिर में प्रवेश किया।

मैं ऐसा नहीं कह रहा कि सवर्ण जाति के सभी लोग छुआछूत को मानते हैं और हमारे साथ दुव्यर्वहार करते हैं क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो उस दिन भी हम मंदिर में नहीं जा सकते थे लेकिन सवर्ण जाति के एक आदमी में ही सच्चे देवता आए जिन्होंने हमें अंदर जाने की इजाजत दी और खुद हमारे साथ आए। हमें मंदिर में प्रवेश कराने वाले साथी सवर्ण जाति के ही थे। लेकिन अधिकतर लोग खासकर पुराने लोग और महिलाएं ऐसा ज्यादा करती हैं।

इस प्रकार हमारे जौनसार समेत पहाड़ के लगभग सभी इलाकों को यही कहानी है। वहां के दलितों की बहुत सी समस्याएं हैं। वे लोग गरीब हैं, उनके पास जमीन नहीं है, उनके पास रोजगार नहीं है, वे पढ़े–लिखे नहीं हैं और उनके बहुत ज्यादा बच्चे हैं जिससे वे रोजगार और पैसे के आभाव में अपने बच्चों को भरण–पोषण नहीं कर पाते हैं, उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं दिला पाते हैं। वहां कोई उद्योग–धंधे नहीं हैं यहां तक कि वहां के लोगों के पास जंगल के भीतर जाने का अधिकार भी नहीं है जिससे वो अपना थोड़ा–बहुत गुजारा ही चला पाते। हम चाहते हैं कि आप वहां के दलितों की स्थिति को सुधारने के लिए और उन्हें जागरूक करने के लिए मीटिंग आदि बुलाइए जिससे उनका कुछ भला हो सके लेकिन इसमें भी एक समस्या है कि उन लोगों के पास इतना पैसा भी नहीं है कि वे मीटिंगों में शामिल होने के लिए आ भी सकें और यदि आ भी जाएं तो उनके पास दोपहर के भोजन के लिए पैसे तक नहीं होते हैं। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अपनी सोसाइटी के माध्यम से जौनसार वाले हरिजनों को थोड़ा–बहुत पैसा उपलब्ध करवायें ताकि वे लोग कम से कम मीटिंग आदि का आयोजन कर सकें और उनके माध्यम से वहां के अनुसूचित जाति के लोगों में जागरुकता आ जाए और वे अपना और अपने जाति के लोगों का कुछ भला कर पाएं। वहां कुछ ऐसे उद्यम या रोजगारों की व्यवस्था की जाए जिससे वे लोग भी रोजगार प्राप्त कर अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण कर पाएं और अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पाएं। धन्यवाद!

संचालकः– अब मैं गोपाल भाई से अनुरोध करूंगा कि वो अपनी बात रखें।

गेपालः– मुझे इतने सारे बुजुर्ग लोगों के बीच में बोलना पड़ रहा है और हो सकता है मुझसे कई गलतियां भी हो जाएं इसलिए मैं पहले ही क्षमा मांग लेता हूं। पहली बात तो मैं ये कहना चाहता हूं कि आज हम समस्याओं की बात कर रहे हैं, तो समस्याएं तो हमारे सामने मौजूद हैं ही फिर चाहे आप कशमीर से लेकर कन्याकुमारी तक चले जाएं तो आप उन सभी स्थानों की समस्याओं को देखकर लिखना चाहें तो रामायण महाभारत से भी अधिक बड़ी पुस्तकों को लिखा जा सकता है। इसलिए मुझे लगता है कि हमें सबसे पहले यह सोचना चाहिए कि हम चाहते क्या हैं? क्योंकि इसी तरह बात करने या मीटिंगों में अपनी समस्याओं या दलितों पर होने वाले अत्याचारों को गिनाने

से कुछ होने वाला नहीं है। यदि हम समता या समानता की बात करते हैं ब्राह्मण–गैर ब्राह्मण में समानता की बात करते हैं तो हमें उस ब्राह्मण और गैर–ब्राह्मण के बीच के समानता के कौन से आधार बिंदु समझ में आते हैं जिनके आधार पर हम समानता की बात को आगे बढ़ा सकते हैं। नहीं तो क्या होगा कि हम उसी बात को मीटिंगों में दोहराते रहेंगे। मैं ऐसा नहीं कहना चाह रहा हूं कि मीटिंगों से कुछ निकलता नहीं है क्योंकि हम जैसे कार्यकर्ता भी इसी तरह की मीटिंगों से निकलकर आए हैं। लेकिन जब बार–बार होने वाली ऐसी बातों से तो दिल ही टूटेंगे और मुझे लगता है कि इस तरह से कार्यकर्ताओं का मनोबल भी टूट सकता है। मुझे लगता है कि इस तरह की मीटिंगों में कुछ मजबूती की बातें भी होनी चाहिए। जिसके प्रभाव से हमारे मन में मजबूती आएगी और हमें भी ऊर्जा मिलेगी।

मैं खुद ऐसे परिवार से हूं जिसे आज की दुनियावी भाषा में अछूत, दलित या हरिजन कहा जाता है। मुझे लगता है कि दलित की मान्यता को खत्म करने के लिए जितने भी प्रयास हुए हैं वे लगभग समझौते की तरह ही हुए हैं। क्योंकि हम अछूतों को अछूत न कहकर दलित या हरिजन कहकर पुकारा जाता है तो अछूत की पीड़ा भले ही थोड़ी कम हो जाए लेकिन खत्म नहीं होती है। हम अछूतों को दलित या हरिजन नाम देकर हमारा नाम तो बदल गया लेकिन न तो हमारी मानसिकता में कोई बदलाव आया और न ही समाज की मानसिकता में। आज भी हमारे और हमारे समाज के जीने के रंग–ढंग वैसे ही हैं बस उनमें काले की जगह जैसे कोई रंग भर दिया हो।

मुझे लगता है कि ये सुधार का दृष्टिकोण समझौते की तरह ही है। क्योंकि जब भी हम कोई सुधार करते हैं तो उस सुधार प्रक्रिया में ऐसे पड़ाव आते ही होंगे कि हम लोगों को कहीं न कहीं कोई समझौता करके आगे बढ़ना पड़ता होता है। इन बातों को देखकर कई बार मेरे मन में ये प्रश्न आता है कि हम अनुभवशील लोग जिस क्रांति का सपना लेकर समाज को बदलने और समतामूलक समाज की स्थापना का सपना लेकर चल रहे हैं कहीं वो केवल मात्र रंगरोगन वाली बात तो नहीं है ?

मैं ज्यादा बात न कहकर केवल इतना ही कहूंगा कि आज समाज में अधिकतर लोगों में अहंकार की भावना है कोई अपने को बड़ा समझता है तो दूसरे को छोटा। और वो ऊंच–नीच और अहंकार का पलड़ा कभी एक तरफ हावी होता है और कभी दूसरी तरफ। लोगों की भावना के पीछे उनकी मान्यताएं भी हैं जो उन्हें ऐसा करने पर मजबूर करती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यदि तुम अछूत होकर ऐसा करते हो तो हो सकता है कि तुम्हें पाप लगे और तुम्हें नरक में जाना पड़े और यदि तुम सवर्ण होकर असवर्णों को भी अपने ही साथ रखते हो या तुमने उनके साथ कोई संबध किया तो हो सकता है भगवान तुम्हें क्षमा नहीं करे तो इस तरह की मान्यताओं के चलते भी लोग अपना व्यवहार करते हैं लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि आने वाली पीढ़ियों में धीरे–धीरे

से ये भावना कम होती जा रही है जो कि अच्छा है यदि समाज में व्याप्त इस असमानता को दूर करने के लिए इन मान्यताओं को समाज से दूर करने और उनकी मानसिकता को बदलने का प्रयास किया जाए तो इस समस्या को कुछ हद तक हल किया जा सकता है।

अन्य वक्ताः– स्वास्थ्य की दृष्टि से हमारे देश की हालत अच्छी नहीं है। हमारे जीवन में पानी की बहुत बड़ी भूमिका होती है वो हमारी जीवन रेखा है इसलिए अधिकांश बीमारियां भी उसकी अस्वच्छता के कारण ही होती हैं। लेकिन दिल्ली जैसे शहर में ही पानी की हालत को देखिए दिल्ली शहर यमुना के किनारे बसा है लेकिन आज वो नदी नाला बनकर रह गई है। वहां अब सदा नीरा यमुना की जगह कूड़े–कचड़े और लाशों के हिस्से और उनकी सडांध ही अधिक बहती है। तो आप देख लीजिए कि आजादी के साठ साल बाद भी हम अपने देशवासियों को स्वच्छ पानी तक भी नहीं दे पाए हैं। अभी कुछ साथियों ने बताया कि सन् अठतर के समय में देश में कई बीमारियां पैदा हुईं उन बीमारियों से बचने के लिए टीकाकरण अभियान चलाया जा रहा था जिसके लिए बहुत से टीके विदेश से मंगाए जाने लगे। फिर सुझाव दिया गया कि यदि आप अपनी जनता को स्वच्छ पानी ही उपलब्ध करा दें तो टीकों की आवश्यकता ही नहीं पडेगी।

एक ओर तो हमारे शहरों में स्वच्छ पानी की ऐसी दुदर्शा है और दूसरे हमारे पहाड़ों में आज भी स्वच्छ पानी की कोई कमी नहीं है। वहां जहां देखो वहां किसी न किसी पहाड़ से पानी निकल रहा होता है। हालांकि आज वो पानी भी धीरे–धीरे गंदा होता चला जा रहा है लेकिन फिर भी शहरों की तुलना में बहुत अच्छा है। अगर हम देखें तो उत्तराखण्ड में पानी पर आधारित कई उद्योग शुरू कर सकते हैं, खुद पानी के वितरण में ही एक पूरा रोजगार छिपा है। लेकिन हमारी सरकार के पास उसे विकसित करने और उसके बारे में एक बेहतर योजना बनाने के बारे में कुछ होश ही नहीं है।

दूसरा मैं शिक्षा की बात करूंगा। आज हमारे यहां के हालात ऐसे हैं कि आज शिक्षा की मण्डी बना दी गई है शिक्षा को खरीदने, बेचने की एक वस्तु बना दिया गया है। आज मेरिट देखे बिना कैपीटेशन फीस के माध्यम से लाखों लोगों की भर्ती हो जाती है लेकिन जब आरक्षण का सवाल होता है तो देश में हाहाकार मच जाता है। और वहीं दूर–दराज के गांवों से आए बच्चे पढ़ाई लिखाई तो करते हैं लेकिन जब उसी गांव के लोगों को डाक्टरों और इंजीनियरों की जरूरत पड़ती है तो वो डाक्टर और इंजीनियर विदेश चले जाते हैं। हमारे शिक्षा तंत्र में सरकार की अपेक्षा निजी लोगों का प्रभुत्व अधिक हो गया है और सरकारी शिक्षा तंत्र पूरी तरह से पंगु हो गया है। हमारे उत्तराखण्ड के लोगों के पास पूंजी की कमी होने के कारण हम अपने बच्चों को

प्राइवेट स्कूल में नहीं पढ़ा सकते हैं हमारे बच्चे डी.पी.एस., माड्रन स्कूलों आदि में नहीं पढ़ सकते हैं लेकिन उन बच्चों के लिए अनाज तो हमारे खेतों से ही आता है, यदि हम उन बच्चों को अन्न देने से मना कर दें क्या वे डाक्टर या इंजीनियर बन सकते हैं? क्या उस किसान के बच्चे को शिक्षा का अधिकार नहीं है ? इस प्रकार हमारे देश में शिक्षा की कैसी दशा है यह आप सबके सामने ही मौजूद है।

तीसरा हमारे यहां रोजगार की समस्या है, मेरा सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य मुझे कई छोटे–बड़े देश देखने का मौका मिला। उन्हें देखने के बाद मुझे बहुत ही हैरानी हुई। जहां हमारा देश इतना बड़ा है यहां पर कई संसाधन हैं और मानवीय श्रम की तो कमी ही नहीं है वहां हम रोजगार, पैसे, रोजगार और खेती की कमी के कारण कीड़े–मकोड़ों की तरह रह रहे हैं और जहां जिन छोटे देशों में तापमान –35 डिग्री रहता है वहां तीन–तीन फसलें पैदा होती हैं। जहां जिंदा रहने तक की परिस्थितियां नहीं हैं जहां काम करने वाले आदमियों का मिलना इतना कठिन है वो देश हमसे इतने आगे निकल जाते हैं।

इस प्रकार हमारे देश में इतनी बड़ी श्रम शक्ति के होते हुए भी हम प्रबंधन की कमी के कारण कुछ भी काम नहीं कर पा रहे हैं और लगभग हर क्षेत्र में पिछड़ते जा रहे हैं इसके पीछे हमारे समाज में व्याप्त जातिगत असमानता और राजनीतिक कारण भी बहुत अधिक जिम्मेदार है। पूरे देश के संसाधनों पर अधिकतर में बहुसंख्यकों का अधिकार है। जाति के आधार पर समाज टुकड़ों में बंटा हुआ है।

मुझे लगता है कि संस्कृति के नाम पर भी हमारे पास कुछ नहीं है, हम केवल बुरा ही देखते रहते हैं। यदि हम अपनी संस्कृति के इतिहास में जाकर देखें तो आपको पता चलेगा कि हमारे सवर्ण समाज के लोग पहले से ही खेती करने और मेहनत करने को पाप मानते थे। हमारे देश, दुनिया और हमारे शहरों में जो ओद्यौगीकरण हुआ जो पूंजीवाद आया उसमें निम्न वर्ग और जाति के लोगों का ही अधिक योगदान रहा। लेकिन वहीं जब सत्ता की बात आती है तो उस समय हमें सवर्ण जाति के लोग ऊंची–ऊंची कुर्सियों पर बैठे दिखाई देते हैं। गरीब और पिछड़ा वर्ग केवल उत्पादन के कामों में ही लगा रहता है लेकिन उत्पादन के साधनों पर उसका कब्जा नहीं है।

आप निठारी कांड को ही देख लीजिए उस अत्याचार में भी सत्ता में बैठे लोगों, आई.पी.एस., और बड़े–बड़े उद्योगपतियों ने गरीबों, पिछड़ों पर अत्याचार किया, इस घटना के तार न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी फैले हुए होंगे। इस प्रकार इन लोगों ने हमारी माता, बहनों और बेटियों को बेचने तक का इंतजाम कर रखा है। अत्याचार की इस कड़ी में एक नया नाम विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) का भी जुड़ गया है। इसके माध्यम से भी हम अपने ही देश को लूटने की खुली छूट दे रहे हैं। क्योंकि

उन क्षेत्रों में न तो लेबर लॉ लागू होंगे और न ही उन लोगों को हमें टैक्स देना है। इससे भी हमारे देश के गरीब और अल्पसंख्यों का ही अधिक नुकसान होगा।

संचालकः— अब मुकश वर्मा जी अपनी बात कहेंगे।

मुकेश वर्माः— आज की सभा के अध्यक्ष विजय प्रताप जी, सुनील भाई और बहुगुणा जी और सभी साथियों, अपनी बात शुरु करने से पहले मैं आपको एक बात कहना चाहता हूं —

"हम लड़े हैं इसलिए कि प्यार जग में जी सके!
आदमी का खून कोई आदमी न पी सके!!"

साथियो मुझसे पहले वक्ताओं ने बहुत कुछ कहा है। तो मैं दो—एक बातें संक्षेप में कहना चाहता हूं यदि हम अपने प्रदेश और समाज में समता कायम करना चाहते हैं तो हमें तो जिस तरह से आर.एस.एस. वाले, शिशु मंदिर वाले अपने विद्यालयों में इस तरह के पाठ्यक्रम रखते हैं जिससे उनके यहां पढ़ने वाले बच्चों को उनकी नीतियों के बारे में उनके बारे में पता चल जाता है उसी तरह हमें भी ऐसी शिक्षा नीति बनानी चाहिए कि हम अपने स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को समता का पाठ पढ़ा सकें।

मुझे लगता है कि ये तो तय ही है कि जब तक हम सवर्णों को अपने साथ नहीं जोड़ेगे तक तक दलितों का उद्धार नहीं हो सकता। यदि हम समाज में समता कायम करना चाहते हैं तो हमें समाज को बांटने की अपेक्षा समाज को एक करने का प्रयास करना होगा। धन्यवाद!

नागेन्द्र भाई (वक्ता) :— साथियों मैं चूंकि औपचारिकता न करते हुए सीधे अपने बात पर आता हूं। यहां मौजूद वक्ताओं ने मुख्य रूप से समता अभियान, जन घोषणा पत्र के संबध में जो जातिगत घटनाएं, उत्पीड़न और अत्याचार हुए उनके बारे में तमाम तरह की बात की। इसी तरह सवन सिंह भाई ने सामाजिक चेतना करने की बात की जो कि प्रत्येक आदमी के मन में है और जिस दिन उसने इसे पहचान लिया उस दिन उसकी समस्या ही खत्म हो जाएगी। लेकिन मैं इतना कहना चाहूंगा कि हमें दलित के भावों और उसकी मानसिकता को पहचानना चाहिए।

मैंने लोगों से बात कर और कुछ देखकर जो कुछ सीखा उसमें यह है कि दलित भी एक आदमी है और समाज का प्राणी है, इसके अलावा जो समानता का व्यवहार करता हो, समानता का दृष्टिकोण रखता हो और असमानता का विरोध करता

हो वो दलित है। लेकिन यदि हम सम्पूर्ण मानव जाति को देखें तो कौन सा ऐसा प्राणी होगा जो कि अपने अधिकारों के लिए लड़ाई नहीं लड़ता है फिर चाहे वो सवर्ण हो या असवर्ण। इसमें लड़के और लड़की के बीच होने वाली असमानता भी शामिल है। तो फिर केवल दलित के साथ ही असमानता होती है ऐसी बात नहीं है बस ये है कि उनके साथ होने वाली असमानता में वातावरण, अध्यात्म और चिंतन की बातें शामिल हो जाती हैं। कुछ बातें ऐसी जरूर हैं जिसका विरोध किया जाना चाहिए जैसे खाना–पान में छुआछूत अपनाना, मंदिर में प्रेवश न करने देना तो ये सामाजिक मान्यताएं हैं और जो व्यक्ति इन सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ लड़ता है उसे ही दलित कहते हैं।

इस प्रकार दलित के साथ होने वाले असमानता के व्यवहार की जड़ में हमारे अपने भीतर के भाव हैं जो एक दूसरे के साथ असमानता का व्यवहार करता है जिस दिन हमने उस भावना को त्याग दिया उसी दिन से समता अभियान की राह बहुत ही आसान हो जाएगी यदि मंच पर बैठे सभी लोगों ने और आम साधारण नागरिक के मन में भी इस असमानता की भावना से दूरी करनी शुरू कर दी तो उसी दिन से हमारा समाज एक साफ–सुथरा समाज हो जाएगा।

हम अपने उत्तराखण्ड को देव भूमि के नाम से जानते हैं लेकिन यहां मनुष्यों के साथ होने वाली असमानता हमारे लिए एक कलंक की तरह है क्या किसी देव नागरिक को ऐसा करना शोभा देता है। इस प्रकार हमें सबसे पहले अपने भीतर बैठे दलित को बाहर निकालना होगा। यहां कई नौजवान भाई मौजूद हैं और वो दलित और गैर दलित का अंतर समझने के साथ दलितों के साथ होने वाले अत्याचार के बारे में जानते हैं तो उन्हें खुद अपने से ही समाज में सुधार लाना होगा। मुझे लगता है कि यदि हमारी नौजवान पीढ़ी फिर चाहे वो किसी भी जाति से क्यों न हो, अपने मन में बैठे दलित और गैर दलित के भेद को मिटा दें तो हमारे समाज से यह समस्या अपने आप की दूर हो जाएगी।

यदि हम इस समता आंदोलन को मजबूत करना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें एक कैडर का निमार्ण करना होगा। समता अभियान की पहली बैठक मातली में हुई थी और आज उसी का परिणाम है कि यहां आज दूसरी बैठक हो रही है। धीरे–धीरे आगे चलकर इसी तरह की बैठकें और होती रहेंगी लेकिन इसमें मुख्य बात कैडर की है जब तक कैडर स्थापित नहीं होगा तब तक इस कार्यक्रम को सही ढंग से नहीं चलाया जा सकता। क्योंकि मुझे लगता है कि हम सभी लोग संवेदन शून्य हो गए हैं नहीं तो आजादी के इतने सालों बाद भी हमारे देश में दलितों के साथ असमानता और अत्याचार का व्यवहार क्यों किया जाता? माना कि इस समस्या को हल करने में बैठकें हमारी काफी मदद कर सकती हैं लेकिन केवल बैठकों से ही कुछ होने वाला नहीं है

इसके लिए तो फील्ड में जाना ही होगा। आपको दलित भाई के पास जाने की जरूरत है जो कि बहुत कुचला और दबा हुआ है। जब तक आप उस आदमी के पास जाकर उसे और उसकी समस्या को नहीं समझते तब तक केवल होटलों में बैठकर बैठकें करने से कुछ होने वाला नहीं है।

हमें आजाद हुए कई साल हो गए हैं लेकिन उसके बाद भी आज हमारे गांवों में दलितों के पास अपने मकान नहीं हैं, खेत नहीं हैं, वो दवाईयों की कमी के कारण बीमारी से मर रहे हैं। कुछ लोग उनके लिए काम करने के लिए आगे आ रहे हैं लेकिन वो भी उनका भला करने की बजाय खुद अपना भला करने में ही लगे हुए हैं।

मुझे तो लगता है कि कैडर बनाए बिना यह समस्या,समस्या ही रहने वाली है। अब जैसे मैं आपके पास उत्तरकाशी जनपद का उदाहरण देता हूं। वहां पर 91 गांव हैं जिसमें से 50 प्रतिशत से अधिक दलित लोग रहते हैं। मैं कहता हूं कि प्रत्येक गांव में पांच या दस लोगों का चाहे वो सवर्ण ही क्यों न हों जो एक कैडर बनाएं और चाहे वो उसमें समता की बात करें, दलितों पर हो रहे अत्याचारों की बात करें या उनमें मंदिरों में प्रवेश करने से रोकने की समस्या के बारे में बात करें और अपनी बातों को वे देहरादून से विजय प्रताप जी से फोन पर बात कर सकें, अतुल शर्मा, सुरेश भाई, मुकेश वर्मा को बोल सकें ताकि बैठकों आदि में होने वाली सभी बातों या सूचनाओं को आपस में बांटा जा सके। हमारा एक ग्रुप देहरादून में बैठेगा इसके अलावा हम ग्राम स्तर, ब्लाक स्तर और जिला स्तर और राज्य स्तर पर होने वाली बैठकों की बातों और जानकारियों को राष्ट्रीय स्तर पर ले जा सकते हैं और वहां पर बात कर सकते हैं।

मैं, अपने दिल की बात कहता हूं कि हम लोगों ने दलितों पर बहुत अत्याचार किए हैं और अब भी करते आए हैं और मैं इस बात से बहुत ही दुखी हूं आखिर हम कब तक ऐसा करते रहेंगे। मैं तो ये कहना चाहता हूं कि यदि आप एक शांत सांप को एक बार छेड़ेंगे तो शायद वो कुछ न करे और दूसरी बार छेड़ने पर भी कुछ न करे लेकिन कभी न कभी तो वो भी अपना विरोध जताएगा ही और आपको नुकसान पहुंचाएगा। इसलिए हो सकता है इतने अत्याचार और अपमान को सहते—सहते दलित भी समाज से बदला लेने का मन बना लें तो हमें ऐसी स्थिति से बचने और ऐसी स्थिति पैदा न करने के बारे में विचार करना होगा। हो सकता है मेरी कही बातें आप लोगों को बुरी लगें तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं लेकिन मैं तो सीधी और सच्ची बात कहने में यकीन करता और सच्चाई भी तो यही है।

धन्यवाद!

संचालक :– आज निश्चित रूप से लगभग सब चीजों पर बात हुई। इसमें बहुत सारी सार्थक बातें भी सामने आई, कई लोगों ने अपनी पीड़ाएं व्यक्त की और दूसरे लोगों की पीड़ा समझने की भी कोशिश की।

वक्ता (अध्यक्ष) :– दरअसल बहुत सीधी सी बात तो ये है मुझे अध्यक्ष बनने की आदत नहीं है। क्योंकि मैं समाज में एक सिपाही के रूप में ही रहना चाहता हूं। शुरू में सुरेश भाई ने अपनी बात रखी और मुझे महसूस हुआ कि सीधे उस जगह जाया जाए जहां तकलीफ है और फिर उसका इलाज ढूंडा जाएं क्योंकि जहां प्रश्न हैं हल भी वहीं से मिलेंगे। पवन भाई ने भी साफगोई से यही बात की, जिससे कि मैं पूरी तरह से सहमत हूं। यहां जितनी भी बातें हुई हैं उन सभी के बारे में बोलने की स्थिति में नहीं हूं। लेकिन जितनी भी बातें हुई हैं मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा, जाना है और अपने भीतर समाने की कोशिश की है।

मैं एक संस्कृति कर्मी हूं, मेरा काम संस्कृति कर्म करना है। मुझे आज भी लगता है भाषणों से ज्यादा संस्कृति कर्म असर डालता है आज अगर हम इस बात को लेकर संस्कृति कर्म करते हुए इस लड़ाई को लड़ते हैं इसे आगे बढ़ाते हैं तो निश्चित रूप से लोगों में चेतना जागृत होगी। और जिन्होंने इसे झकझोड़ने की बात कही है वो झकझोड़ने की संवेदना तक हम पहुंच पाएंगे। जितनी बातें हुई हैं उसमें दो बातें मुझे समझ आती हैं कि प्रकृति ने हमें दो चीजें दीं जो सबसे महत्वपूर्ण चीज थी। पहली चीज है आग, उस आग के माध्यम से मिली भाषा, भाषा से मिले संवाद और तब जाकर इंसान, इंसान बना। इसलिए हमें अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए आग में भाषा और भाषा में आग मिलानी होगी वरना गोष्ठियों से कुछ नहीं होने वाला है। हां ये सच है कि गोष्ठियों से खास कुछ नहीं होता है लेकिन मंथन तो हो जाता है और यदि हम इस मंथन के बाद संस्कृति कर्मी की तरह उन लोगों के पास पहुंच जाएं तो कुछ बात बने।

हम ये भी जानते हैं कि कई लोग इस आग के साथ जी रहे हैं और जो लोग इस पूरे मसले को लेकर सहयोग करना चाहते हैं वो सहयोग कर सकते हैं। क्योंकि बार–बार मैं एक ही बात कहता आया हूं कि हम लोग कोई कलाकार नहीं हैं। हम लोग कार्यकर्ता है, हम आंदोलनकारी हैं। हम लोग वहां से सीखते हैं जिसको कि नक्शों में छोड़ दिया गया है और हम वंचित लागों से भी सीखते हैं। वंचित लोग हमारे गुरु हैं और हमें लगता है कि आज एक सांस्कृतिक क्रांति की बहुत सख्त जरूरत है। सांस्कृतिक क्रांति की उस जरूरत में वो सारे सवाल आ जाते हैं जो कि हमें बुनियादी जरूरतों को पूरी करने के लिए सक्षम बनाते हैं। अपनी जरूरतें पूरी करना ही नहीं बल्कि इंसान को इंसान बने रहने के लिए भी बहुत सारी बुनियादी चीजों की जरूरत

पड़ती है लेकिन हम लोग उन सभी चीजों से वंचित हो चुके हैं। उसके लिए भी एक पूरी की पूरी लड़ाई सामने खड़ी है। उसके लिए आप सब लोग काम भी कर रहे हैं लेकिन मुख्य बात वही है जो सुरेश भाई ने कही, पवन जी ने भी कही और जिनके माध्यम से हम लोग यहां पर इकट्ठा हुए हैं। लेकिन इस लड़ाई को बहुत ही दृढ़ता से आगे भी बढ़ाना है।

अचानक मुझे एक कहानी याद आ गई बहुत संक्षिप्त और बहुत ही अच्छी बात है इसलिए मैं सुनाना चाहता हूं। एक बार एक गांव में प्रधान जी का मकान बन रहा था मकान पुस्सुम मिस्त्री बना रहा था। वो पुस्सुम मिस्त्री अपनी पूरी ताकत के अनुसार बहुत अच्छा मकान बनाता है। वह मकान की रसोई भी बहुत ही अच्छी जगह बनाता है। इस तरह उसने प्रधान जी के आराम के हिसाब से उनका मकान तैयार कर उन्हें दे दिया लेकिन एक दिन उसे उसका मित्र मिला और उसने जिद की कि वो उसे उसके हाथों से बना मकान दिखाए अब पुस्सुम मिस्त्री प्रधान जी के घर पहुंचा लेकिन प्रधान ने उसे घर के भीतर घुसने से मना कर दिया लेकिन जब मिस्त्री ने कहा कि मकान भी तो मैंने ही बनाया है और इस मकान का पूजाघर और रसोई भी मैंने ही बनाई है फिर आप मुझे अंदर आने की इजाजत क्यों नहीं देते। इसपर प्रधान जी ने कहा कि ठीक है कि मकान तुमने ही बनाया है लेकिन अब इस मकान की पूजा करके शुद्धीकरण हो गया है और अब तुम मेरे घर और रसोई में प्रवेश नहीं कर सकते। ये सुनकर मिस्त्री अपने घर लौट गया लेकिन असली कहानी उसके बाद शुरू होती है जब एक दिन बहुत अधिक बरसात में प्रधान जी का घर चूने लगता है और उन्हें अपने घर की मरम्मत करने के लिए मिस्त्री को बुलाने जाना पड़ता है लेकिन इस बार प्रधान जी मिस्त्री को बुलाने के लिए दिन की बजाय रात के अंधेरे में जाते हैं ताकि किसी को ये पता न चले कि प्रधान जी मिस्त्री के घर गए और फिर वो मिस्त्री जो कि एक नीची जाति का है वो प्रधान जी के घर में घुसा। लेकिन मिस्त्री ने भी अपने अपमान को याद रखा हुआ था उसने प्रधान जी को कहा कि क्या आज आपके मकान की शुद्धी नहीं हुई है जो आप मुझे बुलाने आ गए और यदि आप मुझसे काम कराने भी चाहते हैं तो ठीक है मैं आपका काम कर दूंगा लेकिन उसके लिए आपको रात के अंधेरे की बजाय दिन के उजाले में आना होगा लेकिन प्रधान के अहम ने उसे ऐसा नहीं करने दिया अब कुछ दिन तक तो वह टपकते हुए घर में ही रहा लेकिन आखिर में हारकार उसे मिस्त्री के घर दिन के उजाले में ही जाना पड़ा तो इस प्रकार से परिवर्तन की कहानी शुरू हाती है। जिस गांव की ये घटना है उस गांव में हमने इसको नाटक बनाकर प्रस्तुत किया। उसमें वहीं के लोगों ने भाग लिया और उसका मुख्य अतिथि पुस्सुम मिस्त्री था, उसने वहां पर और जत्थे बनाए और वो गांव–गावं में इस कहानी को दिखाने के लिए निकल गया इससे बहुत सारे सवाल और उत्तर आए और अंत में एक

ही बात निकली कि हम सभी इंसान है फिर चाहे वो किसी भी जाति का क्यों न हों। मेरा इस कहानी को सुनाने का उद्देश्य सिर्फ इतना था कि मेरे अलावा आप लोगों ने भी जितनी भी कहानियां सुनाईं उन्हें लेकर जनता के बीच में जाकर लोगों के बीच जन चेतना जगा सकते हैं और हम लोग सांस्कृतिक स्तर पर आगे बढ़ सकते हैं। अब मैं आपको कुछ पंक्तियां सुनाना चाहता हूं।

उन्हें पता है महाजन के हाथ काले हैं।
उन्हें पता है महाजन के हाथ काले हैं।
गरीब छप्परों के छिन गए निवाले हैं।
दवा सस्ता है लहू हरिजनों के गांव में।
जातियां खून तौलती हैं थोक भावों में।
महानगर में रहें या कि रहें गांवों में।
हमने देखा है लोग जी रहे तनावों में।
हमने देखी हैं किराये की जुलूसों की फसल।
घुमावदार शियासत का एक ताजमहल।
बंधी है रोटियों पे टोपियां सभाओं में।
मनुष्य हार गया है सभी चुनावों में।

हम सबको मिलकर उस स्थान पर पहुंचना होगा जहां पर ये असमातना और अत्याचार की बीमारी मौजूद है क्योंकि इस बीमारी के पास पहुंचकर और इसे जान समझकर ही इस बीमारी का इलाज किया जा सकता है। निश्चित रूप से मंथम गोष्ठियों का असर होता है और इस गोष्ठी का असर भी निश्चित रूप से हुआ। लेकिन यदि हम लोग वास्तविकता के धरातल पर समानता कायम करने और दलितों पर होने वाले अत्याचारों को मिटाने के लिए निकल पड़ें तो इस समस्या का समाधान जल्द ही हो जाएगा। धन्यवाद!

संचालक (मुकेश): दोस्तो भोजन के बाद के इस सत्र में हम जन घोषणा की प्रक्रिया पर बात करेंगे। और उस घोषणा पत्र की प्रक्रिया के बारे में, उसके परिचय के बारे में बताने के लिए मैं विजय जी से आग्रह करूंगा कि वो आप सभी लोगों को जानकारी दें।

विजय प्रताप जी :– जन घोषणा पत्र की ये प्रक्रिया कई स्तरों पर चल रही है आज हमारे पास काफी हद तक मिलते–जुलते दो बुनियादी अर्थों वाले घोषणा पत्र का मसौदा मौजूद है। और उन दोनों में जो साझी बातें हैं उन्हें एक जगह करके और जो

असहमति के बिंदु हैं उन पर बातचीत करके इनको एक दस्तावेज का रूप देना होगा। इस सत्र में हम लोग एक पृष्ठभूमि के तौर पर उनमें मुख्य बातों को बताएंगे लेकिन उनपर अभी चर्चा करने की बजाय यदि आप लोग अपने सुझावों को लिखकर दे दें तो एक साझा दस्तावेज बन जाएगा।

अभी सुबह के सत्र में जो बातें हुई जिसमें जन संपर्क, लोक संवाद की गोष्ठियां और प्रभात फेरी की यात्रा आदि करने के सुझाव दिए गए। इसके अलावा अक्टूबर में संवाद से सत्याग्रह का भी सुझाव आया और उसकी तैयारी के लिए अभी पर्याप्त समय है। इसलिए हम चाहेंगे कि इस काम को आगे बढ़ाने के लिए हमें क्या–क्या काम और कैसे करने पड़ेंगे इस बारे में बात करेंगे। जहां तक जन घोषणा पत्र के पीछे की दृष्टि है उसके बारे में मैं चंद शब्दों में अपनी बात कहूंगा। जो भी जन घोषणा पत्र बनते हैं वो अलग–अलग तरह के नजरियों से बनते हैं और हमारे साथ भी सभी नजरियों के लोग मौजूद हैं इसलिए हम चाहते हैं कि इन विचारों की खिचड़ी न बनें और हमारे पास सभी तरह के सुझाव भी उपलब्ध हो जाएं।

वक्ता :– मैं जरसिंह जी की पत्नी हूं और मैंने उनके साथ रहकर समता अभियान के काफी सारे कामों में सहयोग किया और मैं चाहती हूं कि समता से जुडे कामों में आगे भी सहयोग करती रहूं। मैं चाहती हूं कि इस काम में हम अपने साथ सभी महिलाओं को लेकर भी चलें ताकि एक दिन ऐसा आए कि जब हमारे देश में जाति–पाति का भेदभाव खत्म हो जाए और समानता स्थापित हो जाए।

मेरा विवाह जौनसार में हुआ है। हम लोग छुआछूत या जातिगत भेदभाव की सभी बातों से बाहर रहे इसलिए उत्तराखण्ड में हमारी जाति वालों के साथ कैसा व्यवहार होता है हमें इसके बारे में अधिक नहीं पता है लेकिन हम अपने माता–पिता से सुनते आए कि उन्हें असमानता का सामना करना पड़ा और अब भी करते रहना पड़ रहा है जिसे सुनकर बहुत ही दुख होता है। इसलिए मैं समाज में व्याप्त इस असमानता को दूर करने के लिए हमेशा ही समता आंदोलन से जुड़े रहना चाहती हूं।

अन्य वक्ता :– मित्रो 1936 के आसपास पहाड़ों में डोला–पालकी के नाम से एक आंदोलन हुआ था उस आंदोलन का नेतृत्व जयानन्द भारती जी ने किया था। मैं ये बात इसलिए कह रहा हूं कि मुझे नहीं लगता कि उनके अलावा पहाड़ में ऐसा कोई भी आदमी हुआ हो जिसने दलितों के परिप्रेक्ष्य में इतना काम किया हो।

अगर दुनिया को देखें तो लगभग हर समाज में अलग–अलग तरीके से शोषण होते रहे और आज भी हो रहे हैं लेकिन एक बात है कि जब भी इस तरह के हमले होते रहे हैं तभी उनका विरोध भी होता रहा है और ये हमले जितने तेज हुए हैं उतनी

ही तेज उनका विरोध भी हुआ है और यह बात आज के परिप्रेक्ष्य में भी सच है। लेकिन दुर्भाग्य से पहाड़ में इस तरह का कोई प्रभावशाली दलित आंदोलन अभी तक नहीं हुआ है। आज भी पहाड़ का कोई दलित यदि पहाड़ में होता है तो वो अपने–आपाको सावन दास कहता है लेकिन वही सावन यदि मैदानी इलाकों में या उसके पास आ जाए तो सावन सिंह हो जाता है आखिर इसका कारण क्या है, इसका कारण है उनके अंदर दलित होने की हीन भावना और दलित होने के कारण होने वाली असमानता की भावना से पीछा छुड़ाना। लेकिन ऐसा करने से तो परिस्थितियां अपने–आप नहीं बदल सकती। मैं उन लोगों से माफी चाहूंगा जिन्हें कि इस बात का पुख्ता विश्वास है कि क्योंकि ये परिस्थितियां सवर्णों ने पैदा कर रखी हैं इसलिए इन्हें दूर करने के लिए भी उन्हे ही आगे आना होगा या नेतृत्व करना होगा, लेकिन मैं इस बात में कतई विश्वास नहीं करता हूं। मेरा तो ये कहना है कि यदि मेरे पेट में दर्द हो रहा हो तो उसे दूर करने के लिए मुझे ही गोली खानी होगी, किसी और के गोली खाने से मेरा पेट दर्द ठीक नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि दलित आंदोलन को किसी मुकाम पर पहुंचाना है तो और उसके लिए सबसे पहले स्वंय दलितों को आगे आना होगा। मैंने शुरू में डोला–पालकी का उदाहरण इसलिए दिया कि आज भी डोला–पालकी की तरह ही हमारे समाज में ऐसे कई अवसरों पर दलितों के साथ अपमान किया जाता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस समस्या से निपटने के लिए इसे एक राजनैतिक आंदोलन का रूप देना होगा। माना कि हम जो विचार–गोष्ठी कर रहे हैं उससे एक रास्ता जरूर तय होगा और कम से कम इस तरह के कामों से एक शुरूआत तो हुई है क्योंकि इससे पहले हम लोग एक साथ बैठकर बात करने में भी डरते थे और इस तरह के संवादों से बचते थे लेकिन अब कम से कम इस काम की शुरूआत तो हुई है और अब हम उस संवाद से थोड़ा सा आगे पहुंच चुके हैं। लेकिन हमें इस आंदोलन को एक राजनीतिक लड़ाई के रूप में तब्दील करना होगा। क्योंकि आज भी जमीन के प्रश्न या मूल प्रश्नों को राजनैतिक पार्टियां अपने एजेंडे में शामिल नहीं करती हैं। लेकिन यदि हमें वास्तव में इस मुद्दे को आगे बढ़ाना है और अपने प्रदेश और देश में समता कायम करनी है तो हमें एक लड़ाई लड़नी होगी और उस लड़ाई में लोगों की खासकर दलित लोगों की भूमिका भी सुनिश्चित करनी होगी। धन्यवाद !

सोहन भाई :– समतामूलक अभियान की इस संगोष्ठी के प्रेरणास्त्रोत विजय प्रताप, आज की अध्यक्षता कर रहे बड़े भाई डा. अतुल शर्मा जी, मुख्य संचालन की जिम्मेवारी निभा रहे सुरेश भाई, इस बातचीत को आगे बढ़ा रहे हमारे बड़े भाई मुकेश बहुगुणा जी और सम्मानित अनुभवी तरुण युवा और बुजुर्ग साथियो मुझे लगता है कि समता आंदोलन की जो शुरुआत मातली से हुई थी उसमें एक बहुत अच्छी घटना यह घटी

थी कि इसमें संवाद के लिए एक मन बनाया था कि हम एक मंच पर इस संवेदनशील विषय पर बातचीत करने को तैयार हैं। ऐसे लगभग सत्तर–अस्सी नौजवान, बुजुर्ग और सभी पृष्ठभूमियों से आए साथियों ने मिलकर तीन दिन की संगोष्ठी चलायी थी। मुझे पहली बार इस तरह की संवाद प्रक्रिया में भाग लेने का मौका मिला। और मैंने पिछले पैंतीस सालों में इस तरह का संवाद न तो कभी गांवों में देखा और न ही स्कूल–कॉलेजों में ही देखा। इस तरह के कार्यक्रम में पहली बार भाग लेकर मुझे यह महसूस हुआ कि संवाद किसी भी समाज को जीवंत रखता है इसीलिए इसकी सार्थकता है।

मुझे लगता है कि संवाद किसी भी समाज में चाहे वो भारतीय समाज हो या विश्व का कोई भी समाज हो सभी के लिए संवाद बहुत जरूरी है। दुनिया का कोई भी मुल्क तरक्की करे या फिर पतन करे लेकिन दोनों ही जगह संवाद से ही बात आगे बढ़ती है। संवाद करने से भिन्न–भिन्न देश के लोगों की मानसिकता उनके ज्ञान–विज्ञान और उनके देश की समस्याओं को जानने में मदद मिलती है। उससे यह पता चलता है कि किसी खास समस्या पर हम लोग कैसे सोचते हैं और अन्य लोग कैसे सोचते हैं। इसलिए संवाद किसी भी गांव और देश की नितान्त आवश्यकता है। आज हमारे स्कूल कॉलेज संवाद शून्य हो गए हैं इसीलिए हमें संवाद की और अधिक आवश्यकता महसूस होती है।

दूसरा जो सवाल है वो गोपाल का सवाल है कि अगर हम इतिहास, वर्तमान और भविष्य को देखें तो मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसकी कई पीढ़ियां एक साथ रहती हैं जिससे उसका वर्तमान भी दिखता है और भविष्य भी। तो कोई भी समाज किसी काल में तीन स्थितियों में रहता है।

जहां तक संवाद की बात है यदि हम इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो हम देखते हैं कि हम कई बार बैठकें आदि तो करते हैं लेकिन उन बैठकों में हम यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि हम दूसरे से अधिक विद्वान हैं और कई बार तो हम केवल अपनी बारी का इंतजार करते हैं और बारी आने पर जो कुछ हमने लिखा या सुना होता है या हम जिस चीज की तैयारी करके आते हैं उसे सुनाकर बस अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं।

यहां पहली बार समता अभियान के माध्यम से जाति जैसा गंभीर मुद्दा लिया गया। मुझे लगता है कि राज्य, समाज और व्यक्ति के आपसी रिशतों को समझे बिना जाति और दलित के मुद्दे पर न तो सोचा जा सकता है और न ही किसी नतीजे पर पहुंचा जा सकता है। मुझे लगता है कि आदमी जिस परिवेश वातावरण और समाज में रहता है उस समाज की अपनी शर्तें होती हैं और वही सम्मान और अपमान के सवाल का समाधान होता है। हमारे कुछ मित्र नवब्राह्मणवाद की बात कर रहे हैं लेकिन वो

जिस स्थिति की बात कर रहे हैं वो आधुनिक स्थिति है और जो हमारे समाज में वर्षों से चला आ रहा है उसे इस तरह एकदम से एक ही झटके में खत्म नहीं किया जा सकता है। ये सब धीरे–धीरे ही खत्म होगा।

अभी कुछ साथियों ने कहा कि हमें कभी कांग्रेस वालों ने ठगा है और कभी बीएपी वालों ने और कभी कांग्रेस ठग रही है। और मुझे भी लगता है कि ये सब ठीक ही कह रहे हैं क्योंकि हमारे समाज में अविश्वसनीयता की स्थिति होने के कारण ही ऐसा हो रहा है। देश और राज्य के नागरिक को रोजगार, स्वाभिमान से रहने के जो अधिकार आदि मिलने चाहिए सरकार वो भी नहीं दे पा रही है जिससे समाज का विकास नहीं हो पा रहा है और उसमें असमानता और विषमता की स्थिति पैदा हो रही है और वो कई वर्षों से जैसी की तैसी बनी हुई है और ये असमानता तो हमारी मानसिकता में तक घर कर गई है। मुझे लगता है कि ये संवेदना का सवाल है, ये मानवीय मूल्यों का सवाल है जिसे संवाद और निरन्तर संवाद के माध्यम से ही कम करने या मिटाने का प्रयास किया जा सकता है। इस प्रकार जिस तरह समता अभियान के माध्यम से समाज में समता कायम करने का प्रयास किया गया यदि इस तरह के प्रयास निरन्तर गति से किए जाते रहे तो निश्चित रूप से समाज को झकझोड़ा जा सकता है और समाज में बदलाव लाने की पुरजोर कोशिश की जा सकती है। धन्यवाद!

मुकेश (संचालक) :– धन्यवाद सोहन भाई अब आने वाले वक्ताओं से मेरा आग्रह रहेगा कि अपनी बात को रखेंगे लेकिन अभी तक जिन भी वक्ताओं ने अपनी बात रखी है यदि कोई उस संदर्भ में अपने सुझाव देना चाहते हैं तो वो भी अवश्य दें। अब मैं जयपाल रावत जी से कहूंगा कि वो अपनी बात रखें।

जयपाल रावत :– सर्वप्रथम मेरा आप सभी को प्रणाम। परम सम्मानित आज के अध्यक्ष जी और यहां पर तमाम बुद्धिजीवी वर्ग के लोग यहां पर मौजूद कुछ लोगों का कहना है कि आज हमारे देश में जातिगत असमानता उस रूप में नहीं है जिस रूप में वो पहले हुआ करती थी और कुछ लोग इसे इतनी बड़ी बात नहीं मानते हैं लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं कि जिस तरह जोहर की गति जोहरी ही जानता है उसी तरह दलित के साथ होने वाला अत्याचार और उसकी पीड़ा को वो ही जान सकता है।

जहां तक जाति की बात है संत महात्मा भी कहते हैं कि हम सब मनुष्य एक ही ज्योति से बने हैं फिर चाहे वो नर हो या नारी। शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि की रचना एक ही प्रभु ने की है। लेकिन उसके बाद भी हम अपने अंधविश्वास और

रूढ़ीवादी भावनाओं के कारण जातिगत भेदभाव करते रहते हैं। खासकर पहाड़ और ग्रामों की जो स्थिति है वो बहुत ही खराब है।

मैं एक ग्रामीण इलाके में रहने वाला हूं और यहां पर तरुण पर्यावरण संस्था की ओर से आपके बीच उपस्थित हुआ हूं। मुझे समाज सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कहते हैं कि हिन्दुस्तान के अंदर एक अरब से अधिक लोग रह रहे हैं और इन लोगों की सेवा करने के लिए लगभग एक करोड़ लोग लगे हुए हैं। आपने समाज सेवा में लगे कई लोगों के नाम यहां पर गिनाए। आखिर हमारे समाज में इतने अधिक समाजसेवकों की आवश्यकता क्यों पड़ी? मुझे लगता है कि शायद ऐसा इसलिए हो रहा है कि आज मनुष्यों को अपने नैतिक मूल्यों की परख नहीं रह गई है। पहले मनुष्य का मूल लक्ष्य होता था मानवता को जानना लेकिन आज इंसान इस मानवता से विमुख होता जा रहा है और ये विमुखता न केवल हिन्दुस्तान बल्कि पूरे विश्व का ही नक्शा बदलती जा रही है।

मैं कोई बहुत अच्छा वक्ता नहीं हूं और न ही मुझे इस बात की ज्यादा जानकारी है लेकिन यदि मैं अंधविश्वास की भावना की ही बात करूं तो यदि हम लोगों में से किसी उच्च जाति के व्यक्ति की सड़क में दुर्घटना हो जाए और जब उसे खून चढ़ाया जाता है तो क्या उस समय वो यह प्रश्न करेगा कि यह खून ब्राह्मण का है या किसी दलित व्यक्ति का ? इसका स्पष्ट सा जवाब है नहीं !क्योंकि उस समय उसे अपनी जान बचानी है और खून का तो रंग लाल ही होता है फिर वो चाहे किसी ब्राह्मण का हो या फिर किसी दलित का। तो इस प्रकार जातिगत भेदभाव की बात केवल कोरा अंधविश्वास और रूढ़िवादी भावनाएं ही हैं।

मुझे लगता है कि समाज में समता कायम करने के लिए जो आरक्षण की नीति बनाई गई है उसका आधार जाति के बदले आर्थिक स्थिति होना चाहिए। और यहां तक कि जाति का नाम भी नहीं आना चाहिए। क्योंकि अभी भी हमारे समाज में खासकर पहाड़ समाज जहां से मैं आता हूं जाति के आधार पर भेदभाव होता ही है। क्योंकि भले ही हम कहते हों कि हम जातिव्यवस्था को नहीं मानते लेकिन जैसे ही हम वास्तविक समाज में या गांवों में जाते हैं तो ये भावना हमारे अंदर आ ही जाती है। मैं अपने गांव की ही बात बताता हूं, जाति के आधार पर मैं सवर्ण जाति में आता हूं लेकिन मैं छुआछूत को नहीं मानता हूं। जब मैं अपने गांव में किसी दलित के पास गया या मैंने उसके साथ बैठकर कहीं चाय–पान भी कर लिया तो गांव के अन्य सवर्ण जाति के लोग मुझे बहुत ही पैनी नजर से देखते हैं। उस स्थिति को देखकर वास्तव में महसूस होता है कि छूआछूत क्या है। इस प्रकार ये हमारी दृष्टि है तो जब तक हमारी दृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं आएगा तब तक छुआछूत को जड़ से समाप्त नहीं किया जा सकेगा।

मुझे लगता है कि छुआछूत का एक कारण आर्थिक विषमता भी है। हम देखते हैं कि आज जो दलित लोग हैं उनमें से अधिकतर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। यहां तक कि मैंने ये भी देखा है कि यदि कोई दलित कुछ पढ़–लिखकर किसी बड़े ओहदे में चला जाता है और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती है तो अपनी ही जाति के लोगों को हेय दृष्टि से देखने लगता है और उनसे संबध बनाने में भी हिचकता है। इसलिए हमें दलित वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए सबसे पहले उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारें और यदि हम आरक्षण देना ही चाहते हैं तो जाति के आधार की बजाय आर्थिक आधार पर दें। बस में इतना ही कहना चाहता हूं धन्यवाद।

श्री बालेश भवानीः– आज हम लोग यहां पर समता के सवाल पर चर्चा कर रहे हैं। हम इस तरह की गोष्ठियों का आयोजन पहले भी करते आए हैं लेकिन मुझे लगता है कि धरातल पर काम किए बिना केवल मात्र लगातार गोष्ठियां करने से ही कुछ नहीं होने वाला। क्योंकि इस बात को धरातल पर ले जाने के बाद ही हमें पता चलेगा कि इसमें क्या कमियां हैं तभी जाकर हम इन कमियों को दूर करने का प्रयास करेंगे।

अभी रावत भाई जी ने सही बात कही कि जब दलित जाति के लोग आर्थिक रूप से कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब वे अपनी ही जाति के व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं। यदि आप दलितों के सम्मेलनों में जाकर देखो वहां बाहर तो पोस्टर में लिखा रहता है कि कई बड़े–बड़े लोग आएंगे लेकिन जब सम्मेलन होता है तो उसमें गिने–चुने दो–एक लोग ही आते हैं क्योंकि पूंजी और ओहदे की दृष्टि से भी अच्छे पदों पर काम करने वाले दलित भाई अपनी ही जाति के लोगों से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। तो उनके इस व्यवहार से तो समाज में समता स्थापित नहीं की जा सकती है।

यदि हम समतामूलक समाज बनाना चाहते हैं तो हमारा ये कर्तव्य बनता है कि हम अपने एजेंडे सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों के साथ–साथ आर्थिक रूप से पिछडे लोगों को भी शामिल करें ताकि एक व्यापक सोच तैयार की जा सके। मुझे लगता है कि दलितों की ऐसी स्थिति के लिए थोड़े से जिम्मेदार खुद दलित भी हैं क्योंकि एक कहावत कही जाती है कि ' सामर्थ्य को न दोष गुंसाई' अर्थात यदि मेरे पास सामर्थ्य है ताकत है तो मैं कुछ भी काम कर सकता हूं फिर चाहे मैं किसी भी जाति का क्यों न हूं। यदि मुझे मंदिर में प्रवेश करना है तो मैं करके ही रहूंगा आदि। इसलिए हमें अपने अंदर वो ताकत, वो सोच पैदा करनी होगी जिससे कोई भी व्यक्ति हम पर अत्याचार न कर पाए।

यदि हम लोग आपस में मिलकर दलितों पर होने वाले अत्याचारों का विरोध करेंगे तो कोई भी हमें क्षति नहीं पहुंचा सकता और हमसे हमारे अधिकार से नहीं छीन

सकता। जिस प्रकार बहन मायावती जी को ही देख लीजिए वो भी अपने सामर्थ्य के कारण आज काफी ऊंचे स्तर पर पहुंच गई हैं और सवर्ण जाति के लोग भी दिन–रात उनके घर के चक्कर काटते रहते हैं कि किसी न किसी तरह वो उन्हें अपनी पार्टी में जगह दे दें। धन्यवाद !

प्रेम भाई :– औपचारिकता के बिना मैं अपनी बात कहता हूं। यहां पर सवर्ण और असवर्ण के बीच मौजूद असमानता के बारे में बहुत से लोगों ने बात की। हम समतामूलक समाज में राजनीति की बात करते हैं लेकिन राजनीति में भी जाति व्यवस्था मौजूद हो गई है जिसने समाज को भी प्रभावित किया है। मैं आपको एक उदाहरण देता हूं हमारी यमनौत्री विधानसभा में अनुसूचित जाति के एक व्यक्ति को टिकट दिया गया। वह व्यक्ति अपने विधानसभा क्षेत्र में मौजूद सभी दलितों के पास गया कि हमें वोट दें। लेकिन यदि वो व्यक्ति विधायक बन जाता है तो उस समय वो पूरे समाज या विधानसभा क्षेत्र का ही विधायक बनता है और उस समय वो समाज के निचले या दलित समाज के लिए खास कुछ नहीं करता है। यहां कि बाद में वो पिछडे एवं दलित समाज के लोगों के साथ बात करने में भी कतराने लगता है।

मुझे लगता है कि समतामूलक समाज बनाने के लिए हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी और कुछ वैकल्पिक संस्थाएं खोलनी होगी। यदि हम राजनीति में प्रवेश करना चाहते हैं तो हमें ऐसे लोगों को राजनीति में लाना होगा जो कि साफ दृष्टि से समाज में आएं। जिस तरह यहां मौजूद सभी लोगों ने कहा कि हमें आपस में संवाद भी करने होंगे और हमें जमीनी स्तर पर काम करना होगा। सिर्फ ऐसा न हो कि यहां बैठकर तो हम समता की बात करें लेकिन अपने शहर या गांव में जाते ही हम वही अपनी पहली वाली बात पर कायम हो जाते हैं यहां तो हम एक ही टेबल पर बैठकर खाना खाते हैं लेकिन गाव में एक साथ भोजन करना तो दूर एक साथ बैठने पर भी कतराते हैं। मुझे लगता है कि इसे झकझोड़ने की जरूरत है। उत्तरकाशी में समता आंदोलन की शुरूआत हुई और इसके माध्यम से समाज को झकझोड़ा गया है और यदि इसकी निरन्तरता बनी रहे तो इस काम को आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए हम सभी को मिलजुलकर प्रयास करने होंगे। धन्यवाद !

विजयः– यहां तो मैं अपने अनुभव की बात करना चाहता हूं। मुझे लगता है कि जातियता तो पूरे देश में है और इसी जातियता से सत्ता पैदा होती है और हम सभी लोग उस सत्ता को भोगने के लिए लालायित होते हैं इसमें आप भी शामिल हैं और मैं भी। दुर्भाग्य से आज मुझे भी दलित होने की सत्ता मिली हुई है जिसका लाभ उठाकर मायावती हों या प्रदेश के यशपाल आर्य हों या प्रदीप सत्ता जी ही क्यों न हों लगभग

सभी फायदा उठा रहे हैं। इसलिए जब तक जाति सत्ता पर चोट नहीं होगी तब तक जाति समस्या को खत्म नहीं किया जा सकता। धन्यवाद !

संचालकः– विजय ने संकेत में बहुत कुछ बोल दिया। अब मैं जब्बर सिंह से अनुरोध करूंगा कि वो अपनी बात रखें।

जब्बर सिंहः– प्रिय साथियो दलित अस्मिता का ये प्रशन न केवल एक प्रदेश में बल्कि लगभग सम्पूर्ण देश में ही एक अहम मुद्दा बना हुआ है और मुझे लगता है कि इसके अंदर इतने सुराख और दर्द छिपे हैं कि कई दिनों तक इसकी चर्चा की जाए तो वो भी कम है। इसके लिए हम काफी समय से इस तरह की गोष्ठियां प्रदेश, राष्ट्र और अंतराष्ट्रीय स्तर पर करते आए हैं लेकिन इन मुद्दों पर जमीनी स्तर पर काम करना बहुत ज्यादा जरूरी है। इसके लिए हमें स्थानीय स्तर के लोगों को अधिक से अधिक संख्या में अपने साथ जोड़ना होगा।

समता अभियान में बहुत ही ठोस कदम उठाया गया है। लेकिन दलित समाज में भी दो तरह के लोग हैं एक तो वे जिन्हें ये लगता है कि उनके साथ अत्याचार हुआ है और वे सवर्णों को अपने विरोधी के रूप में देखते हैं और उनसे बदला लेना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर वे लोग हैं जो अपने–आपको दबा–कुचला समझते हैं यहां तक कि उन्हें अपने अधिकारों का भी ज्ञान नहीं है। इसलिए दलितों की समस्याओं को हल करने के लिए सबसे पहले उनको समझना जरूरी है। इसके लिए हमें सवर्ण और असवर्णों के बीच मेलजोल बढ़ाना चाहिए, और ऐसा नहीं हैं कि मेलजोल बढ़ाने वाले लोग दलित परिवार से ही हों वो तो किसी सवर्ण या असवर्ण किसी भी समाज से हो सकते हैं। दलितों के साथ–साथ सवर्ण लोग भी दलितों के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बल्कि हम सबको समाज के साथ मिलकर प्रयास करने चाहिए।

अभी किसी भाई ने ठीक ही कहा कि इसके लिए सबसे पहले स्वंय दलितों को आगे आना होगा उन्हें पूरी मेहनत और हिम्मत के साथ अपने–आपको समाज में खुद स्थान दिलवाना होगा। जैसा कि अभी मंदिर में प्रवेश का ही विषय था यदि उन्हें पहले से लगता कि मंदिर में प्रवेश करना हमारा अधिकार है और हमारा यह अधिकार हमसे कोई नहीं छीन सकता है तो ऐसी नौबत ही नहीं आती। लेकिन ये चीजें हमारे संस्कारों में शामिल हैं हमें घर में ऐसा सिखाया जाता है कि यदि किसी भी दलित ने मंदिर में प्रवेश किया तो पाप हो जाएगा हो सकता है कि प्रवेश करने वाला अंधा तक हो जाए।

इस तरह की भावनाएं और अंधविश्वास हमारे समाज में बहुत गहराई में मौजूद हैं। हम इन्टर, हाईस्कूल के बच्चों के साथ शिविर करते हैं उनसे बात करने पर हमें बहुत ही आश्चर्यजनक बातें पता चलीं। वो बच्चे स्कूल में तो एक साथ रहते हैं लेकिन

जब कोई सवर्ण बच्चा किसी दलित बच्चे के घर जाता है तो वो उसके घर दूध तो पी लेता है लेकिन चाय नहीं पीता है। हमने उनसे पूछा कि जिस बर्तन में चाय बनती है उसी बर्तन में तो दूध भी गर्म होता है और दूध में भी चीनी डाली जाती है और चाय में भी। और जिस तरह से चाय में पानी डाला जाता है उसी तरह से दूध में भी थोड़ा पानी तो मिलाया ही जाता है बस केवल इतना है कि चाय में चायपत्ती मिलायी जाती है और चायपत्ती तो हम अपने पड़ोसियों से भी मांगते ही हैं तो फिर चाय और दूध में वो भेदभाव क्यों। लेकिन वो बच्चे हमारी बात का जवाब दे ही नहीं पाए। तो यह सोचने की बात है कि हमारे छोटे से बच्चों के मन में ये बात आखिर भरी किसने है कि तुम दलितों के घर दूध तो पी सकते हो लेकिन चाय नहीं। तो इस प्रकार हम बचपन से ही अपने समाज में असमानता की भावना को फैलाते चले जा रहे हैं।

इसी तरह हम बड़े लोग भी शहर में तो सवर्ण–असवर्ण एक ही साथ बैठकर खाना खाते हैं या फिर ऐसा भी होता है कि एक ही थाली में खाते हैं लेकिन जैसे ही हम गांव आदि में जाते हैं भेदभाव करने लग जाते हैं। यह भेदभाव हमारे गांवों में कई सौ सालों से होता आ रहा है। हमारी मां–पिताजी भी हमें ये बताते हैं कि हम गांव में अपने घरों में दलितों को खाने पर बुलाते हैं और किसी भी तरह का भेदभाव नहीं मानते हैं लेकिन खुद दलितों के मन में ऊंची जाति को लेकर डर है। उन्हें लगता है कि यदि हम सवर्ण के घर गए तो जैसे कोई घोर अनर्थ हो जाएगा और हो सकता है हमें पाप भी लगे, हमारे साथ कुछ बुरा हो जाए। इस प्रकार अभी भी अधिकतर दलित लोग इसी मानसिकता में जी रहे हैं।

इस तरह हमारे समाज में वर्षों से व्याप्त इस असमानता को दूर करने के लिए समाज के सभी वर्गों का आपस में तालमेल होना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले सवर्णों को पहल करने की जरूरत है क्योंकि यदि किसी गांव में 50 सवर्ण परिवार हैं और एक दलित परिवार है तो वो दलित डर के मारे सवर्ण के घर में नहीं जाएगा लेकिन कोई सवर्ण हिम्मत करके किसी दलित के साथ मिलजुल सकता है उसपर समाज का उतना दबाव नहीं है जितना कि किसी दलित पर होता है। वहीं दलित को भी समाज में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा, उससे यह ठानना होगा कि उसने मंदिर में प्रवेश करना है तो उसे प्रवेश करने का हर संभव प्रयास करना ही होगा तभी जाकर समाज उसके वजूद को समझ पाएगा। धन्यवाद!

अमर सिंह :– आदरणीय अध्यक्ष महोदय सम्मानित मंच और साथियो मैं पीछे बैठकर सभी की बातें सुन रहा था जिन्हें सुनकर मुझे बहुत ही अच्छा लगा। मैं यहां कुछ बोलने की बजाय सुनने की दृष्टि से आया हूं।

लसन भाई :– मैं जो भी बातें कहना चाहता था उसमें से अधिकतर बातें तो आ ही गई हैं बस मैं एक शराब की बात को जोड़ना चाहूंगा। यह मुद्दा यहां तो आया ही इसके साथ ही दिल्ली में भी इस मुद्दे पर बात हुई। मैं सर्वोदय से जुड़ा हूं और मैंने पिछले पांच साल से शराब के मुद्दे को देखा है इस विषय को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता क्योंकि शराब की परंपरा अर्थात शराब बनाने और बेचने की प्रक्रिया एक खास समाज में रही है कुछ लोगों की तो आय का साधन ही शराब रहा। तो क्यों नहीं हम उसी शराब को ब्लू करने का प्रयास करें और उसका मार्केट रहे। क्योंकि ये प्रदेश शराब से विमुक्त नहीं हो सकता, यहां पर तो प्रत्येक व्यक्ति शराब पीने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति का अर्थ है आप किसी भी गांव में चले जाइए वहां अधिकतर लोग शराब पीने के आदी हैं। इसलिए हमें लगता है कि हमें इस मुद्दे पर संवाद करना चाहिए।

हम लोगों ने इस बारे में महिला आयोग को भी पत्र लिखा, हमने कहा कि आप शराब की ओर ध्यान न देकर उसके कारणों की तरफ भी ध्यान दें उस विषय में आने वाली परंपरा को भी समझने का प्रयास करें। इसी संदर्भ में कौशानी में एक बैठक का आयोजन हुआ जिसमें लक्ष्मी आश्रम कौशानी, चित मंसूरी, इसी विषय पर काम कर रहे अनिल अल्मोड़ा, जंगल और जमीन के सवाल पर काम कर रहे तरुण भाई, जंगल के सवाल पर काम करने वाले रघु भाई आदि कई संस्थाओं के प्रतिनिधि मौजूद थे।

इस प्रकार मुझे लगता है कि इस विषय को घोषणा पत्र में शामिल करना चाहिए। और संवाद या चर्चा के माध्यम से इस विषय का हल ढूंडा जा सकता है। जहां तक चर्चा की बात है हम उत्तराखंड लोक विद्यापीठ, उत्तराखंड पानी पंचायत, उत्तराखंड नौजवान सभा, विश्व नागरिक मंच, जय हिन्द कृषि किसान पंचायत, पर्वतीय युवा मोर्चा आदि संगठनों ने मिलकर कौशानी में बैठक भी की। इस प्रकार आप लोगों ने खासकर सुरेश भाई ने जो प्रारूप बनाया है उसमें सामूहिक रूप से विचार –विमर्श के बाद कुछ और भी जोड़ा जा सकता है। धन्यवाद!

विजय प्रताप :– सोहन भाई आप बतांए कि इस विषय पर आगे कहां–कहां मीटिंगें होनी हैं जैसे इस चीज को आगे पंचायतों में ले जाना है तो उसके लिए कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। इसे कोई एक ही संगठन करे या इसमें अन्य संगठनों का भी गठजोड़ हो या नहीं हो आदि। इसके अलावा यदि कोई एन.जी.ओ. संगठन भी इसमें से कोई अंश लेकर चलना चाहे तो वो ऐसा करे क्योंकि इसमें एकरूपता होना बहुत जरूरी नहीं है। लेकिन जैसा आपने कहा कि हमें पंचायतों के माध्यम से जनता के पास जाना है और इन बातों को सरकार के पास भिजवाने का काम करना चाहिए। तो इस तरह के विचार–विमर्श कहां हो सकते हैं उसके बारे में यदि किसी साथी के पास सुझाव हो तो वो भी बताएं।

वक्ता :– इससे पहले भी भुवन पाठक के नेतृत्व में एक बैठक बुलाई गई थी उसमें भी लगभग ऐसा ही घोषणा पत्र बना था। मुझे लगता है कि वैसे तो इसमें भी काफी कुछ चीजें उसी से ली गई थीं पर कई चीजें उससे थोड़ा हटकर भी थीं। मुझे लगता है कि सभी पार्टियों ने अपने जो भी घोषणा पत्र बनाए हैं वे सभी जनता के बीच जाने चाहिए। लेकिन पिछली बार भी यही बात उठी थी कि इसे गांव तक कौन पहुंचाएगा। पिछली बार जब सरकार बनी थी तब यह बात आई कि राजनैतिक पार्टियों का अपना एक दर्शन अपनी सीमाएं हैं उनका अपना एक राजनैतिक दायरा भी है। इसके लिए हमें बात करनी होगी कि राजनैतिक दलों के अलावा जो भी जन संगठन, सामाजिक संस्थाओं आदि को मिलकर एक जन घोषणा पत्र बनाना होगा। जो लोग मुख्य धारा की राजनीति नहीं कर रहे उन लोगों की मार्फत ये घोषणा पत्र गांव के बीच में रखा जाए। पर फिर इसमें एक सवाल उठा कि इसकी भाषा क्या होनी चाहिए क्योंकि कुछ लोग चाहते हैं कि ऐसा कानून होना चाहिए वहीं दूसरे लोगों के अनुसार वैसा कानून नहीं होना चाहिए। कुछ लोगों के अनुसार आम जनता के अधिकारों का संरक्षण होना चाहिए अन्य लोगों के अनुसार इसे जल, जंगल, जमीन के बारे में नीति बनाने और राज्य को निर्देश देने वाला होना चाहिए। वहीं कुछ लोगों ने कहा कि इस विषय पर पहले विधान सभा में बहस होनी चाहिए। फिर उसके बाद उत्तराखण्ड में ईमानदारी से काम कर रहे कुछ लोगों और संस्थाओं के तथा अधिकतम लोगों के मतानुसार यह तय हुआ कि इसमें समग्र उत्तराखण्ड राज्य के संदर्भ में एक पूरी समाजिक, सांस्कृतिक नीति बनेगी और उसका पूरा एक समग्र राजनीतिक चिंतन भी होगा इस प्रकार इसे वैसा ही बनाया जाएगा जैसा कि उत्तराखण्ड की जनता चाहती है।

इस प्रकार इसमें मुख्य रूप से उत्तराखण्ड के विकास के लिए राजनीतिक, विकास, संस्कृति और पर्यटन के दृष्टिकोण के साथ रोजगार की नीति खासतौर से जल, जंगल, जमीन के सवालों पर सोचा गया। विकास के बारे में भी दृष्किोण स्पष्ट ने होने के कारण विकास को मुख्य बिंदु के रूप में रखा गया जैसा कि टिहरी बांध के संबध में ही देख लो कि भले ही उन लोगों को गांव से जाने के बाद अच्छी नौकरी तो मिल गई लेकिन गांव को तो छोड़ना ही पड़ा, तो क्या आप समाज को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने को विकास कहेंगे? तो इस प्रकार इन सभी बातों को पंचायतों, जन संगठनों गांव के प्रतिनिधियों के मार्फत भी बहस की जा सकती है क्योंकि ये सभी संस्थाएं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आम जनता से जुड़ी होती हैं। ये ठीक है कि इस समय चुनाव का समय है और लगभग सभी लोग चुनाव को ध्यान में रखते हुए विचार–विमर्श कर रहे हैं लेकिन मुझे लगता है कि हम केवल चुनावों को ही ध्यान में रखने के साथ–साथ कुछ बातचीतों, नीतियों, कार्यक्रमों के माध्यम से जनता

की बातों को परेशानियों को भी अपने घोषणा पत्र में शामिल कर लें तो इससे चुनाव के लिए एक अच्छा घोषणा पत्र भी बन जाएगा और हमारे प्रदेश के लोगों की समस्याओं को जानकर उनका हल भी निकाला जा सकेगा। धन्यवाद!

विजय प्रताप :– हम आज सुबह से ही इस एजेंडे पर बात कर रहे हैं इसको आगे बढ़ाने के लिए एक बैठक तय की जानी है उसकी तारीख और स्थान भी तय हो जाए तो बहुत अच्छी बात है इस बारे में यदि आप जो भी सुझाव देना चाहते हैं वो दे सकते हैं।

अन्य वक्ता :– इसमें बहुत सारे लोगों का जुड़ाव हो गया यदि आपको लगता है कि इसको पढ़कर इसे अंतिम रूप दिया जा सकता है तो हम चार–पांच लोग मिलकर इसे कुछ दिन तक अच्छी तरह पढ़तें हैं और फिर उसे अंतिम रूप देते हैं। इस काम के लिए यहां मौजूद सुरेश नौटियाल, पवन गुप्ता, बिहारीलाल, अतुल शर्मा, प्रेम पंचोली, नागेन्द्र दत्त, द्वारका प्रसाद, गोपाल, राधा दीदी, सुरेन्द्र भट्ट, विजय प्रताप, वीरेंद्र पैनोली, शैलेंद्र राय और जब्बर आदि लोगों को मिलजुलकर एक बैठक आयोजित करनी चाहिए जिससे इसमें सभी मुद्दों फिर चाहे वो महिलाओं का मुद्दा हो, आरक्षण का मुद्दा हो, या जल, जंगल,जमीन आदि से जुड़े मुद्दे हों आदि क्योंकि यदि ये जन घोषणा पत्र है तो इसमें आम जनता की राय जरूर होनी चाहिए फिर चाहे वो अपनी राय स्वंय दें या फिर अपने–अपने इलाकों में काम करने करने वाले यहां मौजूद हमारे साथियों के माध्यम से दें।

(इसके बाद चुनाव घोषणा पत्र पर बातचीत करने और उसे सुधारने और उसमें नई चीजें जोड़ने के लिए बुलाई गई बैठक के दिन और स्थान के बारे में विचार–विमर्श किया जाता है और अंत में यह तय होता है कि इसे चुनाव के बाद अर्थात 13,14 या 15 मार्च में से किसी दिन किया जाएगा और तब तक उत्तराखण्ड दस्तावेज पर ही विचार–विमर्श किया जाएगा।)

विजय प्रताप:– अब मैं हमारे बीच में नेपाल से अतिथि के रूप में आए विद्या भाई अरोड़कर से अनुरोध करूंगा कि वो अपनी बात कहें।

विद्या अरोड़कर (नेपाल) :–उन्होंने मेरा थोड़ा सा परिचय तो कर ही दिया। मैं दिल्ली में दिल्ली विश्वविद्यालय के विद्यार्थी की तरह रहा। मुझे नेपाल और भारत की संस्कृति में बहुत सी समानताएं देखने को मिली। उसी तरह हमारे देश में भी दलित का मामला है

लेकिन उसमें और यहां के मामले में थोड़ा सा अंतर देखने को मिला। पहले तो यह समझने की जरूरत है कि लोकतंत्र की परिभाषा क्या है ? किसी देश में लोकतंत्र कितना है आदि। यदि आप नेपाल के इतिहास को देखें तो 1950 में थोड़ा सीमित लोकतंत्र आया था लेकिन फिर 1960 में उसे राजा ने ले लिया फिर 1990 में आया था और फिर 2000 में ले लिया। फिर 2006 के अप्रैल मूवमेंट के बाद एक ऐसा लोकतंत्र आया जिसमें दलित और सवर्ण की बात की गई। तो नेपाल में भी आप देखें तो लगभग 56 प्रतिशत लोग जनजाति और दलित समप्रदाय में रह रहे हैं।

जहां भारत में दलित आंदोलन ने जोर पकड़ा और दलितों ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी अपना साथ दिया यहां तक कि डा. भीमराव अंबेडकर ने तो एक दलित होते हुए भारत के संविधान निर्माता की भूमिका भी निभाई। यहां बहुजन पार्टी के रूप में दलितों की पार्टी ने एक ऊंचा स्थान प्राप्त किया है यहां राजनीति में रामविलास पासवान, जैसे कई दलित लोग बड़े नेता के रूप में भी स्थापित हैं। लेकिन हमारे नेपाल में दलितों की ऐसी स्थिति नहीं है।

यदि आप नेपाल का इतिहास उठाकर देखें तो वहां 1950 से 60 के बीच के दस वर्षों में एक भी बार चुनाव नहीं हुए। 1959 में चुनाव हुआ भी तो फिर से 1960 में राजा ने अपना अधिकार जमा लिया। 1990 के आंदोलन के बाद दलितों को कुछ पहचान मिलने लगी थी लेकिन फिर वहां लोकतंत्र के विरोध में कुछ बखेड़ा खड़ा हो गया। एक बार और 1980 में भी उन्होंने इसी तरह अपनी पहचान के मुद्दे पर बात करने की कोशिश की थी उनका आंदोलन आगे भी गया लेकिन अभी तक पिछले दस साल में कोई भी आंदोलन सफल नहीं हुआ। बस इतना हुआ कि इस जनवरी में हमारी संसद में कम से कम दलित लोगों ने एक चौथाई संख्या में प्रवेश किया।

आप लोगों द्वारा दलितों के उद्वार के लिए आंदोलन किए जा रहे हैं उन्हें देख–सुनकर बहुत ही अच्छा लगा और उसे सुनकर मुझे प्रेरणा भी मिली कि हमें भी इस तरह के प्रयास करते रहने चाहिए।

अन्य वक्ताः– मंच पर आसीन नेतागण और साथियो मेरा बोलने का कोई इरादा नहीं था और न ही मैं एक अच्छा वक्ता हूं मैं तो एक अच्छा श्रोता बनने का प्रयास भर कर रहा था। लेकिन आपने बोलने का मौका दिया इसलिए मैं कुछ अपनी बात कहता हूं।

समाज में विग्रह की स्थिति आज ही पैदा नहीं हुई है बल्कि ये वर्षों पहले से मौजूद है। यह स्थिति समाज की स्थापना के समय शुरू हुई थी और जब तक समाज चलेगा ये भी चलती ही रहेगी यदि हम इस सत्य को स्वीकार कर लें तो ठीक रहेगा। यदि हम अपने समाज को सामंतवाद के समय से देखें तो एक राजा हुआ करता था और सभी लोग उसे मानते थे वो जैसा कहता समाज भी वैसा ही करता था। समाज

के ऐसे ही चलते–चलते यदि समाज में कोई परेशानी आ जाती थी या समाज में मौजूद किसी समस्या से समाज को भारी नुकसान होने लगा तो कुछ लोगों ने उसका विरोध किया और अपनी आवाज उठाई इसमें विकेकानंद का नाम भी शामिल है। उन्होंने कहा भी कि यदि हम लीक से हटकर कोई काम करते हैं तो हमें तीन परिस्थितियों का समाना करना पड़ता है। सबसे पहले हमारा व्यंग किया जाता है अर्थात हमारा मजाक उड़ाया जा सकता है, दूसरा हमारा विरोध मारपीट या किसी भी तरह की शारीरिक प्रताड़ना से भी किया जा सकता है और यदि हम दो स्तरों को पार कर गए तो हमारे साथ सहानुभूति का व्यवहार भी किया जा सकता है। यदि आप अपना इतिहास उठाकर देंखे तो आप देखेंगे कि हमारे देश में पैगम्बर मोहम्मद, ईसा मसीह, गुरूनानक, कबीर आदि बहुत से ऐसे ही महान लोग मौजूद थे जिन्होंने समाज में मौजूद किसी न किसी बुरी परिस्थिति के लिए आवाज उठाई और संघर्ष किया। वैसे तो ये लोग हमारे और आप की तरह साधारण मनुष्य ही थे लेकिन इन्होंने समाज में व्याप्त बुराई को समाप्त करने के लिए आवाज उठाई और सत्य का साथ दिया लेकिन इन्होंने समाज से हटकर काम किया इसलिए हमने इन्हें महान आत्मा का नाम दिया लेकिन धीरे–धीरे समय गुजरने के बाद साधारण जनता ने इन समाज सुधारकों को धर्म सुधारक की सी उपाधि दे दी और उनके सिद्धांतों को किसी विशेष धर्म के आदर्श के रूप में मानने लगे।

हमने उन लोगों को धर्म का प्रवर्तक कहना शुरू कर दिया जबकि वो लोग समाज में समानता कायम करना चाहते थे वो चाहते थे कि समाज में अमीर–गरीब या किसी भी अन्य रूप में समानता न हो, हमारे मन में सहिष्णुता, करूणा और प्राणी मात्र के लिए कल्याण के भाव हों और इन गुणों वाली संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति का नाम दिया गया। भारतीय संस्कृति में सभी मानवों के कल्याण और उन्हें अपने–आप में समाहित करने की भावना रही। इसी कारण से हमारे देश में कई लोग बाहर से आते रहे और वो यहीं की संस्कृति और इसी देश में रच बस गए। हमने भी उन लोगों का कभी भी विरोध नहीं किया फिर चाहे वो किसी भी देश, रंग, धर्म या जाति के रहे हों क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति ने हमें 'अतिथि देवो भवः' का पाठ पढाया था। लेकिन बाद के लोगों ने उन सभी चीजों और गुणों को उस खास आदमी के साथ और उस खास आदमी अर्थात महान आत्मा को किसी न किसी धर्म या जाति के साथ जोड़ दिया।

लेकिन आज लोग धर्म और भावनाओं का गलत प्रयोग कर रहे हैं जैसे मुलायम सिंह जैसे कुछ लोगों ने समाज में समानता कायम करने के लिए समाजवाद नामक पार्टी बनायी इससे उन्होंने सत्ता तो प्राप्त कर ली लेकिन उसके बाद उन्होंने पूंजीपतियों की लुटिया डुबोकर दूसरों के पैसों को अपने इस्तेमाल में लाने लगे। तो मैं

इस तरह के समाजवाद को समाजवाद नहीं मानता। उसी तरह मायावती आंएगी वो दलितों के नाम पर वोट प्राप्त करेंगी, दलितों के नाम पर अल्पसंख्यों को एकत्र कर वोट पाएंगी और फिर बड़े–बड़े पूंजीपतियों से पैसा एकत्र करेंगी। आज भी उनपर आरोप लगता है कि वो अपने जन्मदिन पर पैसा लेती हैं और टिकट देने के लिए भी पैसा लेती हैं।

इसी तरह हमारे देश में जब वी.पी. सिंह ने मंडल लागू किया तो उन पर मंडल लगाने का दोष मढ़ा गया लेकिन मेरा मानना है कि इस देश में अगर राजनैतिक रूप से जातिवाद का विष घोला गया तो वह चरण सिंह ने घोला। उन्होंने अहीर, जाट, राजपूत और गुज्जर आदि को लेकर राजनीति की और मंडल लागू करने का दोष वी. पी.सिंह को दिया जाता है। लेकिन यदि देखा जाए तो अंग्रेजों ने भी जातियों के ऊपर एक आयोग बनाया था समिति बनाई थी। उसके बाद इंदिरा गांधी ने काका कालेकर समिति बनाई काका कालेकर समिति को लेकर भी काफी बहस चली लोगों ने कहा कि इसे लागू किया जाए या कि नहीं किया जाए। वहीं चरण सिंह जो कि उस समय कार्यकारी प्रधानमंत्री रहे तो उन्होंने अपने राज में उनके शासनकाल में किसी ने उन्हें मंडल आयोग के लिए कोसा तक नहीं। वी.पी. मंडल ने कोई बड़ा काम नहीं किया और काका कालेलकर समिति की लगभग वही रिपोर्ट मंडल में लागू कर दी गई। मंडल को लागू करने के बाद वी.पी.सिंह दोबारा शासन में नहीं आ पाए।

जिस प्रकार विजय जी ने कहा मैं भी उस बात को ठीक मानता हूं कि हमारे यहां दलितों के अधिकारों के लिए जो आंदोलन हुए, मंडल से समाज में जागृति आई, उसमें एक जागरण आया और उन्होंने अपने अधिकारों को समझा और अहमियत को समझा। लेकिन उनकी इस बात का लाभ दलितों के सौदागर जिन्हें कि मैं मठाधीश आदि मानता हूं उन्होंने उठाया फिर चाहे वो मुलायम सिंह हों, लालू प्रसाद हों, रामविलास पासवान हों वे सभी वोटों की राजनीति के सौदागर हो गए हैं। उन्होंने उस समाज के उत्थान के लिए उन लोगों की भलाई के लिए इतना कुछ नहीं किया जितना कि उनके वोटों को इक्ट्ठा कर किया। उन्होंने उन वोटों को एकत्र कर अपनी इच्छाओं की पूर्ति की और जिस काम के लिए या जिन उद्देश्यों को लेकर उन्होंने अपनी पार्टी का गठन किया या वोट प्राप्त कर राजनीति में शामिल हुए उन गरीब, पिछड़े और दलितों के लिए उन्होंने कुछ भी नहीं किया।

विजय प्रताप – आरक्षण के विषय में और बात होना अभी बाकी है। इससे पहले 1952 के घोषणा पत्र में यह सवाल उठाया गया था। उस समय कम्युनिस्टों ने विकेन्द्रीकरण के सवाल पर बात रखी और R.S.S. के समान तब राम राज्य परिषद बड़ी पार्टी थी, जन संघ शायद अक्टूबर 1951 में ही बनी और नई–नई पार्टी थी। ये सब लोग और

मेलू जी भी मिलकर यह बोलते थे विकेंद्रीकरण तो देश को तोड़ने का चार्टर है। लेकिन समाजवादियों ने आरक्षण सहित सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात की थी तो उस संदर्भ में जो जन घोषणा पत्र के साथ जुड़े हुए लोग हैं उनके बारे में जे.पी. की परंपरा से अगर देखें तो उसमें पूरी तरह से नकारात्मकता नहीं थी। लेकिन अभी की व्यवस्था में संसदीय जनतंत्र में मौजूद खामियों को कैसे दूर करना है, इसके बारे में मुझे लगता है कि दलीय औजार पर्याप्त नहीं हैं। तो ऐसा नहीं है कि इस सोच में दल नहीं होना चाहिए। दल सबसे महत्वपूर्ण है और इतिहास में ऐसे मौके आ सकते हैं जब लोकतंत्र को बचाने के लिए दलीय रणभूमि ही मुख्य रणभूमि बन जाए। जैसे जे.पी. ने 5 जनवरी 1974 को कह दिया कि अब सम्पूर्ण क्रांति नारा है और फिर उसके कुछ ही समय बाद कहा कि इस लड़ाई को मुझे जनता की चुनाव की अदालत में ले जाना होगा। यदि उनकी नैतिक ताकत नहीं होती है और यदि वो अपने को सत्ता के केंद्र में और प्रधानमंत्री के केंद्र में रखते तो जनता पार्टी नहीं बन सकती थी। ये बात जुलाई 1979 में साफ हो गई जब वो फिर से टूट गई। हालांकि तब टूट का श्रेय जगजीवन राम जी और चरण सिंह जी के झगड़े को दिया जाता था और ऐसा माना जाता था कि दण्डवते, चंद्रशेखर, जॉर्ज फर्नाडीज और तब तो इनको नहीं गिनते थे बहुगुणा जी इनके नाम आते थे कि ये 2 नंबर के लोग हैं और ये जो हैं मुल्क को बेहतर चलाएंगे। अगर ये आपस के झगड़े वाले तीन नेता जगजीवन राम, चरण सिंह और मोरारजी देसाई नहीं रहेंगे लेकिन आज उनके नीचे की पीढ़ी भी जिस तरह से लड़ रहे हैं नीतिश और रामविलास, मुलायम सिंह और लालू यादव वगैरह अगर ये बिखरे नहीं होते तो आज एक परिवर्तन की समतावादी ताकत आगे होती लेकिन ये लोग जैसा कि किसी साथी ने जब्बर सिंह ने कहा या मुझे ध्यान नहीं किसी साथी ने कहा कि दलित होना भी एक कार्ड हो गया है एक पूंजी हो गयी है तो उस पूंजी के भरोसे आपसी प्रतियोगिता में जो ये नेतृत्व लग गया है उससे सत्ता नीचे नहीं गई है और जैसे कि एक साथी ने कहा कि वोट लोगों को तोड़ देता है लेकिन मुझे उल्टा लगता है कि यदि आरक्षण का सिद्धांत नहीं होता तो जाति के कटघरे टूटते ही नहीं। गांधी और अम्बेडकर के बीच वाद–विवाद नहीं हुआ होता।

अंबेडकर, ज्योतिबा फूले और गांधी आदि ने एक अलग स्वतंत्र पहचान बनाने की कोशिश की, कि पूरे समाज और पूरी दुनिया को कैसे समतामूलक बनाना है। समता की लड़ाई में जो दो छोर थे उसमें हुए संघर्ष से राष्ट्रीय सहमति बन जाती यदि आरक्षण नहीं आता, चुनाव नहीं होता। तो ये राष्ट्र एक इकाई बन गया होता।

पहले भी जाति के खिलाफ पांच हजार साल में लगातार लड़ाईयां होती रही हैं। लिंगायतों ने लड़ाई की तो उनको एक अलग सम्प्रदाय बनाकर अलग कर दिया। कबीरपंथियों ने लड़ाई की तो वे कबीर से कबीरपंथी बने। नानक वालों ने लड़ाई की

उदासी बन गए नानकपंथी बन गए सिक्ख सम्प्रदाय बन गया। पहली नींव किसने रखी? पंगत में साझा खाना खाने का लंगर का आविष्कार इसीलिए हुआ कि लोगों में घर कर गई छुआछूत की भावना को खत्म किया जाए। क्योंकि आज तो ऐसा हो गया है कि गुरुद्वारों में दिल्ली में तो कम से कम इतना पतन हो गया है कि अगर आपके कपड़े साफ नहीं हैं, मध्यम वर्गीय कुलीन भद्र लोग टाईप आप नहीं हैं तो आपको गुरुद्वारे में घुसने नहीं दिया जाएगा तो आज इस तरह की परिस्थिति हो गई है।

आज समता की लड़ाई के परिणामस्वरूप जिन्हें हम दलित कह रहे हैं उसकी आजादी के समय जो स्थिति थी उसमें राष्ट्रीय आंदोलन और आजादी के बाद चुनाव और लोकतांत्रिकरण के कारण बहुत परिवर्तन हुआ जिससे आज हर दलित औरत और आदमी, कारीगर जमात का आदमी छोटा किसान, भूमिहीन किसान ये सपना देख सकता है कि उसका व्यक्ति भी मुख्यमंत्री हो सकता है। उसका व्यक्ति भी प्रधानमंत्री हो सकता है। प्रधानमंत्री तो एक ही होगा देश–प्रदेश में मुख्यमंत्री तो एक होगा लेकिन जो सपना होता है वो भी हमारे कामों को निर्देशित करता है हमको आत्मविश्वास देता है हमको एक पहचान देता है तो इस लोकतंत्र के चलते बहुजन समाज का शक्तिकरण हुआ है लेकिन ये काम एक व्यवस्था के नाते हुआ है। इसको सिर्फ समाजवादियों ने किया हो सिर्फ अम्बेदकरवादियों ने किया हो ऐसा नहीं है। उनमें पूरे समाज की प्रक्रियाएं और लोगों की इच्छा है कि हममें इज्जत, आजादी और बराबरी की भूख से उससे जो ऊर्जा पैदा हुई उससे ये गाड़ी आज यहां तक आई है।

ये बात मैंने थोड़ा विस्तार से इसलिए कही कि गोपाल ने सुबह एक पते की बात कही कि यदि हम अभी के शोषण का विलाप करेंगे तो हमारे मन में एक तरह की कुण्ठा पैदा होगी। तो उन्होंने दो चीजों का सुझाव दिया कि अपने को जोड़ने वाली चीज क्या है और एक दूसरे साथी ने कहा कि भविष्य की भी बात करें। शायद शोभन सिंह जी ने कहा था कि अतीत है, वर्तमान है तो भविष्य भी है। तो आज अतीत से अब तक पूरे देश में आधे–अधूरे तक एक बराबरी की भूख उपजी है वो चाहे मजबूरी में, चाहे संस्कार बदलने की बहुत धीमे चलने वाली प्रक्रिया में उच्च जाति में भी धीरे–धीरे दलितों को भी स्थान देनी की गुजांइश बन रही रही है। हमें सोचना होगा कि इस प्रक्रिया को आगे कैसे बढ़ाया जाए।

भारत में जो लोकतंत्र सिर्फ वोट के हिसाब से नहीं निकल सकता उसमें इज्जत, सामाजिक आजादी और सामाजिक बराबरी के सवाल को भी लोकतंत्र का जरूरी हिस्सा बनाना होगा। वो सिर्फ दलीय चीजों से नहीं हो सकता है उसी तरह से आप पिछले दो–तीन महीने के अखबार उठाकर देख लीजिए अभी जलवायु परिवर्तन पर एक बड़ी रिपोर्ट आने वाली है। अखबारों में छपी रिपोर्ट के अनुसार वैज्ञानिकों का मानना है हम जो कार्बन और ग्रीन हाउस छोड़ते हैं यदि उसे दस साल के

भीतर–भीतर बंद नहीं किया गया तो पर्यावरण इतनी तेजी से बदलने लगेगा कि 2020 तक एक तिहाई या आधा बांग्लादेश डूब जाएगा। इस बात का क्या मतलब है कि आपके हिमालय पर बर्फ पिघलने लग जाएगी जिससे समुद्र का स्तर ऊपर हो जाएगा उसके बाद सब नदियां भर जाएंगी जिससे पहले तो बाढ़ जैसी स्थिति हो जाएगी और बाद में पानी की कमी हो जाएगी। इसका मतलब ये हुआ कि आज जो पहाड़ बचाने की बात सिर्फ पहाड़ के लोग कर रहे हैं दरअसल इसे तो पूरे दक्षिण एशिया को करना चाहिए।

उत्तराखंड का चुनाव देश और दुनिया के लिए साझे महत्व का चुनाव है। अगर उत्तराखंड के लोगों ने विकास का नया मॉडल नहीं ढूंढ़ा तो पूरी दुनिया नहीं बचेगी। लेकिन हमारे दल चाहे वो कांग्रेस हो, भाजपा हो या फिर जो क्रांतिकारी और हाशिए वाले दल हैं इनको एकाध सीट मिलने के अलावा कुछ ज्यादा उम्मीद नहीं है। पिछली बार लोक वाहिनी, यू.के.डी. से 64 लड़े थे और 54 की जमानत जब्त हुई थी। तो इस प्रकार सिर्फ दस लोगों के जीतने की उम्मीद है और यदि मान लो दस के बदले 20 लोग भी जीत जाएं तो उस बीस के अलावा ये पार्टियां पूरा सच बोलना तो दूर उसको देखने की भी जहमत नहीं उठा रहे हैं।

पूरे समाज के जीवन सामाजिक समता के सवाल पर मैंने इतने विस्तार से बोला क्या ये वोट का सवाल है? क्या इस विषय में राष्ट्रीय और आंचलिक पार्टियों में एक सहमति थी कि हम गांव के लोगों को विशेष अवसर देंगे ? उन्हें आगे रखेंगे? कांग्रेस में ये नियम था कि साठ या पैंसठ प्रतिशत लोग या एस.सी.सी. में गांव वाली पृष्ठभूमि के होंगे तो इस तरह का नियम हमारी पार्टियां क्यों नहीं बना सकतीं कि चाहे वो सामाजिक न्याय का नारा देती हों या न देती हों लेकिन उसमें सभी तरह के सामाजिक पृष्ठभूमि के सभी तरह के आर्थिक पृष्ठभूमि के लोग हों ये राष्ट्रीय सहमति इस बात पर क्यों नहीं बन सकती कि जल, जंगल, जमीन जो हमारे पर्यावरण के प्रहरी रहे हैं जिन्होंने खुद उपभोग नहीं किया ऊर्जा का, जंगल का, नदी का सबको बचा के रखा इतिहास में आज तक बचे हुए हैं क्या वैसे लोगों के लिए इज्जतपूर्ण जिन्दगी, इज्जतपूर्ण रोजगार, उनके लिए शिक्षा, उनके लिए स्वास्थ्य इसपे क्या पूरी राष्ट्रीय सहमति नहीं होनी चाहिए। अमरीका जितनी ऊर्जा खत्म करके और पूरी दुनिया को ये खतरा पैदा कर रहा है और ये कह रहा है ये तो सवाल ही सवाल नहीं हैं हम लोगों की जनसंख्या के कारण ये गड़बड़ हो रही है इसका पूरा आरोप यूरोप और अमरीका के लोग हम लोगों पर मढ़ देना चाह रहे हैं तो वैसे में अगर हमारे राष्ट्र में हमारे दल सहमति नहीं बनाएंगे तो फिर हम राजनैतिक पटल पर जो दुनिया में हमको पीटने और खत्म करने की कोशिश की जा रही है ये अलग बात है इस कोशिश में वो खुद भी डूबेंगे तो इन सवालों पर महत्वपूर्ण सवालों पर पार्टियों में आमतौर से चुप्पी है उनमें

कोई इक्का–दुक्का अपवाद के तौर पर इन सवालों को जो व्यक्ति समझता है उसको कह देते हैं कि ये तो रोमांटिक बात करता है ये तो आदर्शवादी है इस बात से वोट नहीं मिलता है। तो जन घोषणा पत्र की जो जरूरत है वो लोकतंत्र के अधूरेपन से इन दलों के अधूरेपन से पैदा होती है कि जो आज समय के चुनावों से हटकर पूरे समाज, पूरे देश और दुनिया को छूने वाले सवाल हैं उन सवालों के लिए हम समाज के विशेषज्ञों से समाज के हाशिए पर बैठे लोगों से खासकर समाज की अंतिम कतार के जो लोग हैं जिनके बारे में हम सामान्यतः अपने जीवन की आपाधापी में नहीं जाते हैं। हमें अपने दस्तावेज में सिर्फ अपने सपने का प्रलाप सिद्ध नहीं करना है। सिर्फ उनकी तकलीफ नहीं करनी है हमें उस तकलीफ को दूर करने के लिए वो कैसा तंत्र सोचते हैं कैसी चुनाव व्यवस्था सोचते हैं पंचायत को क्या हक चाहिए जिले की सरकार होनी चाहिए क्या उसको क्या हक चाहिए उसमें स्थानीय माफिया का कब्जा न हो जाए जिले पर भी मुख्यमंत्री हों और वो भी लाल बत्ती बांटने लगे तो उससे तो करदाता का पैसा और भी अधिक बर्बाद होगा

इस तरह से हमको अपने जनता से क्रांतिकारी लोकतंत्र का या समतामूलक लोकतंत्र का या क्रांतिकारी रूप के विशलेषण की अपेक्षा एक ऐसे लोकतंत्र की अपेक्षा करनी चाहिए जिसमें लोक पर आधारित, लोक की समझ पर, लोक की जरूरतों पर, लोक के सपनों पर आधारित, लोक की सामूहिकता पर आधारित आज के समय पर आधारित तंत्र बनाने की अपेक्षा रखें। इसके लिए हमको घोषणा पत्र बनाना है और अगर ये लोगों की भागीदारी से बनाएंगे जिसमें विशेषज्ञ भी होंगे जिसमें आप रिटायर्ड ब्यूरोक्रेट से भी मदद ले सकते हैं अर्थशास्त्रियों से मदद लीजिए समाजशास्त्रियों से मदद लीजिए क्योंकि इस घोषणा पत्र का लक्ष्य सिर्फ राज्य की नीति नहीं है समाज की भी नीति है लोक की भी नीति हैं हम अपना आचरण कैसे रखेंगे हमारी जीवनशैली क्या होगी संगठन संस्कृति क्या होगी ये सब बातें भी इसके हिस्से के तौर पर आनी चाहिए तो इसलिए ये लोकतंत्र सच्चा है या झूठा इस दो सरलीकृत घेरों में बहस को न बांधते हुए जनता के सपने क्या हैं और उसके हिसाब से हमको व्यवस्था में कैसे बदलाव लाने हैं। और इसके लिए समाजिक, राजनैतिक और राज्य व्यवस्था में किस तरह के बदलाव लाने हैं इस बारे में भी बात करनी होगी।

इसके बारे में सुबह भी यही बात हुई कि घोषणा पत्र में व्यक्ति, समाज और राज्य के बीच अंतर संबध बनाए जाने की बात हो। हमारा जन घोषणा पत्र ऐसा हो जिसमें एक समग्र लोकनीति की बात है और इसमें केवल इतना ही नहीं कि राजनीति ही सबकुछ हो। दल उसका एक हिस्सा है। तो हम दलों के सामने खड़े नहीं हैं। लेकिन हमें जो दलों की कमी महससू होती है और हम उसके बारे में जनता के सहारे जनता की ताकत के बल पर उसके बारे में बोलना चाहते हैं तो ये काम बौद्धिक नहीं

हैं। यदि हम इकट्ठे होकर एक मंच से काम करते हैं तो हमें सबकी बात सुननी पड़ेगी क्योंकि जो समाज परिवर्तन है वो सत्ता का भी एक संघर्ष है। इसलिए यदि हमारे पीछे नैतिक और राजनैतिक दृष्टि और नैतिक शक्ति होगी संगठन की शक्ति होगी तो ही हमारी बात सुनी जाएगी नहीं तो हमारे घोषणा पत्र से बेहतर और घोषणा पत्र हो सकते हैं। मुझे लगता है कि यदि हम इन बातों को ध्यान में रखें तो जिस तरह कृषि जोशी की लिखी और राजकमल द्वारा छपी किताब 'उत्तराखण्ड के आइने में' से भी बेहतर बन सकती है। ये नाम लेने के पीछे मेरा ये मकसद नहीं है कि मैं इन्हें श्रेष्ठ साबित कर रहा हूं, आप लोग उससे भी अधिक बौद्धिक हो सकते हैं इसलिए ऐसा न समझें कि मैं उसी को अंतिम मानता हूं।

इस प्रकार घोषणा पत्र बनाने की बात बौद्धिक नहीं है ये बात राजनैतिक है और राजनीति में नैतिक भी शामिल होता है, राज्य भी शामिल होता है, सत्ता भी शामिल है, नीति भी शामिल है और सत्ता संगठन की सत्ता जनता की सत्ता भी शामिल है तो हमें इसे बनाने की प्रक्रिया को ऐसा बनाना है कि इसमें जनता की ताकत प्रतिबिंबित हो। अभी दो समूहों ने इसको अलग–अलग बनाया है दोनों समूहों के प्रतिनिधि इसमें अपनी मुख्य बात रखेंगे और तीसरा राजनीति में नैतिकता लाने के लिए तीसरा प्रयास Citizen Election Watch करके बना है नागरिक चुनाव निगरानी अभियान पवन राणा जी और कई मित्र लोग उसमें हैं और उनसे मेरी बात हुई है और उन्होंने कहा है कि अगर ये दोनों समितियां मिलकर एक घोषणा पत्र बना लेती हैं और फिर वो लोग सभी सत्तर चुनाव क्षेत्रों में विधान सभा के जितने भी उम्मीदवार हैं मुख्य वो अपनी–अपनी सम्पत्ति का जो ब्यौरा देंगे उसको वो जनता के बीच प्रचारित करने वाला काम करने वाले हैं ये आपके जो प्रतिनिधि होने वाले हैं उन्होंने अपना ब्यौरा दिया है आप जांचिए ये ठीक हैं नहीं हैं आपको इसके आधार पर किसको चुनना है तो उन्होंने इस बात पर सहमति दी है कि जब वो ये काम करेंगे उसी समय में हम जन घोषणा पत्र पर भी बहस कर सकते हैं तो अगर ये और हम लोग जहां जन घोषणा पत्र का काम कर रहे हों वहां हम चुनाव पर भी नजर रखें। यदि हम कार्यकर्ता बिरादरी के लोग व्यापक भागीदारी के आधार पर जनता के बीच जाएंगे तो जनता से हमें प्यार और इज्जत भी मिलेगी। वो हमारी बात भी सुनेंगे और अपने पास से साधन भी देंगे। अब 1977 का चुनाव याद कीजिए आपदा स्थिति के कारण जनता ने अपनी जेब से पैसा खर्च किया था और उम्मीदवारों का पैसा बच गया था। इसलिए हम कह रहे हैं कि सबकुछ पैसे के कारण ही नहीं होता। जनता उदासीन है वो इसलिए नहीं कि उसको समझ नहीं आ रहा वो उदासीनता भी एक सक्रिय कर्म है वो उदासीनता और अपने मौन के माध्यम से हमें यह बताना चाह रहे हैं कि हम आपको नकार रहे हैं लेकिन हम लोगों पर अपने–अपने बारे में इतने आत्ममुग्ध रहते हैं कि हमें उसकी

उदासीनता का भी अर्थ समझ नहीं आता। जैसे अभी मुकेश भाई ने ही बताया कि पचास प्रतिशत लोग वोट नहीं देते हैं। तो यदि हम अपने घोषणा पत्र के माध्यम से जनता के मन में स्वस्थ राजनैतिकरण और लोकतांत्रिक राजनीति के प्रति भरोसा जगा पाएं तो वोट न देने वाली बाकी पचास प्रतिशत जनता को भी राज्य और देश की सरकार बनाने के महत्वपूर्ण काम में शामिल किया जा सकता है। धन्यवाद!

प्रशनः– वी.पी. सिंह जी मैं ये कहना चाह रहा हूं कि मंडल आयोग की जो रिपोर्ट लागू हुई उससे समाज में कई विग्रह पैदा हुए या दलितों में शोषितों में एक आत्मसम्मान का जागरण का जागरूकता का भाव पैदा हुआ या नहीं और देश की राजनीति में इसका क्या असर पड़ा, इस विषय में भविष्य में क्या होगा ?

विजय जी :– ये तो अपने आप में बहुत लंबा विषय है। मैं इस विषय में किस पाले में खड़ा हूं यह बता पाना कठिन है। हमने अमर सिंह आदि ने दिल्ली में 7 नवंबर 1990 को सबसे पहले मंडल का समर्थन जलूस निकाला था। उससे पहले तो हम लोग सकते में ही थे कि अपर कास्ट इतने विषैले ढंग से कैसे दलित और पिछड़े का मजाक उड़ा रहा है। हमने उस जलूस का नेतृत्व जरूर किया लेकिन हम मंडल के समर्थक हैं या नहीं यह तो बहस का विषय है इसलिए इसे जाने ही दीजिए। लेकिन जिस ढंग से समाज के छिपे हुए संस्कार उभरकर आए थे उससे हमको काफी पीड़ा हुई और हमको लगता है कि उसके बाद से कई नकारात्मक चीजें भी हुईं जैसे कि उस समय जो ऊर्जा पैदा हुई उसको जनता के हित में उपयोग नहीं किया गया। कर्पूरी ठाकुर, सुरेन्द्र मोहन, रवि राय और रणजीत यादव के अलावा कई समाजवादियों और कई पार्टियों के लोगों ने इसके लिए लगातार संघर्ष किया लड़ाइयां लड़ी इसके बारे में 1980 में रिपोर्ट भी जमा की गई थी। लेकिन बाद में कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण इसका कुछ भी लाभ नहीं हुआ। यदि आज भी ये लोग गरीब और दलित को एक मंच पर लाए बिना लड़ते ही रहेंगे और सामाजिक न्याय की पार्टियां एक नहीं होंगी तो अब भी शायद कुछ नहीं होगा।

मुझे लगता है कि वी.पी. सिंह ने जो काम किया उसके पीछे देवीलाल जी को चित करने की मंशा थी। वे कुछ और बेहतर काम कर सकते थे या नहीं ये अलग बहस का विषय है। वी.पी. सिंह जितना कर सकते थे वो उन्होंने किया हम आप उसका कोई फायदा नहीं उठा सके। हम एक देशज किस्म की क्रांतिकारी विचारधारा गढ़ सकते थे जिसमें गरीबी और सामाजिक विषमता दोनों के बारे में एक साथ लड़ाई हो सकती लेकिन हमने वो नहीं किया। कम्युनिस्ट वामपंथ की सीमा और समाजवादी

वामपंथ का बिखराव होना हमारे लिए शर्म की बात है। लेकिन वी.पी. सिंह ने तो अपना नाम इतिहास में दर्ज कर लिया है।

हम ऐसा नहीं कह सकते कि समाज में विग्रह की भावना पैदा हुई है। हमारे कई रिशतेदार कह रहे हैं कि आरक्षण लागू क्यों हो गया क्योंकि हो सकता है कि इससे समाज में विग्रह हो जाए। नाई, धोबी, तेली, कोली, आदिवासी और गरीब लोग भी समाज का ही एक हिस्सा है। इनके लिए रामविलास, मायावती आदि नेता जमीनी स्तर पर लड़ रहे हैं। इनके साथ समाज के प्रगतिशील तबके के जुड़े होने से इनमें एकता आयी है। पहले हम लोग केवल अपने अध्ययन केन्द्र में ही दलित की बात करते थे लेकिन अब उनके साथ हमारी दोस्ती और रिशतेदारियां भी हो रही हैं। हम लोगों का आपस में एक–दूसरे के घर आना–जाना शुरू हो गया है। तो इस प्रकार देखें तो सत्ता के लिए लड़ रहे लोगों के बीच में तो विग्रह दिखाई देता है लेकिन सामाजिक स्तर पर इनमें बड़े पैमाने पर एकता हो रही है और जब भी हम विशेष अवसर की बात को जनता के हित में, समता के फ्रेम में और समाज के हित में करेंगे तो उसमें एकता होगी।

जिस तरह से अगड़े समाज में टूटन है उसी तरह की टूटन पिछड़े समाज में भी है लेकिन हम अगड़े समाज के लोग अक्सर पिछड़े समाज की टूटन की बात करते हैं जबकि वो दलित की परिस्थितियों को जानता भी नहीं है।

आज दलित समाज में उस तरह की विग्रह की स्थिति नहीं है जिस तरह की लोग बातें किया करते हैं। अब कर्पूरी ठाकुर का ही उदारहण लीजिए। वे जाति से नाई थे। वर्ष 1971 की बात है उस समय इंदिरा गांधी जी अटल बिहारी जी के समक्ष उनके गांव में गई और वहां जाकर उन्होंने कर्पूरी जी का नाम लेकर उनकी आलोचना करनी शुरू कर दी लेकिन उनकी बात सुनकर जनता वहां से उठकर चल दी, इससे स्पष्ट हो गया कि तमाम जाति के लोग उन्हें सर्पोट करते थे। इसलिए यदि आप ईमानदारी से विशेष अवसर की बात करें तो फिर चाहे आप ब्राह्मण हों या किसी ओर जाति के आपका सम्मान जरूर होगा जैसे आप वी.पी. सिंह को ही देख लीजिए, वे ठाकुर थे लेकिन उनके पीछे दलित और अल्पसंख्यक समुदाय के लोग किस तरह से कुर्बान रहते हैं। दलित वर्ग में जो विग्रह आपको दिखाई देता है वो सत्ता के अंधे लोगों के कारण हो रहा है। जबकि वहीं कर्पूरी ठाकुर और देवीलाल जैसे लोगों के कारण दलित वर्ग में एकता की भावना भी साफ दिखाई देती है। धन्यवाद!

संचालकः– विजय जी आपका धन्यवाद और सवाल पूछने वाले का भी धन्यवाद!
अब हम घोषणा पत्र की प्रक्रिया के बारे में बात करते हैं, हालांकि दोनों की वैचारिक समानता एक जैसी ही थी, मेरे ख्याल से दोनों का शक्ति प्रेरणा स्रोत भी एक ही है।

एक तो सुरेश भाई और साथियों ने मिलकर बनाया है और दूसरी प्रक्रिया में हमारे सोहन भाई, गोपाल, विजय आदि लोग हैं। सबसे पहले मैं सुरेश भाई से आग्रह करूंगा कि वो इसकी प्रक्रिया को बारे में खासकर इसके जो आधारभूत तत्व हैं उनके बारे में संक्षेप में बताएं।

सुरेश भाई :— सम्माननीय साथियो दोनों ही जन घोषणा पत्र चाहे वो उत्तराखंड जन घोषणा पत्र फिर वो चाहे उत्तराखंड का दस्तावेज हो इसमें जिन साथियों ने इसे पहले बनाया या फिर जो इसको बना रहे हैं वो सब साथी असल में एक ही कमरे के पशु पक्षी हैं। वो बहुत दूर के पशु पक्षी नहीं हैं 1994 में जब उत्तराखंड राज्य की लड़ाई शुरू हुई थी और 2000 तक जब उत्तराखंड बना तो हमें उत्तराखंड में दो धाराएं दिखाई दी। एक धारा थी सांस्कृतिक कर्म से उत्तराखंड राज्य को हम कैसे देखते हैं और कैसे प्राप्त करना चाहते हैं अब दूसरा हम देखते थे राजनीतिक ढंग से। राजनीतिक ढंग के अनुसार उन लोगों के द्वारा समाज में कई अफवाहें थीं जिसका परिणाम हमने पदयात्रा के दौरान देखा जब मेरे साथ नागेन्द्र और अन्य चार साथियों ने करीब दो सौ गांव में एक नुक्कड़ नाटक प्रदर्शित किया था उस नुक्कड़ नाटक का नाम था उत्तराखंड से समझौता। उस नाटक को और भी कई साथियों ने किया। इस दौरान कई सारी चीजें हुईं। हमने लगभग दो सौ गांवों में इसे आयोजित किया, गांव में हम ये सुनते थे कि 'हमें उत्तराखंड राज' मिल रहा है 'राज्य' नहीं और हम यदाकदा लोगों से पूछ लेते थे उत्तराखंड राज का मतलब राज तो नहीं मिलेगा ये तो राज्य मिलेगा क्योंकि हम उसके लिए काम करेंगे तो मिलेगा ही। वो कहते नहीं, नहीं ये तो बहुत हो गया है यहां आरक्षण इत्यादि बहुत हो गया है अभी मुलायम सिंह 27% आरक्षण लाया, हम जिसके खिलाफ हैं। हम गांव में ये सुनते थे कि अनुसूचित जाति के लोगों को आरक्षण मिल रहा है जबकि आंदोलन के पीछे वो भावना नहीं रही होगी जो कि राजनीतिक बड़े नेताओं की थी फिर चाहे वो कोई भी रहे हों। दूसरा उसी दौरान उस पदयात्रा और नुक्कड़ नाटक के दौरान हमें लगा कि हमें अपनी संस्थाओं के बीच में भी बात करनी चाहिए। और मैं यहां देहरादून में किसी खास व्यक्ति के साथ उसका और अपना इलाज करवाने आया था। उस नुक्कड़ नाटक के बाद नाट्य के साथ—साथ हमने एक होटल में रहकर एक गोला बनाया। एक सफेद कागज लिया एक चार्ट लिया एक गोला बनाया और उस गोले पर हमने बीच में गांव लिख दिया और उसके पीछे यह सोच थी कि जब उत्तराखंड राज्य बनता है तो इस राज्य में हमारी राज्य के क्या सोच होंगे? हम इसे सही विकास की दिशा दे पाएंगे? यहां की नीतियां लोकनीतियां कैसे होंगी, जननीतियां होंगी और हम जन आकांक्षाओं के आधार पर इस राज्य को सही कर पाएंगे ये व्यक्तिगत सोच थी।

उत्तराखण्ड को स्वतंत्र राज्य बनाने के लिए सभी लोगों ने मिलकर काम किया। उस दौरान जो आंदोलन तेज हुआ वह जन गीत गाने से हुआ न कि मुलायम सिंह और मायावती के स्टेटमेंट से। वैसे वहां के सवर्णों की ऐसी मानसिकता नहीं थी। लेकिन किसी ने उत्तरकाशी का किस्सा सुनाया कि कुछ लोगों ने अपना सिर इसलिए मुंडवाया क्योंकि वो मायावती से जलते थे इसलिए उनके सिर मुंडाने का अर्थ था मायावती मर गई है इसलिए उन्होंने वो मुंडन संस्कार किया है। हो सकता है उसकी पीछे की मानसिकता गैर दलित की रही हो।

उस समय हमने पवन जी के साथ विकास नीतियों के बारे में बात की और ये जाना कि तमाम विकास नीतियां गांव के आस–पास घूम रही थी। इसमें कोई दो राय नहीं कि उस समय आप लोग भी राजनीतिक सांस्कृतिक कर्म में लगे थे। हम अपने मसूरी स्थिति सिद्ध के ऑफिस में एक घंटे जमकर बैठे और मैंने उनको कहा यही मौका है जब हम कम से कम राज्य तो बन ही जाएगा। उस दौरान घोषणाएं भी चल रही थीं लाल किले से दो–दो प्रधानमंत्री कह चुके थे कि 'हम उत्तराखंड राज्य बनाएंगे' और फिर भाजपा ने तो खैर इसे साबित ही कर दिया। उसके बाद जब पवन जी के साथ हमारी बातचीत हुई तो हमें लगा कि हमको कुछ बैठकें करनी चाहिए और तब पवन जी ने उसकी स्वीकृति दे दी। अब बैठकों के लिए लोगों के खाने–पीने और रहने की व्यवस्था करना बहुत जरूरी था। तो आप लोग तो जानते ही होंगे कि उस समय हम लोगों ने किस तरह से आपस में जुड़कर इस तरह की व्यवस्थाएं की। तो पहली बैठक में सितम्बर 2000 को हुई। उसके बाद दूसरी बैठक बोड़ा केदार में हुई, तीसरी बैठक सिद्ध ने करवाई देहरादून में उसके बाद उत्तराखंड राज्य का दस्तावेज उत्तराखंड का दस्तावेज बना। उस दस्तावेज की मूल बात सिर्फ ये है कि हम गांव में गांव को केन्द्र में रखकर विकास की किस तरह की नीतियां बनाएं। इस बारे में यहां मौजूद सभी वक्ता और मेरे बाद में आने वाले वक्ता भी अपना वर्णन रखिए। हमने खुद भी इस बात का ध्यान रखा है कि हमारी विकास नीतियां हैं वो पंचायती राज के अधीनियम से भिन्न हों। हमारा पंचायत राज्य अलग है तो हमारी जलनीति अलग हैं हमारा पंचायत राज कुछ और बताता है तो हमारी वन–नीति कुछ और कहती है बल्कि इनमें 36 का आंकडा है। इसका मतलब ये है कि हमारी पंचायतें हमारी ग्राम सभाएं हैं। हमारी ग्राम सभाओं के चारों ओर जो विकास नीतियां घूम रही हैं वो ऐसी हैं जैसे कि वो किसी पेड़ पर झूल रही हों उन्हें कभी भी निकाला जा सकता है। लेकिन वो पेड़ तो आखिर खड़ा है और वो पेड़ गांव है इसलिए हमने इस दौर में ऐसी चर्चा शुरु की।

हम लोगों में करीब–करीब पांच–छः सौ लोगों ने मिलकर उत्तराखण्ड में कौशानी में एक बैठक की और अब सब मिलकर दूसरा घोषणा पत्र परिस्कृत कर रहे हैं। तो ये अच्छी बात है। मुझे लगता है कि अब उसे विस्तार से पढ़ना–लिखना

चाहिए। उसके लिए हमें कार्यशाला करनी चाहिए लोगों को समझाना चाहिए कि उत्तराखण्ड राज्य का दस्तावेज कैसा है। मुझे लगता है कि हमें यह काम मार्च में चुनाव के बाद करना चाहिए क्योंकि चुनाव से पहले कर पाना तो संभव नहीं होगा।

विजय प्रताप :– मुझे लगता है कि जिस तरह से हमने यहां बैठक की उसी तरह से हमें तीन–चार बैठकें और कर लेनी चाहिए और आप सब लोग स्वंय वहां पहुंचे तो बहुत अच्छा होगा।

सुरेश भाई :– मुझे लगता है कि यहां की बातचीत पर जो मोटे–मोटे कागज तैयार हुए हैं और यहां मौजूद एक छोटी सी किताब आदि को एक साथ जोड़ा जाए और फिर उसको कुछ पढ़े–लिखे लोगों के बीच में बंटवाया जाए। तो उसके आधार पर कुछ किया जा सकता है।

हमने पहले शासन प्रशासन को झकझोड़ने वाला उत्तराखण्ड दस्तावेज बनाया और फिर हम उससे निकलकर जल नीति में आ गए और अब हम लोक नीति बनाने का प्रयास कर रहे हैं। लोक नीति का स्वरुप भी आ गया है। लोक नीति संपूर्ण परिस्थितियों संपूर्ण विकास का एक दस्तावेज होगा जो ग्राम सभाओं और ग्राम पंचायतों को केंद्र में रखकर होगा लेकिन हमने ग्राम पंचायत की बात नहीं की है क्योंकि ग्राम पंचायत के अंदर कार्यकारी समिति की बात होती है, ग्राम सभा के तमाम लोगों की बात होती है। यदि हम ग्राम सभा को केंद्र में रखकर विकास नीतियों का दस्तावेज तैयार करते हैं तो निश्चित ही समानता की बात, आखिर में गरीब से गरीब व्यक्ति तक पहुंचने की जो बात जो कि दस्तावेज में परिलक्षित होती है उसे पूरा करने का प्रयास किया जा सकता है और ऐसा प्रयास किया भी गया।

इस तरह की बहस बूढ़ा केदार में नवंबर 2000 को हुई थी। उसमें कम से कम दस–बारह ग्रुप बने थे और उसमें एक ग्रुप ऊर्जा पर था, एक सड़क पर चर्चा कर रहा था एक पंचायत पर चर्चा कर रहा था लेकिन उसमें ये सवाल आये कि हम ऐसा दस्तावेज न बनाएं जो कि हमारे पंचायत राज से न मिलता हो।

यदि हम आज की परिस्थितियों को देखें तो आज हमारे राज्य में ऐसा हो गया है कि यदि पंचायतों का अपना अस्तित्व है तो जल नीति का अस्तित्व है इससे जलनीति पंचायतों को कुछ पूछ ही नहीं रही है। और जल विद्युत परियोजनाओं का फैलाव गांव में कर रही है। इसका मतलब पंचायत राज का 1975 के सुधारों का तो कोई अर्थ ही नहीं रह गया है और सरकार खुद अपने बनाए कानूनों का उल्लंघन कर रही है, जनता ऐसा नहीं कर रही है। इसलिए सरकार को बार–बार ये बताने की जरूरत है कि आपने ही पंचायती राज 1975 में संशोधन किया और आप ही इसके

खिलाफ जाकर लोगों के खिलाफ कार्रवाई कर रहे हैं। आप एक वैकल्पिक नीति के माध्यम से लोगों के जल, जंगल, जमीन को उजाड़ रहे हैं।

इस प्रकार इस दस्तावेज के माध्यम से और उसका प्रयोग क्षेत्र उत्तराखण्ड विशेषकर उत्तराखण्ड को मानकर यदि हम उत्तराखंड राज्य में ऐसा प्रयोग कर सकें तो हम इसे पूरे हिन्दुस्तान में फैलाएंगे और इस ग्रेड को आगे बढ़ाने का यह एक मौका है। और मैं चाहता हूं कि इन कागजों को उठाकर एक वाद–विवाद करना चाहिए और ऐसा करने के लिए हमारे पास अच्छा मौका भी है। हम सब मिलकर इसे आगे बढ़ाएंगे और यही हमारी लड़ाई का मुद्दा भी होगा। आखिर हम लड़ाई लड़ते हैं तो वो वैचारिक लड़ाई होनी चाहिए हमारे सामने कोई ऐसा कागज जरूर होना चाहिए जिसमें हम यहां की संसद को उसके सदस्यों को अपनी बात और अपनी समस्याओं के बारे मे बता सकें कि हमारे कुछ काम हैं जिन्हें आपको इस अर्थात हमारे तरीके से करना है। कई बार ऐसा पूछा भी जाता है कि पूछा भी जाता है कि आप आंदोलन कर रहे हैं तो आप करवाना क्या चाहते हैं? तो हम चाहते हैं कि हम मांग न करें बल्कि संयुक्त रूप से बने इस ब्लू प्रिंट को प्रस्तुत करें ताकि उन्हें हमारा काम करने के लिए मजबूर होना पड़े।

मैं इस दस्तावेज में यह भी निवेदन करूंगा कि हमारी पहली लड़ाई सिर्फ राजधानी बनाने के लिए ही नहीं होनी चाहिए। क्योंकि हमारी विधान सभा या ग्राम पंचायतों में चुनकर आए लोगों को आप चाहे बर्फ के ग्लेशियर में रख दो, चाहे उनको गैरसेंण के ऊंचे पहाड़ पर चढ़ाओ, चाहे उनको तराई के अच्छे जंगलों या लहलहाते खेतों के बीच में रख दो अर्थात आप राजधानी को कहीं पर भी बना दो उनकी स्थिति में कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं है। हम चाहते हैं कि चाहे आप राजधानी को देहरादून बनांए, गैरसैंण में बनाएं या फिर अल्मोडा आदि स्थान पर ही क्यों न बनाएं लेकिन आपकी मंशा क्या है ये तो स्पष्ट ही होनी चाहिए और हमारी वो मंशा हमारे घोषणा पत्र में जाहिर होनी चाहिए और वो हो भी रही है।

उत्तराखण्ड का विकास और स्मृद्धि हमारा सपना है इसलिए घोषणा पत्र में भी कोई विवाद और कोई अनबन नहीं है। लेकिन हमें अपनी समस्याओं का मिल–बैठकर समाधान करना होगा। और हम सब लोग एक ही तरह के साथी हैं फिर चाहे हम गांधी के विचार के हों, लोहिया के विचार के हों या फिर जयप्रकाश जी के। हम इस बात को बिल्कुल नहीं भूल सकते हैं कि आज जो जन–प्रतिनिधि संसद मे जा रहे हैं वो जनता के नहीं हैं वो पार्टियों के हैं और यदि वो हमेशा ही पार्टियों के बने रहेंगे तो इस तरह के जन घोषणा पत्रों की कोई कीमत नहीं होगी क्योंकि जनता के जन–प्रतिनिधि न आज हैं न पहले थे और न अब होंगे और जो चुनकरके आ रहे हैं वो जनता के हो ही नहीं सकते। वे जनता के तो तब कहलाए जांएगे जब एक व्यक्ति को

कम से कम 50 प्रतिशत से अधिक वोट मिलें। यदि वो 15 प्रतिशत वोट लेकर ये कहें कि वो जन प्रतिनिधि बन गये तो मैं इसे ठीक नहीं मानता।

हमारे जन घोषणा पत्र में भी यही लिखा गया है कि कोई भी जन प्रतिनिधि यदि उसे अपने चुनाव क्षेत्र में 51 प्रतिशत वोट नहीं मिला है तो वो जन प्रतिनिधि नहीं माना जाए उस चुनाव को भी रद्द माना जाए। इसमें ये भी लिखा है कि उस चुनाव को रद्द माना जाना चाहिए क्योंकि उसके कोई मायने ही नहीं है। यदि हम लोकतंत्र की बात करते हैं तो वो कम से कम 50 प्रतिशत से अधिक तो होना ही चाहिए। इसके अलावा काई भी उम्मीदवार अपने नाम की घोषणा छः महीने पहले कर दे ताकि इस बात का पता लग सके कि वो इस दौरान कितनी दारू बांटता है और कितना पैसा खर्च करता है। और दूसरा इसमें लिखा गया है कि पंचायत राज के कानून को ही मजबूती से आगे बढ़ाना चाहिए। जिसके अंदर जल नीति, वन नीति, प्राकृतिक संसाधनों की नीति, नहर की नीति या सिंचाई की नीति आदि जो भी नीतियां होंगी वो सब ग्राम पंचायतों को केंद्र में रखकर बनेगी और ग्राम पंचायत उसे लेकर राज्य और केन्द्र स्तर तक जाएगी। घोषणा पत्र में संसाधनों के वितरण, उसके प्रयोग और उसके मूल्यांकन और उसके लिए जो सारी व्यवस्था बनाई गई है उसके लिए पूरी हिमालय नीति तक की बात की गई है। इसमें यह भी है कि न केवल यह राज्य बल्कि पूरब से लेकर के पश्चिम तक जो हमारे तीन हिमालय क्षेत्र हैं उस हिमालय क्षेत्र का एक प्राधिकरण बने, 'हिमालय विकास प्राधिकरण' जो कि हिमालयी नीति के तहत बनें।

संचालकः– आपने बड़ी अच्छी बात बताई, भूमिका से निकलकर आपने जो राजधानी की बात कही मैं उससे बहुत सहमत हूं।

अन्य वक्ताः– मैं आपकी इस बात से पूरी तरह से सहमत हूं कि हम लोग राजधानी को मुद्दा नहीं बनाएंगे। लेकिन क्या वास्तव में हम राजधानीविहीन राज्य बना सकते हैं, या राजधानी का कोई विकल्प ढूंडा जा सकता है? या फिर क्या हम राजधानी को विखंडित कर सकते हैं ? यदि घोषणा पत्र में इसकी भी घोषणा कर दी जाए तो अच्छा होगा। धन्यवाद !

संचालकः– अब मैं बसंत भाई से आग्रह करूंगा कि वो जन घोषणा पत्र के पहलू पर चर्चा करें।

अन्य वक्ताः– मैं आपकी इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि हमें राजधानी को इतना महत्व नहीं देना चाहिए। इसी बारे में मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूं कि क्या है

राजधानीविहीन राज्य की घोषणा नहीं कर सकते ? क्या राजधानी का कोई विकल्प ढूंडा जा सकता है? क्या ऐसा हो सकता है कि हम लोग राजधानी को अलग–अलग जगह पर विखंडित कर दें? ये मेरे कुछ सवाल हैं धन्यवाद।

संचालकः– अब मैं बसंत भाई से आग्रह करूंगा कि वो घोषणा पत्र के पहलुओं पर अपनी चर्चा करें।

बसंत भाईः– सुरेश भाई ने जन घोषणा पत्र के बारे में जो भी बातें कहीं मेरी बातें भी उसी के इर्द–गिर्द घूमती क्योंकि शायद हम सब लोग एक ही पृष्ठभूमि से निकले हुए हैं और हमारी बातें बहुत ज्यादा अलग नहीं होंगी।

हमारे कई साथी बार–बार इस बात पर चर्चा करते रहे और जूझते रहे कि क्या इसे जनता का घोषणा पत्र कहा जा सकता है। या कई साथियों के बीच में ये सवाल भी उठते रहे कि क्या हम जिस घोषणा पत्र से जूझते रहे वो जनता का घोषणा पत्र कैसे हो सकता है। तमाम चर्चाओं और संवादों के बाद धीरे–धीरे ये बात समझ में आने लगी कि जो लोग जनता के बीच जाकर काम कर रहे हैं या जनता के मूल सवाल को लेकर काम कर रहे हैं फिर चाहे वो पानी का मुद्दा हो या फिर किसी और मुद्दे के लिए किया जाने वाला आंदोलन ही हो वो अधिक लोगों को प्रभावित कर ही नहीं पा रहा है। क्योंकि शायद वो मुद्दे नेताओं के पास या शायद आज जो आम पार्टियां हैं उनमें वो मुद्दे जा ही नहीं पा रहे हैं। उनके कारणों को जानने के बाद ये समझ में आया कि जनता उनसे उन मुद्दों की मांग तो कर ही नहीं रही है या यूं कहा जाए कि जनता को तो वो मुदे समझ में ही नहीं आ रहे हैं तो ज्यादा ठीक होगा।

हमारी कही बातें कुछ छिटपुट क्षेत्रों के लोग ही समझ पाते हैं और अधिकतर लोगों को तो बातें समझ ही नहीं आती हैं जिससे हम लोग तो किसी चीज को पैदा कर आंदोलन कर देते हैं लेकिन उसका असर पूरे प्रदेश में नहीं होता है। जिस कारण जो चलता है वो चलता रहता है यहां तक कि राज्य का पूरा ढर्रा अपने हिसाब से चलता रहता है फिर चाहे कांग्रेस की सरकार आए, बीजेपी की आए या फिर यूकेडी की। इस प्रकार ये ढर्रा तब तक वैसा ही चलता रहेगा जब तक कि यह आम जनता की मांग न बन जाए।

इसलिए मुझे लगता है कि हममें से तमाम आंदोलनकारी साथी जो भिन्न–भिन्न विषयों पर काम कर रहे हैं उन सबको जुड़कर जनता का घोषणा पत्र बनाना होगा। क्योंकि वो लोग जो भी कर रहे हैं जन–जन से लेकर कर रहे हैं और वो लगभग सभी लोगों की इच्छाओं और उनकी समस्याओं के बारे में अच्छी तरह से जानते समझते हैं। क्योंकि हमारे अधिकतर नेताओं को अपने देश, देशवासियों और पर्यावरण की कोई

चिंता ही नहीं है। यहां तक कि उन्हें इस बात का भी कोई अंदाजा नहीं है कि किस क्षेत्र में और कहां कितना पैसा खर्च करना है आदि।

इसलिए मुझे लगता है कि हम जिस भी दस्तावेज को बनाएं उसमें सभी ग्राम पंचायतों की मोहर लगा लें अर्थात लगभग साढ़े तीन हजार ग्राम पंचायतों के अंदर आने वाली आम जनता की भी उसमें सहमति हो और फिर उस दस्तावेज को मुख्यमंत्री को भेंजे कि हम लोगों ने आपस में मिलकर ये सब तय किया है कि हमें अपने क्षेत्र में क्या करना है और कैसे करना है आदि। ऐसा न हो कि जैसे हमने पहले पांच सौ पंचायतों की मदद से जल नीति के बारे में किताबें छपवाईं और वो मुख्यमंत्री को भिजवा दीं उनके वहां किताबों का इतना ढेर लग गया और इससे पहले कि वो उन किताबों को पढ़ते वो उनका वजन देखकर ही घबरा गए और वो जनता के लिए कुछ भी न कर पाए। इसलिए हमें जनता की इच्छा और उनकी जरूरतों के हिसाब से केवल एक दस्तावेज बनाकर और उसमें पंचायतों की मुहर लगवाकर मुख्यमंत्री को देनी चाहिए ताकि वो जनता की इच्छा के बिना कोई भी नीति पारित न कर सकें। इस प्रकार हमें इस मुद्दे पर सोचना और उसमें काम करने के बारे में विचार करना चाहिए।

विजय जी :— यदि दो समूहों ने मिलकर इतना काम किया है तो इसपर मिलकर आगे भी काम करना चाहिए। इसके लिए अधिक से अधिक दो दिन बैठने की जरूरत है और उसके बाद पंचायतों के माध्यम से उसकी दस हजार कॉपियां छपवाकर ये काम किया जा सकता है।

अन्य वक्ता :— सबको मेरा नमस्कार, मैं किसी औपचारिकता के बिना अपनी बात संक्षेप में करूंगा। हमने यहां समता आंदोलन के माध्यम से समता और जन घोषणा पत्र के बारे में बात की और अब हमने ये तय किया है कि हम चुनाव के बाद फिर से मिलेंगे लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं कि कहीं ऐसा न हो कि हम फिर एक साल बाद मिलें, और फिर उसके बाद एक साल बाद मिलें और इस दौरान हमारे बीच किसी भी तरह की बातचीत न हो क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो हमारी आज की बातों और सहमति का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा। हमें अपने—अपने स्तर पर समतामूलक समाज बनाने और उत्तराखण्ड में चल रही परियोजनाओं में अपना हिस्सेदारी के लिए बातचीत करते रहना चाहिए। धन्यवाद!

विजय प्रताप:— यहां बहुत ही जिम्मेदार बहस हुई है, ये आगे भी बढ़े इसके लिए हम सभी को मिलकर प्रयास करते रहने चाहिए। धन्यवाद !

विषयः— उत्तराखण्ड में समता आंदोलन का अस्तित्व और उसका महत्व
स्थानः— हिमालय टार्च बीयरर सैन्टर, कोठाल गेट, देहरादून
तिथिः— 14—16 अप्रैल 2007

विजय प्रतापः— आज आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे समाज में छुआछूत का अस्तित्व है और उसके अस्तित्व को बाकी समाज को मानना पड़ रहा है। अब भी गांव में ऐसा ही हो रहा है वहां आज भी पूछा जाता है कि किसका गांव है? 20 अधिपत्य वाले ठाकुरों का गांव हो तो कहा जाता है कि ठाकुरों का गांव है और कुछ अन्य जातियों के साथ ब्राह्मण बहुल गांव हो तो कहा जाता है कि ब्राह्मणों का गांव है। इस प्रकार हमारी चेतना में अभी भी जातिवाद की छाप बहुत गहराई तक बनी हुई है।

समाज में समानता कायम करने में बाबा साहब अंबेडकर के योगदान को नकारा नहीं जा सकता, हममें से अधिकतर साथी मार्क्स, किसी तरह के रंगवाद या गांधी जी से प्रेरणा पाकर समाजवादी काम में सक्रिय हुए हैं लेकिन आज भी हममें से अधिकतर लोग दलित समाज में पैदा हुए व्यक्ति के साथ होने वाले असमानता के व्यवहार के कारण उसकी अंतःचेतना में पड़ी दर्द की छाप के बारे में जानते ही नहीं हैं।

अभी समय आभाव के कारण हम यहां उनकी समस्याओं तथा उनके दर्दों को विस्तार से नहीं बता पाएंगे। मेरी बस इतनी ही विनती है कि हम उस 15 प्रतिशत समाज के बारे में सोचें, हम सोचें कि उनके अंतर्मन में क्या चल रहा है। अगर आप उनके सपनों के लिए उतना समय भी दे पाएं, जितना समय आप एक पौधे को लगाने में देते हैं तो उनके लिए काफी कुछ किया जा सकता है और सामाजिक रूप से भी उन्हें लाभ प्राप्त हो सकता है।

समाज में समता कायम करने के लिए गांधी जी और अंबेडकर जी ने काफी प्रयास किए। मैं ये नहीं कह रहा कि इन दोनों के विचार वास्तव में और गहरे अर्थों में एक ही हैं और आपको भी ऐसा ही मानना चाहिए। बल्कि मैं ये कह रहा हूं कि जिस तरह हमारे—आपके प्रेरणा स्रोत और वैचारिक मूल्य अलग हो सकते हैं उसी तरह हम किसी की भी बात को अलग—अलग अर्थों में ले सकते हैं लेकिन यदि हम उनकी बातों को अपनेपन से समझें तो उनकी बनावट और उनकी बातों का मर्म एक भी हो सकता है। इसी तरह अगर हम समाज के वंचित तबकों की बातों को भी अपनेपन से सुनेंगें, तो वे लोग भी अपने—आपको समाज से कटा तथा असहाय महसूस नहीं करेंगे।

इसीलिए जैसा भुवन जी ने कहा कि हम चाहते हैं कि गांधी जी तथा बाबा साहब की जन्मतिथि और पुण्य तिथि के मौके पर सब लोग एकत्र हों ताकि हम अपने अगवा प्रतीक पुरुषों के बारे में विस्तार से जान सकें, उनके प्रति अपनी भावनाओं को समझें, ताकि हम लोग आपस में एक वैचारिक सफाई दे सकें और एक खूबसूरत संवाद कायम कर सकें। इन संवादों का उद्धेश्य एक–दूसरे को सहमत करना या बदलना नहीं है बल्कि एक–दूसरे को समझना है। ताकि जहां हम लोग जानकारी के आभाव में एक–दूसरे को अलग–अलग मानकर बैठे हैं, अलग–अलग फेरों में बंधे हैं, उन घेरों को दूर किया जा सके और गांधी जी के अनुसार मानवता के उस व्यापक घेरे का निमार्ण किया जाए। क्योंकि वास्तव में तो सभी घेरे आपस में एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं जैसे समुद्र में पत्थर डालने से उसमें कई घेरे बनते हैं और एक घेरा दूसरे घेरे में मिलता है, एक घेरा दूसरे घेरे की छटा बनाता है। वैसे ही हम, चाहे हम मार्क्स, लेनिन, माओ या नेहरू को मानें लेकिन हमें एक–दूसरे के वैचारिक फर्क की समझ होनी चाहिए। जैसे नेहरू जी ओद्योगीकरण की बात करते थे और गांधीजी लोकतंत्र की अपेक्षा स्वराज शब्द का प्रयोग करते थे। इसलिए हमें इनकी बातों को अलग मानने की अपेक्षा आपस में लगातार बात करते रहना चाहिए तभी हम एक–दूसरे को समझ पाएं।

आज दलीय और राजनीति के नाम पर बने संगठनों के बीच सर्वानुमति के नाम पर बहस बंदी का प्रस्ताव पास हो चुका है। इसलिए हमें लोंगों के माध्यम से छोटे–छोटे समूहों, एनजीओ, शोध संस्थानों, फंडिंग और नॉन फंडिड आंदोलनों के माध्यम से राजकीय और राष्ट्रीय बहस को जन्म देने के लिए इन विषयों पर बात करने का विचार कर रहे हैं। हमारे तय ढाई दिन के एजेंडे के आखरी दिन हम लोग संस्कृति पर बात करने के साथ–साथ इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि आज हमारे आंदोलनों में आम जन हिस्सा क्यों नहीं ले रहे हैं।

आज संगठन और संगठन का विचार, आंदोलन और आंदोलन में जनता की भागीदारी जैसे कुछ ऐसे व्यापक और जटिल सवाल हैं कि जिन्हें एक ही दिन की चर्चा में शामिल नहीं किया जा सकता। इसके लिए हम, अब से लेकर कल शाम तक अनौपचारिक ढ़ग से सुझाव दे सकते हैं। आप भुवन जी को अपने सुझाव लिखित या जबानी में भी दे सकते हैं। हमें देखना है कि संगठन पर बात करते समय हमें अपनी बातों को किन चीजों पर सीमित करना है। जैसे पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता का संगठन में क्या सम्मान होगा? संगठन के आंदोलन के वितीय साधन कैसे होंगे? देशी–विदेशी और विदेशी का सवाल तो अक्सर उठता ही रहता है जो, हमारे सामाजिक कर्म के अलग–अलग कारक हैं स्वतंत्र और लोक विपक्षीय, बौद्धिक, एनजीओ, दलों के

संवेदनशील कार्यकर्त्ता, इन सब के बीच में आपस में क्या रिशता है? संगठन के बीच में राष्ट्रीय फलक पर असर डालने के लिए किसकी क्या भूमिका होगी? सार्वजनिक जीवन में मौजूद अलग–अलग कर्त्ताओं की क्या भूमिका हो सकती है? आज किसकी क्या सीमा है? आज इन सबके लिए एनजीओ, चौपाल नुमा कार्यक्रम और चार–पांच साल से डब्लू.एस.एफ. चल रहा है लेकिन इनमें से कुल दो या तीन सवालो पर ही चर्चा हो सकती है। लेकिन हम पूरे संगठन पर बात करते हुए महत्वपूर्ण सवालों की सूचि बना सकते हैं। अगर हमारी, आपसी बातचीत से सही सवाल निकलकर आएं तो हम इस संवाद को लगातार चलाते रहेंगे इसलिए इस शिविर में इन बातों पर बात हो सकती है। यदि हम आज सही सवाल या जो सवाल हमें महत्वपूर्ण लगते हैं जैसे आज का व्यक्तिवाद, उसकी जड़ें? आज कई बड़े संगठन एक या दो व्यक्तियों पर ही क्यों आधारित हो गए हैं? क्योंकि जब वह व्यक्ति नहीं रहता तो वे संगठन, संगठन न रहकर एक इमारत भर रह जाती है, वो, रजिस्ट्रेशन या रजिस्ट्रार सोसाइटी का नंबर रह जाता है तो ये जो विडंबनाएं हैं इस प्रकार यदि हम इसकी या ऐसी ही अन्य समस्याओं की सूचि बना लें तो ज्यादा महत्वपूर्ण बात होगी। ताकि महत्वपूर्ण बातों पर जल्द से जल्द सार्वजनिक बातचीत शुरू हो पाए। ये हमारे आखरी दिन का विषय होगा।

कल की बातचीत के लिए हमारे साथी असीम श्रीवास्तव जैसे चार–पांच विशेषज्ञ यहां आए हैं। असीम जी ने कुमांऊ औपनिवेशिक काल के दौरान वनों की स्थिति के बारे में तथा उसके बाद स्थापित वन पंचायतों पर अध्ययन किया है। हमने उन्हें इसी बात पर बोलने का आग्रह किया था पर, शायद उन्हें लगा कि इतने विद्धव जनों के बीच आकादमिक आंकड़ों से ही बात करनी पड़ेगी इसलिए वे अपनी थीसिस खोजने लगे लेकिन फिर उन्होंने संदेश भेजा कि, वो आजकल स्पेशल इकॉनोमिक जोन के बारे में अध्यन कर रहे हैं और उसी के बारे में बोलना चाहेंगे। अब ये सदन की इच्छा है और मेरी भी यही इच्छा और सुझाव है कि इन दोनों ही बातों पर आप अपने संवाद तथा बातचीत रखें क्योंकि हम मोटी–मोटी बातों को ही जानना चाहते हैं।

ये अपने–आप में कोई एक ही शिविर नहीं है। ऐसे शिविर आज तक होते आए हैं और आगे भी हो रहे हैं इसलिए आप सब लोग जिन भी सवालों पर काम कर रहे हैं उनके बारे में सभी लोगों को विस्तार से समझाएं क्योंकि आप जिन सवालों पर काम कर रहे हैं उन्हें आप ही अधिक गहराई और पूर्णयता से समझा सकते हैं। लेकिन अगर आप में से कोई वक्ता ऐसा सोचता है कि वो एक ही बार में अपनी लगभग सभी बातों को कह तथा समझा पाएगा तो फिर शायद उसके हाथ निराशा ही लगे। क्योंकि आज

विशेषज्ञता का युग होने के कारण कुछ लोग कुछ विशेष कामों को ही विशिष्टता के साथ कर सकते हैं और ऐसे में हम सभी लोग यह सोचते हैं कि जो काम हम कर रहे हैं अगर हम वो काम न करें तो शायद प्रलय आ जाए। आज हमारे पास एक दूसरे को सुनने की क्षमता बहुत सीमित हो गई है। हम सोचते हैं कि हमारा इतना महत्वपूर्ण काम है और उसको कोई सुन नहीं रहा हो तो हमें निराशा होगी।

जिस तरह अगर किसी विशिष्ट रिशतेदार को शादी में बुलाना हो तो निमंत्रण देने स्वंय उसके घर जाना पड़ता है उसी तरह से आप भी समझिए कि हम सब एक ही बिरादरी के हैं और इतना कष्ट सहकर इस बिरादरी को अपने कामों के बारे में बताने तथा अपने होने वाले कार्यक्रमों के बारे में एक निमंत्रण देने आए हैं। अगर हम इसी सोच के आधार पर काम करेंगे तो उम्मीद है कि हम सब मिलकर काम कर सकेंगे और आने वाले सक्रिय वर्षों में हमारे बीच एक काम का सिलसिला कायम हो जाएगा। इसीलिए जब आप लोगों ने इस बैठक के एजेंडे के बारे में सवाल किया गया तो मैंने कहा था कि, इस बैठक का कोई खुला एजेंडा नहीं है। ये तो एक खुली बातचीत और गपशप है जिसमें हमने एक–दूसरे को समझना है। ऐसा कहकर मैं, इस सवाल को टालना नहीं चाहता था, मेरे मन में भी था कि हम एक–दूसरे को समग्र ढंग से पहचानें और उस पहचान के सिलसिले को एक सामाजिक प्रवाह का रूप दे सकें।

इसी उद्धेश्य को पूरा करने के लिए हम सब लोग अपने–अपने विचारों को रखेंगे। हमारे बीच अमरीश जी मौजूद हैं वे एक समग्र किस्म का क्रांतिकारी, लोकतांत्रिक मंच बनाने की कोशिश में लगे हैं और उन लोगों के लिए अभियान भी चलाने जा रहे हैं। वे इन दोनों विषयों में अपनी बात कहेंगे। मैं ये सुझाव देना चाहता हूं कि संगठन संस्कृति पर बात करते समय हम स्कूल अभियान और समग्र वैचारिक जमीन पर खडे मंच के बीच मौजूद तनाव एवं विमुखता पर बात करें तो अच्छा रहेगा। इस विषय पर हम लोग आपस में बैठकर भी बात कर सकते हैं।

अमरीश जी के बाद प्रो. मेहर इंजीनियर जी बात करेंगे। वे रिटायर होने के बाद अपने–आपको प्रोफेसर न मानकर हमारे–आपकी ही तरह एक कार्यकर्ता मानते हैं। प्रो. इंजीनियर बोस इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर हैं, भौतिक शास्त्री हैं और अगर कार्यकर्त्ता के रूप में देखें तो वे अभी सिंगूर और नंदीग्राम पर फिल्म बनाकर लाए हैं। वे पूरे तौर पर इस आंदोलन में शामिल रहे हैं। हम चाहते हैं कि आज भोजन के बाद या फिर जिस दिन भी स्क्रीन की व्यवस्था हो जाए, उस दिन हम ये फिल्म देखें। हम इसी फिल्म के बहाने से भारत में वामपंथ के होने वाले रूप के बारे में जान पाएंगे। हम चाहते हैं कि इसी दौरान स्पेशल इकॉनोमिक जोन पर भी चर्चा हो जाए। आज हमारे विश्व की

जलवायु में तेजी से परिवर्तन आते जा रहे हैं, यह एक बहुत बड़ा सवाल है इसलिए इस विषय पर पूरी दुनिया में बहस हो रही है। हमने इस बारे में कुछ विशेषज्ञयों की एक रिपोर्ट डाउनलोड करके बांटी है। हमने विराज पटनायक जी से भी आग्रह किया है कि वे खाद्य सुरक्षा के जिस अभियान में लगे हैं उसके बारे में उसकी राजनीति के बारे में उसकी सीमाओं और संभावनाओं के बारे में हमें बताएं। अगर आज ये समता वाला सत्र जल्दी खत्म हो जाए और आयोजक मंडल अनुमति दें तो आज ही भोजन के बाद इस सत्र को रखा जा सकता है।

उसके बाद डॉ. रितु प्रिया जी स्वास्थय के संबध में अपनी बात रखेंगी उन्होंने स्वास्थय पर और खासकर दलित समाज के भोजन तथा स्वास्थ्य तथा कल्याण की सोच के बारे में बहुत कुछ लिखा और सोचा है। यहां हम सेडैड की ओर से स्वास्थ्य पर एक व्यवस्थित शोध तथा नीतिगत हस्तक्षेप कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि वे इस विषय पर अपनी बात रखें।

रघु भाई, सरकार सेज, वन पंचायतों तथा ऐसे ही बहुत से सवालों पर सक्रिय रहे हैं। हम चाहते हैं कि जब हम उन मुद्धों पर विचार कर रहे हों तो वे अपनी बात रखें। मैं ये सब कुछ एक उदाहरण के तौर पर कह रहा हूं, बाकी कौन, कब, और क्या कहेगा, इसके बारे में तो आयोजन समिति ही बता पाएगी।

आखरी दिन होने वाले संगठन सत्र में इस बात पर चर्चा होगी कि पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता के लिए सम्मानपूर्वक वित्तीय व्यवस्था कहां तथा किस प्रकार से हो? इस विषय पर रघुपति जी ने काफी कुछ लिखा है और जैसे कि आप जानते ही है कि रघुपति जी और अख्तर हुसैन जी जयप्रकाश नारायण द्वारा बनाई गई सड़क संचालन समिति में सक्रिय रूप से काम कर चुके हैं और आज भी वे उसी जमीन पर खड़े होकर उसी ढ़ग से संघर्ष कर रहे हैं। आज वे हमें अपने अनुभवों से अवगत कराएंगे। हमें उम्मीद है कि आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले हमारे बिहार आंदोलन के साथी श्री घनश्याम जी भी हमारे बीच उपस्थित हो पाएंगे। अभी वो दिल्ली में होने वाली मेघा जी की बैठक में शामिल होने के लिए दिल्ली गए हैं। उम्मीद है कि वे कल तक हमारे बीच मौजूद होंगे। अगर वे आ जाते हैं तो वे संगठन वाले सत्र में होने वाली चर्चा में शामिल हो जाएंगे।

जैसे कि आप हमारी राजनीति में मौजूद विडंबनाओं के बारे में जानते ही हैं कि भाजपा को सत्ता में न लाने के लिए नैतिक तंत्र बनता है और गुजराल साहब तो उसी

कारण से प्रधानमंत्री बन जाते हैं और उनका बेटा राज्य सभा में पहुंच जाता है। भाजपा को न लाने के नाम पर देवगौड़ा प्रधानमंत्री बनते हैं और वो अपने बेटे को मुख्यमंत्री बना देते हैं। अगर आपको भी यही लगता है यह ग्रुप किस हद तक सार्वजनिक तथा आंतरिक हैं तो हम इस मुद्दे पर एवं इस पहेली को आपसे जानना चाहेंगे कि आखिर हम अपनी जमीं पर खड़े कैसे हों ? क्योंकि ये मेरे लिए खास दिक्कत की बात है क्योंकि जो मेरे रोज मर्रा के संगठन संबधी फैसले और काम हैं उसमें मुझे प्रेरणा स्रोत के रूप में कई आर.एस.एस. के लोग याद आते हैं जो अभी भी मेरे समकालीन, मेरे हमउम्र हैं लेकिन मैं उन्हें अपने प्रेरणा स्रोत के रूप में ही देखता हूं क्योंकि वो अपने मूल्यों पर दिखावे के लिए काम नहीं करते इसलिए उन्हें कोई जानता ही नहीं है यहां तक कि उन्हें उनके पड़ोसी भी नहीं जानते हैं। वे अपने मूल्यों को जीवन में उतारने के लिए एक बड़ी कीमत दे रहे हैं। लेकिन फिर भी उनका कोई नाम नहीं है वे गुमनामी के अंधरे में जी रहे हैं। इसके बावजूद मैं यह मानता हूं कि संघ और भाजपा मिलकर देश और समाज को तोड़ने का काम कर रहे हैं। इस देश को साम्राज्यवाद का पिच्छलग्गू बनाने में उनकी बड़ी निर्णायक भूमिका है। आई.एस.आई. को बड़े पैमाने पर मिलने वाले नौजवानों की भर्ती में आए.एस.एस. की बड़ी भूमिका है। इसके बावजूद हमारी हर पार्टी सत्ता का लालच रोक नहीं पाती और हम उनके साथ पहुंच जाते हैं क्योंकि हम लोगों की लोकतांत्रिक निष्ठा के अनुसार हमें दुशमनों से भी संवाद कायम करना चाहिए, इसलिए हम आतंकवाद से भी संवाद चलाना चाहते हैं। लेकिन जब हम उनसे संवाद चलाते हैं तो लोगों को हमपर भरोसा ही नहीं होता है। वे समझते हैं कि हम भाजपा से संबध बनाने का इंतजाम कर रहे हैं। इस प्रकार से न केवल उनके साथ जाने वाले का नुकसान होता है बल्कि लोकतंत्र को एक गहरे अर्थ में चोट पहुंचती है। क्योंकि अक्सर जो दल वहां गए हैं उन सब की पोजीशन यही है कि वे दोनों से बराबर दूरी रखेंगे। हम जानते हैं कि भाजपा सबसे बड़ा खतरा है और आर.एस.एस. फाजीवादी है उसके बावजूद भी हम वहां पहुंच जाते हैं, इसके बारे में हमें आपकी राय मालूम है। वहां पहुंचने वाले लोगों तथा जिनके नेतृत्व में लोग पहुंचते हैं उनके मानस के बारे में अगर कोई साथी संगठन वाले सत्र में कुछ बता पाए तो हमें बहुत मदद मिलेगी।

मैं, उत्तराखण्ड के बारे में कुछ कहना चाहता हूं लेकिन, ऐसा कहने में मुझे बहुत संकोच हो रहा है क्योंकि मैं बाहरी आदमी हूं। वैसे तो वसुदैव कुटुंबकम में पूरा वसुधा कुटुंब शामिल होता है इसलिए मुझे, अपने–आप को बाहरी नहीं मानना चाहिए लेकिन जो चालू अर्थ है उसके हिसाब से मैं उत्तराखण्डी नहीं हूं। मैंने देखा कि आपके यहां बहुत प्रगतिशील से भी प्रगतिशील साथी भी लगभग आर.एस.एस. की तरह ही बात

करते हुए कहता है कि हमारे यहां तो जातिवाद है ही नहीं। जबकि ऐसा नहीं है। मायावती ने जिस तरह के बयान दिए हैं और देती आई हैं उनके बावजूद वह पहाड़ में भी किसी को खड़ा करे, वो जीतता ही है। मेरा मानना है कि अगर आप समाज के एक हिस्से पर हो रहे अत्याचारों के बारे में सजग नहीं हैं तो उसके बारे में कहने और सार्वजनिक विमर्श की कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रहती है। उससे यही नतीजा निकलता है कि जो लोग उत्तराखण्डी पहचान से प्यार करते हैं, वे अगर कुछ कहें तो लोग कहते हैं कि हां, ठीक है और जो उस पहचान के सबसे सख्त रूप से खिलाफ है लेकिन दलित पहचान के करीब जान पड़ते हैं उसको स्वतः रूप से वोट मिलता है। उसे बिना तंत्र के और करीब–करीब बिना पहचान के वोट मिलता है। उसका हर वोटर कार्यकर्त्ता की तरह व्यवहार करता है। आज अगर हम इस जातीय सवाल या इसकी पहेलियों के बारे में बात कर सकें तो ठीक रहेगा।

मुझे समाजवाद का ज्यादा अध्ययन नहीं है। लेकिन आज से पहले तक हमारे संस्कारों में जातीय अस्पृश्यता जिस गहरे हद तक समाई हुई थी, उसमें आज सुधार हुआ है और होता जा रहा है। आज हमारा राष्ट्रपति अस्पृश होता है, हमारे कई प्रदेशों में अस्पृश कहे जाने वाले व्यक्ति ही मुख्यमंत्री होने लगे हैं और कभी न कभी भविष्य में हमारे प्रधानमंत्री भी अस्पृश तबके से होने ही वाले हैं और इस बात को कोई रोक भी नहीं सकता है।

ये अपने–आप में एक बड़ी उपलब्धि है। लेकिन इसके साथ पहेली जुड़ी हुई है आदिवासी, पिछड़ा किसान, दस्तकार जातियों में से कम लेकिन पिछड़ी जातियों, अन्य पिछड़ी जातियों से आए लोग संसद में बहुसंख्यक संख्या में पहुंच रहे हैं। इसलिए इन लोगों को गांधी जी के सिद्धांत, अंतिम आदमी को भी लाभ मिलने वाले सिद्धांत के अनुसार काम करना चाहिए लेकिन वास्तव में उससे ठीक उल्टा हो रहा है। इन समाजों से निकले हुए नेता इतने बड़े पैमाने पर हमारी विधायिकाओं, हमारी संसद में है लेकिन फिर भी देश उसकी उल्टी दिशा में जा रहा है। हमें इस पहेली पर विचार करना चाहिए।

मेरी समझ से लालू प्रसाद जी 15 साल तक राज कर चुके हैं, मायावती जी को उत्तराखण्ड में बड़े पैमाने पर वोट मिलता है। उनकी ताकत उत्तरोतर बढ़ती जा रही है। हर बार ऊपरी जात के लोगों तथा अन्य लोगों के कारण उनकी पार्टी को तोड़ा जाता है फिर भी हर बार उनकी ताकत बढ़ती है ये जो तथ्य है शायद इसका जवाब भी इसी में छुपा हुआ है कि हम इस समाज के प्रति इतने बेखबर कितने संवदेनशून्य

हैं कि वो व्यवस्था बाकी कुल समाज के बारे मे उसका क्या होगा इसके बारे में सोचने की उनके पास कोई गुंजाइश नहीं होती है। व्यवस्था के अंदर अपना हिस्सा कैसे बनाना है ? व्यवस्था कब बदलेगी, कैसे बदलेगी ? इसके बारे में अभी उनको सोचने का अवकाश नहीं है। जनता के इतने बड़े पैमाने से चुनकर आने के बाद भी वे व्यवस्था को बदलने की बजाय, व्यवस्था में अपनी जगह बचाने तथा उसका विस्तार करने के बारे में सोचते हैं।

आज एक नई व्यवस्था जन्म ले रही है। जिसमें मंहगे चुनाव होने के साथ स्पेशल इकॉनोमिक जोनस (विशेष आर्थिक क्षेत्र) बन रहे हैं। जैसे कि रघु भाई कहते हैं कि नई रियासतें बन रही हैं। जिसमें आप हम सब दोयम दर्जे के नागरिक होंगे और उसमें घुस नहीं सकेंगे। वहां देश का कानून लागू नहीं होगा। मैं पूछना चाहता हूं कि राजनीति में इतनी बड़ी संख्या में बहुजन लोगों के शामिल होने के बाद भी इस तरह के राजे–रजवाड़े कैसे आ पा रहे हैं।

मुझे लगता है कि हम लोगों में व्याप्त जातिवाद के कारण ही ऐसा संभव हो रहा है। समाज में व्याप्त जातिवाद के कारण जो दलित और बहुजन समाज, पूरे समाज और व्यवस्था के बारे में अपनेपन से सोच ही नहीं पा रहा है। उसे यह व्यवस्था अपनी लग ही नहीं रही है और उसे लगता है कि ये व्यवस्था उसकी हो भी नहीं पाएगी। इसलिए वो केवल अपने बारे में, अपने जाति समूह तथा अपने हिस्से के बारे में ही सोचता है। लेकिन कोई भी बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए समग्र के बारे में सर्वजन सुख के बारे में सोचना जरूरी होता है। जब तक उस व्यवस्था के अंर्तः विरोधों, समाज की प्रगतिशील ऐतिहासिक ताकतों और उनको संजो के रखने के बारे में नहीं सोचा जाता तब तक व्यवस्था नहीं बदलेगी।

आज हमारे समाज में चुनावी प्रक्रिया में ऐसे परिवर्तन आते जा रहे हैं कि, उसमें बहुजन के लिए कोई कुछ सोचने और कुछ करने की गुंजाइश ही नहीं रह गई है। आज वैज्ञानिक खोजों से यह साबित हो रहा है कि धरती ही खत्म हो जाएगी लेकिन फिर भी चारों और अमेरिकी उपभोगवादी स्वर गूंजने के कारण भी लोगों के मन में उन तमाम जानकारियों के प्रति भी एक भम्र बनाकर रहते हैं। अपर कास्ट बहुजन मानस को लगता है कि गांधीवादियों, कम्युनिस्टों और समाजवादियों के बच्चे ज्यादातर विदेशों में ही बसे हुए हैं और अधिकांश लोग तो विदेश से ही पढ़कर आए हैं। वे सोचते हैं कि हम अपने बच्चों को विदेश में पढ़ने से रोक पाएंगे कि नहीं खुद मुझे शक है कि मैं अपनी बेटी को विदेश में एलएलएम करने से रोक पाऊंगा कि नहीं। क्या हम इस द्वंद

को रोक पाएंगे कि नहीं, जिस व्यवस्था में दलित और बहुजनों की अधिकता होने के बावजूद भी व्यवस्था उन्हीं लोगों के खिलाफ है, ये एक असंभव बात है लेकिन ये संभव हो चुकी है। अगर हम आज के सत्र में इस सवाल पर बोलें तो ठीक रहेगा।

मैं पिछले तीन–चार सत्रों से उत्तराखण्ड की स्थितियों को देख रहा हूं और जैसे मैंने पहले भी कहा है कि ये पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है कि यहां अस्पृश्यता का अस्तित्व है कि नहीं है। लेकिन इतना तो मानना पड़ेगा कि यहां आक्रमण की सी स्थिति नहीं है। तो इसके चलते यहां अन्य राज्यों की अपेक्षा एक समता मूल्य आंदोलन बनाना आसान होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि हम एक सार्वजनिक विमर्श में ईमानदारी लाने के लिए इसमें उन सौ–दो सौ गांवों को शामिल करें जिनमें जातिवाद का अनुभव, उसकी स्मृति और जातिवाद के खिलाफ समता मूल्क समाज की स्थापना का सपना हो। अगर हम इन तीनों ही बिंदुओं पर लोक संवाद पर आधारित एक संवाद, शोध तथा शिविर करें तो कैसा रहेगा? इसके लिए हमें एक ऐसे गांव का चुनाव करना होगा जहां जाति की कोई भूमिका नहीं हो। इसमें जो भी व्यक्ति अपना जितना भी योगदान दे सकता है दे। इसमें सब गांव भाग न लेना चाहें तो फिर भी कोई बात नहीं जितने लोग भाग ले सकें ठीक हैं। इस संवाद के दौरान हमें जाति को कोटा मानने का व्यवहार नहीं करना चाहिए। हमें पहले से ही तय कर लेना चाहिए कि हमें किन मूल्यों के आधार पर संवाद स्थापित करना है। और मुझे लगता है कि इस तरह के शोध, अध्ययन और संवाद पूरे उत्तराखण्ड में किए जा सकते हैं और यहां के अधिकांश गांव ऐसा संकल्प करने को तैयार हो भी सकते हैं। जैसा कि बाबा साहब ने कहा है कि जातिवाद को हटाए बगैर हिन्दुस्तान में वास्तविक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता, तो अगर आपके गांव ऐसा संकल्प ले सकें तो वो लोकतंत्र आपके यहां स्थापित हो सकता है और वो लोकतंत्र स्वराज का पर्यायवाची हो जाएगा।

उत्तराखण्ड तथा उसके समतुल्य जो आदिवासी बहुल इलाके हैं वहां की स्थितियों को देखकर लगता है कि यहां गांधी जी और बाबा साहेब की समानता अभिव्यक्त हो सकती है और अगर ऐसा संभव हो पाया तो हम मिलजुलकर राष्ट्रीय फलक पर इस तरह की एक उपस्थिति दर्ज करा सकते हैं। हम अपेक्षा करते हैं कि आज इस बात पर भी चर्चा हो जाए। आप लोगों ने बहुत धैर्य से मेरी बहुत असंबध्ध बातों को सुना इसके लिए बहुत–बहुत धन्यवाद।

भुवन पाठक (संचालक) : धन्यवाद ! आपने मेरा काम बहुत आसान कर दिया। विजय जी ने जिस तरह से विषयों के बारे में बात की उससे हम सभी साथियों के लिए संवाद का रास्ता खुल जाता है।

इन्होंने बताया कि कुछ लोग जाति के सवाल पर और कुछ अस्पृश्यता के समूह के लिए काम करते हैं। हम सब लोग किसी न किसी जाति से संबध रखते हैं कोई जन्मना ब्राह्मण है, तो कोई जन्मना दलित जाति से संबध रखता है। इस प्रकार हमने जिस भी जाति में जन्म लिया हो, हमें उसके संस्कारों को मानना ही पड़ता है। ब्राह्मण होने के नाते मेरा शिक्षण अलग तरह से हुआ है और मैंने समाज को एक अलग ही नजरिए से देखा है उसी तरह अन्य जातियों में जन्मे लोगों के अनुभव भी भिन्न होंगे। मैं, चाहता हूं कि पहले, उत्तराखण्ड के वरिष्ठ साथी और नौजवान दोस्त हमारे सामने अपने अनुभव रखें और उनकी बात को सुनकर देश के बाकी हिस्सों से आए हुए साथी और कार्यकर्ता प्रतिक्रिया दें उसके बाद हम इस संवाद को आगे बढ़ाएंगे।

मैं, चाहूंगा कि इस क्रम में सबसे पहले राधा बहन जी अपनी बात रखें। उन्हें अपनी बात को व्यवस्थित ढ़ंग से कहने की आदत है और समयाभाव के कारण बिना किसी पूर्व तैयारी के अपनी बात को रखना उनके लिए कठिन होगा लेकिन मैं, ये चाहता हूं कि आप एक कार्यकर्ता के तौर पर अपने अनुभव रखें क्योंकि आप बहुत कम उम्र में लक्ष्मी आश्रम में शिक्षण लेने चली गई थीं। वो एक ऐसी जगह है जो जाति समेत समाज के कई दबावों से पूरी तरह मुक्त है। उसके बावजूद भी आपने अपने जीवन के कई वर्ष गांव में बिताए, आपने गौगाड़ सहित देश के कई इलाके में काम किया इसलिए आपके पास एक कार्यकर्ता के साथ–साथ सामान्य मनुष्य के अनुभव भी होंगे। अगर आप अपने उन अनुभवों को हमारे सामने रखें तो हमारे कार्यकर्ताओं को भी दिशागत रूप से मदद मिल जाएगी। आइए राधा बहन !

राधा बहन : मित्रो ! ये बात ठीक है कि समय आभाव के कारण मैं, इस गोष्ठी में आने और बोलने के लिए तैयार नहीं थी, लेकिन जब मैंने इस संगोष्ठी में आने वाले साथियों के नाम सुने तो मेरा लोभ बढ़ गया कि मैं, उनसे बातें करूं और उनसे कुछ सीखूं। विजय जी की बातों को सुनकर मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला है।

जहां तक जन्मना जाति के आधार पर विषमता का सवाल है, वो तो अब भी समाज में कम या ज्यादा मात्रा में मौजूद है ही। हमारे समाज में जन्मजात ऊंच–नीच की भावना मौजूद रहे और हम उसे दूर करने के लिए कुछ प्रभावी कदम न उठा पाएं

तो यह हमारे लिए बहुत शर्म की बात है। लेकिन मुझे लगता है कि ये समता का सवाल समाज का सवाल है और इसके लिए समाज को ही पहल करनी पड़ेगी। अगर इसके लिए समाज की अपेक्षा दूसरी शक्तियों के माध्यम से पहल की गई तो वह अपने अलग–अलग लक्ष्य रखेंगे जिससे कुछ गलत बातें होने की संभावना भी हो सकती हैं।

हमारे देश में तीन शक्तियां काम करती हैं सरकार, राजनैतिक दल और समाज। समता के सवाल भी सरकारों या राजनैतिक दलों के कारण ही पैदा हुआ। हो सकता है मेरी कुछ बातें आपको बुरी लगें लेकिन मुझे लगता है कि इस सवाल को राजनीतिक दलों ने जानबूझकर दलों के खांचों में बिठा दिया है क्योंकि इससे उनके व्यक्तिगत हितों की सिद्धी होती है।

अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं, आपको लक्ष्मी आश्रम का एक उदाहरण देती हूं। हमारे यहां जाति का अहसास बिल्कुल नहीं था, आजकल तो कुछ लड़कियां अपने नाम के आगे सर नेम लगाने की शौकीन हो गई हैं लेकिन पहले तो सरनेम भी नहीं लगाए जाते थे। शुरू से ही लक्ष्मी आश्रम में किसी भी प्रकार के अनुदान को लेने के पक्ष में नहीं था। वहां की लड़कियां अपना जीवन बहुत ही सादगी से जीती थी, वो कहती थी कि हम अपना काम स्वंय करेंगे तो इससे हमारी ही स्थिति मजबूत होगी, उनके अनुसार जिस तरह से किसी परिवार में संग्रह नहीं होना चाहिए उसी तरह से किसी संस्था में भी संग्रह नहीं होना चाहिए। लेकिन हमारे कई बड़े मित्र थे जैसे सरला बहन स्वतंत्रता सेनानी थीं जो बाद में मंत्री भी बन गईं, कालू लाल शिमाली जी शिक्षा मंत्री बन गए। वे मुझसे अक्सर कहा करते थे कि, सरला बहन, आप तो शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बढ़िया काम कर रही हैं, आप हमसे अनुदान क्यों नहीं ले लेती? बहुत इंकार करने पर भी उनके स्नेह पूर्वक हमने लेना शुरू किया। आगे चलकर किसी अन्य ने कहा कि आपके यहां हरिजन और समाज कल्याण का पैसा आना चाहिए और वह भी आने लगा। बाद के वर्षों में समाज में बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण उन्होंने सोचा होगा कि हो सकता है कि यहां की संस्था भी पैसा खाती होंगी और यह सोचकर एक दिन विधायक समेत उनकी मूल्यांकन समिति हमारे यहां जांच करने पहुंच गई।

हमारे यहां हरिजन लड़कियां भी रहती थीं, मूल्यांकन समिति ने आते ही कहा कि हरिजन लड़कियों को अलग लाइन में खड़ा करो। लेकिन हमने ऐसा करने से इंकार कर दिया। हमने कहा आप हमारे मेहमान हैं और जिस तरह से हमारे मेहमान आते हैं, बालिकाओं के साथ चर्चा करते हैं और उनसे कुछ प्रश्न भी पूछते हैं। उसी तरह आप भी हमारी छात्राओं, शिक्षिकाओं और हमारे पूरे समाज के साथ बैठकर चर्चा

करें। उन्होंने हमसे सभी विद्यार्थियों और छात्रवृति लेने वाले विद्यार्थियों की सूची मांगी। हमने कहा कि हम सूची तो दे देंगे लेकिन आप दलित शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे क्योंकि हमारे यहां इस शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है। अब सवाल–जवाब का सिलसिला शुरू हुआ। उनमें से किसी ने एक विद्यार्थी से पूछा हरिजन और समाज कल्याण विभाग क्या है ? वो क्या काम करता है ? फिर उन्होंने पूछा तुम कौन हो ? कहां की रहने वाली हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारी जाति क्या है ? उस छात्रा ने सबकुछ तो बता दिया लेकिन जाति के सवाल पर वह चुप हो गई। उसकी चुप्पी को देखकर उन्हें लगा कि कुछ गलत हो रहा है। फिर उन्होंने अपने प्रश्न का जवाब जानने के लिए उसके पिताजी का नाम और उनके काम के बारे में प्रश्न किया। उसने जवाब दिया कि मेरे पिताजी लौहार हैं और उत्तराखण्ड में लौहार का अर्थ स्पष्ट है कि वह दलित जाति की है। यह समझते ही प्रश्न पूछने वाले ने गुस्से में कहा, कि तुम कहती क्यों नहीं हो कि तुम दलित हो। उनकी यह बात सुनकर वह लड़की बहुत नाराज होकर जोर से चिल्लाई कि यह शब्द हमने गांव में सुना था लेकिन इस आश्रम में यह शब्द हमने आज तक नहीं सुना। वह भागकर मेरे पास आई और कहने लगी कि ये कौन लोग हैं ? और ये ऐसा क्यों बोलते हैं ? उस दिन के बाद से हमने उनका अनुदान लेना बंद कर दिया।

इन सब बातों से मैं, यही कहना चाहती हूं कि हमारे समाज में इतनी ताकत कब आएगी कि हम इस 'दलित' शब्द को बोलना ही बंद कर देंगे और हमारे मन में जाति का भाव ही नहीं आए। अगर ऐसा हो जाए तो इससे हमें, हमारे समाज को और सरकार को विषमता मुक्त देश मिलेगा। इसके लिए हम सबको समाज में खड़ा होना चाहिए नहीं तो राजनैतिक दल के बंटवारे हों या फिर सरकार का कोई काम हो, सभी में जाति की मोहर लग जाएगी जो जातियों के बीच कभी भी समता नहीं ला पाएगी।

मैं, 16–17 साल की उम्र में ही लक्ष्मी आश्रम आ गई। उस समय मेरे ऊपर गांधीवादी विचारों का बहुत प्रभाव था, इसका अर्थ ये नहीं कि मैं, अन्य विचारों को नहीं जानती या समझती थी, पर ये बात जरूर थी कि मेरे इन विचारों पर गांधीवादी विचार हावी थे और मेरे कारण मेरे परिवार में भी गांधी के जातिवाद विरोधी विचारों का खास महत्व था। आपको आश्चर्य होगा कि जब मेरी बहन की शादी की बात चल रही थी। मेरी नजर में एक अच्छा लड़का था लेकिन वो दलित जाति से संबध रखता था। मैं, उस बात को लेकर पिताजी के पास गई, मैंने उस लड़के के बारे में सबकुछ बताया लेकिन उसकी जाति के बारे में बताते हुए मुझे बहुत डर लग रहा था कि यह सुनकर पिताजी डाटेंगे और कहेंगे कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, हमें समाज में रहना है

या नहीं रहना है आदि। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ वो थोड़ी देर तक चुप रहे और फिर बहुत ही शांत रूप से कहने लगे कि ये जातियां आज नहीं तो कल टूटने वाली हैं तो फिर इन्हें तोड़ने की शुरूआत मैं ही क्यों न करूं ? मुझे इस रिशते से कोई एतराज नहीं है, हम इस रिशते को जरूर बनाएंगे। मैं, ये कहना चाहती हूं कि आज लगभग सारा समाज (मेरे पिताजी भी समाज का एक हिस्सा हैं) इस विषमता से चिंतित है, और जब तक हम, मेरे पिताजी की तरह इस समस्या से नहीं लड़ेंगे तब तक जातियों के भेद दूर नहीं हो सकते। हमें अपने बच्चों की शादी–ब्याह के समय जाति, आदिवासी समाज और धर्मों को अनदेखा करने का प्रयास करना चाहिए।

हम अक्सर सोचते हैं कि यदि हमारे देश में कोई दलित व्यक्ति राष्ट्रपति बन जाए, प्रधानमंत्री बन जाए तो समाज में कुछ परिवर्तन आए लेकिन ऐसा होता नहीं है। राष्ट्रपति बनना इतनी बड़ी बात नहीं है बल्कि बड़ी बात है उसे समाज में प्रतिष्ठा मिलना। यूं तो संविधान के आधार पर कोई प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भी बन सकता है लेकिन असली बात है जिस समाज में हम रहते हैं, जहां हमारा रोटी और बेटी का सवाल है, वहां हमें कितनी प्रतिष्ठा मिल पाती है क्योंकि समाज में प्रतिष्ठा पाना, राष्ट्रपति बनकर प्रतिष्ठा पाने से भी बड़ा है और उस प्रतिष्ठा के लिए हमें समाज में रहते हुए मिलकर प्रयास करने चाहिए। जैसे गांधीजी कहते थे कि इस काम में ऊंची जाति के लोगों की अधिक जिम्मेदारी है। उन्होंने अपने समाज में जिन भाई–बहनों को दूर किया है, उन्हें पास लाने की जरूरत है। जिन लोगों ने आदिवासी होने या दलित होने का श्राप नहीं भोगा है उन लोगों को इन सब समस्याओं को भोग रहे लोगों की मदद करनी चाहिए और इसके लिए सबको एक साथ खड़ा होना पड़ेगा।

मैंने दलित समाज के साथ उतना काम नहीं किया है जितना मैंने, महिलाओं के साथ किया है। जब महिलाएं अपने शोषण की, समाज में समानता का दर्जा पाने के बारे में खुद कहती हैं तो समाज में एक हलचल सी पैदा हो जाती है। मैंने गांव में काम करते हुए और जगह–जगह के अनुभवों से यह जाना कि जब महिलाएं खड़ी होती हैं और पूरे गांव के लिए सोचने लगती हैं फिर चाहे वो केराकोट की महिलाएं हों जिन्होंने खान के कारण गांव को होने वाले नुकसान से गांव के जल, जंगल और जमीन को बचाने के लिए काम किया तो वो एक मिसाल बन गया। उसी तरह से मैंनें बंगार गांव को देखा कि जब वहां की महिलाओं ने अपने जंगल के बारे में खुद खड़े होकर प्रबंधन किया और कहा कि हम अपने जंगलों को बचाएंगे चाहे इसके लिए हमें कुछ भी त्याग क्यों न करना पड़े, जैसे कि अगर हमें चारे के लिए दूर भी जाना पड़े

तो हम जाएंगे, कोई और परेशानी भी हो तो उसे भी सहेंगे लेकिन अपने जंगलों को बचाएंगे। इससे पूरे गांव में उनका मान बढ़ा।

हम अभी कोशी घाटी में स्थित लक्ष्मी आश्रम की कोशी नदी के पानी को बचाने की कोशिश कर रहे हैं क्योंकि कोशी नदी के बारे में भविष्यवाणी हो चुकी है कि वह अगले 10 साल में सूख जाएगी। 2003–04 में तीन नदियों में ऐसी स्थिति आयी भी है, जब पानी के छोटे–छोटे डबरे बन गए थे और नदी का प्रभाव कम हुआ। जब ऐसा होने लगा तो वहां की महिलाओं ने इसे बचाने की ठान ली। उन्होंने कहा कि हम इसके लिए त्याग करेंगे और हम यहां से अपनी गाय–भैंसों के लिए चारा नहीं लाएंगे। फिर उन्हें अपनी गाय–भैसों के लिए प्रतिदिन 400 सिर बोझ चारा लेने के लिए जाड़ों के दिनों में भी दूसरी घाटी में जाना पड़ता था, पर उन्होंने ऐसा किया और अपनी लड़ाई खुद लड़ी। उनकी इन बातों ने उन्हें समाज में ऊंचा दर्जा दिला दिया। उस समय गांव की पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण नहीं था लेकिन फिर भी उन महिलाओं के बिना पंचायत की बैठक नहीं होती थी। ऐसा नहीं है कि महिलाओं के इन संघर्षों का पुरुषों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, इससे न केवल पुरुषों बल्कि पूरे समाज पर ही प्रभाव पड़ा। आज जब गांव में कोई बात होती है तो महिलाएं सभी महिलाओं के साथ–साथ पुरुषों को भी संगठित कर काम करने की बात करती हैं। जबकि उन्होंने पुरुषों के लिए एक कड़ा कदम भी उठाया, वो था उनके ताश खेलने पर पाबंदी लगा दी।

मैं, ये कहना चाहती हूं कि यदि हम, समाज हित में कुछ करना चाहते हैं तो सबसे पहले जाति संबंधी जकड़नों को दूर करें और दोनों ओर से पूरे समाज के हित की बात करें, उसमें सभी लोग शामिल हों, खासकर सबसे पहले अपने–आपको समाज में ऊंचा समझने वाले लोगों को आगे आना चाहिए। वो आगे आएं और पिछड़ी जाति के लोगों को अपने घर में बहू के रूप में, दामाद के रूप में लाएं, उनके साथ खाना खाएं।

मैं, आपको अपना अनुभव बताती हूं , एक बार हमें, हमारे एक साथी कार्यकर्ता की शादी में बुलाया गया, जो कि किसी ऊंची जाति से संबध रखता था। हमने सोचा कि शादी में तो पूरे गांव के लोगों को बुलाया होगा और वे एक साथ बैठकर खाना खाएंगे लेकिन फिर हमने सोचा कि वो तो ऊंची जाति से संबध रखता है, शायद ऐसा हो नहीं पाए। लेकिन हम यह देखकर हैरान हो गए कि उन्होंने अपनी शादी में गांव के छोटी जाति के लोगों को भी अपने साथ बिठाकर खाना खिलाया। इस प्रकार हम सभी

ऐसा कर सकते हैं बस थोड़ी हिम्मत और पहल करने की जरूरत है। ये मुद्दा समाज का है जिसके लिए सरकार के सहारे बैठने की बजाय समाज को पहल करनी चाहिए। क्योंकि यदि सरकार कोई बात कहती है तो उसका क्रियान्वयन उस तरीके से न होकर गलत ढ़ंग से होता है और फिर ज्यादा भेदभाव जारी हो जाती है।

मेरी समझ के अनुसार यदि हम अपने व्यक्तिगत जीवन से सामाजिक जीवन की ओर पहल करने लगें तो निश्चित रूप से समाज में सभी लोगों को आत्मविश्वास प्राप्त होगा और आत्मविश्वास का भाव आने पर दुशमनी, भेदभाव और द्वेष का भाव खत्म हो जाएगा।

अगर मेरे बाद होने वाली चर्चाओं में मेरी सब बातों के विषय में कोई बिंदु मिलता है तो मुझे उससे सार्थकता मिलेगी। आपने मुझे यहां बुलाया और फिर मेरी बातों को शांतिपूर्वक सुना इसके लिए धन्यवाद। मेरी इच्छा तो थी कि मैं, एकतरफा बात न करूं और मेरी बात के बीच में चर्चा हो और हम एक दूसरी बात भी समझ पाएं, लेकिन समयाभाव के कारण मैं, ऐसे ही कह पायी हूं, अगर मुझसे कुछ गलती हुई हो तो कृपया मुझे माफ करें। धन्यवाद !

भुवन पाठक (संचालक) : धन्यवाद राधा बहन, दोस्तो इस बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए हमारे बीच उत्तराखण्ड के तमाम साथी और कार्यकर्ता मौजूद हैं जिनका जातियों के बीच में रहकर उनसे टकराने का अनुभव रहा है और वे अपने निजी जीवन के अनुभवों से इस बातचीत को आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे।

मैं, अपनी स्मृतियों में जाऊं तो मेरे निजी जीवन में भी ऐसी बहुत सी बातें रहीं जिन्हें मैं, पहले न तो समझ पाता था और न ही देख पाता था लेकिन आज समझ सकता हूं। जब मैं, बहुत छोटा अर्थात 8–10 साल की उम्र का था। तब हमें एक–दूसरे के घरों में जाने से कोई परहेज नहीं था और उस समय हम ऊंची जाति के अर्थात ब्राह्मण परिवार के बच्चे बिना किसी रोक–टोक के दलितों के घरों में जा सकते थे, उनके बच्चों से हमारी अच्छी दोस्ती होती थी। हम अपने बालपन में होने के कारण उनके घर जाते समय कुछ भी सोचते नहीं थे लेकिन अगर आज में अपनी स्मृति के आधार पर देख सकता हूं कि हम तो उनके घरों में बेझिझक जाया करते थे लेकिन वो लोग हमारे घरों में नहीं आते थे। आज समाज में अपने–आपको जातिवाद विरोधी दिखाने का फैशन सा चल पड़ा है इसलिए लोग समाज में दलित लोगों के साथ उठने–बैठने का दिखावा करते हैं लेकिन पहले ऐसा नहीं था। उन दिनों हम बिना

किसी सोच के उनके घर जाया करते थे लेकिन उसके विपरीत वे हमारे घरों में नहीं आते थे।

जैसे–जैसे मेरी उम्र बढ़ती गई, वैसे–वैसे हमारे बीच दोस्ती का रिश्ता खत्म होता चला गया और जवान होते–होते हमारे दोस्तों का भी बंटवारा हो गया कि ये हमारे दोस्त हैं और वो आपके। हमारे दैनिक और सामाजिक कार्यों जैसे शादी–ब्याह, और खेती–बाड़ी के कामों में भी हमारा अलग बंटवारा हो गया। इस प्रकार हम लोगों के बीच संवाद के बिंदु कम होते चले गए। जब से मैं, पिछले 5–7 साल से सामाजिक जीवन में सक्रिय हुआ तब मुझे बहुत मुश्किल से समाज में मिलन के बिंदु ढूंडने पड़ते जहां एक दलित और गैर दलित बिना किसी झिझक के आपस में बात कर सकें। मेरे लिए यह बहुत ही दुष्कर कार्य था। मैं, अगले वक्ता को आमंत्रित करने से पहले यह कहना चाहता हूं कि हमारी मनोवृति ऐसी बनी हुई है कि हमने इस बात को कभी गंभीरता से लिया ही नहीं यहां तक कि हमारे संस्कारों में भी कभी यह बात नहीं रही। इसीलिए आज हम अंबेडकर जी का जन्मदिन मना रहे हैं लेकिन मैं यहां पर उनकी कोई फोटो लगाना ही भूल गया और वहीं यदि हम गांधी जी का जन्मदिन मना रहे होते तो हमारे सामने उनकी एक फोटो होती जिसमें सूत की माला होती और सामने एक दीया जल रहा होता। लेकिन हमारी मानसिकता के चलते हम आज वो सब कुछ करना बिल्कुल भूल ही गए हैं।

अब मैं, आगे की बातचीत के लिए महावीर जी को आमंत्रित करूंगा। आइए महावीर जी अपनी बात रखिए। महावीर जी !

महावीर : यहां उपस्थित सभी को मैं, अपना क्रांतिकारी अभिवादन करता हूं। मुझे यहां जिस बारे में बात करनी थी, वो बात तो पहले ही हो चुकी है, इसलिए मेरे पास कहने को ज्यादा नहीं है। कुछ भी कहने से पहले मैं, विजय प्रताप जी का धन्यवाद करना चाहता हूं जिन्होंने मुझ जैसे छोटे से आदमी, कार्यकर्ता को यहां आने का मौका दिया। जैसा कि गांधी जी ने कहा था कि समाज के अंतिम व्यक्ति का भी विकास होना चाहिए, इसी से प्रेरित होकर उन्होंने मुझे यहां आने का मौका दिया और इसलिए मैं, अपनी भावनाओं को आपके साथ बांटना चाहूंगा।

बाबा साहब आंबेडकर के नाम पर बात करते–करते कुछ लोग सुस्ता रहे हैं, मुझे लगता है कि जैसे हम लोग 14 अप्रैल को दिल्ली में बाबा साहेब की जयंती मनाते समय नारा लगाते हैं और उसमें सवर्ण जाति के लोग भी शामिल होते हैं। मैं चाहता हूं

कि यहां पर भी हम सब लोग मिलकर दिल से यह नारा लगाएं, ' बाबा साहेब अमर रहे' , 'अमर रहें' , 'अमर रहें'। धन्यवाद साथियो।

साथियो, आज हम सब डॉ. बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर की 116 वीं जयंती पर उपस्थित हुए हैं। यहां कई साथियों ने शोषित, दलित, पीड़ित, आदिवासी के बारे में बात की। जबकि वास्तव में ऐसा होना चाहिए कि जैसे हम दलित लोग भी गांधी जयंती मनाते हैं, राजघाट पर बैठते हैं और उस समय आयोजित कार्यक्रमों में बहुत बढ़चढ़कर भाग लेते हैं। उसी तरह आज बाबा साहेब आंबेडकर के जन्मदिन पर भी हम सबको अपना कार्यक्रम भी उसी तरह से शुरू करना चाहिए, चाहे ऐसा न भी हुआ हो फिर भी मैं, बाबा साहेब की 116 वीं जयंती पर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूं।

मैं, आपके साथ कई बातें बांटना चाहता हूं कि जैसे आज दलितों के विषय पर कई जगहों पर बातचीत होती रहती है तो ऐसे में जब बाबा साहब की 116 वीं जयंती के मौके पर दलितों के विषय में बात न हो, ऐसा तो हो ही नहीं सकता है। आज बहुत से दलित लोग बड़े–बड़े ओहदों पर पहुंच गए हैं। वे अफसर भी हो रहे हैं और इंजीनियर भी बन रहे हैं लेकिन उनकी तरक्की में डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर और गांधी जी की नीतियां भी जिम्मेदार हैं। लेकिन इतना सबकुछ होने के बाद भी आज भी आर. एस.एस. जैसे कुछ राजनीतिक दलों तथा अन्य लोगों के बढ़ावे के कारण कुछ क्षेत्रों में दलितों की स्थिति दयनीय ही बनी हुई है, आज भी ऐसे काम हो रहे हैं जिससे समाज में घृणित, दूषित वातावरण पैदा हो रहा है।

पिछले दिनों, हरियाणा के गुणगांव क्षेत्र के दलितों को रविदास की जयंती के मौके पर यात्रा नहीं निकालने दी गई और वहां के दलितों के घर फूंक दिए गए। आज भी राजस्थान के कुछ गांवों खासकर अल्वर के मसारी में दलितों को घोड़ी पर चढ़ने नहीं दिया जाता है। अभी पिछले दिनों की घटना है जयपुर में बस्ती विधानसभा में स्थित एक गांव में इसी माह की 20 तारीख को किसी दलित परिवार में शादी थी। उस शादी में दूल्हा घोड़ी पर बैठना चाहता था लेकिन उसे बैठने नहीं दिया गया। उन लोगों ने इस बात पर काफी विरोध जताया लेकिन फिर भी उसे घोड़ी पर बैठने नहीं दिया गया। आज हमारे कई साथी समाज में समता कायम करने और जातीय भेदभाव मिटाने के लिए सालों से काम कर रहे हैं लेकिन फिर भी कहीं–कहीं उनकी स्थिति जस की तस बनी हुई है।

जैसे हमारे दूसरे साथियों ने भी कहा कि आज भी हमारे समाज में जाति को उसी महत्व से देखा जाता है जैसे पहले देखा जाता था। कुछ लोग अपनी जाति से परेशान होकर अपनी धर्म को ही बदलना चाहते हैं लेकिन फिर भी उनकी स्थिति में कुछ भी बदलाव नहीं आया। जैसे मैं, दलित समाज में जिस जाति से संबध रखता हूं वहां मेरी जाति के लोग खेती भी करते हैं, उसी जाति के लोग उत्तर प्रदेश में सुअर का काम करते हैं, गांव में मीट बेचने का काम करते हैं और उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। यदि हम धर्म बदलना भी चाहें तो वहां जाकर भी हमें निकृष्ट बनना पड़ता है और धर्म बदलने से भी हमारी जाति में बदलाव नहीं आता है। हमारा चमार भाई सोचता है कि यदि मैं, धर्म बदलकर मुसलमान बन जाऊं तो मेरा उद्दार होगा लेकिन वहां जाकर भी उसे अन्सारी, कुरैशी बनना पड़ता है या किसी छोटी जाति में ही रहना पड़ता है।

मुझे लगता है कि इन सब बातों से कोई बड़ा परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता, जबतक समाज में सबसे छोटी इकाई में बैठे व्यक्ति के हाथ में नेतृत्व नहीं दिया जाएगा। मैं, ऐसी कई संस्थाओं के साथ जुड़ा हूं जहां दलितों के लिए काम किया जाता है लेकिन मुझे लगता है कि जब तक आप उन्हें आगे बढ़ने का मौका नहीं देंगे, तब तक वो आगे कैसे बढ़ सकते हैं ?

मैंने महसूस किया है कि दलितों की ऐसी स्थिति के लिए राजनैतिक पार्टियां भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। मैं आर.एस.एस. को दलितों एवं अल्पसंख्यकों का सबसे बड़ा दुश्मन मानता हूं। आर.एस.एस. की एक संस्था है 'सेवा भारती' , जो कि एक ऐसी संस्था है जो लगभग बी.जे.पी.के अनुसार ही काम करती है। वे लोग झुग्गी बस्तियों में जाकर सातवीं, आठवीं में पढ़ने वाली हमारी छोटी–छोटी बहनों को लालच देते हैं कि हम तुम्हें वाल्मीकी मंदिर में जगह देंगे और तुम्हें स्वावलंबी बनाएंगे। वे उस बहाने उनमें थोड़ी बहुत धार्मिक भावनाएं भरते हैं और फिर उनमें इस तरह का साम्प्रदायिक जहर भरते हैं कि वे पूरी तरह बदल जाते हैं। आर.एस.एस. की तरह हमारे समाज में और भी संगठन हैं जो इस तरह का काम कर रहे हैं।

मुझे इन राजनीतिक पार्टियों के काम करने के तरीके से कोई आपत्ति नहीं है, बस मैं, यह चाहता हूं कि ये संगठन भी उसी तरह शांति से काम करें जिस तरीके से गांधी जी किया करते थे। वे लोग गांधी जी और बाबा साहब के सपने को साकार कर सकते हैं। क्योंकि आज भी हमारे समाज में मंगल पांडे को मंगल पांडे बनाने वाले 'मातादीन' और रानी झांसी को लक्ष्मी बाई बनाने वाली 'सोलकर बाई' मौजूद हैं। मुझे

लगता है कि जबतक इस तरह की मानसिकता के लोग आगे नहीं आएंगे तब तक समाज में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता।

इसके लिए आपको समाज के निचले तबकों, झुग्गी–बस्ती, रेल की पटरियों के पास बनी बस्तियों में रहने वाले मजदूरों, आदिवासियों और दलित साथियों के बारे में सोचना होगा। उन बस्तियों में रहने वाले लोग आज भी नारकीय जीवन बिता रहे हैं, क्रिबी प्लेस में बनी गरीबों की बस्ती को ही देख लीजिए, वहां कई मजदूर रहते हैं लेकिन वहां न तो पानी की उचित व्यवस्था है और न ही बिजली की। वहां इतनी अधिक गंदगी है कि मच्छर और मक्खियों का राज रहता है। दिल्ली में तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल आदि क्षेत्रों की आदिवासी, दलित और गरीब लड़कियां दिल्ली में काम करने आती हैं। वे मुख्यतः घरों में साफ–सफाई का काम करती हैं लेकिन उनके साथ कितना ज्यादा शोषण और अत्याचार किया जाता है। मैं ऐसा नहीं कह रहा है इनमें उच्च जाति के लोग शामिल नहीं है, वो शामिल हैं लेकिन यदि कश्मीर से कोई उच्च जाति का व्यक्ति प्रवासित होकर आता है तो उसे मदन लाल खुराना दिल्ली के कनाट प्लेस में दुकान दिला देते हैं लेकिन वहीं हमारे हिन्दुस्तान के किसी भी क्षेत्र से कोई आदिवासी या दलित पीड़ित होकर, अत्याचार का शिकार होकर या बलात्कार होकर आया हो तो उसे सुनने वाला कोई नहीं होता है। ऐसी जगहों पर गैर सरकारी संगठन और अन्य संगठनों को काम करना चाहिए। इन बस्तियों में हमारे समाज में मौजूद मातादीन, होल्कर और वाल्मीकी जैसे लोगों को काम करना चाहिए। तो साथियो आज गांधी जयंती हो या डॉ. आंबेडकर की जयंती, उस सब में हम बस इतना जान लें कि हमसे उस समाज के बारे में, आदिवासी समाज के बारे में जो भी बन पड़ेगा वो करेंगे। नहीं तो, देश की आजादी को 50 साल हो जाएं या फिर 1000 साल, उसका कुछ भी भला नहीं हो सकता।

अंत में मैं, विजय प्रताप जी का धन्यवाद करना चाहूंगा जिन्होंने मुझे, यहां बोलने का मौका दिया। अगर मेरी बातों से किसी को ठेस लगी हो तो कृपया मुझे माफ करें क्योंकि मैंने, जानबूझकर ऐसा कुछ नहीं कहा है। धन्यवाद !

भुवन पाठक (संचालक) : धन्यवाद महावीर जी ! हमारे बीच रघु भाई मौजूद हैं, मैं, चाहता हूं कि वह अपनी निजी और सार्वजनिक जीवन की स्मृतियों को हमारे साथ बांटे। आइए रघू भाई जी !

रघु भाई : साथियो, आज बाबा साहेब आंबेडकर जी का जन्मदिन है, मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूं। मैं, अपनी बात को स्मृतियों से शुरू करता हूं। जब मैं, स्कूल में पढ़ता था, उस समय मेरे साथ रनेत नाम का एक दलित लड़का भी पढ़ता

था उससे मेरी बहुत गहरी दोस्ती हो गई। आज जब मैं, याद करता हूं कि उसकी और मेरी दोस्ती कहां से शुरू हुई तो मुझे याद आता है कि उस समय हमें स्कूल में खाने के लिए टिफिन नहीं दिया जाता था लेकिन कुछ दिन ऐसा हुआ कि हम लोग टिफिन लेकर आने लगे। एक दिन मैंने उसके साथ रोटी बांटकर खाई और तभी से उसकी और मेरी दोस्ती हो गई।

दूसरी बात, 1980 की है जब मैं, रानीखेत में छात्रसंघ का चुनाव लड़ रहा था और उस दौरान एक बार में प्रचार करते हुए सरोज वाल्मीकी नाम की एक लड़की के घर चला गया। उसकी दो माताएं थी और दोनों की दोंनों मल साफ करने का काम करती थी और उसके पिताजी समाज में बहुत सम्मानित व्यक्ति थे। मैं, जब उनके घर पहुंचा तो बहुत थक चुका था मैंने यह सोचे बिना कि वो दलित है और मुझे उनके घर का पानी नहीं पीना है, मैंने उनसे पानी मांगकर पिया। दूसरे दिन, से मैंने देखा कि वह लड़की मेरे चुनावों में बहुत बढ़चढकर भाग ले रही है। उसके बाद आने वाले सालों में मैंने देखा कि वाल्मीकी समाज के लोग हमारे सभी झलूसों में मजबूती से शामिल रहते हैं।

इन दोनों उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि समाज में समता की बात करने के लिए रोटी का संबध बनाना कितना जरूरी है। जिस तरह राधा बहन सामूहिक भोज की बात कर रही थी, उसी तरह मैंने भी अपने जीवन में इस भेदभाव को दूर की सोची। मेरी जान–पहचान में अल्मोड़ा में एक दलित परिवार है जिसमें मैं, अक्सर जाया करता हूं। उस परिवार में उच्च जाति अर्थात जोशी का बहुत आना–जाना है और उनकी बहुत इज्जत भी की जाती है लेकिन उन जोशीजी का सामाजिक आधार और चरित्र कुछ भी नहीं है। वे शराब तो पीते ही हैं उसके अलावा भी उनमें कई कमियां हैं लेकिन फिर भी वो परिवार रात के 10 बजे तक उनका खाने पर इंतजार करता है, जब तक वे नहीं आ जाते तब तक वे लोग खाना भी नहीं खाते हैं वो सिर्फ इसलिए कि वो जात से ब्राह्मण हैं और कुछ नहीं। इसलिए दलित समाज में पैदा हुआ वो परिवार उन जोशी जी की सिर्फ इसलिए मान–सम्मान करता है कि वो एक उच्च जाति का है।

इन सब बातों को जान–समझकर यही पता चलता है कि आज भी हमारे समाज में जाति व्यवस्था इतनी मजबूत है कि जन्म के आधार पर नीची जाति में पैदा होने वाले व्यक्ति को जीवन भर कुंठा से जीना पड़ता है। अगर सिर्फ उत्तराखण्ड को ही देखें तो वहां 14000 से 62000 लोग ऐसे हैं जो आज भी इस तरह की कुंठाओं के बीच जी रहे हैं और न केवल उत्तराखण्ड में बल्कि भारतीय समाज के लगभग हर क्षेत्र में

जाति व्यवस्था के कारण कई अनगिनत परिवार जीवन भर कुंठा में अपना जीवन बिता रहे हैं। भारत में जाति की पकड़ बहुत मजबूत है इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि मुस्लिम और सिख धर्म में किसी भी देश में जाति व्यवस्था नहीं है लेकिन भारत में तो मुस्लिम और सिख धर्म में भी जाति व्यवस्था विद्यमान है। यही नहीं, इसाई धर्म को भी ले लीजिए वह धर्म भी भारत में जाति व्यवस्था की जकड़ में आने के बाद ही मजबूत हुआ। इस प्रकार हिन्दुस्तान में धर्म की अपेक्षा जाति महत्वपूर्ण है, आप धर्म छोड़ सकते हैं लेकिन जाति को नहीं छोड़ सकते हैं।

अगर हम, उत्तराखण्ड के अंदर 1950–1960 के आंदोलनों को देखें तो यहां हुए सत्कार आंदोलन या राजपूत आंदोलन पर नजर डालने की कोशिश करें तो हमें, दिखाई देता है कि उत्तराखण्ड बनने और उससे पहले के दौर में खस, डूम, ब्रह्म और कुछ राजपूत जातियां ही अस्तित्व में थी लेकिन आज पहाड़ में राजपूत, ब्राह्मण और हरिजन जातियों का बदलाव कहां से आया। अचानक उत्तराखण्ड में उच्च जाति कहां से आ गई जबकि पूरे देश के अंदर वो कम संख्या में है। उत्तराखण्ड में यह बदलाव अपने–आप नहीं आया है बल्कि इन आंदोलनों के प्रभाव से हुआ है और इसमें राजपूत आंदोलन की अपनी एक भूमिका है। राजपूत आंदोलन के प्रयासों के कारण शिक्षा का प्रसार हुआ है उससे उत्तराखण्ड की खस जातियां राजपूत जातियों में परिवर्तित हो गई अर्थात उनका मिलान हो गया। ये बात हमें बताती है कि जातियां अलग–अलग रूप से आगे नहीं बढ़ सकती हैं, अलग–अलग रहने से उनका ह्रास हो सकता है। उससे न तो जाति टूटेगी और न ही वो अचानक ऊपर जाएगी। यदि हमें पूरे समाज को बदलना है तो हमें, समाज में जातियों को खत्म करने के बारे में सोचना होगा। हमें सोचना होगा कि समाज में इतनी आत्मीयता कब आएगी कि वह समाज में रोटी–बेटी के संबध के लिए जातियों को आधार न बनाया जाए। हमें इस विषय को केन्द्र में रखकर ही इस समस्या का उपाय ढूंडना चाहिए क्योंकि इसके बारे में सोचे बिना किसी भी समता आंदोलन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

इसके बारे में मैं, एक बात कहना चाहता हूं कि यदि हम समानता की बात करते हैं तो वो केवल एक ही जगह नहीं आ सकती है। केवल जाति के आधार पर समाज को बदलने की कल्पना करना व्यर्थ है क्योंकि अगर समाज बदलेगा तो वह सभी स्थानों से एक साथ बदलेगा इसमें निचली जातियों के साथ की जाने वाली असमानता के साथ–साथ महिलाओ और बच्चों के साथ की जाने वाली असमानता भी शामिल है। उत्तराखण्ड के भीतर ही देखें तो वहां 42 से 45 लाख महिलाएं लिंग के आधार पर और 14 से 62 हजार लोग जातीय आधार पर असमानता को झेल रहे हैं।

और इस असमानता को टुकड़ों–टुकड़ों में खत्म नहीं किया जा सकता है। हम जाति तोड़ो का नारा तो देते हैं लेकिन जाति अपने–आप टूटने वाली नहीं है। आज चाहे हम कितना भी कहें कि ओद्योगीकरण ने समाज को आगे ला दिया है, शहरों और गांवों में भी लेकिन इस सब के बावजूद भी रोटी और बेटी के रिशते की ओर समाज कितना बढ़ पाया है ? मुझे लगता है कि रोटी और बेटी के रिशते के बिना समाज में जातिव्यवस्था को समाप्त करना एकदम सपना है बेमानी है क्योंकि यही वो बात है जो समाज को तोड़ सकती है और उसके मूल में जाने की कोशिश करती है। यदि हम समानता के संदर्भों की तरफ बढ़ना चाहें तो हमें सभी असमानताओं को लेकर एक समतामूलक समाज की ओर बढ़ने के लिए चिंतन करना होगा तभी हम आने वाले दिनों में समानता पर आधारित समाज की कल्पना कर सकते हैं। यह हमारी ओर से आंबेडकर जी को सच्ची श्रद्धांजली होगी।

भुवन पाठक : धन्यवाद रघु भाई। मैं गोपाल भाई को बुलाने से पहले खुद थोड़ी सी बात कहना चाहता हूं कि जब हम अपनी स्मृतियों के आधार पर समाज में मौजूद जातिगत दबावों की बात करते हैं, और हमें मालूम है कि आज भी समाज में वो जातिगत दबाव मौजूद है, तो ऐसी स्थिति में यदि हम अपने अनुभवों की मदद से समता के संघर्ष को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया के बारे में विचार करें तो यह बहस एक निर्णय की तरफ बढ़ती जाएगी।

अब मैं, गोपाल को बुलाना चाहूंगा। गोपाल पिछले 7–8 सालों से उत्तराखण्ड के अलग–अलग संगठनों के साथ सामाजिक सरोकारों के लिए काम करता रहा है और आजकल वह स्वराज अभियान का एक हिस्सा है। आओ गोपाल !

गोपाल : सम्मानित साथियो, मैं, यहां कुछ कहने नहीं बल्कि सुनने आया हूं क्योंकि मैं, संवाद प्रक्रिया के जिन हिस्सों को समझने की कोशिश कर रहा हूं, उसके लिए यह एक उपयुक्त स्थान है क्योंकि इसमें न केवल उत्तराखण्ड, बल्कि देश–विदेश के भी कई अनुभवी साथी मौजूद हैं जिनके पास ज्ञान तथा निजी अनुभवों का अपार भंडार है।

मेरे मन में, बार–बार यह प्रश्न उठता है कि हम दलितों और गैर दलितों के बीच समानता की बात करते समय किस समानता की बात रहे हैं ? और उस समानता को हम कहां पर स्थापित करना चाहते हैं ? दूसरी बात कई बार मुझे यह एहसास होता है कि मैं, समानता पाने के लिए किसी का एहसान क्यों मानूं ? और मैं, सवर्णों से ऐसा प्रश्न क्यों करूं कि आप मेरा सम्मान क्यों नहीं कर रहे हैं? ऐसा करने से मेरे

मन की कुंठा, गहरे रूप में उभरती है क्योंकि मुझे लगता है कि जाति का मामला, एक तरह से अपने को विशेष साबित करना ही है क्योंकि जब किसी को उच्च बताया जाता है तो दूसरा अपने–आप ही निम्न हो जाता है और जब यह छोटा होने की प्रक्रिया की बातें कई सालों तक दिमाग में रहती है तो दूसरा आदमी खुद भी अपने–आपको छोटा मानना शुरू कर देता है। और उन्हें लगने लगता है कि कहीं वास्तव में ही मैं, छोटा तो नहीं हूं। इस प्रकार मेरे दिमाग में इस तरह के कई प्रश्न उठते रहते हैं।

अभी–अभी विजय जी ने एक सोचनीय बात रखी कि हम लोग यहां, एक–दूसरे से पहचान बनाने के लिए एकत्र हुए हैं। उनकी इस बात से मुझे यह लगता है कि कहीं हम अपनी पहचान बनाने, मेरी पहचान बनाने या खुद को पहचानने के लिए तो एकत्र नहीं हुए हैं। मुझे यह तीनों बातें अलग–अलग लगती हैं। मुझे लगता है कि जिस दिन हम, हमारी पहचान, मेरी पहचान और अपने को पहचानने के बीच में अंतर समझने लगेंगे, उसी दिन से हम इस सवाल का हल ढूंडने लगेंगे। क्योंकि जब हम हमारी पहचान, मेरी पहचान की बात करते हैं तो जाति का विभाजीकरण होता है और उसमें किसी को छोटा और किसी को बड़ा करके परिभाषिति करने लगते हैं जिससे समानता की प्रक्रिया बाधित होती है। और कभी–कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं, अपने लिए काम क्यों न करूं ? कि जब भी मेरे साथ इस तरह का व्यवहार किया जाए या ऐसे अपमान की बात की जाए तो उस समय मुझे ऐसा न लगे कि मैं, छोटा हूं। और अगर काम की बात करनी है तो दलित और गैर दलित के बीच की समानता की बात करूं। मुझे लगता है कि जब कोई भी दलित अपने पैरों पर खड़ा होकर अपने–आपको दलित समझना बंद कर दे या उसे यह 'दलित ' शब्द एक भम्र लगने लगे जिसे भूलवश या ईश्वर की इच्छानुसार फैलाया गया हो या फिर यह शब्द एक मान्यता के आधार पर प्रचलित हो गया हो। क्योंकि मान्यता बहुत ज्यादा समय तक नहीं टिकती, उसे देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलना ही होता है। और धीरे–धीरे जब हमारे मन में भी यह मान्यता बदलने लगेगी, उस दिन हम अपने–आपको हीन मानना बंद कर देंगे। जिस दिन हमारी ऐसी सोच बनेगी, उसी दिन से हम संवाद की स्थिति में आएंगे और तब तक हमें अपने –अपने स्तर पर सशक्त होने की जरूरत है। इसके बाद हम लोग संवाद के एक मंच पर आ पाएंगे।

आप लोगों ने मुझ जैसे अल्प अनुभवी व्यक्ति को सुना इसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद !

भुवन पाठक : धन्यवाद गोपाल भाई ! गोपाल भाई पिछले 7–8 सालों से हम नौजवान साथियों के साथ काम कर रहे हैं और साल–दो साल के बीच में हमें उन्हें सुनने का मौका मिलता ही रहता है। इसके लिए धन्यवाद !

अब मैं, पी.सी. तिवारी जी से निवेदन करूंगा कि गोपाल जी ने जिस बात को रखा उसे अपने ढ़ंग से थोड़ा आगे बढ़ाएंगे तो हमें मदद मिलेगी। उनके बाद हमारे पास उत्तराखण्ड से मौजूद कई अनुभवी और आंदोलनों में शामिल कई कार्यकर्ता मौजूद हैं जो अपने विचार रखेंगे। उनसे पहले पी.सी. दा जी अपनी बात को रखेंगे, आइए पी.सी. दा जी।

पी.सी.दा : मित्रो! मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है कि मैं, इस सवाल को कैसे देखूं क्योंकि मैं, कोई बुद्धिजीवी तो नहीं हूं। मैं, जिस तरह से समाज के साथ काम करता हूं, मुझे उसी तरह का अनुभव है। आप सभी लोग अनुभव की ही बात कर रहे हैं, तो मैं भी अपने कुछ अनुभवों को आपके सामने रखना चाहता हूं। आज से कुछ समय पहले 1980 की बात है जब हम अल्मोड़ा, (कुमाऊं विश्वविद्यालय) में पढ़ते थे, उस समय कफलटा में एक बहुत बड़ा कांड हुआ था जिसमें चार दलित वर्ग के व्यक्तियों की हत्या हो गई। उस समय हम विश्वविद्यालय के छात्र दल के सदस्य भी थे। इस घटना के तुरंत बाद हम डॉ. शमशेर सिंह बिष्ट तथा टमटा जी के साथ घटना स्थल पर पहुंचे। वहां जाकर हमें पता चला कि वहां गांव के अंदर एक मंदिर था, उस मंदिर में सब लोग अपनी डोली उतारते थे और आगे चलकर उस डोली में बैठते थे अर्थात मंदिर के सामने डोली पर चढ़कर कोई नहीं जाता था और अनुसूचित जातियों को वहां से डोली ले जाने की मनाही थी। लेकिन उस समय वहां से एक ऐसे दलित परिवार की डोली जानी थी जो आर्य समाजी थे, दिल्ली में काम करते थे और उनकी आर्थिक स्थिति भी मजबूत थी इसलिए वो इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। अब दोनों ओर से बराबर की तैयारी की गई थी, एक के अनुसार अगर उन्हें रोका गया तो वह प्रतिकार करेंगे और दूसरे वर्ग ने यह सोचा था कि अगर वो हमारे रास्ते में आएंगे तो हम उनका विरोध करेंगे और इसी विवाद के दौरान जब उनकी डोली जा रही थी तो एक शिवानंद नामक आदमी ने उनको खींच लिया, जैसे ही शिवानंद ने उन्हें खींचा वैसे ही उन्होंने उसे चाकू घोंपा और उसके आंखों में मिर्ची डाल दी। उसके बाद वहां बहुत बड़ा नरसंहार हुआ। इस नरसंहार को लेकर हमने उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले में जगह–जगह बैठकें और सभाएं की। उन बैठकों के बाद पूरा सवर्ण समाज वर्ग हमारे खिलाफ हो गया था। कांग्रेस ओर तमाम सवर्ण बहुल पार्टियां हमारे खिलाफ हो गई थी। लेकिन गंभीरता से देखा जाए तो वह केवल मात्र एक छोटी सी असमानता की

घटना थी जिसके कारण इतना बड़ा बवाल पैदा हो गया। ऐसी छोटी–छोटी घटनाएं हमारे समाज में लगातार होती रहती हैं।

हमने अपने साथियों और राजनेताओं से कहा कि हमें पहाड़ की मूल कृति को परिभाषित करना पड़ेगा। हमारे यहां गिरते हुए आर्थिक, सामाजिक ढ़ांचे को बचाने के लिए यह करना बहुत जरूरी भी है इसलिए हमने मुक्ति मोर्चा नाम से एक संगठन बनाया और करीब चार साल से वह संगठन इस लड़ाई को लड़ रहा है। इस संगठन में दलित जाति, मुसलमान, अल्पसंख्यक और वो सभी छोटे–छोटे लोग शामिल थे जो समाज द्वारा प्रताड़ित किए जाते थे। यह छोटा सा संगठन एक बड़ा संगठन बनता चला गया लेकिन बाद में उसमें काम करने वाले बहुत से कार्यकर्ताओं को यह अफसोस होने लगा कि समाजिक सवाल को उठाने के कारण वे अपने समाज से कट गए हैं और उन्हें किसी दूसरे समाज से भी मदद नहीं मिल रही है। समाजिक कार्यकर्ताओं के एक वर्ग को धीरे–धीरे यह महसूस होने लगा कि अगर उन्हें राजनीतिक रूप से सफल होना है तो उस समाज को उनके साथ खड़ा होना होगा और यदि वे खड़े नहीं होते हैं तो उन्हें लगने लगता है कि इससे हमें कुछ लाभ नहीं मिल रहा है। इससे उत्तराखण्डी समाज में दलितों को ऊपर उठाने वाला सामाजिक तंत्र कमजोर होने लगा।

हमारे एक मित्र हैं दीवान सिंह बिष्ट जी जो कि भाटिया गांव में सामाजिक कार्यकर्ता हैं और हमेशा संघर्ष वाहिनी के साथ जुड़े रहते हैं। अभी दो साल पहले जब हम माफिया अभियान द्वारा वहां गए थे तो वहां गांव में शराब पीकर कुछ झगड़ा हो गया। पानी का नल ठीक करने गए कुछ लोगों ने कहा कि हमने दलित परिवारों के लिए नल लगवाया है, आपको भी लगवाना चाहिए क्योंकि पानी तो सभी का है और इसपर सभी का अधिकार होना चाहिए। इस बात पर विवाद हो गया और कुछ लोगों के खिलाफ दलितों को पीड़ित करने का केस दर्ज हो गया। जब ये मामला हमारे पास आया तो हमने कहा कि आपने ऐसा करके गलत किया है आपको उनसे माफी मांगनी चाहिए। लेकिन अल्मोड़ा में बैठे हुए वकील, पत्रकार और कार्यकर्ता समझते थे कि पूरे समाज का ठेका उन्हीं के पास है इसलिए उन्होंने जबरदस्ती मुकदमा किया और पुलिस के साथ मिलकर उन्होंने काफी लंबे समय तक इस मुकदमे को चलाया, जबकि समाज में उसी बात को लेकर एकजुटता थी।

मुझे लगता है कि उत्तराखण्डी समाज में दलित सवाल को बहुत गंभीरता से हल करना चाहिए। क्योंकि आज तक दलित वर्ग ने जो राजनीति की या दलित वर्ग

को आगे रखकर एक शूद्र राजनीति की जा रही है। हम मुक्ति मोर्चा की बैठक करते थे उसमें पीड़ित लोग तो आते थे लेकिन दलित समाज के नेता नहीं आते थे। लेकिन जैसे ही कोई बात होती थी या कोई विवाद उठता था तब वे लोग तुरंत उठ खड़े हो जाते थे, कोई ठाकुर हो जाता था, कोई दलित हो जाता था और कोई नेता हो जाता था इस प्रकार पूरा का पूरा सामाजिक ढ़ांचा ही चरमर्रा जाता है ऐसे में रोटी का सवाल, बराबरी का सवाल और आजादी का सवाल आदि सभी गौण हो जाते हैं और हमारे समाज में एक–दूसरे के खिलाफ विरोध की भावना आ जाती है।

यहां मैं, एक चीज और कहना चाहता हूं कि हमारे समाज में जिन लोगों के पास आर्थिक सम्पन्नता है वो समाज में बराबरी के स्तर पर आ गए हैं उनके साथ कोई गैर बराबरी का व्यवहार नहीं करता है। जिनके पास आर्थिक और राजनीतिक क्षमता आ गई तो उनका स्टेटस बदल गया है लेकिन जिनके पास आर्थिक और राजनीतिक क्षमता नहीं है उनका स्टेटस नहीं बदला है और मुझे लगता है कि ये लोग भी दलितों के साथ चले गए हैं। जिनके पास रोजी–रोटी का कोई साधन नहीं है वे धीरे–धीरे एक बड़े दलित वर्ग के दौर से गुजरने लगे हैं।

मुझे लगता है कि हमें दलितों के आंदोलनों की बात करनी चाहिए, उनकी क्षमता की बात करनी चाहिए और उसके साथ यह भी जोड़ना चाहिए कि समता का सवाल केवल दलित या अनुसूचित जाति के साथ नहीं है बल्कि वो सभी लोग जो निम्न कामों के कारण समाज में नीचे आ गए हैं, उन सभी को लेकर यदि हम एक समता का आंदोलन शुरू करें खासतौर से हमारे यहां कायम एक बड़ी लड़ाई पूंजी और श्रम के बीच है। पूंजी का बहुत मान है जिसके पास पूंजी है वो बड़ा है और उसके पास सबकुछ ही है। वहीं जिसके पास श्रम है उसे धीरे–धीरे नीचे लाया जाता है। यदि हम उत्तराखण्ड के अंदर श्रम के सम्मान का आंदोलन चलाएं तो हमें साफ दिखाई देगा कि महिलाएं हों या अनुसूचित जाति के लोग वे सभी एक धरातल पर आकर इस बात को अच्छी तरह समझ पाएंगे। मुझे इस बारे में ज्यादा अनुभव नहीं है लेकिन मुझे इतना जरूर पता है कि जब हम ऐसा काम करते हैं तो उसके नतीजे काफी लंबे समय तक दिखाई देते हैं।

मैं, कुमाऊं विश्वविद्यालय में अल्मोड़ा छात्र संघ का अध्यक्ष था। हमने अपने छात्रसंघ का उद्घाटन करना था। हमारे छात्र संघ ने यह तय किया कि कुमाऊं विश्वविद्यालय के अल्मोड़ा परिसर के चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नन्हे लाल जो कि स्वंय वाल्मीकी और सामाजिक कार्यकर्ता थे, इसका उद्घाटन उन्हीं से कराया जाए। हमारे

इस फैसले का अल्मोड़ा जैसे बौद्धिक और बड़े लोगों के शहर में बहुत विरोध हुआ। खैर हमने ऐसा किया और इसके विरोध में कोई भी प्रत्यक्ष रूप में हमसे टकराने नहीं आया। इससे हमने इस बात को महसूस किया कि वहां पर जो उच्च जातीय मानसिकता थी वो आज भी उससे मुक्त नहीं हो पायी है। आज तक भी हम उसी मानसिकता में जी रहे हैं जब हमने नन्हे लाल नाम के सफाई कर्मचारी एवं वाल्मीकी से उद्घाटन करवाया था और उस दिन की तरह आज भी वो बात लोगों के मन में कायम है। आज भी अगर हम कोई बात करें तो उनका एक हिस्सा हमारे खिलाफ खड़ा हो जाता है फिर चाहे उनकी कोई भी शिकायत क्यों न हो। अब अगर हम माफिया के खिलाफ संघर्ष चला रहे हैं तो चाहे माफिया से उनका संबध हो न हो वे, हमारे खिलाफ आकर खड़े हो जाते हैं। इन सब बातों से मैं, एक बात कहना चाहता हूं कि यदि आप वास्तविक रूप से कोई भी लड़ाई शुरू करना चाहते हैं तो आप सभी के लिए अच्छे या सभी के लिए बुरे नहीं हो सकते आपके विरोध में कोई न कोई संगठन आकर खड़ा हो ही जाता है। इसलिए मुझे लगता है कि यदि उत्तराखण्ड की कोई राजनैतिक, सामाजिक पार्टी समाज की भलाई के लिए काम कर रही है और समाज के जिस वर्ग से समुदाय के खिलाफ वो लड़ रहे हैं, उसी समाज से कोई विरोध नहीं आ रहा है तो इससे स्पष्ट है कि समाज बदलने वाला नहीं है। ये समाज तभी बदल सकता है जब हममें से अधिकतर लोग उस टकराव के पक्ष में हों। और जहां तक दलित वर्ग के सम्मान की बात है, मैं, गोपाल भाई की इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि हमें किसी से भी सम्मान नहीं चाहिए, हमें अपने–आप मजबूत होना चाहिए, हम किसी के अपमान को न सहें, यदि कोई हमारा अपमान करता है तो हम उसका प्रतिकार करेंगे तो हमें अपने–आप ही सम्मान मिल जाएगा क्योंकि दबाव हमेशा कमजोरों पर किया जाता है। हमारे आंदोलन के साथी कहा करते थे कि दलित बकरे हैं, क्योंकि कुर्बानी बकरे की दी जाती है, शेर की नहीं। तो जब तक हमारा समाज एकजुट होकर शेर की भूमिका आ जाएगा अर्थात वो ताकतवर बन जाएगा, उसके पास आर्थिक शक्ति आ जाएगी, राजनैतिक शक्ति आ जाएगी और उसके पास अपने संगठन की शक्ति आ जाएगी तो उसके खिलाफ अत्याचार करने का उसको दबाने का प्रयास नहीं किया जाएगा। आज हमारे समाज की सबसे बड़ी जरूरत है समाज के पिछड़े एवं कमजोर वर्ग को सक्षम बनाने की और उनके अंदर आत्मविश्वास जगाने की। यदि उनके अंदर आत्मविश्वास आ जाएगा तो कोई भी व्यक्ति उनका उत्पीड़ित नहीं कर सकता। इस प्रकार यह एक लड़ाई और बड़ी लड़ाई हो सकती है और बड़ी लड़ाई आसान नहीं है उसे केवल जातिगत आधार पर नहीं लड़ा जा सकता बल्कि उसे समता के सभी रूपों के साथ रखना पड़ेगा क्योंकि अगर हम केवल जाति के आधार पर लड़ रहे हैं तो इससे जाति का उपयोग करने वाले लोग खड़े हो जाएंगे और हम इसे मानें

या न मानें वो लोग हमें हर जगह दिखाई देंगे। और उनके चलते समाज में जो सामाजिक सरंचना आती है उसका भी कहीं न कहीं नुकसान होता इसलिए मुझे तो लगता है कि यदि हम जाति के संघर्ष को एक वर्गीय सांचे में ढ़ालकर संघर्ष लड़ाई लड़ें तो यह असमानता ज्यादा देर तक नजर नहीं आएगी।
आपने मुझे सुना इसके लिए धन्यवाद !

भुवन पाठक : धन्यवाद पी.सी. दा। अब मैं, वक्ता के रूप में हमारे एक और साथी 'विजय' को आमंत्रित करना चाहता हूं। विजय अल्मोड़ा के रहने वाले हैं और हाल के वर्षों में उन्होंने जो काम किया है, उसका मैं, संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूं कि आज से कोई चार या पांच साल पहले एक पद यात्रा के दौरान उन्हें अपने एक मित्र के साथ बागेशवर जिले के एक गांव में छोटी सी पाठशाला शुरू करने का मौका मिला। यह गांव लगभग ब्राह्मण बाहुल्य था जिसमें उनके साथ कुछ ठाकुर भी शामिल थे और दलित समुदाय का एक छोटा सा तबका था। और जिस तरह से वहां विजय और उनके दलित साथियों ने पाठशाला चलाई उससे लगभग सारे गांव में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनका हौंसला भी बढ़ा। इससे स्पष्ट होता है कि यदि दलित समुदाय को नेतृत्व संभालने का मौका मिल जाए तो जातिगत दबावों को तोड़ने में मदद मिलती है।

मैं, विजय से निवेदन करूंगा कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन और इन कार्यों के दौरान होने वाले अनुभवों को हम सबके साथ बांटें।

विजय : यह बात बिल्कुल सच है कि छोटे–छोटे अनुभवों से आत्मसंतुष्टि और समाज में सम्मान जरूर मिलता है लेकिन केवल इन कुछ अच्छे अनुभवों से ही देश भर के और खासकर उत्तराखण्ड के दलितों द्वारा भोगी जा रही पीड़ा को भुलाया नहीं जा सकता है, लेकिन फिर भी पिछले 30–40 सालों के अनुभवों को देखने पर पता चलता है कि इस समाज को बेहतर बनाया जा सकता है।

हम लोगों ने रिजगांव क्षेत्र में काम करने की ठानी। अवसी ग्राम सभा पूरी तरह से जागेश्वर से मैदानी इलाके तक ब्राह्मणों की ग्राम सभा है, शुरू–शुरू में वहां ब्राह्मणों की चरागाह हुआ करती थी। बाद में कुछ पंडित वहीं बस गए। वो एक धार्मिक किस्म का गांव था लेकिन उसके बावजूद भी उस गांव में हमें कभी भी दलित होने का एहसास नहीं हुआ। उस अनुभव से मुझे यह एहसास हुआ कि समाज में परिवर्तन की अपार संभावनाएं मौजूद हैं।

मैं, एक और बात कहना चाहूंगा कि चाहे हम दलित हों या गैर दलित हों, हम अपनी मान्यताओं या सोच से खुद ही बाहर नहीं निकल पाते हैं। जब मैं, सवर्ण के साथ काम करता हूं तो पूरे आत्मविश्वास से काम करने की बजाय मैं, संदेहपूर्वक काम करता हूं। बार–बार मेरे मन में ये ख्याल आता है कि मैं, दलित हूं और जिन लोगों के साथ मैं, काम कर रहा हूं वे सवर्ण जाति से हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आमतौर से हम अपनी बातचीत में सुनते आए हैं कि दलित किसी के अपने नहीं होते, वे अछूत होते हैं आदि।

इस प्रकार हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि आखिर हम नौजवानों को किस तरह की शिक्षा दें जिससे वे इन मान्यताओं से बाहर आ सकें ? मैंने देखा है कि जब भी दलितों के साथ उत्पीड़न होता है तो मीडिया के समक्ष तो इस बात के काफी पक्षधर होते हैं, प्रेस को बुलाया जाता है या किसी और तरह की बैठकों का आयोजन करते हैं लेकिन जहां, वास्तव में दलितों के साथ अन्याय हो रहा होता है तो उस समय हम क्यों खड़े नहीं हो पाते हैं ?

मैं, आपको एक अन्य घटना के बारे में बताता हूं, वीना ग्राम पंचायत में अंबेडकर नाम का एक गांव है। वहां तीस साल पहले कुछ दलित परिवार ऐसे ही बिना भूमि के बस गए। वन पंचायतों के गठन के बाद पटवारी ने घोषणा कर दी कि ये बेनाप भूमि है और इसमें वन पंचायत बनेगी, जिससे गांव वालों का एक बड़ा अंश खत्म हो जाएगा। हालांकि वहां, पक्के मकान बने हुए थे और इस बात की पूरी संभावना थी कि ये मकान नहीं टूट पाएंगे लेकिन फिर भी आए दिन प्रशासन उन लोगों को मकान तोड़ने के बारे में डराकर अपना पैसा बनाता रहा, ये सब कुछ तब हुआ जब वहां का पटवारी भी दलित ही था। इस प्रकार मैं, ये प्रश्न करता हूं कि ऐसी स्थिति होने के बावजूद हम दलितों के साथ संवाद कैसे स्थापित कर सकते हैं ? और उनका साथ कैसे दें ? धन्यवाद !

भुवन पाठक : धन्यवाद विजय भाई ! मैं, इसी क्रम में हमारे दोस्त परशुराम भाई से निवेदन करूंगा कि वे आकर अपनी बात रखें। परशुराम गढ़वाल क्षेत्र के नौगांव, पुरोला क्षेत्र में काम करते हैं। मैं, उनसे निवेदन करूंगा कि वे अपने अनुभवों को संक्षिप्त में रखने का प्रयास करें। आइए परशुराम भाई !

परशुराम भाई : आदरणीय साथियो, आप सभी का हिमालय स्वराज आंदोलन, समता आंदोलन में स्वागत है। इस सत्र की बातचीत का विषय है ' समता आंदोलन '।

हमने पिछले वर्ष उत्तरकाशी में, एक कार्यक्रम किया, इसमें देश के तमाम बुद्धिजीवी साथियों ने उत्तराखण्डी समाज में दलितों की आर्थिक एंव सामाजिक स्थिति पर चिंतन शिविर में अपने विचार रखे जिसमें यह तय किया गया कि उत्तराखण्ड के दलितों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए एक खंड बनाया जाए जिसे उत्तराखण्ड समता आंदोलन के नाम से जाना जाए।

मैंने, अपने जीवन में दलितों के साथ भेदभाव करने वाली कई घटनाओं के प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं और मैं उनका हिस्सा भी रहा हूं। अपनी एक संस्था के द्वारा मैंने, कई गांवों में नुक्कड़ नाटकों का आयोजन किया, जिसमें हम सामाजिक विषयों को उठाया करते थे। जिसके लिए मैंने, करीब 1500 गांवों में भ्रमण किया। मेरी इस संस्था में अधिकतर दलित लोग थे और गांव में जब हम लोग प्रधान जी के घर में जाते तो वे मेरे कान में आकर पूछते थे कि तुम्हारे साथ मौजूद लोग किन–किन जातियों से हैं ? उस समय मेरे लिए जवाब देना बहुत कठिन हो जाता था। लेकिन जब हम साफ कह देते थे कि हममें से कुछ ब्राह्मण हैं, कुछ राजपूत हैं और कुछ दलित परिवारों के भी हैं तो वे साफ कह देते थे कि हम आप लोगों को अपने घरों में कैसे घुसने दें ? उनकी इसी प्रवृति के कारण शुरू–शुरू में हम लोगों को अपने बच्चों को खाना खिलाने में भी कठिनाई होती थी। गांव में हमारे बच्चों को फटे–पुराने बिस्तर दिए जाते और खाने के संबध में भी भेदभाव बरता जाता था। पहले हमने सोचा कि उनका यह व्यवहार कुछ दिनों में खत्म हो जाएगा इसलिए सहते रहे। लेकिन जब काफी समय तक इस स्थिति में कुछ बदलाव नहीं आया तो बाद में हम जिस भी विभाग के लिए काम करते थे उसे पहले ही यह कह देते थे कि हमारी टीम के सदस्य नुक्कड़ नाटक तो करेंगे लेकिन हम लोगों के खाने–पीने की व्यवस्था आप लोगों को करनी होगी और अगर आप लोग ऐसा नहीं कर पा रहे हैं तो इसके लिए हमें अतिरिक्त बजट दिया जाए जिससे हम अपना प्रबंध स्वंय कर लें। बाद में हम लोग अपनी रसोई बनाने के लिए अपने साथ कुछ लोगों को रखते थे जो हमारे खाने–पीने का पब्रंध कर दिया करते थे।

अभी पिछले वर्ष की घटना है, देहरादून में हनोत नाम के एक जिले में मासू देवता का प्राचीन मंदिर है, उस मंदिर में दलितों के प्रवेश पर कोई पाबंदी नहीं थी। उस मंदिर के ब्राह्मणों की रोजी–रोटी दलितों द्वारा चलती थी क्योंकि गांव के ब्राह्मण तो मंदिर के भीतर स्थिति दान–पात्र में पैसा या अन्य चीजें डालते थे जो कि सरकारी खजाने में जाता था वहीं, गांव के दलित लोग अपनी चढ़ावे अर्थात पैसा या फल–अनाज इत्यादि को मंदिर के बाहर देते थे और उस पर वहां के पुजारियों का अधिकार होता था। लेकिन पिछली बार एक अजीब सी घटना हुई, उस मंदिर के पुजारियों ने हमारे एक रंगकर्मी दलित साथी 'नंद लाल भारती' को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया।

उन्होंने इस बात को लेकर बड़ा विवाद किया और इस विषय पर इलाके के एस.डी.एम. और डी.एम. तक को वहां आना पड़ा और एफ.आर.आई. द्वारा एक–दूसरे पर मुकदमें तक दर्ज हो गए। इस घटना के बाद जब मेरी मुलाकात नंद लाल भारती जी से हुई तो मैंने उनसे पूछा कि उस मंदिर में दलितों के प्रवेश पर कोई पाबंदी नहीं थी, फिर उन लोगों ने आपको मंदिर में प्रवेश से क्यों रोका ? तो उन्होंने कहा कि ये तो ब्राह्मणों की एक चाल थी मैं, एक प्रसिद्ध व्यक्ति था और मुझे उस मंदिर में प्रवेश से रोककर, वह मीडिया और अन्य माध्यमों से समाज में ये बात फैलाना चाहते थे कि उस मंदिर में ब्राह्मणों का प्रवेश वर्जित हो गया है।

आज भी कुमाऊं और गढ़वाल समेत उत्तराखण्ड के लगभग सभी जिलों में स्कूलों में मिलने वाले दिन के भोजन के समय भी बच्चों के साथ भेदभाव किया जाता है। उस दौरान ब्राह्मणों और राजपूतों के बच्चों को अलग लाइन में खड़ा किया जाता है और दलितों के बच्चों को अलग लाइन में। जब हमने इस बारे में वहां के शिक्षकों से बात की तो उन्होंने कहा कि ये हमारी नहीं बल्कि गांव की व्यवस्था है। गांव के प्रधान के अनुसार दलितों के बच्चे गंदे रहते हैं और ये दलितों के बच्चे भी हैं इसलिए इन्हें हमारे बच्चों से दूर रखा जाए।

इस प्रकार आज भी उत्तराखण्ड में दलितों के साथ भेदभाव किया जाता है। इसके लिए आज की सरकारें भी जिम्मेदार हैं जिन्होंने अपनी वोटों की राजनीति के लिए दलितों का शोषण करते रहे और उन्हें पीछे धकेलते रहे। मैं, आज भी जब 10–12 साल पीछे देखता हूं तो मुझे याद आता है कि जो दलित परिवार उस समय त्रिपालों के नीचे रहते थे और इससे उन्हें बरसात तथा अन्य मौसमों में भारी परेशानी का सामना करना पड़ता था। वे परिवार आज भी त्रिपाल से बने घर में ही रह रहा है। वहीं उस समय जो दलित अच्छी स्थिति में था, आज उसकी स्थिति सुधरती जा रही है। हमारे समाज में जो प्रभावशाली दलित हैं, उनके घर में आम लोगों और ब्राह्मणों तथा राजपूतों का जाना होता था। आज भी हमारे समाज में छुआछूत बनी हुई है। स्वंय दलितों के बीच में भी ऐसा ही देखने को मिलता है, जो उच्च्य तबके के दलित हैं वे निम्न तबके के दलितों के साथ संबध नहीं रखते हैं और दलित समाज में अपने–आपको ऊंचा मानते हैं। उत्तराखण्ड के गांवों में 'बाची' जाति के दलित लोग शादी–ब्याह या त्यौहार के मौके पर ढ़ोल बजाते हैं जब वे ढ़ोल बजा दें तो फिर वे लोग हमारे घर के बाहर बैठते हैं, उन्हें हमारे घर के बरामदे तक में बैठने नहीं दिया जाता है। वे हमसे हाथ फैलाकर अपनी डडवाल मांगते हैं और फिर हम लोग बिना छुए उन्हें त्यौहार का सामान देते हैं।

इस प्रकार ये तमाम बातें आज भी हमारे समाज में मौजूद हैं। समानता के सवाल को आगे बढ़ाने के लिए और इस विषय में कानूनों में सुधार लाने के लिए दलितों को भी ऊंचा उठना होगा और कुछ गैर तत्वों को नीचे झुकना होगा, तभी जाकर हम इस समानता के आंदोलन को आगे बढ़ा पाएंगे। धन्यवाद !

भुवन पाठक : धन्यवाद परशुराम भाई ! इस बात को आगे बढ़ाने के लिए मैं, प्रकाश भाई को आमंत्रित करूंगा, वे पेशे से शिक्षक हैं और जब से हम लोगों ने मिलकर काम करना शुरू किया तब से वे हमारी टीम के हिस्से रहे हैं। मैं जय प्रकाश जी से अनुरोध करूंगा कि वो मंच पर आएं।

जय प्रकाश : बाबा साहब भीम राव आंबेडकर की 116 वें जन्मदिवस पर मैं, उन्हें अपने शाब्दिक सुमन अर्पित करते हुए यहां मौजूद सभी आयोजकों और उपस्थित मेहमानों का अभिन्नद करता हूं। मुझे इस गोष्ठी के बारे में पहले से कुछ पता नहीं था, मैं तो इस गोष्ठी में आए विद्वानों से कुछ सीखने के लिए यहां आया हूं। जब मुझे यहां बोलने के लिए बुलाया गया तो मुझे विजय प्रताप की एक बात याद आती है, कि वे कहते हैं कि उत्तराखण्ड के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्ति कहते हैं कि वहां जातिवाद नहीं है। ये बात सुनकर मुझे ऐसा लगता है कि हो सकता है या तो वो इस समस्या को उस नजरिए से नहीं देख रहे हैं या फिर वो समाज में इनता ऊपर उठ गए हैं कि वे ऐसे समाज में उठने–बैठने लगे हैं जहां ऐसे लोग मौजूद ही न हों।

जहाँ तक मेरी निजी स्मृतियों की बात है, मुझे विद्यार्थी जीवन में ही कुछ ऐसे अनुभव हुए हैं जो मुझे आज भी याद हैं। वहां के शिक्षक, विद्यार्थियों से भेदभाव किया करते थे क्योंकि उनके माता–पिता ने उन्हें ऐसा सिखाया है कि वे उच्च जाति के हैं और समाज में उनका दर्जा दलितों से ऊपर है। हम हमारे समाज में भी इन बातों का अनुभव किया करते थे लेकिन जब यही बातें वो अध्यापक करते थे जिन्हें हम 'गुरू बर्मा, गुरूर विष्णु' कहा करते थे तब बुरा लगता था। वो लोग कभी–कभी कापी चैक करने या चाय का प्याला उठाकर हमसे दूर चले जाया करते थे। उस समय हम इन बातों को नहीं सोचा करते थे लेकिन आज जब सोचते हैं तो उनके ऐसे व्यवहार का कारण स्पष्ट हो जाता है। एक अन्य घटना में, एक बार मेरे इलाके के एक मंदिर में एक प्रसिद्ध बाबा का भागवत चल रहा था, उस मंदिर के अंदर सभी लोगों को बुलाया गया लेकिन दो–चार दलितों को अंदर नहीं आने दिया गया उनको खिड़की से ही बाहर रहने का इशारा कर दिया गया। तब हम कक्षा 6–7 वीं में पढ़ते थे और इन बातों का अर्थ नहीं जानते थे। उसके बाद जब हम डिग्री स्तर पर आए और

बुद्धिजीवियों का शहर कहे जाने वाले अल्मोड़ा शहर में कमरा ढूंडने निकले। वहां पर बड़े अच्छे साफ–सुथरे मकान बने होते थे, आंगन में फूल लगे होते थे और उन लोगों के माथे पर लंबा–चौड़ा तिलक लगा होता था। हम लोग साफ–सुथरे होकर कमरा मांगने जाते थे। शुरूआत में और आपसी बातचीत के बाद वो हमें कमरा देने के लिए तैयार हो जाते थे। लेकिन जब परिचय की बात आती थी कि आप किस जाति के हो आदि ? तो फिर वो लोग बहाने बनाने लग जाते थे कि यह हमारी बुआ या मौसी का लड़का है आदि। तो इस तरह से धीरे–धीरे समाज में हमारा परिचय बनता चला गया और उसी के आधार पर हमारा परिचय तथा दोस्ती का ग्रुप बनता चला गया। जैसे अभी किसी ने उदाहरण दिया था कि किसी ब्राह्मण ने किसी दलित लड़की के घर पानी पी लिया तो वह उनकी बहुत कृतज्ञय हो गयीं। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि उस समय दलितों के साथ भेदभाव बरता जाता था और अगर कोई आदमी उस भेदभाव से अलग व्यवहार करे तो उसे विशेष समझा जाना तो तय था।

आगे चलकर मैंने धर्म और वेदों को पढ़ना शुरू किया, उनको पढ़कर पता चला कि हमारे हिन्दू धर्म में चार वर्ण हुए हैं और वेदों के अनुसार जो ब्राह्मण के मुंह से पैदा हुआ वो ब्राह्मण हो गया, जो जो बांहों से पैदा हुआ वो क्षत्रिय हो गया, जो जांघ से पैदा हुआ वो वैश्य हो गया, जो पैरों से पैदा हुआ वो शूद्र हो गया। उसके हमने हिन्दू धर्म की किताबों को पढ़ना शुरू किया वसुदैव कुटुम्बकम अर्थात यह संसार सभी लोगों का घर है और सभी लोग यहां मिल जुलकर रहेंगे लेकिन जब बाद में हमारा दिमाग विशलेषण करने की स्थिति में आया तो यह लगने लगा कि हम किस बसुधेव कुटुम्ब्कम की बात कर रहे हैं? जबकि वास्तव में समाज में चार वर्ण हैं और उनके बीच में आपस में किसी भी तरह का लेनदेन नहीं होता है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में इस बात का अपवाद होना शुरू हुआ और समाज में थोड़ा परिवर्तन होना शुरू हुआ जो कि परिवर्तन का सूचक है। इस जाति व्यवस्था का सबसे ज्यादा नुकसान दलित और समाज के सबसे निचले और दबे–कुचले तबके का हुआ है। और मुझे लगता है कि जब हम अपने ही कुटुम्बक के व्यक्ति को अपना नहीं मानते तो हम सम्पूर्ण वसुदैव को कुटुबंकम मानने की बात तो किताबी जैसी ही महसूस होती है। हो सकता है कि यह मेरा अपना तजुर्बा हो लेकिन मेरी यह सोच अनेक दृष्टियों से सोचने पर बनी है। और मैंने वास्तविक दुनिया को देखने पर ये जाना कि जैसे कहा जाता है कि हिन्दू धर्म में ऐसा होता है वैसा होता है वो बिल्कुल गलत है।

इन सब बातों को सोचने–समझने के बाद मैं, धर्म के चुंगल से मुक्त हो गया हूं। क्योंकि धर्म तो एक बड़ा दायरा है और ये लोगों द्वारा बनाए हुए छोटे दायरे हैं।

उसी तरह उत्तराखण्ड में भी मुझे ऐसे ही उदाहरण देखने को मिलते हैं। आज आप वहां के किसी भी गांव में जाएंगे तो वहां आपको ऐसी ही असमानता की स्थितियां देखने को मिलेंगी। जबकि लोग कहते आए हैं कि यहां ऐसा कुछ भी नहीं है शायद उनकी इसी सोच के कारण यहां संघर्ष और आंदोलन नहीं होते हैं। दलितों के साथ ये समस्या है कि वे भी खुद को छोटा मानकर इस व्यवस्था को मान रहे हैं और अपना रहे हैं। मुझे तो लगता है कि पहाड़ की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि दो गांवों के बीच में 10 से 25 किलोमीटर की दूरी है। यदि उन गांवों में 60–100 सवर्णो के परिवार होते हैं तो 5–10 दलित परिवार होते हैं और वे अपनी प्रतिदिन की जिंदगी के लिए सवर्ण परिवार पर निर्भर रहते हैं। वहां इतनी विपरीत परिस्थितियां होती हैं कि वहां के लोगों को सब चीजों के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता हैं इसलिए वे उनका विरोध भी नहीं करते हैं फिर चाहे उन्हें बार–बार जातिसूचक शब्दों से भी अपमानित क्यों न किया जाए।

आज जातिगत रूप से भेदभाव को दूर करने के लिए सरकार ने कुछ कानून बनाए हैं उन कानूनों तथा समाज में अपने आपको धर्मनिरपेक्ष कहलाने की मानसिकता के कारण अखबारों में रोज आता है कि समानता स्थापित की जानी चाहिए। आज समाज का सवर्ण वर्ग अपने आपको पढ़ा–लिखा मानता है, उसके मन में जातिवादी मानसिकता है लेकिन वह खुले रूप में उसका प्रदर्शन कहीं करता है। वह निचले वर्ग में अपनी समतावादी साख बनाना चाहता है इसलिए वे उन्हें छोटा न मानने की कला में माहिर हो गया है। मुझे लगता है उसके अंदर जातिवाद का कीड़ा है लेकिन वह उसे जाहिर न करने में विशेषज्ञ हो गया है। इन सब बातों को देखकर आज कहा जा रहा है कि जातिवाद कम हो गया है लेकिन मैं, तो कहता हूं कि वह कम नहीं हुआ है बल्कि बढ़ गया है। पहले छोटी एवं नीची जाति के लोग खुले रूप में संघर्ष पर उतारू हो जाते थे लेकिन अब वे ऐसा न करने की बजाय कानून का सहारा लेते हैं। ऐसा नहीं है कि ये कानून पहले नहीं थे, ये पहले भी थे लेकिन तब इनका प्रयोग नहीं किया जाता था। जबसे निम्न जाति के लोग कानूनों का प्रयोग करने लगे हैं तब से उच्च जाति में भी इन कानूनों के प्रति दहशत का माहौल है। लेकिन ऐसा नहीं है कि सब जगह दिखावा ही हो रहा है कुछ लोग वास्तव में ऐसा चाहते भी हैं और परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू भी हो गयी है।

जैसा कि नागर जी ने कहा कि आज कुछ राजनीतिक संगठन जाति के नाम पर लोगों को भड़का रहे हैं। आर.एस.एस. वाले हिंदुओं में नीची जाति वालों को अपने पास लाकर उन्हें भड़का रहे हैं और जातिवादी दंगों के दौरान वे खुद अपनी जान गंवा

नहीं सकते हैं इसलिए उनका प्रयोग करते हैं। गुजरात के दंगों में ऐसा ही देखने को मिला भी। उस दौरान मुसलमानों के खिलाफ संघर्ष करने वाले लोगों में दलित और आदिवासी ही अधिक थे। हो सकता है कि मेरी कुछ बातें ब्राह्मणों या दूसरे वर्ग के खिलाफ हो सकती हैं लेकिन ये मेरे अपने अनुभवों की बात है। आज आर.एस.एस. वाले हिंदुओं के लिए मंदिर के दरवाजे खोलने और कहीं–कहीं पर उन्हें पुजारी बनाने की बात कर रहे हैं। हो सकता है ये बात उनकी राजनीति का हिस्सा ही हो।

आज दलित समाज की मानसिकता भी बदल गई है वे उस समाज या धर्म में रहना ही नहीं चाहते हैं जिसमें उन्हें असमानता को सहना पड़ता हो। आज एक वर्ग ऐसा भी है जो कहता है कि हम हिंदुओं के हिस्से ही नहीं हैं, हिन्दू जो कहते हैं या करते हैं उससे हमें कुछ लेना–देना नहीं है हम उनसे अलग वर्ग में हैं। अपनी इसी सोच के कारण कई दलित अपने धर्म को परिवर्तित करते जा रहे हैं जिससे हिन्दुओं की संख्या कम होती जा रही है। दलितों को अधिकार मिलने और उनके लिए मंदिरों के दरवाजे खुलने के बाद उनके अंदर आस्था बढ़ गई, वे लंबा–चौड़ा तिलक लगाने लगे हैं, जनेऊ डालने लगे हैं और सवर्ण की तुलना में रामलीला आदि के लिए ज्यादा दान–दक्षिणा देने लगे हैं। उन्हें लगता है कि भगवान के दरवाजे उनके लिए खुल गए हैं या सवर्णो ने हमें स्वीकार कर लिया है, उन्हें लगता है कि समाज में समानता आ गई है। इनमें एक वर्ग के अनुसार उनका हिंदुओं से कुछ लेना–देना नहीं है, हम अपनी अलग पद्धति से काम करेंगे आदि लेकिन एक वर्ग ऐसा भी है जो संस्कृतिकरण कर रहा है जो ब्राह्मणों की नकल भी कर रहा है, ऐसा करने के पीछे उसका मकसद समान दिखना है। कुछ ने ब्राह्मणों की तरह धोती पहनना ज्यादा शुरू कर दिया है, वो अपने जनेऊ को भी ज्यादा बढ़िया तरीके से रखने लगे। लेकिन वास्तव में वे अपने इस संस्कृतिकरण से अपनी दुविधा को मिटाने का प्रयास कर रहे हैं या वे इन प्रतीकों के माध्यम से अपने–आपको उनकी तरह ही दिखाने की कोशिश कर रहे हैं।

समाज में इन सब बातों को देखकर मुझे लगता है कि समाज में परिवर्तन आएगा लेकिन बहुत धीरे–धीरे, समाज में ऐसा परिवर्तन लाने के लिए चर्चा करने और माहौल बनाने की आवश्यकता है। जैसे अभी हमारे एक साथी ने कहा कि हम दलितों के घर बेझिझक जाया करते थे और वो हमारे घर आने में हिचकिचाते थे और बाद में हम दोनों के मिलन के बिंदु कम होते चले गए और धीरे–धीरे वो खत्म ही हो गए। हमें अभी ऐसी चर्चा और बातचीत करने के मध्य बिंदुओं की तलाश करनी चाहिए। मैंने देखा कि आज कई परिवारों में पहली ही नजर में ऐसा नहीं होता है ऐसा तभी होता है या ऐसे सवाल तभी पूछे जाते हैं जब परिवार में एक से अधिक पीढ़ियां रहती

हैं इसका अर्थ है कि आज की युवा पीढ़ी इन बातों को या तो नहीं मानती या फिर कम मानती है। इस प्रकार हमें इस विषय पर संवाद के बिंदु तलाशने और संवाद करने की आवश्यकता है। समाज में समानता लाने के उपाय तलाशने की आवश्यकता है जैसे रघु भाई ने ही कहा कि समाज में रोटी–बेटी के संबध के बिना समानता कायम कर पाना बेमानी होगा। जहाँ तक संस्कृति की बात पर किसी ने बात की तो मुझे लगता है कि मात्र बात करने को संस्कृतिकरण नहीं कहा जा सकता है और उससे समाज में कोई खास बदलाव नहीं आएगा। समाज में बदलाव लाने के लिए मानसिक रूप से भी परिवर्तन की आवश्यकता है, इस विषय पर वैचारिक स्तर पर बातचीत भी हो। मुझे लगता है कि समाज में समानता कायम करने के लिए समता आंदोलन एक अच्छी शुरूआत है और अपने इसी तरह के कार्यक्रमों द्वारा हम समाज में समानता स्थापित होगी इसी उम्मीद के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं। धन्यवाद !!

भुवन पाठक (संचालक) – धन्यवाद भाई जय प्रकाश। अभी हमारे पास तीन और वक्ता हैं। मैं चाहता हूं कि सबसे पहले मुकेश भाई अपनी बात रखें। आइए मुकेश भाई !

मुकेश भाई – आपने अपने अनुभवों को कहने की बात कही है तो मेरे अनुभव लगभग 35–40 साल के रहे हैं। बचपन से ही मैंने, जाति को किताबों के जरिए, बात के जरिए या नाम आदि के अलग–अलग माध्यमों से देखा है। मुझे अच्छी तरह याद नहीं पर जहां तक याद आता है मुझे लगता है कि जब मैं 3 साल का रहा हूंगा तो मैं, मध्य प्रदेश में भीलों के साथ रहने चला गया। वहां मैं, करीब 12–13 साल तक रहा लेकिन वहां रहते हुए मैंने जाति के संबध में ऐसी बातें नहीं सुनी थी कम से कम हम बच्चों के बीच तो ऐसी बातों को कभी शामिल नहीं किया जाता था। उसके बाद में वायु सेना में चला गया जहां हिन्दुस्तान के अलग–अलग क्षेत्रों से भिन्न–भिन्न जाति के लोग रहते थे। मुझसे ऊंचे पद पर शर्मा जी और बीणा जी थे वे व्यक्तिगत रूप से मेरी बहुत मदद करते थे। जाति के सवाल पर कभी बातचीत नहीं हुआ करती थी। मैंने अपने जीवन के कई वर्षों तक जाति नाम को सुना तक नहीं था। ऐसा नहीं था कि वहां ऐसा नहीं था तो समाज में ऐसा कहीं भी नहीं था और यही समाज था।

जब पिछले साल हम उत्तराखण्ड में उत्तरकाशी आंदोलन में 'समता आंदोलन' में शामिल हुए तो फिर मैंने अलग–अलग तरह की बातें सुनीं। जैसे अभी आन्नद दास तथा राधा बहन ने जैसी बातें की तो उनका अर्थ मुझे समझ ही नहीं आया और उनकी बातों को सुनकर मुझे कई बातें समझ में आयी। हमारे समाज में कुछ ब्राह्मण साथी दलितों को दोष देते थे कि तुम निक्कमे हो, नालायक हो आदि। उसके विपरीत दलित

लोग ब्राह्ममणों या सवर्णों को दोष देते रहते थे वे दलितों को बेकार समझते हैं जैसा कि अभी राधा बहन ने ही अपने स्कूल को उदाहरण देते हुए कहा कि उनके स्कूल की लड़कियों के कल्याण के लिए आए हरिजन कल्याण विभाग के कर्मचारियों ने उनके यहां की लड़कियों को जाति के आधार पर अपमानित किया जबकि वहां की लड़कियां जातिगत भेदभाव को नहीं मानती थीं। वास्तव में जाति शब्द के मूल में अपने–आपको विशिष्ट मानने का बोध होता है और आज की तारीख में विशिष्ट बोध की चाहत हर किसी को है। आज कोई अपर कास्ट ब्राह्यण है, तो उसके आगे खेती का काम करने वाला ब्राह्मण टिक नहीं पाएगा। अपने–आपको विशिष्ट देखने या दिखाने की भावना मनुष्यों में होती ही है और उसके लिए वे कोई न कोई बहाना ढूंड ही लेता है फिर चाहे वो धर्म हो, जाति हो, रंग हो या आर्थिक कारण हो। जहां ये सब चीजें नहीं होती हैं वहां वेश–भूषा या बोली के आधार पर विशिष्ट होने की कोशिश की जाती है।

विशिष्ट शब्द संस्कृत का शब्द है और श्रेष्ठ होने और विशिष्ट होने में अंतर है। श्रेष्ठ का अर्थ होता है सब लोगों को एक समान समझते हो और उसमें अपने–आपको श्रेष्ठ मानते हो। और विशिष्ट का अर्थ होता है अन्य लोग तुच्छ एवं सामान्य हैं और आप उनसे श्रेष्ठ हैं। ये लड़ाई सामान्य और विशेष और शेष और विशेष के बीच में है। और यह मानवीय भावना की मूल प्रवृति है जिसमें इतनी जल्दी और आसानी से बदलाव नहीं हो सकता। उसका इलाज एक विशेष पद्धति से करने की आवश्यकता है। गोपाल भाई से हुई बातचीत के अनुसार पहचान शब्द वैशिष्ट बोध से जुड़ा हुआ है, हर कोई व्यक्ति अपनी अलग पहचान बनाना चाहता है। अगर उस आधार पर कोई अपनी पहचान बना लेता है तो उसके अंदर गर्व की भावना आ जाती है। नहीं तो उसमें कुंठा समा जाती है। कुंठा और गर्व मानव के स्वभाव से जुड़े रहते हैं। इस बारे में मुझे एक कहानी याद आती है। एक बार की बात है कुछ संत जंगल में जा रहे थे और रास्ते में उन्हें शैतान मिल गए। शैतान को देखते ही उन्होंने उसे मारना शुरू कर दिया। जब वह शैतान मार खाते–खाते अधमरा हो गया तो उधर से गुजर रहे एक आदमी ने उसे मारने का कारण पूछा। उन्होंने तुरंत कहा कि ये शैतान तो सभी समस्याओं की जड़ है। उस आदमी ने उनकी बातों को सुनते ही फौरन जवाब दिया, 'अरे भले मानसों यदि ये शैतान नहीं होगा तो तुम्हें कौन पूछेगा' इन बातों से मुझे कभी–कभी यह लगता है कि हमारे समाज में मुद्दों को जीवित रखने की कोशिश भी की जाती है। क्योंकि वास्तव में धर्म नीति या समाज नीति की बात को गलत तरीके से पेश करते हैं। क्योंकि धर्म और आध्यात्म दोनों एक–दूसरे के विपरीत हैं। धर्म को हम गुरूद्वारे, मंदिर, मठ में देखते हैं और ये तो एक तरह से दुकानदारी है। आध्यात्म की बात तो बुद्ध ने, ईसा ने और पैगम्बर ने की थी और उस समय हिन्दू धर्म मौजूद नहीं था।

उन्होंने व्यक्ति के मानवीय आचरण के बारे में बात की उन्होंने बताया कि मानव को मानव के साथ कैसे रिश्ते रखने चाहिए, मानव का पानी से क्या रिश्ता है, मानव का अंतरिक्ष से क्या रिश्ता है आदि। जिन्हें आज की तारीख में धर्म गुरू या आध्यात्मिक व्यक्ति माना जाता है उन्होंने कभी भी जाति या धर्म की बात नहीं की। लेकिन आज यदि हमारे जीवन तथा राजनीति और समाज से अध्यात्म खत्म हो जाएगा तो हमारे समाज में धर्म भी होगा, भाषा भी होगी, देश और दुनिया की तमाम धार्मिक बातें होंगी लेकिन धर्म वो बिकने की स्थिति में होगा अर्थात बेचा जा सकेगा। फिर चाहे वो हिन्दू धर्म हो, मुस्लिम धर्म हो या कोई और। मुझे लगता है कि इन बातों को समझकर हमें असमानता वाली बात को समझने में आसानी होगी। जैसा कि रघु भाई ने असमानता वाली बात पर कहा कि यदि हम समानता के मुद्दे को चाहे वो जाति के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या किसी अन्य आधार पर ही क्यों न हो। जब तक हम इसे टुकुड़ों–टुकड़ों में कहेंगे तो उत्तर भी टुकड़ों में ही आएगा जो कि बहुत दुखदायी होगा। क्योंकि इतिहास में हर टुकड़ा अपने–आपको पूरा समझता है और सिर्फ अपने–आपको समग्र समझता है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता ऐसा करने से हर चीज के टुकड़े हो जाते हैं और टुकड़ो–टुकड़ों में ही काम होता है। जब तक हम धर्म, राजनीति, समाज और विज्ञान को समग्र रूप नहीं देखेंगे तब तक किसी भी समस्या का सकारात्मक जवाब नहीं मिल पाएगा। इसके साथ–साथ हमें मानवीय व्यवहार को भी समझना होगा और उसमें मौजूद श्रेष्ठ बोध को अगर हम निकाल पाएं तो इस समस्या को हम काफी हद तक खत्म कर सकेंगे। मैं, केवल इतना ही कहना चाहता हूं। धन्यवाद !!

भुवन पाठक – धन्यवाद मुकेश भाई। इस महत्वपूर्ण सत्र के चरण को खत्म करने के लिए मैं, सभी का आभार व्यक्त करना चाहूंगा। इस महत्वपूर्ण सत्र में कुछ साथियों की भाषा और विचार बहुत स्पष्ट नहीं थे लेकिन उनके तेवर बहुत जुझारू थे जिन्हें आप लोगों ने बहुत ही तन्मयता से सुना, इसके लिए मैं, आपका आभारी हूं। अब हम कुछ देर के लिए चाय के विराम के बाद दोबारा यहां उपस्थित होंगे। अगले सत्र का संपादन रघु भाई जी करेंगे।

रघु भाई (संचालक) – अपने इस सत्र को आगे बढ़ाने से पहले मैं, चाहता हूं कि रघु भाई हमारे सामने एक छोटा सा गीत प्रस्तुत करें। आइए बल्ली भाई !

बल्ली भाई – ये एक कविता है मेरी, जो गजल के फॉर्म में है, लेकिन गजल नहीं है। मेरी कविता का नाम है 'अमरीका'।

हिलाओ पूछ, तो करता है प्यार, अमरीका।
हिलाओ पूछ, तो करता है प्यार अमरीका।
झुकाओ सिर, को तो देगा उधार, अमरीका।
हिलाओ पूछ तो करता है, प्यार अमरीका।
झुकाओ सिर को तो, देगा उधार अमरीका।
बड़ी हसीन हो, बुश की रखैल बन जाओ।
बड़ी हसीन हो, बुश की रखैल बन जाओ।
तुम्हारे हुस़्न को देगा, निखार अमरीका।
बराबरी की या रोटी की बात मत करना,
बराबरी की या रोटी की बात मत करना,
समाजवाद से खाता है खार, अमरीका।
तेरे वजूद से दुनिया को बहुत खतरा है,
तेरे वजूद से दुनिया को बहुत खतरा है,
ये बात बोल के, करता है वार, अमरीका।
बराबरी की या रोटी की बात मत करना,
बराबरी या रोटी की बात मत करना।
समाजवाद से खाता है खार अमरीका।
समाजवाद से खाता है खार अमरीका।
तेरे वजूद से दुनिया को बहुत खतरा है,
तेरे वजूद से दुनिया को बहुत खतरा है।
ये बात बोल के करता है वार अमरीका।
ये बात बोल के करता है वार अमरीका।
स्वाभिमान का वाटर उतार आंखों से,
स्वाभिमान का वाटर उतार आंखों से,
जो एक, मांगों तो देता है चार अमरीका।
स्वाभिमान का वाटर उतार हाथों से ,
प्रचन्ड क्रांति का योद्धा या उग्रवादी है,
प्रचन्ड क्रांति का योद्धा या उग्रवादी है,
सच्चाई क्या है, करेगा विचार अमरीका।
सच्चाई क्या है, करेगा विचार अमरीका।
दबा रहा है वो, डालर से, जूते से,
दबा रहा है वो, डालर से, जूते से,
हुआ है विश्व के सिर पर सवार अमरीका।

हुआ है विश्व के सिर पर सवार अमरीका।
हर एक देश को निर्देश रोज, देता है,
हर एक देश को निर्देश रोज, देता है।
खुदा, कहो या कहो थानेदार अमरीका,
हर एक देश को निर्देश रोज देता है,
खुदा कहो या थानेदार अमरीका।
हिलाओ पूछ, तो करता है प्यार अमरीका,
झुकाओ सिर तो देगा उधार अमरीका।
धन्यवाद !

रघु भाई– धन्यवाद बल्ली भाई, आपने हमको बताया कि समानता स्थापित करने के रास्ते में एक ओर खतरा मौजूद है। इस पर हम कल बात करेंगे। अभी चाय से पहले हम समानता के सवाल पर चर्चा कर रहे थे। इस बात को आगे बढ़ाने के लिए मैं, सबसे पहले हमारे बिहार के साथी रघुपति जी को आमंत्रित करूंगा। वे बिहार में जे.पी. आंदोलन से जुड़े रहे और आज भी वे उतने ही ज्यादा तेवरों के साथ समाज में समता की लड़ाई लड़ रहे हैं। आइए रघु भाई !

रघुपति जी– समता आंदोलन के अनुभवों की बात चल रही थी इसलिए मैंने भी अपना नाम लिखा दिया क्योंकि मैं, भी उस आंदोलन से जुड़ा रहा। यहां मौजूद नौजवानों ने अपनी बातें रखी हैं, उनके बारे में मैं, ये बताना चाहता हूं कि इस जाति व्यवस्था के कारण केवल दलित और पिछड़ों में ही रोष नहीं है बल्कि इस जाति व्यवस्था के कारण लगभग हर जाति में कहीं न कहीं झंझट है। यहां मौजूद लगभग हर जाति में खलबली है। ऊंची जाति के बीच में भी भेद हैं ब्राह्मण, राजपूत का बनाया हुआ भात नहीं छूता है। हम आज भी जानते हैं कि कामस्थ, गुनिया जाति या अन्य जातियों के हाथ से छुई हुई चीजें हम इस्तेमाल नहीं करते हैं। यहां मौजूद लगभग सभी साथियों के मन में ये सवाल है कि पेट और मन को कैसे जोड़ा जाए ? 'पेट' अर्थात आर्थिक समानता और 'मन' अर्थात वैचारिक समानता। कई मित्रों ने मानसिक समझ की बात भी की और मानसिक समानता की बात करना जरूरी भी है क्योंकि जब तक दिमागी स्तर पर सफाई नहीं होगी तब तक हमारे समाज में मौजूद हजारों सालों के संस्कार खत्म नहीं हो सकते। 20 साल पहले हमने एक सर्वे किया था जिसके अनुसार आर्थिक सम्पन्नता आने से दलित लोगों की स्थिती में सुधार होगा। हम नौकरी के मामले में बात नहीं करते लेकिन हमने जनहित के मामले में कुछ गांवों का सर्वेक्षण किया। उस सर्वेक्षण के दौरान जो बातें हमारे सामने आयी उनके अनुसार दलित परिवारों के अपने संस्कारों के

कारण उनके पास जो जमीन थी वो चली गई और आज भी वे बिना जमीन के रह रहे हैं।

आज भी हमारा जाति तोड़ो शासन मिटाओ का कार्यक्रम चल रहा है। इसके लिए हम अपने इलाके में लोगों को तैयार कर रहे हैं। हमारी पुरानी सोच के अनुसार ढ़ोल, गंवार, पशु शूद्र, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी कहा गया है और वहीं हमारे धार्मिक संस्कारों में जातिगत समानता के खिलाफ भी मनुस्मृति जैसे धार्मिक ग्रंथों में लिखा गया है। हम इन्हें मिटा तो नहीं सकते हैं क्योंकि उसे लिखने वाले तो आज जीवित नहीं हैं और हम उसको न तो मिटाया जा सकता है और न ही उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है। एक बार गोरखपुर की गीता प्रेस पर मुकदमा चलाया गया। तो गीता प्रेस के मालिक ने कहा कि नहीं रामचरित मानस के मूल में वो बात नहीं थी वो तो बीच में चिपक गयी है। मैं, नहीं जानता के कि तुलसीदास के जमाने में वो किताबें लिखी गई या नहीं ? उस समय समाज में वो प्रभाव था या नहीं? वो इतिहास का विषय है और मैं, उसमें पड़ना नहीं चाहता। पर मनुस्मृति के बाद जो तुलसीदास का रामचरित मानस लिखा गया, उसके बारे में लोग सोचते हैं कि वो तुलसीदास ने ही लिखा होगा और इस तरह की चीजें समानता को तोड़ती हैं। हमें समाज में समानता स्थापित करने के लिए अध्यात्म और धर्म को अलग करना होगा लेकिन हमारे मन में ये सवाल रहता है कि उसकी परख कैसे हो। रामायण के उत्तर कांड में बहुत सारी ऐसी चीजें हैं जिसको हम अध्यात्म के रूप में लिख सकते हैं, कह सकते हैं और उसी रामायण में कई ऐसी चीजें हैं जिसे समझना कठिन है, हम इसे कैसे समझें और फिर लोगों को कैसे समझाएं ये सवाल हमारे सामने रहता है। इसलिए इसके बारे में जानना–समझना बहुत जरूरी है। मनु स्मृति की इन्हीं बातों को चित्रों और प्रदशर्नी के माध्यम से समझाने की कोशिश की जाती है।

समाज में विद्यमान असमानता की स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि बिहार में काला ज्वर से बूसरण जाति के कई लोगों की मौत हो गई। अब प्रश्न यह उठता है कि केवल दलित जाति के लोगों की ही अधिक मौत क्यों हुई? ऐसा एसलिए हुआ कि इस बुखार के लिए अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है, इस बीमारी में उचित इलाज के साथ–साथ अच्छे भोजन की भी आवश्यकता होती है लेकिन दलित लोगों को अस्पताल में कुछ भी भोजन जैसी कोई भी सुविधा नहीं मिल पाती उसके अलावा इलाज के मामले में भी उनके साथ भेदभाव बरता गया जिससे वे लोग अस्पताल को छोड़कर घर आ गए और उचित इलाज न मिलने की स्थिति में वे मर गए।

हिन्दुस्तान तभी आगे बढ़ पाएगा जब इस देश में समानता स्थापित हो जाए। इसी क्रम में हमने प्रयोगों के कई दिए जलाए हैं जिससे समाज में उम्मीद की लौ पैदा हो रही है और वह निरन्तर बढ़ रही है। समानता के विरोधी हमारे खिलाफ खड़े हो गए। एक बार हम सम्मेलन कर रहे थे पुलिस ने 25 आदमियों के उस सम्मेलन तथा प्रदशर्नी को उखाड़ फेंका और हम सबको जेल में डाल दिया। बाद में पुलिस को कहा गया कि तुम चार्ट शीट भरो और इन लोगों को जमानत पर छोड़ दो। लेकिन हमने इस तरह जमानत पर रिहा होने से मना कर दिया। हमने कहा कि हम जेल में ही रहेंगे चाहे जितने दिन भी रहना पड़े। लेकिन बाद में उन्होंने खुद पुलिस को चार्ज सीट भरी जिससे हमें बहस नहीं करनी पड़ी और बाद में हम लोगों को छोड़ दिया गया। तो मैं, कह रहा हूं कि जब भी आप जाति व्यवस्था के खिलाफ लड़ने का मन बनाएंगे तो सभी चीजों पर परिवर्तन दिखाई देता है और समसज अपने–आप फड़फड़ाने लगता है, हमें लगता है कि इसीलिए बाबा साहेब आंबेडकर ने आरक्षण की बात की और समाज में समानता लाने के लिए रोटी और बेटी के संबध बनाने की बात की। लेकिन मुझे लगता है कि इस तरह के संबध बनाने से ही समस्या हल होने वाली नहीं है। हमें मालूम है कि आज हजारों साल पहले हमारे समाज में केवल चार ही जातियां थी तो फिर आज मौजूद हजारों जातियां कहां से आ गई ? ये जातियां तभी पैदा हुई क्योंकि कई सालों से हमारी बेटियां अन्य जातियों में शादी कर रही हैं लेकिन वो केवल चार जातियों में सीमित न रहकर एक अलग ही जाति बन जाती है जिससे चार जातियां बढ़ते–बढ़ते हजारों जातियां हो गई हैं। आज हमें इन हजारों जातियों को फिर से एक जाति अर्थात 'मानव जाति' बनाना है।

बेटी के साथ–साथ हम लोग समाज में रोटी के संबध बनाने की बात भी करते हैं लेकिन फिर भी समाज में रोटी के संबध बनाने में बहुत सोच–विचार किया जाता है। आज भी जब हमारे गांव में सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है तो अनुसूचित जातियों एवं दलितों को अपने पत्तल स्वंय उठाने के लिए कहा जाता है। एक बार की घटना है एक बार हमारे गांव में भी ऐसा ही हुआ, सामूहिक भोज के दौरान दलित जाति के लोगों को अपने पत्तल स्वंय उठाने के लिए कहा गया। हमने इसका विरोध करने की सोची। मैंने, कहा कि मैं, खुद इनका पत्तल उठाऊंगा और इन्हें नहीं ले जाने दूंगा। मेरी इस बात से समाज में खलबली मच गई। इस तरह से मेरे गांव के साथ–साथ यह आंदोलन अन्य गांवों में भी शुरू हुआ।

रोटी के साथ–साथ पीने के पानी के संबध में भी भेदभाव बरता जाता था। जब हम लोग छोटे थे तो अनुसूचित जाति के लोगों को हमारे कुओं से पानी भरने की

मनाही थी। कहीं—कहीं पर वे लोग हमारे ही कुओं से पानी भर लेते थे लेकिन वहां ये था कि यदि कोई सवर्ण आदमी पानी भर रहा है तो कोई दलित उसके पास नहीं आएगा और जब तक वह पानी न भरे तब तक किसी दलित को पानी भरने या पीने का अधिकार नहीं था फिर चाहे वे प्यास से मर ही क्यों न जाए। उस समय पर दलितों के लिए कोई खास कानून भी नहीं थे इसलिए उन्हें सबकुछ सहना पड़ता था। इस बात से मुक्ति पाने के लिए भी हमने कई कार्यक्रमों का अयोजन किया।

समाज में समानता स्थापित करने के लिए जे.पी. ने जनेऊ तोड़ो का नारा दिया। उनकी इस बात पर बिहार में बहुत हंगामा हुआ। बिहार में लगभग 25—50 जगहों पर ऐमरजेंसी लागू हो गई। बिहार में सभी सवर्ण जाति के लोग उनके खिलाफ हो गए। सभी लोग कहने लगे कि जय प्रकाश नारायण लोगों की जन्म ओर नीति के खिलाफ बोल रहे हैं और हिन्दू धर्म का नाश कर रहे हैं। इस कार्यक्रम के तहत हमने चांदनी वैशाली जिले के एक गांव में एक कार्यक्रम बनाया। हमें पकड़ने की कोशिश की गई। हम लोग जेल जाने के डर से भूमिगत हो गए। उस समय शंकराचार्य जी जप किया करते थे। हमने सोचा कि आज शंकराचार्य की कुर्सी पर हमारा सथी बैठेगा और हम लोग लोकनारायण जय प्रकाश का नारा लगाएंगे और वो भाषण करेगा और वह शंकराचार्य को देश का दुशमन बताएगा और कहेगा कि वे देश में घृणा फैला रहे हैं। हम लोगों ने अपने इस कार्यक्रम को अंजाम दिया और हमें उसके नतीजे भी भोगने पड़े। हमारे एक साथी की चाय में नशा पिलाकर उसके साथ दुर्व्यव्हार हुआ और हम लोगों को बहुत मार पड़ी। इसलिए जो कुछ समाज में गलत चल रहा है उसको दूर करने के लिए हम सबको संगठित रूप से लड़ना होगा।

अपनी इसी सोच के चलते जब आपातकाल खत्म हुआ तो हमने देखा कि समाज में पूजा इत्यादि होती रहती है लेकिन उसमें भी पूरी—पूरी असमानता बरती जाती है। छोटी जात के लोग अपने घर में पूजा करवाने के लिए पंडित जी को बुलाते हैं। इस पूरी पूजा के दौरान हिन्दू धर्म के बारे में बात की जाती है और उसके अनुसार हमारा जाति इत्यादि न केवल इस जन्म से जुड़ी है अपितु वह कई जन्मों से जुड़ी हुई है। लेकिन जिस धर्म और जिसकी बातों को मेरे पूर्वज माना करते थे, मैं, उन्हें बिल्कुल नहीं मानता था। एक बार की बात है हमारे बगल में एक पूजा का आयोजन होने वाला था। वहां शादी होने वाली थी और उससे एक दिन पहले सत्यनारायण की पूजा होनी थी जिसके बाद में प्रसाद भी खिलाया जाना था। हम लोगों ने सोचा कि क्यों न इस बार की पूजा में हम बाबा साहेब आंबेडकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया आदि दलितों के उद्धारकों की जीवनी का बखान करें। हम 5—7 लोगों ने मिलकर बाबा साहेब

अम्बेडकर, महात्मा भूले, शंकर बाबा, डॉ. राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश और गांधी आदि के बारे में किताबें छापी। फिर हमने तय किया कि जिस दिन सत्यनारायण की कथा हो रही होगी, उस दिन एक लड़का इन किताबों को पढ़ेगा फिर उन बातों पर बहस होगी। और फिर बाद में प्रसाद भी बंटेगा क्योंकि यदि प्रसाद नहीं बांटेंगे तो लोग भी नहीं आएंगे इसलिए प्रसाद बांटना जरूरी है और प्रसाद के साथ–साथ लोगों को सत्य और समानता का प्रसाद भी बांटा जाएगा। हम लोगों ने ऐसा आयोजन किया और आज भी करते आ रहे हैं।

इसी प्रकार हमने एक शादी के दौरान ब्राह्मण को बुलाने की बजाय वहीं उसी समाज में मौजूद एक व्यक्ति को अध्यक्ष बना दिया। 10–20 लोगों को सभा का सदस्य बनाया और फिर लड़के और लड़की से संवाद करवाया कि वे अपने जीवन का निवार्ह कैसे करेंगे ? शादी की प्रक्रियाओं में असमानता, अस्पृश्यता और जाति भेद को तोड़ने के प्रयास किए गए। वहां एक पर्चा बनाया गया जिसमें अस्पृश्यता, असमानता तथा जातिगत भेदों को दूर करने के लिए किए जाने वाले कामों और उपायों के बारे में लिखा गया फिर उसपर लड़के और लड़की ने हस्ताक्षर किए। तो इस तरह से हमने समाज में मौजूद इन्हीं संस्कारों के माध्यम से असमानता को खत्म करने के बीज डाले। और इस तरह से आज भी हमारे समाज में वो काम चल रहा है। हम दोनों ने शादी और सत्य नारायण की कथा जैसे दो बातों को चुना क्योंकि शादी और श्रद्धा ये दोनों बंधन ऐसे होते हैं जिनका समाज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। हमने जनेऊ बंद करवा दिए।

जो बातें मैंने, समाज के लिए की, उन्हीं बातों के द्वारा मैंने अपने काम भी किए। मैं खुद अपने परिवार में होने वाली शादी–ब्याह के मौके पर किसी ब्राह्मण को नहीं बुलाता किसी पिछड़ी जाति के साथी को बुलाता हूं। उसी तरह से मैंने अपने पिताजी के श्राद्ध में अपना माथा नहीं मुंडवाया, ब्राह्मण भोज नहीं करवाया, सबको साथ बैठाकर खाना भी खिलाया। मेरी इन बातों की बहुत प्रतिक्रिया हुई। आज भी हम अपने काम को कर रहे हैं। ये ठीक है कि आज मैं, और अमन बिहारी जैसे मेरे कई साथी बूढ़े हो गए हैं लेकिन फिर भी ये काम हो रहा है और इस काम को हमारे नौजवान साथियों ने संभाल लिया है। वे बड़े पैमाने पर इस काम को गांव–गांव में कर रहे हैं। तो मैं, ये कहना चाहता हूं कि इस विषय पर वैचारिक बात होती रहनी चाहिए।

वोट और चुनावों के समय भी इन सब बातों का असर दिखाई देता है। खुद मेरे साथ ही भी ऐसा ही हुआ। मैं, 1990 में वी.पी.सिंह की पार्टी से विद्यानसभा का चुनाव

लड़ रहा था। उस समय वी.पी.सिंह की पार्टी का बहुत बड़ा दबदबा था लेकिन फिर भी मैं, हार गया क्योंकि मैं, पिछले दस सालों से समता आंदोलन और जाति तोड़ो की बात कर रहा था, मैं, उसके लिए जगह–जगह जाता था और ये प्रचार करता था कि 'ढ़ोल, गंवार, शूद्र, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी ' आदि बातें गलत हैं इसी विषय पर हम चित्र प्रदशर्नी आदि लगाया करते थे। मेरी इन बातों को देखते हुए, वहां के लोगों को डर था कि यदि मैं, जीत गया तो गीता पर ही रोक लगवा दूंगा। और इसके जीतने के बाद पिछड़ी जाति के दलित और हरिजन सवर्ण लोगों का सम्मान करना बंद कर देंगे। क्योंकि हमने गीता को जलवाकर उस पर पैशाब करवा दी थी, और उन्हें डर था कि कहीं अब मैं, रामायण पर भी पैशाब न करवाऊं। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं, हार गया।

मैं, कहता हूं कि समाज में समानता लाने के लिए राष्ट्रपति बनने के लिए लड़ना जरूरी नहीं, प्रधानमंत्री के लिए लड़ना जरूरी नहीं, और विधायक के लिए लड़ना भी जरूरी नहीं है लेकिन इतना जरूर है कि लड़ते समय इस बात का ध्यान जरूर रखना चाहिए कि जातिगत समानता कैसे स्थापित की जाए? देश की समानता और मन की समानता का बोध कैसे पैदा किया जाए ? हमें चुनाव के प्रचार के दौरान ये सब करने का मौका मिला और हमने ऐसा किया भी। हमारे चुनाव में वी.पी.सिंह, लालू प्रसाद यादव, और नीतीश कुमार जैसे कई बड़े लोग गए लेकिन फिर भी हम हार गए क्योंकि उनकी सब बातों से भी उस उच्च जाति के लोगों पर कुछ असर नहीं पड़ा जिन्होंने वे मन बना चुके थे कि ये आदमी समानता के लिए लड़ता है इसलिए इसको वोट नहीं देना है। उसके बाद भी हमारे साथ कई घटनाएं घटी। इस आंदोलन के कारण हमारे सात साथियों की हत्या हुई मगर फिर भी हमारे साथी लड़ रहे हैं।

मैं, कह रहा हूं कि हमें जातिमुक्त समाज पैदा करने का प्रयास करना होगा। उसके लिए हमें कहीं न कहीं मन बनाना होगा क्योंकि केवल बहस करने और भाषण देने से ही ये संभव नहीं होगा। आप जिस भी गांव या जिस भी इलाके में जाएं वहां बुनियादी चीजों को पकड़कर हमें कहीं न कहीं रुककर बोलना होगा। तभी हम इस काम को कर पाएंगे। इसके लिए पिछड़ी जाति के साथ–साथ ऊंची जाति के लोगों को भी प्रयास करना होगा। क्योंकि अभी हाल में हमारे समाज की एक घटना है, एक ऊंची जाति की लड़की ने निचली जाति की लड़के से शादी कर ली। वो एक राजपूत विधवा औरत थी और उसने एक चरवाहे से शादी कर ली। गांव के लोगों ने दोनों को अलग करके काट देने का पलान बना लिया, उन्हें एक गुप्त जगह पर पकड़ भी लिया गया। जब इस बारे में लोगों को खबर लगी तो पुलिस से बात करके उन्हें छुड़ाने का प्रयास

किया गया और फिर बाद में दोनों की शादी कर दी गई। लेकिन फिर भी वो दोनों गांव में एक साथ नहीं रह सकते थे। इसलिए उन्हें किसी और गांव में रखने की व्यवस्था की गई। लड़के को रिक्शा खरीद दिया और लड़की को सिलाई मशीन दिला दी गई। आज भी गांव में ऐसी ही स्थितियां हैं। दिल्ली जैसे शहर में कोई जे.एन.यू. का विद्यार्थी इस तरह से शादी कर ले तो कोई बड़ी चर्चा नहीं होती है लेकिन गांव मे बड़ा बवाल मच जाता है और एक तरह से हमले की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। हमें इन सब बातों को समझते हुए प्रतिकार करना चाहिए। इस बात को समझने की जरूरत है कि बिना संगठन बनाए इस बात का हल नहीं निकाला जा सकता। इसलिए इस बारे में बड़े पैमाने पर सोचने और संगठन बनाने की जरूरत है। इस संबध में मैं, लगातार काम कर रहा हूं इसलिए मुझे लगा कि इस बारे में बोलना ही चाहिए। धन्यवाद।

रघु भाई संचालक – रघुपति जी आपने हमारे बीच अपनी बातों को बहुत ही स्पष्ट तरीके से रखा इसके लिए धन्यवाद। आपने सही कहा कि रोटी और बेटी से ही हमारी समस्या का हल नहीं हो पाएगा बल्कि इसके लिए हमें अपने संस्कारों और मूल्यों को बदलकर छोटे–छोटे संघर्ष करने होंगे। इसी तरह आपने बताया कि हम जाति भेद की समस्या की जड़ तक कैसे जा सकते हैं। उसके साथ आपने जमीन की एक बहुत महत्वपूर्ण बात उठाई आपने बताया कि कैसे हमारी दलित जातियों के हाथ से जमीनें चली गई। अगर उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में इसे देखने की कोशिश करें तो उत्तराखण्ड के अंदर जितनी भी दलित और दस्तकार जातियां है वो एक तरह से भूमिहीन की स्थिति में है और अगर उनके पास कहीं भूमि है भी तो या तो कम, उपजाऊ है या अनुत्पादक है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान हमारी सरकार ने भूमिहीनों को मकान बनाने के लिए अनुदान दे रही थी लेकिन आज सरकार गांव की सारी जमीन को सरकार के खाते में डाल चुकी है और आज हमारे गांव के भूमिहीन दलितों, काशतकारों के पास भूमि ही नहीं है उनकी सारी भूमि चली गई है। इसके अलावा सत्ता के महत्वपूर्ण स्त्रोत अर्थात प्राकृतिक संसाधनों पर से भी उनका अधिकार छिन गया है, हमें इन सब बातों को समझने में इन्होंने जो मदद की उसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद आवश्यकता है। धन्यवाद !

हमारे बीच उत्तराखण्ड के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति वेद उनियाल जी आए हुए हैं। उन्होंने अपने परिचय में कहा है कि वे उत्तराखण्ड क्रांति दल में काम करते हैं लेकिन मुझे लगता है कि उनके परिचय के लिए किसी दल की आवश्यकता नहीं है। वे उत्तराखण्ड के अंदर समतामूलक समाज के निमार्ण के लिए वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं।

हम उनसे जानना चाहते हैं कि उत्तराखण्ड के भीतर समता आंदोलन को कैसे देखा जा सकता है और उस विषय में उनके क्या अनुभव रहे हैं। श्री वेद उनियाल जी आइए आपका स्वागत है !

वेद उनियाल : सदन में उपस्थित सम्मानित साथियो हम लोग समता आंदोलन पर बहुत अच्छी चर्चा सुन रहे थे इस चर्चा का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि आज हम देश की राजनीति को एक नई दिशा देने वाले डॉ. साहब भीमराव अम्बेडकर जी का 116 वां जन्मदिवस मना रहे हैं। निसंदेह इस बहस से बाबा साहेब द्वारा दिखाया गये रास्ते पर कुछ कदम और चला जाएगा।

दोस्तो, इस बहस की शुरूआत में विजय प्रताप जी ने कहा कि आज कुछ लोग यह मानते हैं कि उत्तराखण्ड में जाति व्यवस्था नहीं है। लेकिन मैं, साफगोई से यह कहना चाहता हूं कि उत्तराखण्ड के लोग बहुत अच्छे, भले और सुसंस्कृत हैं और जाति व्यवस्था के रूप में उनके उत्पीड़न की यही बुनियाद है। उसी तरह यदि हम उत्तराखण्ड में तराई के भाग को निकाल दें तो पूरे उत्तराखण्ड में जमीनों की स्थिति ठीक नहीं है। वहां जमीन इतनी कम है कि या तो वह ठाकुरों के पास है या ब्राह्मणों के पास है और शिल्पकारों और अन्यों के पास भूमि या तो बहुत कम है या है ही नहीं। भूमि की इस स्थिति के कारण वहां के शिल्पकारों तथा अन्य वर्गों में आपस में निर्भरता है उनके सामाजिक रिशते इतने सौहार्द हैं कि जाति उत्पीड़न जैसी बातें पैदा ही नहीं होती हैं। लेकिन मैं, पूछना चाहता हूं कि यदि वहां सामाजिक सौहार्द इतना ज्यादा है तो फिर वहां पर उच्च जाति के प्रत्याशियों को चुनाव में ज्यादा वोट कैसे मिल जाते हैं ? साथियो जैसा कि आप जानते ही हैं कि उत्तराखण्ड भारत का हिस्सा है और भारत के परिदृश्य पर जो राजनीतिक घटनाएं होती हैं जो सवाल उभर कर आते हैं कहीं न कहीं उनका उत्तराखण्ड पर भी असर दिखाई देता है। यह एक बुनियादी सवाल है कि इस देश में जातिगत असमानता विद्यमान है हां ये जरूर हो सकता है कि वह उत्तर प्रदेश और पश्चिमी उत्तर प्रदेश और बिहार में संख्यात्मक रूप से ज्यादा है लेकिन फिर भी जब–जब देश के अक्स पर जातिगत उत्पीड़न के सवाल आते हैं उनका उत्तराखण्ड के जनमानस और उसकी राजनीति पर प्रभाव पड़ता ही है। मुझसे पहले कुछ साथियों ने बहुत ही उत्साह, विस्तार और सूक्ष्म निरन्तरता से जातीय विविधता और जाति के सवाल को हमारे सामने रखा। उन्होंने कहा कि जब तक हम जाति के सवाल पर नहीं सोचेंगे तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते।

मैं, भी अपने व्यक्तिगत अनुभवों से ही अपनी बात की शुरूआत करता हूं। मैं, बहुत सौभाग्यशाली हूँ कि मेरे पिता केन्द्रीय सरकार के रक्षा संस्थान में कर्मचारी थे और हम लोग उसी रक्षा संस्थान की कॉलोनी में रहा करते थे, जहां एक मिली–जुली संस्कृति, सभ्यता थी। ऐसा नहीं है कि वहां पर जातियों की सभ्यता नहीं थी लेकिन वो बहुत निम्न स्तर पर उत्पन्न हो रही थी। मुझे याद है बचपन में अगर हम कुछ अंतर देखते थे तो वो था जहां कर्मचारी और श्रमिक रहते थे वो एक छोटा क्षेत्र था और जहां बड़े अफसर रहते थे वो बंगले की तरह का क्षेत्र होता था। वो भेदभाव वहां मौजूद था लेकिन वे नौकरशाही के कारण था और व्यक्तिगत रूप से मेरे ऐसे अनुभव नहीं थे।

बाद में मैं, समता आंदोलन का हिस्सा बन गया लेकिन समता आंदोलन का हिस्सा बनने से कई महत्वपूर्ण था कि मैं, जन्म से ब्राह्मण परिवार का होने के कारण समाज में केवल बाह्मण होकर ही अपना जीवन यापन करूं या उससे इतर होकर एक इंसान के रूप में भी जीवन यापन करूं। इसी के तहत जब मैंने गैर ब्राह्मण परिवार की लड़की से विवाह किया तो परिवार और परिवेश को लेकर जो सामाजिक कटुताएं और विषतमाएं हैं, वो मुझे भी भुगतनी पड़ी। इसके लिए मैं, व्यक्तियों को दोष नहीं देता क्योंकि आज भी हमारे समाज में सामंती समाज के मूल्य मौजूद हैं।

इस देश में आजादी के दौरान जब हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने गुलाम बनाया तो यह देश सामंती समाज से टूटकर पूंजीवादी समाज की स्थापना के रूप में आगे बढ़ रहा था। लेकिन वो किसी व्यक्ति की इच्छा पर आधारित नहीं था। वो किसी नेता का सवाल नहीं होता वे तो समाज के विस्तार के विकास की कहानी होती है लेकिन उसकी एक साम्राज्यवादी जकड़ देश के ऊपर आ गई है। हमें उनके खिलाफ लड़ाई करनी चाहिए। वो स्वाभाविक लड़ाई इस देश के अंदर सामंतों और उनके मूल्यों के, उनके जल विरोधी रवैयों के खिलाफ होनी चाहिए थी और वो हो नहीं पायी है। इसीलिए हम आज भी साम्राज्यवादी अर्थ सामंती समाज को ढोने के अभिशप्त हैं। इसलिए जब कभी इस तरह का सवाल जातियों के ऊपर उठकर कदम उठाता है तो समाज को कहीं न कहीं प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है और यह सब एक लंबी लड़ाई के बाद ही बदलता है। लेकिन ऐसा होने में कितना समय लगेगा इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है। लेकिन मैं, ये जरूर कहूँगा कि जब तक समाज इसको नहीं बदलेगा तब तक कुछ होने वाला नहीं है। कुछ व्यक्तियों के प्रयास से संख्यात्मक परिवर्तन तो आ सकता है लेकिन गुणात्मक परिवर्तन आने के लिए इसमें पूरे समाज की जागरूकता बहुत जरूरी है।

हमें अपने समाज को समझना होगा कि जब हमारे यहां कबिलाई प्रथा थी, तब जातियों का सवाल था या नहीं ? क्या कबिलाई प्रथा के दौरान वर्ण का सवाल था ? कबिलाई प्रथा के समय में व्यक्तिगत संबधों का सवाल था? हम और आप जानते हैं कि ऐसा नहीं था। उसके बाद गुलामता की प्रथा के दौरान समाज में दो बड़े हिस्से हो गए 'गुलाम और मालिक' लेकिन जातियों का सवाल तब भी नहीं था। लोग उस समय भी छोटी–छोटी जातियों में बंटे हुए नहीं थे। लेकिन उसके बाद जब सामंती समाज आया तब राजा ने सत्ता पर काबिज रहने के लिए तमाम तरह के प्रचंड किए, उसी दौरान धर्म की प्रधानता सामने आई और उसे धर्मों, वर्णों और जातियों में बांट दिया गया। साम्राज्यवादी रूप से देश पर आक्रमण करने के लिए देश में फूट डालो और शासन करो की नीति को अपनाने के लिए इस बात का प्रयोग किया गया। क्योंकि जनता बंटती नहीं रही जनता इक्ट्टी हो गई जनता को बता दिया गया कि हमारे अधिकारों का हनन हो रहा है, हमें गुलाम बनाया जा रहा है, हमें हमारे अधिकारों से वंचित किया जा रहा है तो ऐसी स्थिति में वो ज्यादा दिन तक बर्दाशत करने वाले नहीं होते हैं। तब आप धर्म का सहारा लेकर ही सामने आएंगे और तमाम सवाल सामने आएंगे तो इसलिए जरूरी है कि इस अर्थ सामंती समाज के अंदर हम लोकतांत्रिक मूल्यों की बात तभी करें। हालांकि हमारे पास सामाजवादी विचार, साम्यवादी विचारधारा मौजूद है लेकिन कोई भी बच्चा एकदम से बड़ा नहीं होता उसको जवान होना पड़ता है, अधेड़ होना पड़ता है तब जाकर वह बूढ़ा होता है। समाजों के विकास की गति, इच्छा से निर्धारित नहीं होती बल्कि एक स्वाभाविक प्रक्रिया के द्वारा निर्धारित होती है। हमारे देश के भीतर पूरा लोकतंत्र तब तक नहीं आएगा जब तक आर्थिक सवालों पर चंद लोगों का कब्जा नहीं टूटता। जिस दिन इस देश के अंदर लोगों को उनके वास्तविक अधिकारों से अलग रखने की प्रक्रिया समाप्त हो जाएगी, हम समझेंगे कि उसी दिन देश के अंदर सच्चा लोकतंत्र आया है। तभी हम आगे बढ़कर समाजवाद की और दूसरे विचारधाराओं की बात कर सकते हैं। इसलिए साथियों हमारे अनुभव कुछ भी हों, लेकिन यदि हम चर्चाओं, बातों, और भाषणों से ही ये उम्मीद लगाएंगे कि जाति व्यवस्था टूट जाएगी तो ये एक सुधारवादी दृष्टिकोण है, और सुधार बहुत आगे तक नहीं चलता। मैं ये नहीं कहता हूँ कि इस तरह की बहस बैठकों का कोई महत्व नहीं है क्योंकि जब तक विचार नहीं किए जाते तब तक संवाद नहीं हो सकता। विचार के बिना अगर कोई व्यवहार किया जाता है तो वह विचार लंगडा है। वह जहां खड़ा है खड़ा ही रह जाएगा इसलिए विचार तो जरूरी है लेकिन इस विचार को व्यवहार में लाना जरूरी है। माफ कीजिए मैं, राजनीतिक दल का कार्यकर्ता हूँ इसलिए राजनीति को स्थापित करने का प्रयास नहीं कर रहा लेकिन सत्ताओं का चरित्र बदलने के लिए राजनीतिक आंदोलनों की जरूरत होती है उसके लिए हर आदमी को राजनीतिक दल

का सदस्य बनने की आवश्यकता नहीं है लेकिन जहाँ कहीं लगता है कि जनता से जुड़े सवालों के साथ कोई राजनीतिक दल खड़ा हो रहा है तो उसका समर्थन करना उसको सहयोग करना, उसको आगे बढ़ाना हर जागरूक व्यक्ति का उसका अहम् कर्तव्य हो जाता है और जब तक ये सब चीजें तय नहीं होगी तब तक इस देश से सामंत और अर्थसामंती रूप समाप्त नहीं हो पाएगा। जब तक आर्थिकता के सवाल पर हर आदमी को स्वतन्त्रता और बराबरी का हक न मिले तब तक ये जातीय सवाल, जातीय विषमताएं, जातीय विघटन, जातीय उत्पीड़न जैसे शब्दों से हम मुक्त नहीं हो पाएगें इसलिए हम सामाजिक, राजनीतिक कार्यकर्ताओं को इस तरह की गोष्ठियों और कार्यशाला से विचार–विमर्श के लिए ताकत मिलती है। इस तरह के आयोजनों से हम जो कुछ भी सोच रहे होते हैं उसे अनुभवी व्यक्तियों के साथ बातचीत करने के बाद हमें रास्ता मिलता है और हम दुगने उत्साह से उस काम को आगे बढ़ाना शुरू कर देते हैं। इससे हम न केवल एम.एल.ए. या एम.पी. की लड़ाई जीतने के लायक बनते हैं बल्कि हम समाज की लड़ाई को जीतने में भी सक्षम हो जाते हैं।

मैं, समझता हूं कि हमें इन गोष्ठियों के माध्यम से यह तय कर लेना चाहिए कि हमें इस साम्राज्यवादी ओर अर्थ सामंती जकड़न से अपने–आपको मुक्त करना है। क्योंकि और इसके लिए हमें जाति के सवाल से ऊपर उठकर सोचना होगा, हमें समाज में अपनी संस्कृति और काम के आधार पर पहचान बनाने का प्रयास करना चाहिए न कि जाति के आधार पर। हमें अलग–अलग इलाकों को इक्ट्ठा कर सम्पूर्ण देश के लिए सम्पूर्ण रूप से सोचना होगा इसी के साथ मैं, अपनी बात समाप्त करता हूं। धन्यवाद ! जय भारत ! जय उत्तराखण्ड !

रघु भाई – धन्यवाद। आपने, अपने विचार हमारे विचार सामने रखे, आपकी बातों से हमें सामाजिक और राजनीतिक संरक्षक जैसी चीजों को देखने में निश्चित रूप से मदद मिलेगी। अब हम अपनी बातचीत को आगे बढ़ाते हैं हमारे बीच रितु प्रिया जी हैं वे सामाजिक कार्यों खासकर महिलाओं, और दलित महिलाओं के साथ काम करती आ रही हैं। उन्हें इस संबध में कई अनुभव भी प्राप्त हैं, हम चाहते हैं कि वे हमारे बीच आकर हमें अपने अनुभवों से अवगत कराएं ताकि हम उनके अनुभवों से लाभ प्राप्त कर सकें। आइए रितु प्रिया जी !

रितु प्रिया – रघु जी मुझे ये जानकारी दी गई थी कि मैंने कल अपनी बात रखनी है। लेकिन अगर आपने आज ही बुला दिया है तो जैसे अभी तक अपने–अपने अनुभवों की

बात चल रही है तो मैं, भी अपने कुछ अनुभवों को आपके साथ बांटने का प्रयास करती हूं।

आजादी के समय हमारे समाज में ये गैर बराबरी की बातें मौजूद नहीं थी। उस समय अम्बेडर सहित सभी लोगों ने मिलकर आजादी पाने के लिए संघर्ष किया था। उन्होंने कार्य समिति का निमार्ण किया जिससे कानूनी रूप से भी समानता का माहौल बना।

अब मैं, अपने अनुभवों की बात करती हूं। मैं दिल्ली के एक मध्यम वर्गीय परिवार से थी। अपनी पढ़ाई के दौरान भी हमें जाति से संबधित किसी भी तरह का अनुभव नहीं हुआ। आमतौर से हमारे आस–पास उच्च जातियों, के साथ–साथ मध्यमवर्गीय और उच्च मध्यमवर्गीय लोग रहते थे और हमें उनमें कुछ खास फर्क दिखाई नहीं देता था। इसलिए मुझे जाति के बारे में खास समझ नहीं थी कि कौन और किस जाति का है आदि। लेकिन जब मैं, डाक्टरी पढ़ने लगी तो मुझे लगा कि डाक्टरी समझ के साथ–साथ मुझे स्वास्थ्य के दूसरे पक्ष अर्थात सामाजिक स्वास्थ्य को भी समझने की आवश्यकता है अर्थात मुझे यह समझने की आवश्यकता महसूस हुई कि समाज में विभिन्न वर्गों में रहने वाले लोग किस तरह से सोचते हैं ?

मैं, उन निमार्ण मजदूरों के साथ काम कर रही थी जो राजस्थान से दिल्ली आए थे। मैंने जाना कि लोग आजादी के बाद अर्थात पिछले 50–60 सालों के दौरान हुए विकास के बारे में क्या अनुभव करते हैं? क्योंकि मैं, स्वास्थ्य की नजर से देखती थी इसलिए मैंने जाना कि इस दौरान उनके स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ा? इन बातों को समझने के दौरान मैंने जाति के बारे में समझा क्योंकि वे लोग स्वास्थ्य की बात करते–करते पिछले 40–50 सालों के दौरान हुए जातिगत भेदभावों की बातें करने लगते थे। उनका कोई भी मुद्दा जाति के सवाल पर खत्म होता था। उनकी इन सभी बातों से ही मुझे इस बात का पता चला कि किस तरह से वे लोग जाति और जाति का उत्पीड़न झेलते आ रहे हैं और उनमें से कुछ जातियों ने इस भेदभाव से उभरने का प्रयास भी किया। जैसे राजस्थान की ही एक खास जाति थी जिसे आज गौरवा जाति के नाम से जाना जाता है। उन्होंने 1920 के आसपास अपने काम को छोड़ने के बारे में पूरा एक आंदोलन चलाया। इसीलिए उन्होंने बाद में अपना नाम बदलकर गौरवा कर दिया। ये एक पूरी प्रक्रिया थी, इसके बारे में उन्होंने कहा कि उन्हें जो भी सहयोग मिला वो आजादी के बाद के राज्यों से ही मिला है। जैसे रघुपति जी ही कह रहे थे कि शादी–ब्याह आदि मौकों पर उन्हें अलग ही प्रक्रियाओं का सामना करना होता था। जैसे वे शादी में खीर और बना हुआ पकवान नहीं बांट सकते थे। तली हुई चीजें नहीं

बांट सकते थे। उनकी कोई भी बारात घोड़ी पर नहीं आएगी आदि। इस प्रकार उन्होंने इन सब बातों को भुगता है। बाद में उन्होंने इन सब बातों का विरोध किया जिनके कारण समाज में कुछ सुधार तो जरूर आया है। समाज में समानता कायम करने के प्रयास तो किए जाते रहे थे लेकिन वर्ष 1990 से इसमें कुछ विपरीत स्थिति पैदा हुई है। आरक्षण के विरोध में एक आंदोलन चला। पिछले साल ही ऑल इंडिया इन्सटिट्यूट के डाक्टरों ने आरक्षण के विरोध में 'यूथ फॉर इक्वेलिटी' नाम से एक संगठन बनाया। वे इस संस्थान में दिए जाने वाले आरक्षण का पुरजोर विरोध कर रहे थे।

इन सब बातों को देखते हुए मुझे लगता है कि समाज में मौजूद गैर बराबरी के विचार को हटाना बहुत ही कठिन है। पहले ये असमानता जाति के आधार पर थी लेकिन आज इसके रूप बदलने लगे हैं जैसे आजकल एक नई असमानता पैदा हो रही है वह है 'पैसे के आधार पर होने वाली असमानता' वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भी विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) का निमार्ण हो रहा है। जिसके द्वारा एक नई तरह की जाति के पैदा होने का संकट बढ़ता जा रहा है। जिस प्रकार पुराने रजवाड़ों में झंडा लगाया जाता था वो चीजें आज वापिस आती जा रही हैं। अगर आज हम इसके विरोध में आवाज न उठाएं तो स्थिति और बिगड़ जाएगी।

मैं, जिन अनसूचित जाति के लोगों के अनुभवों की बात कर रही थी, उनमें कुछ लोगों ने आरक्षण की मदद से कई उच्च पद भी प्राप्त किए जैसे मैं जिन निमार्ण मजदूरों के साथ काम करती थी उनका एक भाई विजेन्द्र मध्य प्रदेश में सचिव थे, दिल्ली में उनके सगे जीजा मुख्य सचिव थे। आज की स्थिति में वे क्रीमी कहलाते हैं। लेकिन उनकी दुविधा थी कि उन्हें मध्यम वर्ग के साथ रहना था। गांव में निमार्ण मजदूरी का काम करने वाले लोग यही चाहते थे कि वे उनकी ही जाति से निकलकर आए हैं अतः उन्हें, उनके लिए काम करना चाहिए। क्रीमी लेयर होने के कारण उन्हें सभी सुविधाएं मिलनी चाहिए थी लेकिन नीची जाति के कारण उन्हें वो सभी सुविधाएं मिल नहीं पाती थी। इस वर्ग के पुरुष तो आरक्षण की मदद से कई ऊंचे ओहदों पर चले गए लेकिन महिलाएं कम पढ़ी–लिखी होने के कारण आज भी निमार्ण कार्यों में लगी हुई हैं। इस प्रकार आज भी एक पूरी पीढ़ी जातिगत असमानता के कारण होने वाले अत्याचारों को झेलती जा रही है। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) – धन्यवाद रितु जी। रितु प्रिया जी ने अपनी बात रखी और उन्होंने जायज सवाल रखे, हम इन सवालों पर चिंतन जरूर करेंगे। हमारे पास बल्ली

भाई, चिन्ना स्वामी, अख्तर हुसैन, पटनायक, मालती और सुलक्ष्मी जैसे अनुभवी वक्ता मौजूद हैं। हम इनके अनुभवों से लाभ जरूर लेंगे।

अब मैं, बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए मालती जी को आमंत्रित करूंगा। वे पिछले कई सालों से उत्तराखण्ड में सक्रिय रूप से काम कर रही हैं। अभी वो एक नेटवर्क के साथ देहरादून से काम कर रही हैं। वे कई सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं। आइए मालती जी !

मालती जी – धन्यवाद रघु जी! अंम्बेडकर जी के 116 वें जन्मदिन पर मैं, उनको श्रद्धांजली देती हूँ। साथियों में अपने अनुभवों के बारे में दो–तीन बातों को रखना चाहूंगी। मैं, अभी कुछ सालों से ही देहरादून में रह रही हूं। लेकिन मेरा अनुभव बहुत पुराना है। मैं, नेपाल बॉर्डर से जुड़े एक छोटे से गांव से आयी हूं। थोड़ी बड़ी होते ही मैं, पढ़ने के लिए बाहर चली गई। लेकिन मेरे मन में यहां की महिलाओं के साथ काम करने की इच्छा थी और मुझे ऐसा करने का मौका भी मिला। यहां आने से पहले मेरे मन में जातिगत भेदभाव की कोई बात थी ही नहीं और हमें यह सिखाया जाता था कि पढ़ने–लिखने के बाद मनुष्य इन सब बातों को नहीं मानते लेकिन वास्तव में ऐसा कुछ है ही नहीं। यहां आते ही सबसे पहले मैंने अपनी जन्मस्थली अर्थात राजस्थान से काम करना शुरू किया।

मैंने राजस्थान में काम करना शुरू किया, जहां मेरे साथ कुछ दलित लोग भी शामिल हो गए। एक बार की बात है, एक बार मैं, और वहां की एक स्थानीय पढ़ी–लिखी लड़की गांव के किसी घर में गए। दरवाजा खुलते ही एक बुजुर्ग महिला दिखाई दी उसने आगे बढ़कर मुझे गले से लगा लिया लेकिन उस लड़की को अंदर ही नहीं आने दिया। मैं, यह देखते ही स्तब्द रह गई क्योंकि मेरे साथ ऐसा पहली बार हो रहा था और मुझे पता ही नहीं चल पा रहा था कि आखिर ऐसा हो क्यों रहा है। जब मैं, बाहर आई तो वह लड़की जा चुकी थी। एक अन्य उदाहरण के अनुसार एक बार उत्तराखण्ड के एक स्थान पर एक सम्मेलन था उसमें ढ़ोल बजाने वालों को सम्मानित करना था। इस मौके पर बहुत से लोगों को आमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन के दौरान जिन लोगों को सम्मानित करना था उन्हें तो नीचे बोरियों पर बिठाया गया था और सम्मानित करने वाले लोगों को कुर्सियों पर बैठाया गया था। जब हमें बोलने का मौका मिला तो मैंने, ये प्रश्न उठाया कि सम्मान देने वाले लोगों को आगे कुर्सियों पर बिठाना चाहिए और आपने उन्हें जमीन पर बिठाया है, ऐसा आपने क्यों किया? बाद में हमारे इस सवाल की प्रतिक्रिया स्वरूप वहां से हमारा बहिष्कार हो

गया। इस प्रकार हमारे साथ ऐसी कई घटनाएं होती रहीं लेकिन हमने इन बातों के लिए संघर्ष जारी रखा।

हमारे इन प्रयासों के लिए समाज से हमारा बहिष्कार होता रहा। इसके लिए हमारे परिवारों ने थोड़ा सा सहयोग तो दिया लेकिन उन्होंने हमें समझाया कि यदि हमें ऐसा करना है तो हम करें लेकिन एक सीमित दायरे में करें, उन्होंने कहा कि यह बात ठीक है कि तुम्हारा एक पढ़ा–लिखा समाज है और तुम इन बातों को नहीं मानते हो लेकिन हमारा एक समाज है जिसमें कुछ ऐसी चीजें हैं जिन्हें हम इतनी जल्दी नहीं तोड़ सकते हैं।

हमारे साथ इस तरह के बहुत सारे अनुभव हुए। लेकिन फिर भी हम अपने काम में डटे रहे। हमारे इस काम में कुछ दलित वर्ग के लोग भी शामिल थे लेकिन वे पैसे वाले घरों से संबध रखते थे जिस कारण उनका समाज में बहुत सम्मान होता था। उनके साथ वैसा व्यवहार नहीं किया जाता था जो समाज में अन्य दलितों के साथ किया जाता था। इन सब बातों को देखकर हमें यही समझ में आया कि जब तक समाज में आर्थिक सशक्तीकरण नहीं होगा तब तक समानता कायम नहीं की जा सकती। हम लोग मानसिक बदलाव की बात तो करते हैं कि ऐसा करने से समाज में बदलाव आएगा लेकिन मुझे लगता है कि अकेले हम लोगों के करने से चीजें नहीं बदलेंगी इसके लिए हमें कुछ सामाजिक संगठनों से जुड़ना होगा।

इस तरह के समाजिक संगठन जगह–जगह पर थे और वहां कई लोग इन चीजों के लिए आवाज भी उठा रहे थे। हमने यू.पी. में भी काम किया है और हमें लगा कि यह एक बेहद भावनात्मक मुद्दा है और इसके लिए हमें एक आंदोलन करने की जरूरत है क्योंकि इन बातों को एक आम आदमी की अपेक्षा एक आंदोलनकारी संगठन अधिक प्रभावी ढ़ंग से उठा सकता है। इस बारे में मेरी, तमाम साथियों से मुलाकात होती रही ओर हम तमाम सामाजिक संगठनों से जुड़ते रहे। हमने इन मुद्दों को एक मंच पर लाकर उठाना शुरू किया और पिछले 16 सालों से मैं इस काम में जुड़ी हुई हूं। लेकिन अभी भी मुझे लगता है कि यह केवल मात्र एक पहल है और इसके लिए हमें बदलाव की एक चिंगारी जलानी होगी जिससे आगे चलकर एक बड़ी आग पैदा हो सके। जैसे हम इस तरह के मंचों पर बोलते रहते हैं, उस प्रक्रिया को हमें लगातार जारी रखना है। इन्हीं शब्दों के साथ और इस उम्मीद के साथ कि शायद कभी समता मूलक समाज की स्थापना हो पाएगी और समाज में गैर बराबरी कायम होगी, इसी उम्मीद के साथ मैं, अपनी बात समाप्त करती हूं। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) – हमारे बीच अमरीश जी मौजूद हैं मैं, वे राष्ट्रीय स्तर पर एक नैटवर्क पर काम कर रहे हैं। वे इस मुद्दे पर काफी लंबे समय से ज जुड़े हुए हैं। वे राष्ट्रीय स्तर पर एक नैटवर्क से जुडे है पूरे राष्ट्रीय धरातल पर काम कर रहे है, इस मुद्वे पर काफी लंबे समय से संघर्षशील है मै उनसे अनुरोध करूँगा कि वो अपनी बात आकर रखे।

अमरीश – साथियो यहां आकर मुझे जाति के सवाल पर बहुत अच्छी बातें सुनने को मिली और उन्हें सुनकर मुझे लगता है कि हमारे सामने 'जातिगत सवाल' एक चुनौती के रूप में खड़ा है। आज हम सब लोग आधुनिक भारत बनाना चाहते हैं लेकिन जाति को खत्म किए बिना हम अपने–आपको एक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में शामिल नहीं कर सकते हैं।

हम इस विषय पर निरन्तर चिंता करते रहते हैं कि हमारे देश में जाति का प्रश्न कैसे हल होगा। हमारे देश में अंग्रेजों के जाने के बाद पूंजीवाद का आगमन हुआ जिसमें लोगों के परंपरागत पेशों में बदलाव आया और जातियों के बंधन कुछ हद तक टूटे हैं। इसकी सकारात्मकता से हम, इंकार नहीं कर सकते। समाज में बदलाव लाने में सामाजिक आंदोलनों का भी कम योगदान नहीं हैं। लेकिन इन सब के बाद भी हमारे देश की आजादी के 60 वर्षों बाद भी हमारे देश में जाति का प्रश्न बना हुआ है। महाराष्ट्र की खैलांजी की घटना और आरक्षण के सवाल पर यूथ फॉर इकवेलिटी की घटनाएं हमें यही संदेश देती हैं कि तमाम विकास के बावजूद भी हमारे देश में जाति के सवाल पर न केवल एक गहरा अन्तरर्विरोध बल्कि घृणा और सामंती उत्पीड़न आज भी मौजूद है। इस बारे में मैं, उनियाल जी की इस बात से सहमत हूँ कि हमारे देश में अर्ध औपनिवेशिक और अर्ध सामंती देश बना हुआ है। हमें इसे तोड़ना होगा और ये किसी सुधार आंदोलन से नहीं टूटेगा ये एक समग्र सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन, भूमि संबधों को बदलने, उत्पादन संबधो में क्रांतिकारी बदलाव लाने से ही टूट पाएगा।

हम जिस जाति उन्मूलन की बात कर रहे हैं वे छुआछूत और घृणा पर खड़ा है। इस दृष्टि से बाबा साहेब अंबेडकर ने बहुत बड़ा योगदान दिया और मुझे लगता है कि उन्हें याद किया जाना चाहिए। आजादी की लड़ाई में यह सवाल हमारी राजनीति का मुख्य विषय नहीं बन पाया क्योंकि गांधी के दृष्टिकोण में बड़ा लचीलापन था। माफ कीजिए, लेकिन यदि अंबेडकर का दृष्टिकोण और भगत सिंह का दृष्टिकोण आजादी की लड़ाई का मुख्य दृष्टिकोण बन गया होता तो हमने जाति के प्रश्न को बहुत कुछ हल कर लिया होता। कभी–कभी मेरे मन में ये बात उठती है कि यदि अंबेडकर ने जिस 'पृथक चुनाव' की बात पर बहस की थी उसे देश को मान लेना

चाहिए था ? और अगर उसे मान लिया जाता तो हमारे देश में नीचे से बदलाव आ गया होता। इस बारे में मैं, दो–तीन बात कहना चाहूंगा कि हमारे देश में मौजूद भूमि संबध भी जाति व्यवस्था को मजबूत करते हैं। हमारी जाति व्यवस्था ब्राह्मणवादी ढांचे को बनाए रखने का एक बड़ा भारी साधन है। मैं, अंबेडकर द्वारा उठाई गई धर्म परित्याग की बात से सहमत हूँ लेकिन धर्म के बदलने से जाति नहीं बदलती। जाति बहुत गहराई से उत्पादन के संबधों से जुड़ी हुई है। लेकिन उन्होंने धर्म के परित्याग की, हिन्दू धर्म के परित्याग की बात कहकर एक प्रतीक की बात उठाई थी। हिन्दू धर्म जाति पर टिका हुआ हैं। आप किसी भी धर्म में शामिल हो सकते हैं और उनके सामाजिक परिवेश में प्रवेश कर सकते हैं।

उन्होंने धर्म के परिवर्तन की बात तो की थी लेकिन हिन्दुस्तान में मौजूद कोई भी धर्म जाति के बंधनों से मुक्त नहीं है। विश्व के किसी भी देश में इसाई धर्म में जाति नहीं है लेकिन भारत में इस धर्म में जाति मौजूद है जो कि हिन्दू धर्म की देन है। दुनिया में मुस्लिम समाज में जातियां नहीं हैं लेकिन भारत में इस धर्म में भी जाति है। अंबेडकर ने इस बात को रेखांकित करते हुए कहा कि जो धर्म जाति की बुनियाद पर खड़ा है उसे छोड़ देना चाहिए। उन्होंने वैचारिक रूप से पहल करते हुए कहा कि जो धर्म छुआछूत को मानता हो, लोगों को उसका त्याग कर देना चाहिए। मुझे लगता है कि हमें अंबेडकर की इन बातों को एक सकारात्मक तरीके से देखना होगा। क्योंकि अभी तक उन्हें गलत तरीके से पेश किया जाता रहा है।

हमारे देश में जाति के विषय पर बहुत सारे बदलाव हुए हैं। उनमें से दो–तीन बातों को मैं, आपके सामने रखना चाहूंगा। मंडल के आने के बाद कुछ निचली जातियों के नवधनाड़य वर्ग को सत्ता के करीब जाने का मौका मिला और वह तब से आज तक सत्ता पर कब्जा जमाए बैठा है। मुझे लगता है कि हिन्दू धर्म इतना मजबूत है कि उसने अपने ब्राह्मणवादी ढ़ांचे में उसको भी शामिल कर लिया। श्रीनिवासन जी अपने लेखों में जिस संस्कृतिकरण की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि दलित और पिछड़ों में जो नवधनाड़य तबका उभरा वो मध्यवर्ग है लेकिन फिर भी हमारे देश में इतना बदलाव नहीं हुआ है क्योंकि अगर आप देश के 1000 उद्योगपतियों की सूची को देखें तो आपको पता चल जाएगा कि अभी भी उसमें कोई दलित नहीं है। फिर भी जो मध्यम वर्ग बना वो ब्राह्मणवाद के जरिए मिला दिया गया। जैसे अभी किसी साथी ने कहा था कि समाज में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के चलते दलित जाति के लोगों ने अपने से निचली जातियों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करना शुरू कर दिया जैसा व्यवहार उनके साथ ब्राह्मणों और उच्च जाति के लोगों ने उनके साथ किया था। इसलिए मुझे

लगता है कि हमारे देश में जाति का विषय वर्ग के विषय से बड़ा है और अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। हमारे देश में जाति के नाम पर राजनीति होती है।

हमारे देश में शुरू–शुरू में दलितों के लिए समाजवादियों तथा मार्क्सवादियों और नक्सवालियों ने भी बहुत काम किया और सामंतवाद के खिलाफ भी लड़ाईयां करने के साथ–साथ कुर्बानियां भी दीं। उनकी अथक मेहनत और प्रयास के कारण जातिवाद के जमे हुए पैर बहुत हद तक ढ़ीले पड़े। लेकिन आधुनिक समय में एक विचार और नारा आया कि ' दलितों के लिए दलित ही काम करेंगे ' इस विचार ने दलितों के लिए काम करने वालों पर ही एक सवालिया निशान लगा दिया। मैं, मानता हूं कि यह संस्कारों का असर है। और इसने समानता के आंदोलन को कम कर दिया। इस दौरान हमारा नेतृत्व कमजोर रहा। हमने देखा कि इस दौरान हिन्दुस्तान की राजनींति से जाति और सामाजिक न्याय का प्रश्न ही गायब हो गया। आज वो लोग वैश्वीकरण के समर्थक हो गए हैं। उनके अनुसार भारतीय पूंजी जातिवाद से लैस है इसलिए इस देश में विदेशी पूंजी के लिए दरवाजे खोल देने चाहिए और वो लोग निजी रूप से सामाजिक सुधार करेंगे। वे लोग अंबेडकर को भी चिन्हित करते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि वो दूसरा संदर्भ है और वे उसे गलत संदर्भ में पेश कर रहे हैं।

मेरे कहने का अर्थ है कि वे लोग बाजारवाद को ब्राह्मण वाद के विरोधी के रूप में पेश कर रहे हैं। लेकिन वे ये नहीं जानते कि बाजारवाद सबसे पहले देश में राज्य की भूमिका खत्म कर देगा और जैसा कि अंबेडकर ने कहा था कि अगर किसी भी देश में लोकतंत्र और बुनियादी सुविधाओं को आम जनता और दलितों तक ले जाया जाएगा तभी देश में समानता आएगी जिसके लिए राज्य बहुत महत्वपूर्ण है और जब बाजारवाद के आते ही राज्य की भूमिका समाप्त होने लगे तो समाज में समानता कहां से कायम होगी। मुझे लगता है कि जो दलित नेता दुनिया भर में वैश्वीकरण की वकालत यह कहकर किया करते हैं कि बाजारवाद ब्राह्मणवाद को तोड़ेगा और जातिव्यवस्था को खत्म कर देगा वो ये नहीं समझते कि अगर राज्य अर्थात 'जमीन या 'भूमि' जिसपर हम अपना हक समझते हैं और खेतीबाड़ी और अन्य उद्योग–धन्धे करते हैं जब उसकी ही भूमिका खत्म हो जाएगी तो उनका स्वंय का अस्तित्व ही कहां बचेगा ?

इसलिए मुझे लगता है कि जिस बहस को हमने आज शुरू किया है उसे और गहराई में ले जाने की आवश्यकता है। समाजिक आंदोलनों की अपनी भूमिका है लेकिन इस देश में जब तक जाति और वर्ग के विषय को एक सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की लड़ाई का विषय नहीं बनाया जाएगा तब तक जातिगत असमानता को दूर

नहीं किया जा सकता। इस देश के अंदर सामाजिक, आर्थिक आंदोलनों और परिवर्तनों की लड़ाई को लड़ा जाना चाहिए। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) – वेद उनियाल जी ने जो प्रश्न हमारे सामने खड़े किए उनको फलक तक ले जाने में अमरीश जी ने हमारी काफी मदद की। उन्होंने हिन्दुस्तान में जाति और वर्ग का सवाल खड़ा किया। उन्होंने कहा कि यदि हम हिन्दुस्तान के अंदर समता आंदोलन की बात कर रहे हैं तो हमें कहीं न कहीं जाति और वर्ग के सवाल से निशचित रूप से जूझना पड़ेगा। क्योंकि जिस तरह से भारतीय समाज का निमार्ण हुआ है उसमें हमें इन सवालों से दो–चार होना ही पड़ेगा। हमारे बीच मौजूद बल्ली भाई भी इसी तरह के सवालों के साथ देश भर में जन आंदोलनों के साथ काम करते आ रहे हैं। हमें उम्मीद है कि वे हमारी इस बहस को आगे बढ़ाने में मदद करेंगे।

बल्ली भाई – साथियो, अगर मै दो–तीन वक्ताओं से पहले बोलता तो शायद में बहुत बोलता लेकिन जो कुछ मैं, कहना चाहता था वो उनियाल जी ने कह ही दिया है और मुझसे पूर्व के वक्ता ने भी कई महत्वपूर्ण बातें रखी हैं लेकिन फिर भी मैं, अपने कुछ अनुभवों को आपके साथ बांटना चाहता हूं।

उनियाल जी ने सामंतवाद पर बात की, उन्होंने कहा कि जहां–जहां सामंतवाद की जड़ें ज्यादा मजबूत हैं वहां–वहां जातिवाद भी ज्यादा मजबूत है। हो सकता है मैं, गलत भी हो सकता हूं लेकिन मैं, ये बात कहना चाहता हूं कि मैं, जिस मध्यमवर्ग में रहता हूं वहां ये सब चीजें और ज्यादा हैं और वहीं उच्च वर्ग में ये चीजें या तो बहुत कम हैं या हैं ही नहीं। आपने देखा ही होगा कि पूंजीपतियों की महिलाएं पार्टियों में शराब और बीड़ी–सिगरेट पीती हुई मिल जाएंगी। वे किसी से भी शादी कर लेती हैं और कोई विरोध नहीं करता है और उसके विपरीत गांव के गरीब परिवार की महिलाएं बीड़ी–सिगरेट और शराब पिएं और किसी अलग जाति के व्यक्ति से शादी कर लें तो उनका भी ज्यादा विरोध नहीं किया जाता। लेकिन मध्यम वर्ग में इन सभी चीजों के कारण बहुत विरोध होता है। मध्यम वर्ग के लोग इज्जत और मान की बातें कुछ ज्यादा ही करते हैं।

आप लोगों ने सिख समुदाय की बात की है। मैं, भी पंजाब के सिख समुदाय से हूं और मैंने देखा कि पंजाब में भी जाति व्यवस्था है। जाट सिखों को ब्राह्मण कहा जाता है और पूरे पंजाब में जाटों का कब्जा है फिर चाहे वो अमरिदर सिंह हों, चाहे बूटा सिंह ही क्यों न हों। वहां जमीन की बात भी मौजूद है। अभी एक साथी ने कहा कि यहां जमीन का कोई मसला नहीं है लेकिन ये बात गलत है। मुझे आज भी याद है

जब मैं, छोटा था तो हमारे आधे गांव पर अय्यरों और आधे पर जाटों का कब्जा था। और जब मजदूरी करने, जानवरों के चारे का प्रबंध करने या जिन्दगी की अन्य बुनियादी बातों जैसे खाने, सोने, और यहां तक कि दैनिक निवृति के कामों को करने के लिए भी जमीन की ही आवश्यकता होती थी जिसके लिए झगड़े होते रहते थे। पलास की एक कविता मुझे आज भी याद है वह जिंदगी भर अच्छी कविताएं लिखता रहा लेकिन फिर भी उसका नाम कोई नहीं जानता था क्योंकि वो उम्र भर एक ही झोपड़ी में सोता था और अपनी दैनिक निवृति के लिए भी एक ही खेत का प्रयोग करता था। वह चाहता था कि दुनिया में उसका नाम प्रसिद्ध हो जाए लेकिन वो हो न पाया क्योंकि वो जिंदगी भर एक ही खेत में और उसी के आसपास रहता था और कभी–कभी तो उसे उस खेत में भी आने से रोका जाता था। उसे मजदूरी भी करनी नहीं आती थी और न ही उसके पास अपना कोई खेत था जहां वह मजदूरी कर सके। इस प्रकार पिछड़ी जाति के लोगों के सामने जमीन एक समस्या थी और उसके लिए झगड़े होते रहते थे।

न केवल जमीन बल्कि जीवन गुजारने के लिए अन्य साधनों और क्रियाकलापों के संबध में भी उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में भेद किया जाता है। जैसे लता मंगेश्कर का ही उदाहरण ले लीजिए, उन्होंने जीवन भर शादी नहीं की लेकिन फिर भी किसी ने कोई सवाल नहीं उठाया। इसके अलावा दिल्ली और मुम्बई में भी ऐसी महिलाएं हैं जो जिन्दगी भर शादी नहीं करती हैं। वो नौकरी करती हैं और आत्मनिर्भर हैं इसलिए उन्हें शादी करने की जरूरत भी महसूस नहीं होती है उनकी इस बात के लिए उनपर समाज द्वारा दबाव भी नहीं डाला जाता है। वहीं अगर कोई गांव की महिला या लड़की आत्मनिर्भर नहीं है तो उसे अपने जीवन से संबधित सभी फैसले लेने के लिए अपने माता–पिता या समाज की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है। लेकिन जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं वे अपने फैसले स्वंय ले सकती हैं।

अभी रघु जी ने कहा कि सरकार ने तराई में बुक्शा फार्म की जमीन खरीदने पर पाबंदी लगाई जिससे वहां के लोग भूखों मर रहे हैं लेकिन आज की स्थिति में देखा जाए तो अगर सरकार उन्हें इजाजत दे तो वहां के लोग अपनी जमीन को बेचकर मालामाल हो जाएंगे। हमारे यहां बी.जे.पी. के उम्मीदवार जगविन्दर सिंह गिल ने कमाऊ पुरुषों को लालच दिया कि यदि वे उन्हें विजयी बना दें तो वे वहां के लोगों को जमीन बेचने का अधिकार दे देंगे। क्योंकि जमीन की कीमतें इतनी ज्यादा हो गई हैं कि जिनके पास पांच बीघा जमीन है वो उसने गिरवी रखी है और अगर उसे वह बेचने का अधिकार मिल जाए तो वह अपनी आधी जमीन को बेचकर बाकी की आधी

जमीन को छुड़वा लेगा। इसके अलावा यहां ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं कई स्थानों में निम्न जाति के लोगों को नौकरी पर तो रखा गया लेकिन बाद में उन्हें वहां से हटाने का भी प्रयास किया गया। ये सभी बातें बहुत अधिक पीड़ा पहुंचाती हैं। मैं चाहता हूं कि सरकार कुछ दखलंदाजी करके किसी भी व्यक्ति के पीछे लगने वाले जाति सूचक शब्द को हटा दे। कानून के आधार पर यह तय किया जाए कि कोई भी व्यक्ति अपने नाम के पीछे अपनी जात न लिखकर अपने माता–पिता का नाम लिखे। मैं चाहता हूं कि आर्थिक रूप से सर्वे करने के बाद ही आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को आरक्षण दिया जाए फिर चाहे वो किसी भी जात या धर्म का ही क्यों न हो।

मैंने, अपने निजी अनुभवों के आधार पर देखा कि आर्थिक रूप से उच्च वर्ग में जातिगत भेदभाव या तो कम हैं या मौजूद ही नहीं हैं। हमारे पड़ोस में ही रतनपुरा नाम का एक गांव है, मेरा लड़का वहां के खेतों में काम करता है। वहां हिन्दुओं के करीब 100 परिवार हैं और उनमें लगभग सभी लोग हरिजन हैं। उनमें ननू ठाकुर नाम का एक मुसलमान रहता है। वह ठेकेदारी का काम करता था। उस आदमी के बच्चों के नाम ही केवल मुसलमान समाज की तरह हैं बाकी उसमें कोई भेद नहीं है। वहां पास में कोई मस्जिद भी नहीं है जिसमें वो ईद आदि के मौकों पर जा सके और न ही उसके घर कोई आता–जाता है। वह वहां के हिन्दुओं के साथ ही मिलजुल कर रहता है। इससे स्पष्ट है कि वहां के लोग उससे किसी भी तरह का भेदभाव नहीं करते हैं। इसी प्रकार मैं, देखता हूं कि हरियाणा और पंजाब के जाट क्षेत्र से जो लोग यहां आए हुए हैं उनके साथ भी जाति का कोई मसला नहीं है और शोषण शब्द तो जैसे उन्होंने सुना ही नहीं है।

मैंने, देखा कि हमारे देश में विकास एकसमान रूप से नहीं हो रहा है। आज यहां पर बैठे लोग रोटी और बेटी की बात करते हैं लेकिन वो बातें तो बहुत बाद में आती हैं पहले तो हर आदमी की यही चिंता होती हैं कि उसे कोई छोटी–मोटी नौकरी मिल जाए ताकि उसे और उसके परिवार को भूखो न मरना पड़े। कई कम्युनिस्ट लोग अपने–आपको बहुत प्रगतिशील मानने का दावा करते हैं लेकिन जब ऐसी बातें आती हैं या जहां सच में ही अपने बच्चों की शादी–ब्याह आदि की बात आती है तो वे अपनी बातों से पलट जाते हैं। मैंने कई कम्युनिस्टों को देखा है जो अपने घर के मंदिर में अपनी पत्नी के पीछे खड़े नजर आते हैं और अपने बच्चों की शादी में सभी तरह के आडंबरों को मानते हैं। मैंनें देखा है कि वे लोग सिद्धांतों में जिन बातों की बात करते हैं व्यवहार में उन सवालों पर या तो मोन हो जाते हैं या फेल हो जाते हैं। हमारे देश में मौजूद कांग्रेस पार्टी में लगभग सभी लोग गांधी जी के अनुयायी हैं लेकिन मेरा ये

मानना है कि उनमें से कोई भी गांधी जी के उसूलों पर नहीं चल रहा है अर्थात सैद्धांतिक रूप से जो बातें की जाती हैं वो व्यवहार में नहीं लायी जाती हैं। इसी प्रकार आजकल हमारे छोटे परदे पर महिलाओं से संबधित कई नाटक आ रहे हैं जिनमें भारतीय संस्कृति को बिल्कुल तोड़–मरोड़ कर पेश किया गया है, उन नाटकों में न तो किरदारों के पास पैसे और विलासिता के सामान की कुछ कमी होती है और न ही उनमें समाज में मौजूद जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव की झलक दिखाई जाती है। उनमें तो कोई भी आदमी किसी से भी शादी कर सकता है। इस तरह के नाटकों को देखने से तो लगता है जैसे समाज में कोई भेदभाव और कोई समस्या मौजूद ही नहीं है।

मैं, एक बहुत बड़े शक्स को जानता हूं, मैं, उनका नाम नहीं लेना चाहता। वे बनारस विश्वविद्यालय में पढ़ते थे और उन्होंने एक उच्च जाति अर्थात ब्राह्मण जाति की लड़की से विवाह कर लिया। उस लड़की के भाई मलेशिया में रहते थे और जैसे ही उन्होंने सुना कि उनकी बहन ने नीची जाति के व्यक्ति से शादी कर ली है वैसे ही उन्होंने अपनी बहन से संबध तोड़ लिए, तो इस प्रकार से सिद्धांत रूप से चाहे हम कुछ भी कहें लेकिन व्यवहार में सब कुछ विपरीत ही होता है। इसी प्रकार जैसे अभी रघु भाई ने कहा कि सिख धर्म में जातिवाद को खत्म करने के लिए संगत और मंगत की बात की जा रही है, उन लोगों ने कई लोगों को एक साथ बिठाकर संगत में खाना खिलाया। जनता से चुनकर आए पांच लोगों को पंच प्यारे बनाया गया। लेकिन मुझे लगता है कि जमीन पर खाना खाने वाली बात तो एक फैशन मात्र है उससे जातिवाद पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। दलित जहां थे वहीं हैं उनमें ज्ञानी जैल सिंह एक अपवाद हैं सिख धर्म में दलित परिवार से होने के बाद भी काफी ऊंचाई तक पहुंचे।

इसी प्रकार चुनाव के समय भी मतदाता, चुनावों के लिए लड़ रहे उम्मीदवार की जात का पता जरूर करते हैं। इसलिए मैं, तो मानता हूं कि यह लोकतंत्र तो केवल मात्र एक ढोंग ही है, पैसा एक ऐसी चीज है जो लोकतंत्र को भी प्रभावित करता है और इसने समाज में फूट को और बढ़ाया है, इसी के कारण कई ठेकेदार पैदा हुए हैं फिर वो चाहे धर्म का ठेकेदार हो या अकाली दल सिखों का ठेकेदार हो। बी.जे.पी. हिन्दुओं की ठेकेदार है, वहीं मुस्लिम लीग मुसलमानों की ठेकेदार है और इसी प्रकार आज मायावती जी बी.एस.पी. की ठेकेदार बन गई हैं, मैंने कई बड़े–बड़े ब्राह्मणों को भी मायावाती के पैरों में गिड़गिड़ाते हुए देखा है। वो केवल अपने आर्थिक लाभ या चुनावों में टिकट पाने के लिए ही मायावती के सामने अपना सिर झुकाते हैं। वे अपने लाभ के लिए अपने उसूलों और अपनी जात आदि सभी चीजों को भूल जाते हैं।

आज कई ऐसे दलित किसान हैं जिन्होंने अपनी मेहनत से किसी मुकाम को हासिल किया है उनमें हम मायावती का उदाहरण ले सकते हैं। तो आर्थिक रूप से सम्पन्न होते ही वे उच्च जाति से भी अच्छी स्थिति में पहुंच गए हैं। वहीं कई ऐसे उच्च जाति के लोग भी हैं जिन्हें अपनी रोजी–रोटी कमाने के लिए मजदूरी करनी पड़ती है और उनकी स्थिति हरिजनों से भी बेकार हो गई है। उसे हरिजनों के साथ रहना और खाना–पीना पड़ता है। तो इस प्रकार 'अर्थ' ने समाज की सोच को ही बदल कर रख दिया है। ये मेरे अपने निजी अनुभव हैं, जिन्हें मैंने अपने गांव और अपने आस–पड़ोस से प्राप्त किया है।

आए दिन हमारे अखबारों में यह बात आती रहती है कि भारत तथा नेपाल के बीच रोटी और बेटी के संबध हैं इसलिए हमें उनकी मदद करनी चाहिए। जबकि वास्तव में कई नेपाली जनता सड़कों में भटक रही है लेकिन हम उनकी कुछ भी मदद नहीं कर रहे हैं तो राजा से रोटी–बेटी का संबध बनाने भर से देश की समस्या हल नहीं हो सकती। मुझे लगता है कि ये समस्या 'अर्थ' से जुड़ी हुई है। अगर हम इस लड़ाई को आर्थिक रूप से हल करने का प्रयास करेंगे अर्थात जिस तरह हम समानता स्थापित करने के लिए एक साथ बैठकर खाना खा रहे हैं, जेल जा रहे हैं वहीं अगर हम देश के गरीब और साधनों से वंचित लोगों की आर्थिक मदद करने के लिए प्रयास करेंगे तो जातिवाद के मसले को हल करने में काफी मदद मिलेगी।

जिस प्रकार अभी मुकेश जी ने ही कहा कि इस विशिष्ट बोध से कुछ नहीं होता आप गर्व से कहो कि हम हिन्दी हैं लेकिन मैं, कहता हूं कि यदि आर्थिक तौर पर आप सम्पन्न हैं तो यह धर्म और जाति इत्यादि कुछ मायने ही नहीं रखेगी। साथियो हो सकता है मेरी कुछ बातें आपको अच्छी न लगें लेकिन ये मेरे अपने अनुभव और अपनी सोच थी जो मैंने आपके सामने रखी। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) – साथियो हम लोग जिस बहस पर लगे हुए हैं और जिन सवालों पर बात कर रहे हैं उन्हें समाजिक धरातल पर देखने की जरूरत है। समाज में समाज को ही जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी, समाज ही बदलेगा और जब तक समाज तैयार नहीं होगा तब तक समानता की लड़ाई आगे नहीं लड़ी जा सकती है।

वहीं दूसरे तरफ हमने जाना कि हमारी इस लड़ाई के बहुत से राजनैतिक और ऐतिहासिक कारण क्या हैं। यहां अर्ध सामंती, पूँजीवादी समाज का सवाल आया है तो इसके लिए साथियों को आपस में बातचीत करनी होगी। समाज में जातिगत भेदभाव

पैदा करने में उपराष्ट्रीयता भी कम जिम्मेदार नहीं है जैसे कुछ लोग कहते हैं कि हम पंजाबी हैं, और वहीं कुछ लोग कहते हैं कि हम सिंधी हैं आदि। ये सवाल भी समता आंदोलन को एक चुनौती देते हैं।

अगर हम पीछे पलटकर देखें तो हम जानेंगे कि पूरी दुनिया में व्याप्त औद्योगीकरण ने सामंतवाद को बढ़ावा दिया है। अगर हम भारत और उसके आस–पास के क्षेत्रों में नजर दौड़ाए तो हम देखेंगे कि आज भी कई क्षेत्रों में सामंती अवशेष ढ़ीले नहीं हुए हैं और उनकी मजबूत पकड़ बनी हुई है जो हमें बताती है कि समानता के रास्ते में बहुत गंभीर चुनौतियां मौजूद हैं। हमें इन सब बातों पर विचार करना होगा। अगर हम समानता के आंदोलन को लड़ रहे हैं तो उसे न केवल उत्तराखण्ड बल्कि पूरे देश और दुनिया में लड़ा जाना चाहिए। इसके लिए हम बातचीत करते रहते हैं और काफी व्यापक फलक पर बात करते हैं। अपनी इसी बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए हमारे बीच डॉ. चिन्नाराव जी मौजूद हैं , आप, आन्ध्र प्रदेश से हैं और दिल्ली में जे.एन. यू. में पढ़ाते हैं, हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप इस बातचीत को आगे बढ़ाने में हमारी मदद करें।

चिन्ना राव : मैं, माफी चाहता हूं क्योंकि दक्षिण भारतीय होने के कारण मैं, हिन्दी नहीं बोल पाऊंगा। मेरे पास इतने अधिक अनुभव नहीं है और न ही मैंने किसी आंदोलन में भाग लिया है जिससे मैं, आंदोलन के अनुभव बता पाऊं लेकिन एक दलित परिवार में पैदा होने के कारण मैंने जिन्दगी में कई संघर्ष किए और मुझे इनका अनुभव भी है।

इस प्रकार का सबसे पहला अनुभव मुझे स्कूल में मिला। जब मैं साढ़े चार साल का था और पहले ही दिन स्कूल गया था, वहां मुझे और बच्चों से अलग जमीन पर बिठाया गया था और पानी न छूने का निर्देश दिया गया था। मेरा दूसरा अनुभव भी स्कूल में ही हुआ था, एक बार की बात है जब मैं, काम किए बगैर ही स्कूल आ गया था। मेरी इस गलती के लिए मुझे सजा दी जानी थी, मेरे अध्यापक मुझे मारना तो चाहते थे लेकिन एक दलित होने के कारण वो मुझे छूना नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने छड़ी मंगवायी और उसे लाने में करीब 15 मिनट का समय लगा तब तक मुझे धूप में ही खड़े होकर छड़ी का इंतजार करना पड़ा।

यह मेरा दूसरा अनुभव था। इसी तरह मुझे तीसरा अनुभव भी हुआ, मैं पिछले दो दशकों से विश्वविद्यालय में एक शिक्षक के रूप में काम कर रहा हूं। जैसा कि श्री प्रीमासिस ने कहा कि आरक्षण से अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिलाकर समाज

में समानता कायम की जा सकती है लेकिन ये बात गलत है। अगर हमारे देश में मौजूद सभी 100 विश्वविद्यालयों की बात न करके केवल 20 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की ही बात करें तो इनमें से कई यू.जी.सी. के अधीन हैं और इगनू विश्वविद्यालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन है और तुर्कमान इंटर विश्वविद्यालय कृषि मंत्रालय के अधीन है। बाकी बचे हुए 18 विश्वविद्यालयों में 31 मार्च 2006 तक केवल 11 दलित प्रोफेसर हैं और यू.जी.सी. द्वारा देखे जा रहे 13 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में कोई भी दलित प्रोफेसर नहीं है। यू.जी.सी. 1950 से काम कर रहा है उसके बावजूद भी पार्लियामेंट एक्ट 1953 में पास हुआ लेकिन उन्होंने 1975 तक भी आरक्षण के बारे में नहीं सोचा था। यहां तक कि यू.जी.सी. एक्ट में कोई भी आरक्षण नहीं है। विश्वविद्यालय में अध्यापन के क्षेत्र में आरक्षण लागू करने में मौन की स्थिति बनी हुई है। इस विषय में पहली बार आन्ध्र प्रदेश के उप कुलपति ने 34 कुलपतियों की बैठक में इस बात को उठाया। उन्होंने कहा कि पिछले कुछ सालों से आज तक के वर्षों के समय में आरक्षण को पूरा नहीं किया जा सकता। लेकिन वर्तमान में मौजूद पदों को तो पिछड़ी जाति के उम्मीदवारों से भरा ही जा सकता है। इसलिए 1975 से 2000 तक इन आरक्षित सीटों को भरने की कवायद शुरू हुई लेकिन इन विश्वविद्यालयों में या तो पिछड़ी जातियों के उम्मीदवार मिले ही नहीं या जहां वो मिले तो वो भी उस पद के योग्य ही नहीं थे। इस प्रकार से उन्होंने किसी भी उम्मीदवार का चयन नहीं किया। उसी तरह हैदराबाद विश्वविद्यालय में उन्होंने एक आरक्षित पद के लिए चार साल में पांच बार विज्ञापन दिए और दो या तीन बार साक्षात्कार भी हुआ लेकिन फिर भी उन्हें इस पद के लिए कोई भी योग्य उम्मीदवार नहीं मिला। जे.एन.यू. में वर्ष 2002 के दौरान 14 उम्मीदवारों को प्रथम चक्र में चुना गया उनमें से एक उम्मीदवार पी.एच.डी. का, छह एम.फिल. के थे और छह एम.ए. थे। अंत में नेट परीक्षा पास किए हुए कुछ एम.ए. उम्मीदवारों का चुनाव हुआ। इससे यह कहा जा सकता है कि जब उन्हें आरक्षण के माध्यम से उम्मीदवारों का चुनाव करने के लिए कहा जाता है तो उन्होंने अयोग्य लोगों में से कुछ योग्य लोगों का चुनाव करने की बजाय अयोग्य लोगों में से अयोग्य लोगों का ही चुनाव किया जाता है ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि यह बताया जा सके कि आरक्षण के माध्यम से अच्छे और योग्य उम्मीदवारों का चयन नहीं हो सकता है। इस तरह समाज में यह बात प्रचलित होती है कि आरक्षण के कारण समाज को नुकसान होता है इसलिए आरक्षण खराब होता है। मैं, पिछले कई सालों से विश्वविद्यालय में पढ़ा रहा हूं लेकिन आरक्षण के कारण मुझे भी कुछ अच्छे अनुभव प्राप्त नहीं हो पाए। आप लोगों ने मुझे सुना इसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) – धन्यवाद चिन्ना राव जी। आपने बहुत अच्छी तरह से अपनी बात रखी।

बातचीत को आगे बढ़ाते हुए हम, अख्तर हुसैन जी से निवेदन करेंगे कि वो अपनी बात रखें। आप बिहार आंदोलनों में सक्रिय रहे। आइए अख्तर हुसैन जी !

अख्तर हुसैन – मित्रो आज अंबेडकर जी का जन्मदिन है मैं, उन्हें अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूं। अभी तक बहुत ही महत्वपूर्ण बातचीत चली। मुझे यहां ये बात बहुत अच्छी लगी कि यहां मौजूद नौजवानों ने स्पष्ट कहा कि वे निचली जाति से आए और उन्होंने जातिगत रूप से हुई असमानता के सभी अनुभव हमारे सामने रखे और ऊंची जाति के लोगों ने भी इस बात को स्वीकारा कि आज भी समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान है।

बचपन से ही मैंने मार्क्स को पढ़ा, उससे प्रेरणा पाकर मैं, चौदह वर्ष की उम्र में समाजवादी पार्टी की समाजवादी जनसभा का चमैया सदस्य बना। मार्क्स और लोहिया को पढ़ने के बाद मैंने जाना कि हिन्दुस्तान को बनाने में मार्क्स की अपेक्षा लोहिया अधिक सार्थक हो सकते हैं। उसके बाद मैंने अपनी यात्रा शुरू की।

मैं, बचपन से ही समाज में दलितों पर होने वाले अत्याचारों के प्रति संघर्ष करता रहा। एक बार में बक्सर जेल में बंद था, वहां मैंने, देखा कि एक ऊंची जाति के दबंग गुंडे ने दलित जाति की एक लड़की से बलात्कार किया। हमने उसके खिलाफ जुल्म मिटाओ समिति बनाई और वह सर्मिति रोहताश इलाके में काम करती रही। उस गुंडे की उस इलाके में इतनी दहशत थी कि जब भी वह कहीं से गुजरता था तो दलित अपने दरवाजे बंद कर दिया करते थे कि कहीं उसकी नजर किसी लड़की पर पड़ जाए तो वह उसे अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए उठा ले जाएगा। मैंने उसके खिलाफ संघर्ष किया और जेल में भी बंद रहा।

मैं, 14 नवम्बर को पंडित जवाहर लाल नेहरू के जन्मदिन के दिन जेल गया और 8 मार्च 1974 को जेल से छूटा लेकिन फिर 27 मार्च को मुझे फिर से जेल जाना पड़ा। वहां मेरी मुलाकात रघुपति जी से हुई। उस समय काका कलिंकर आयोग की रिपोर्ट आयी थी , जब उस रिपोर्ट को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने देखा तो उन्होंने इसे बंद करने की मांग की। उनके अनुसार यदि राज्य इसे लागू करना चाहता है तो करे लेकिन केन्द्र सरकार को इसे लागू करने की जरूरत नहीं है।

हम लोग समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि इस संघर्ष के लिए इतिहास और अर्थव्यवस्था दोनों को ही समझना पड़ेगा। हमारे देश में बहुत पहले से ही दलितों के साथ अत्याचार हो रहे हैं। दलित महिलाओं के साथ बलात्कार होना आम बात थी। अगर किसी हरिजन ने ब्राह्मण महिला के साथ बलात्कार किया तो उसे मृत्युदंड तक की सजा दी गई लेकिन वहीं अगर किसी ब्राह्मण ने हरिजन महिला के साथ बलात्कार किया तो उसे किसी भी प्रकार की सजा नहीं दी गई। अगर महाभारत और रामायण का अध्ययन किया जाए तो उससे भी स्पष्ट हो जाएगा कि सामंती व्यवस्था ने जाति प्रथा को पनपने में बहुत मदद की। अधिकतर सामंत ऊंची जातियों से संबध रखते थे और गुलाम नीची जाति से। जाति व्यवस्था को मजबूत बनाने में आर्थिक कारण भी कम जिम्मेदार नहीं थे। हमें किसी भी आंदोलन को नई दिशा देने से पहले इन सब बातों पर विचार अवश्य करना चाहिए।

इस बारे में हम लोगों के बीच लगातार बहस होती रही खासकर बिहार में। 1936 में बिहार में 'किगरेडी संघ' नाम से एक संगठन बना इसमें उर्मी,कोली, जादव आदि लोग थे। इस संगठन ने समाज में समता कायम करने के लिए समाजिक लड़ाई को आधार बनाया और सामाजिक आधार पर आज जो धाराएं चल रही हैं खासकर हिन्दी इलाकों में, उनकी भूमिका बिहार में ही पैदा हुई। शुरू में बिहार के उन सामाजिक परिवर्तनों और समाजवादी संगठनों को आगे बढ़ाने के लिए ऊंची जाति ने भी सहयोग दिया लेकिन बाद में उन्होंने करवट बदल ली। आप मार्क्सवाद में भी जाति व्यवस्था को देख सकते हैं। साम्यवाद के नेता भी उच्च जातियों से ही संबध रखते थे। हिन्दुस्तान में जिस भी दलित और पिछड़े ने परिवर्तन की बात करते समय जाति को कभी भी महत्व नहीं दिया, उसने जाति को देखने की बजाय नेता को देखा और उसे स्वीकार किया। मैं, एक उदाहरण देना चाहता हूं। सी.पी.एम.माले, विनोद मिश्रा एक पंडित थे, लेकिन उनकी मृत्यु के समय वहां ऊंची जाति के केवल 10 लोग मौजूद थे बाकी सभी लोग दलित और पिछड़ी जाति से संबध रखते थे।

दलित और पिछड़ी जाति के मनुष्य ने कभी भी जाति व्यवस्था की लड़ाई नहीं लड़ी, उसने जब भी संघर्ष किया तो व्यवस्था बदलने के लिए किया क्योंकि वो जानता था कि व्यवस्था बदलने से उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और उसकी स्थिति अपने–आप ही सुधर जाएगी। लेकिन फिर भी वह सदियों से अत्याचार सहता आ रहा है। जैसे रघुपति जी ने मूशा की ओर इशारा करते हुए कहा कि वह चोरी नहीं करता बल्कि खेत में काम करता है, अन्न पैदा करता है और बदले में उसे रहने के लिए गंदे तालाब के पास बनी झोपड़ी मिलती है। उसे मकान न बनाने का आदेश मिलता है।

गंदे नाले के पास रहते हुए वह काले ज्वर की चपेट में आ जाता है और जल्दी ही मौत का शिकार बन जाता है। नीची जाति का व्यक्ति ऊंची जाति वालों की साफ–सफाई और सुविधा का ध्यान रखता है, आप दिल्ली में ही देख लीजिए जितने भी सफाई मजदूर हैं वो सब नीची जाति से ही संबध रखते हैं। हां आजकल गरीबी और बेरोजगारी के कारण कुछ ऊंची जाति के लोग भी इन कामों को करने के लिए तैयार हो गए हैं लेकिन आज तक इस काम को दलित जाति ने ही संभाल रखा था क्योंकि जब आदमी भूखा होता है तो उसके लिए धर्म और जाति कोई मायने नहीं रखती है।

मैं, कहता हूं कि हमें जाति के सवाल से पीछा छुड़ाने की बजाय इस विषय पर आंदोलन करने का प्रयास करना चाहिए। आप रामायण और महाभारत पर बहस चलाइए। देश की अखण्डता पर बात करने वालों को यह समझाइए कि अखण्डता स्थापित करने के लिए जाति व्यवस्था को खत्म करना होगा। हिन्दुस्तान ने कभी भी जाति के लिए लड़ाई नहीं लड़ी। यहां हिंसा या आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी गई लेकिन जाति व्यवस्था के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई लड़ना अभी बाकी है।

मैंने रघु जी के साथ मिलकर 1974 के आंदोलन में भाग लिया। उससे मुझे यह समझ में आया कि भारत में लोकतंत्र को बचाने में पिछड़ी जाति के लोगों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। लेकिन कल की अपेक्षा आज हमारा लोकतंत्र ज्यादा खतरे में पड़ गया है। आज सभी राजनैतिक पार्टियां देश को लूटने में साझीदार हो गई हैं। सामूहिकता कायम न हो पाए इसके लिए पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र खत्म हो गया है और इसमें सबसे ज्यादा लाभ निगमित क्षेत्र को हो रहा है जिसमें ऊंची जाति के लोग शामिल रहे हैं। आज अधिकतर फैक्ट्ररियों, बड़े बचत खातों और मीडिया में भी ऊंची जाति के लोग ही मौजूद हैं और वे सब मिलकर देश और उसकी जनता को लूटने पर लगे हैं। इसलिए इन सब बातों को समझते हुए हमें ऊंचे वर्ग के लोगों द्वारा समाज में पिछड़ी जाति और दलित वर्ग पर किए जा रहे अत्याचारों के लिए संघर्ष करना होगा। इसके लिए हमें महाभारत और रामायण पर बहस चलाकर जाति व्यवस्था की जड़ में जाने की प्रयास करना चाहिए क्योंकि यह व्यवस्था जहां से पनपी है वहीं से उसका उपाय भी निकलेगा। जय हिन्द !

रघु भाई : अख्तर साहब ने जिस बहस को चलाने की बात की है उसके लिए हमारी हर पुरानी बात को पूरी तरह से समझना होगा। हमारे बीच सुभलक्ष्मी जी मौजूद हैं जो दिल्ली में 'निरन्तर' के लिए काम कर रही हैं और काफी लंबे समय से महिलाओं के लिए काम कर रही हैं। आइए शुभलक्ष्मी जी !

शुभलक्ष्मी : मैं, अपनी बात को बहुत ही संक्षेप में रखूंगी। सुबह से रोटी–बेटी व्यवहार पर काफी बातें हो रही थीं, इस बात से मुझे काफी परेशानी हुई कि रोटी और बेटी के व्यवहार की आवश्यकता क्यों है ? हम लोग बेटा व्यवहार की बात क्यों नहीं करते हैं? हम जिस समाज में रहते हैं उसमें अगर हमारा बेटा किसी भी जाति में विवाह करे तो उसे कुछ नहीं कहा जाता और वहीं बेटी किसी से भी शादी करे तो उस पर समाज में बातचीत जरूर की जाती है।

मैं, इन्हीं मुद्दों पर बात करूंगी। मैं, जिस संस्था में काम करती हूं वहां हमने पिछले तीन–चार साल में आन्ध्र प्रदेश और गुजरात सहित देश के 16 राज्यों में 3000 एस.ए.जी. के साथ मिलकर गहरा अध्ययन किया है। उन अध्ययनों में बहुत ही चिंताजनक बातें निकलकर आयी हैं, मैं यहां पर उसका सारांश पेश करने की कोशिश कर रही हूं।

वहां कई संगठन बने जिनमें दलित, आदिवासी और मुस्लिम औरतें भी शामिल हो सकती हैं लेकिन जिस तरह भारत में बचत करो और ऋण लो की प्रथा काम कर रही है इसलिए इन संगठनों में वो लोग नहीं आ पाते जिनके पास जमीन या रोजगार के अन्य साधन उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इन समूहों में दलित, आदिवासी और मुस्लिम औरतें शामिल नहीं हो पाती हैं। आन्ध्र प्रदेश का उदाहरण लें तो वहां पर पहले बनने वाले समूह दलितों के ही बनते थे लेकिन अब उनमें कोई भी दलित नहीं है।

इन संगठनों के दो उद्धेश्य रखे हैं एक दलित उन्मूलन और दूसरा महिला सशक्तीकरण। अगर महिलाओं के सशक्तीकरण की बात करें तो इन समूहों में आर्थिक या वित्तीय व्यवस्था या वित्तीय रूप से समृद्ध बनाने के अलावा कोई और बात नहीं की जाती है। इन समूहों में से लगभग 70 प्रतिशत समूहों में तो पिछले 2 साल में किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। यहां सिर्फ समूह बना है, उसका नाम लिखा गया और लोन दिलाने का काम करने के बाद उसकी भरपाई के लिए दबाव डाला जाता है। जैसा मैंने, पहले ही कहा कि इन संगठनों में दलित, आदिवासी और मुस्लिम औरतें नहीं हैं जिससे वहां मौजूद लोगों को ही शिक्षा का लाभ मिल पा रहा है समाज के महत्वपूर्ण वर्ग अर्थात दलितों, आदिवासियों और मुस्लिम औरतों को नहीं मिल पा रहा है। इन संगठनों का पंचायतों के साथ किसी भी प्रकार का जुड़ाव नहीं है। कहीं–कही पर इसके समांतर की पद्धतियां भी बन रही हैं लेकिन अगर हम कहें कि इन संगठनों की मदद से औरतों की शासन में भागीदारी होगी, वे योजना और पूरे आयोजन के स्तर से विकास के कार्यों के संबध में मूल्यांकन और निरीक्षण के हर स्तर

से जुड़ी रहे तो ये नहीं हो पा रहा है। केरल जैसे राज्य में जहाँ पर इन संगठनों की पंचायती राज्य संस्थानों से बहुत नजदीकी जुड़ाव है वहां पर भी इन संगठनों के कार्यों में दलितों और महिलाओं की मदद नहीं ली जा रही है।

जैसा कि मैंने, पहले कहा कि इन समूहों में सामाजिक मुद्दे तो लिए ही नहीं जाते फिर चाहे वो स्वास्थय, विकास या महिलाओं से जुड़े मुद्दे ही क्यों न हों। जब इन संगठनों में इस तरह की बातें ही नहीं की जाती तो फिर महिला सशक्तीकरण की तो बात ही छोडिए। अगर हम गरीबी उन्मूलन की बात करें तो जैसे हमें मालूम ही है कि गांवों में लोगों के पास पैसे की कमी होने के कारण उन्हें उधार लेने की जरूरत हमेशा पड़ी रहती है, जो उधार उन्हें इन संगठनों से मिलना चाहिए वो नहीं मिल पा रहा है जिससे वे साहूकारों के चुंगल में फंसते जाते हैं जो उनका पूरा शोषण करते हैं। इन संगठनों से केवल 30 प्रतिशत समूहों को ही उधार मिल पाता है बाकी 70 प्रतिशत को नहीं मिल पाता है। हम इन संगठनों के माध्यम से विकास कायम करने और गरीबी उन्मूलन की बात करते हैं लेकिन जब ये समूह उधार ही नहीं दे पाते तो ऐसे में इनसे विकास की उम्मीद कैसे की जा सकती है ?

अगर हम आज की आर्थिक नीति और परिवर्तनों पर थोड़ा ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि पिछले 10—15 सालों में हमारे देश में जो आर्थिक नीतियां आयी हैं और उनसे जो बदलाव हुए हैं हम उनके खिलाफ खड़े हैं क्योंकि हमें मालूम है कि उनमें से किसी भी नीति से गरीबों, दलितों और महिलाओं को कुछ लाभ नहीं होगा। जिस तरह से सरकार ने इस पूरे ग्रुप को बढ़ावा दिया है उससे इन समूहों में काम करने वालों को कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है, इससे सरकार को लाभ हो रहा है। सरकार यह चाहती है कि शिक्षा और स्वास्थ्य पर कम से कम खर्चा हो। सरकार जनता की भलाई से जुड़े कामों को करने की रूचि नहीं रखती है वह मध्याह्न भोजन, राशन की दुकानें, स्वास्थ्य सेवाएं, टीकाकरण, परिवार नियोजन या आई.सी.डी.एस. से संबधित सभी कामों को समितियों और निजी संस्थाओं को यह काम सौंप देती है। इससे महिलाओं के रोजगार से संबधित परेशानियों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है।

सरकार के अलावा लघु वित्तीय संस्थान जैसी बड़ी संस्थाएं इन संगठनों में काफी सारा पैसा डाल रही हैं। इतना बड़ा लोन लेने और व्यवसायी बनने की क्षमता औरतों की नहीं है जिससे वे कर्जे में डूबते जा रही हैं और आन्ध्रा, गुजरात और पश्चिम बंगाल की महिलाएं तो आत्महत्या तक भी कर रही हैं। एमप्लीफाई कॉपोरेट हॉउस, और ग्रामीण स्तर पर आई.सी.आई.सी.आई., एम्बर्रे और हिन्दुस्तान इंडियन लीवर

जैसी कंपनियां अपने लाभ के लिए इस तरह की चीजों का कैसे इस्तेमाल कर रही हैं। क्योंकि ये एक अच्छा मंच और माध्यम है जिसके माध्यम से कई लोग इक्ट्ठा हो सकते हैं और बहुत सी बातें हो सकती हैं और इससे संगठन और संस्था के लोग आपस में जुड़ जाते हैं। हमें उनकी इस राजनीति को समझना चाहिए। इस संबध में बैंक बहुत खुश रहते हैं क्योंकि उनके कार्य संपादन की कीमत वसूल हो जाती है फिर चाहे वो ऋण भरपाई के लिए हो या अन्य कार्यों के लिए ही क्यों न हो। बैंक अपने लक्ष्यों को पूरा कर लेते हैं। उसी के साथ एन.जी.ओ. भी होते हैं जिनपर दाता संस्थाओं का दबाव रहता है। इस प्रकार ये सभी संस्थाएं मिलकर लोगों का बहुत शोषण कर रही हैं। इसी बात से जोड़ते हुए मैं आज की तारीख में चलने वाली राजनीतिक प्रक्रिया पर बात करना चाहूंगी। 20 मार्च को वित्त मंत्री ने संसद में एक सूक्ष्म वित्तीय (माइक्रो फाइनेंशल) बिल रखा। कई संगठनों और संस्थाओं ने इस वित्तीय बिल की मांग रखी। उनके अनुसार इस क्षेत्र में काफी शोषण हो रहा है इसलिए यहां नियंत्रण तंत्र की आवश्यकता है। इस बिल में कई खामियां हैं जिनमें से मैं, आपके सामने केवल तीन बातें ही रखूंगी। इनमें ब्याज की बात नहीं की गई है हमने कई बार देखा है कि स्वकारिता समूहों में बहुत सारे बैंक बहुत ऊंचा ब्याज लेते हैं। आप और हम जैसे लोगों को अगर गाड़ी भी खरीदनी है, तो हमें 10 प्रतिशत की दर पर ऋण मिल जाता है लेकिन इन समूहों में काम करने वाली औरतों को अनाज खरीदने के लिए, बीमारी की स्थिति में या शिक्षा के लिए ही ऋण दिया जाता है। यदि हम ऐसा सोचें कि इन संगठनों के माध्यम से प्राप्त धन का प्रयोग इन कमों में हो रहा है तो यह बहुत ही गलत बात होगी क्योंकि बहुत कम प्रतिशत में ही लोग रोजगार या इस तरह की प्रवृति से जुड़ रहे हैं। हमें यह सोचने की जरूरत है कि जब अधिकतर लोग अनाज खरीदने, स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी आपातकाल में या शिक्षा के लिए लोन ले रहे हैं तो उन लोगों को 24 %, 36%, , 40 % या 60 % वार्षिक ब्याज क्यों देना पड़ रहा है ?

दूसरा, इस बिल में ये बात नहीं की गई है कि इसपर 18 % आदि का कोई कैप होना चाहिए। मुझे लगता है कि अर्थशास्त्री इस बात पर काफी बहस करते हैं कि इसे 11 % होना चाहिए लेकिन फिर बाद में वो वसूल कर लेते हैं। दूसरा कि किसके लिए किसका निर्वहन करना है। इस बिल से यह आशा रखी जाती थी कि ऋणों की भरपाई के लिए संगठन और बैंक जिस तरह से शोषण करते हैं, जैसे ऋण लेने वाले को अपमानित करना, उसके घर में जाकर सामान उठा लाना आदि। ग्रामीण स्तर पर साहूकार भी ग्रामीणों का शोषण करते हैं और इस बिल से उनपर नियंत्रण कायम करने की उम्मीद जताई जा रही थी। लेकिन इस बिल में सूक्ष्म वित्तीय संगठन में आने वाली

संस्थाएं, एन.जी.ओ., सहकारी समूह, एस.ए.जी. पंजीकृत संस्थाएं, एस.ए.जी. संघ के तहत आने वाली संस्थाएं भी आएंगी लेकिन इस बिल में उन बड़ी–बड़ी एमीफाई का जिन्हें हम गैर बैंकिंग वित्तीय संगठन (एन.बी.एफ.सी.) कहते हैं जो कम्पनी एक्ट के 25 सैक्टर के तहत जो गैर निगमित कम्पनियां या सूक्ष्म वित (माइक्रो फाइनेंश) का काम करने वाली बड़ी–बड़ी इमीफाई कहते हैं उनका इसमें कोई जिक्र नहीं है। जिसपर प्रश्न करने की आवश्यकता है।

तीसरी महत्वपूर्ण बात है कि इन पर कौन नियंत्रण कर रहा है ? इस बिल के तहत नाबाद के पास लगभग पूरी सत्ता या स्वैच्छाचारी शक्तियां गई अर्थात अगर उन्हें लगे कि ये संस्थाएं ठीक से काम नहीं कर रही हैं तो वे उन्हें बंद भी कर सकते हैं। इस प्रकार नाबाद के पास इस तरह की शक्तियां कायम हैं। अब एक प्रश्न उठता है कि जब नाबाद को खुद ही माइक्रो फाइनेंश को बढ़ावा देने और बैंक को पुनःवित्तीय सुविधा देने की सत्ता प्राप्त है तो क्या ऐसे में समूह में मौजूद नाबाद उनके हित के बारे में सोच सकता है? और अगर शक्तियां देनी ही हैं तो इसके अन्य खिलाड़ी जैसे माइक्रो क्रेडिट की गतिविधि को सहयोग करने के लिए बनाई गई 'सिडनी या राष्ट्रीय महिला कोष' को इसमें शामिल नहीं किया जाना था ?

उस नियंत्रण की प्रक्रिया में मैंने तीन–चार बातें रखी हैं और मुझे लगता है कि अगर हम सही अर्थों में न्याय और संदर्भ की बात कर रहे हैं तो इस संदर्भ में आज कही गई बातें महत्वपूर्ण लगी होंगी। संसद में मौजूद इस बिल के खिलाफ आवाज उठाने में अगर आप लोग अपने–अपने स्तर पर कुछ कर सकते हैं तो मुझे लगता है कि हम सफल हो सकते हैं। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) : शुभलक्ष्मी जी ने हमारी संसद में मौजदू माइक्रो फाइनेंश बिल के बारे में हमें बताया उन्होंने देश में समता के नाम से जो माइक्रो फाइनेंश के किये जा रहे अध्ययन के बारे में जानकारी देकर हमारी आंखें खोल दी। उनके अध्ययनों से यह बात स्पष्ट है कि सरकार द्वारा यह कहा जाना कि माइक्रो फाइनेंश से हम समाज में महिलाओं को बराबरी के स्तर पर ले आएंगे और इससे महिलाओं की स्थिति बदल जाएगी और महिला सशक्तीकरण हो जाएगा आदि ये सब बातें कितनी बेमानी हैं। लेकिन मैं, इसके साथ कुछ और बातें भी जोड़ना चाहूंगा कि यदि हम भी इसके मूल में जाकर इसे समझने का प्रयास करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि सरकार जो माइक्रो फाइनेंश के लिए ग्रुप बना रही है वो कहीं से भी महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए है ही नहीं वो तो बाजार और अन्तराष्ट्रीय पूंजी के सशक्तीकरण के लिए है। ये बात तो

तय है कि अभी तक हमने इसे सही तरीके से जाना भी नहीं है क्योंकि कहीं न कहीं जो पैसा हमारे बैंकों में जमा था, जो हम अपनी अल्प बचत में जमा किया करते थे जिसके दम पर हमारी सरकार का पूरे बजट में साल का लगभग 24 प्रतिशत तक आता था उस पैसे को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उतारने, पूँजीपतियों के माल को बिकवाने के लिए जिस तरह ब्याज दर और बैंक दर घटाया गया और फिर जरूरत पड़ने पर सरकार चलाने के लिए आपने माइक्रो फाइनेंश की एक नयी पद्धति पैदा की, स्थानीय बाजार का जो पैसा बाजार में घूमता है, स्थानीय गरीब और वंचित अपने पैसे से अपने स्थानीय उत्पादों को खरीदते हैं उस पैसे को आप बैंकों के माध्यम से सरकार चलाने के लिए सीधे ही ले जा रहे हो। यदि हम इस बात की गहराई में जाएं तो हमें पता चलेगा कि ये तो मूल रूप से ही समानता के खिलाफ है। इससे उन लोगों का भ्रम भी टूटा जो इससे ताकत मिलने की उम्मीद लगाए बैठे थे। इस पूरी बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए हमारे बीच एक और साथी मौजूद हैं विराज पटनायक जी। वे हमारे सम्मुख अपनी बात रखेंगे।

विराज पटनायक – आप सभी का खासकर विजय भाई का शुक्रिया जो उन्होंने हिमालय स्वराज में आज मुझे भोजन के अधिकार की बात रखने का मौका दिया। हालांकि यह सत्र दलित मुद्दे पर है लेकिन मैं, इन दोनों मुद्दों को जोड़कर पेश करने की कोशिश करूंगा।

मैं, भोजन के अधिकार के लिए नियुक्त सुप्रीम कोर्ट के आयुक्त के लिए काम करता हूं। मैं, 2001 से इस अभियान में जुड़ा हूं। जैसा कि आप जानते हैं कि 2001 में राजस्थान का मानव अधिकार संगठन सुप्रीम कोर्ट गया और उन्होंने सरकार से गुहार लगाई कि हमारे यहां के गोदामों में अनाज सड़ रहा है इसलिए इस अनाज को खोलकर लोगों में बंटवाया जाए, देश भर में काम के बदले अनाज के नियम खोल दिए जाएं, इस अनाज को मधह्वान भोजन के रूप में और आंगनबाड़ियों में बांट दिया जाए। उन्होंने दूसरी यह मांग रखी कि भोजन के अधिकार को मौलिक अधिकारों में शामिल कर दिया जाए, जिस तरह हमारे पास जीने का अधिकार और शिक्षा का अधिकार, नागरिकों की स्वतंत्रता, अपनी बात रखने की आजादी आदि मौलिक अधिकारों के रूप में मौजूद हैं उसी तरह भोजन के अधिकार को भी मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया जाए।

अब प्रश्न यह उठता है कि भोजन के अधिकार की मांग क्यों की गई? आप देखेंगे कि विश्व में बहुत कम ऐसे देश हैं जहां पर भोजन के अधिकार को मौलिक

अधिकार बनाया गया है। दक्षिण अमेरिका में मौलिक अधिकार हैं लेकिन यह अधिकार न तो अमेरिका में है और न ही ब्रिटेन या भोजन के किसी देश में, हालांकि उनकी सामाजिक नीतियों में भोजन को शामिल किया गया है लेकिन अधिकार के रूप में नहीं। इस प्रकार जब किसी भी देश में ऐसा नहीं है तो भारत में इसको मौलिक अधिकार बनाने की जरूरत क्यों पड़ गई ?

इसके दो कारण हैं रितु जी ने ये बात रखते हुए कहा कि ये जो हमारा दौर है ये गैर बराबरी और असमानताओं का दौर है। यहां पर अपनी बात रखते हुए कई वक्ताओं ने कहा कि आज से 20 साल पहले तक भी सरकार अपनी जिम्मेदारी समझती थी, वो जानती थी कि राज्य में सत्ता में उनकी नैतिक जिम्मेदारी है। गरीबी उन्मूलन करना, लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और उनके भोजन के बारे में चिंतन करना सरकार का नैतिक कर्तव्य था। लेकिन 1990 से नया दौर चला जिसे नव उदारवादी युग कहा जाता है, तब से राज्य सत्ता या राज करने वाले लोग चाहे वो कोई भी राजनीतिक दल के क्यों न हों वे सभी लोग जनता की भलाई के काम करना अपनी नैतिक जिम्मेदारी नहीं समझते हैं वह गरीबों के पक्ष में कुछ भी नहीं करना चाहते हैं। आप देखेंगे कि पिछले कुछ सालों में जो नीतियां आ रही हैं उससे भी लोगों का कुछ भला नहीं हो रहा है। पिछले 5–10 सालों के दौरान बजट में वृद्धि हुई है लेकिन शिक्षा या रोजगार के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का सुधार नहीं दिखाई दिया है। इसलिए भोजन के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल करना बहुत जरूरी है। इसे मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल करना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि अगर आज कोई मेरी पिटाई करता है या किसी भी रूप में मेरे मानवीय अधिकारों का हनन होता है तो मैं कानून के पास जा सकता हूं इसके अलावा इस काम में कई संस्थाएं भी मेरी मदद कर सकती हैं क्योंकि मैं जानता हूं कि कानून के अनुसार मेरे पास ऐसा करने का अधिकार है और मुझे मालूम भी है कि मैं, इसकी शिकायत किसके पास और कैसे करूं लेकिन वहीं अगर मेरे भोजन के अधिकार का हनन हो, अगर मेरे परिवार में किसी की भूख से मौत हो या मेरे परिवार को कुपोषण की समस्या का सामना करना पड़ रहा हो तो इसके लिए मैं, किसी के पास भी नहीं जा सकता क्योंकि हमारे कानून में इसके बारे में कुछ लिखा ही नहीं गया है। इसीलिए शायद आज तक कोई ऐसा केस नहीं हुआ होगा जिसमें भूख से मौत के लिए किसी को सजा मिली हो इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम अपने संविधान में भोजन के अधिकार को एक मौलिक अधिकार का दर्ज़ा दें।

कुछ लोगों के अनुसार हमारे पास पिछले 60 सालों से कई मौलिक अधिकार हैं लेकिन उसके बावजूद भी हमें वो सभी सुख–सुविधाएं नहीं मिल पा रही हैं जो संविधान के अनुसार मिलनी चाहिए तो फिर इस नए अर्थात भोजन के अधिकार के मिल जाने के बाद भी जमीनी स्तर पर कुछ मिलने की उम्मीद कम ही है। ऐसा सोचने वाले निराशावादी लोग हैं, माना ये ठीक है कि कई बार हमारे संविधान में मौजूद मौलिक अधिकारों का भी हनन होता है लेकिन अगर हमारे इन अधिकारों का किसी भी तरह से हनन होता है तो हमारे पास कानूनी लड़ाई लड़ने का हथियार तो मौजूद हैं जिनकी मदद से हम सरकार पर दबाव डालकर अपने अधिकार को वापिस प्राप्त कर सकते हैं लेकिन भोजन के अधिकार के संबध में तो ऐसा भी नहीं हो सकता।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए 2001 से इस मुकदमे के माध्यम से भोजन के अधिकार का एक राष्ट्रव्यापी अभियान चल रहा है। भोजन के अधिकार के विषय में चलाया जा रहा आंदोलन कोई नया नहीं है पिछले 100–150 साल से कई संगठन और लोग इसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ब्रिटिश शासन के खिलाफ भी छत्तीसगढ़ में नारायण सिंह का उदाहरण, झारखण्ड का उदाहरण और स्थानीय स्तर पर भी कई उदाहरण मौजूद हैं जिसमें कई लोगों ने सरकार की खाद्य नीति पर प्रत्यक्ष हमला किया। इसी तरह आज से 100 साल पहले छत्तीसगढ़ में नारायण सिंह का मामला है जिसमें उन्होंने सरकार के गोदामों से अनाज निकालकर गरीबों में बंटवा दिया। भारत में भोजन के अधिकार के संबध में गांवों,कस्बों और कई जगहों पर अभियान होते रहे हैं। मैं, जिस भोजन के अधिकार की बात कर रहा हूं, उसमें उस अभियान की बात कर रहा हूं जिसे पिछले पांच सालों से सुप्रीम कोर्ट में केस के चलते चल रहा है।

इस अभियान के चलते और सुप्रीम कोर्ट के केस के चलते अगर हम अब तक की उपलब्ध्यिों को देखें तो पहली उपलब्धि तो यह है कि सुप्रीम कोर्ट ने 28 नवम्बर 2001 में राजस्थान की अपील पर आदेश दिया जिसके बाद से न केवल राजस्थान सरकार बल्कि सारे राज्य, सारे संघ राज्य, सारे भारतीय खाद्य निगम आदि जितने भी संगठन और संस्थाएं हैं वो सरकार की तरफ से काम कर रही हैं। उसके बाद सभी राज्य सरकारों को नोटिस दिया गया, नोटिस भेजने के बाद उन्होंने राज्य सरकारों के जवाब से ये पाया कि सरकार लीपा–पोथी न केवल मीडिया और अपने आंकड़ों करती है बल्कि सुप्रीम कोर्ट के साथ भी यही बात होती है। दिल्ली सरकार ने जब सुप्रीम कोर्ट से यह पूछा कि आप अपने इलाके में अन्तोदयी योजना क्यों नहीं चलाते जिसमें 2 से 3 रुपए में लोगों को चावल और गेहूं मिलता है ? इसके जवाब में दिल्ली,

हिमालय, और पंजाब की सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा दायर करते हुए उन्होंने दावा किया जिसे अमेरिका, यूरोप और कोई भी विकसित देश नहीं कर सकता है, उन्होंने कहा कि 'हमारे राज्य में कोई गरीब हैं ही नहीं।' उसी तरह आठ राज्यों ने कहा कि हमारे यहां मधह्यान भोजन इसलिए आवश्यक नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ बच्चों में भूख की समस्या नहीं है। हमारे यहाँ बच्चे सुबह भोजन करके आते है और फिर रात में खाते है तो मधह्यान भोजन का प्रावधान रखने की जरूरत ही महसूस नहीं होती है। केन्द्र सरकार ने बार–बार कहा कि हमारे यहां फण्ड और संसाधनों की कमी के चलते हम इन योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं कर पा रहे हैं। इसके चलते 25 नवम्बर 2001 को जब कोर्ट को ये लगा कि सरकार इस पूरे केस को दबाने के प्रयास में है उन्होंने कहा कि हम इस केस की सुनवाई के बाद ही ये तय कर पाएंगे कि भोजन का अधिकार मौलिक अधिकार है या नहीं ? लेकिन जब तक ये मामला चलेगा तब तक हम 9 योजनाओं को कानूनी अधिकार के रूप में लोगों को देंगे इनमें और मौलिक अधिकारों में अंतर है क्योंकि ये अंतिम आदेश नहीं बल्कि अंतरिम आदेश है। तब तक दी जाने वाली 9 योजनाओं में सार्वजनिक वितरण प्रणाली है, आंगनबाडी योजना, मधह्यान भोजन योजना, खाद्य के बदले अनाज या खाद्य के बदले पैसा राष्ट्रीय और ग्रामीण रोजगार योजना आदि को कानूनी अधिकार माना गया है और कार्ट को यह आदेश भी दिया गया है कि सरकार इन योजनाओं के साथ कुछ छेड़छाड़ नही कर सकती क्योंकि ये कानूनी अधिकार हैं। इनके साथ छेड़छाड़ करने पर सुप्रीम कोर्ट या उसके कमिशनर से अनुमति लेनी पड़ेगी। दूसरा उन्होंने ये कहा कि कुछ योजनाओं का सर्वव्यापीकरण होना चाहिए अर्थात कुछ योजनओं का लाभ सभी नागरिकों को मिलना चाहिए। इससे बच्चों के लिए आंगनबाड़ी कार्यक्रम और मधह्यान भोजन आदि योजनाओं का सर्वव्यापीकरण हुआ है। आपको याद होगा 2001 से पहले बहुत कम स्कूलों अर्थात केवल दक्षिण भारत में ही यह योजनाएं व्यापक रूप में मौजूद थी लेकिन उस समय तक मधह्यान भोजन और आंगड़बाडी का उतना प्रभाव नहीं था जितना आज है। भले ही आज इस भोजन में लाख कमियां हों लेकिन कोर्ट द्वारा मिली फटकार के बाद यह निरन्तर रूप से बंट रहा है। उसी तरह आई.सी.डी.एस. को लेकर सर्वव्यापीकरण हुआ है सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को आदेश दिया कि वे आंगनबाड़ी के स्कूलों को 7 लाख से बढ़ाकर 14 लाख कर दे। इतना ही नहीं अभी पिछले माह 20 मार्च को सुप्रीम कोर्ट के कमिशनर ने आंगनबाड़ी के ठीक से काम न करने की शिकायत पर बंगाल, मध्य प्रदेश और बिहार सहित 9 राज्यों के मुख्य सचिवों को व्यक्तिगत रूप से बुलाकर डांटा। इसकी वजह से पिछले 4–5 सालों में ऐसे कई सख्त कदम उठाए गए हैं जिनके कारण जमीनी स्तर पर परिवर्तन के काफी प्रयास चल रहे हैं। आंगनवाड़ी और मधह्यान भोजन जैसे कार्यक्रम की स्थिति उत्तराखण्ड के कुछ क्षेत्रों में शायद बेहतर हो सकती

है लेकिन उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान और मध्य प्रदेश सहित कई उत्तर भारतीय राज्यों में इसकी स्थिति किसी भी मायने में बेहतर नहीं है। इसीलिए कोर्ट द्वारा दबाव डाला जा रहा है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विषय में कोर्ट बहुत हताश है। जब हमने उन्हें लिखकर दिया कि इस मामले में हम भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं तो उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के एक रिटायर जज 'वाधवा' को सुझाव देने के लिए कहा। जिससे आगे चलकर उन्होंने एक कमीशन की स्थापना की जिसके माध्यम से उन्होंने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बेहतर बनाने के लिए सुझाव दिए, उनके अनुसार अगर अब वहां किसी भी प्रकार की गलती होने पर अफसरों को भी जेल भेजने की बात की।

ये सभी प्रयास तो किए जा रहे हैं लेकिन लगता है कि शायद जमीनी हकीकत को बदलने में अभी बहुत साल लगेंगे क्योंकि पिछले 8 साल पहले राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य निरीक्षण द्वारा किए गए सर्वे के अनुसार हमारे देश में 47 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं और वहीं 2004–05 में आठ साल बाद जब इन्होंने दोबारा सर्वे किया तो उसके अनुसार बच्चों के कुपोषण में सिर्फ 1 प्रतिशत की कमी पायी गई। जबकि पिछले आठ साल हमारे देश के लिए बहुत ही गौरवपूर्ण साल थे क्योंकि हमारे देश में यूरोप की बड़ी–बड़ी कंपनियां आयीं, आई.टी. प्रगति की सीढ़ी चढ़ता गया, हमारे यहां बड़े–बड़े मॉल और सुपर बाजार बने, हमारी सरकार की कई प्रगतिशील योजनाओं के कारण हमारे शहरों का चेहरा ही बदल गया लेकिन उसके बावजूद भी हमारे देश के 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं जो कि अफ्रीका से लगभग दुगनी संख्या में हैं। वहीं बंग्लादेश जो कि पिछले 10 सालों की तुलना में हमसे लगभग हर क्षेत्र में पिछड़ा दिखाई देगा लेकिन वहां के बच्चों के पोषण, शिक्षा और यहां तक कि वहां की महिला जनसंख्या भी हमसे अधिक है। क्या ये शर्म की बात नहीं है कि बंग्लादेश जैसा देश जहां की आर्थिक प्रगति हमारी तरह 8 प्रतिशत से 9 प्रतिशत नहीं हो रही है बल्कि वो लगभग हमसे आधी है और जहां हर दो–एक साल में कोई न कोई प्राकृतिक आपदा आ जाती है उसके बावजूद भी वहां के लोगों की स्थिति हमसे बेहतर है।

हमारे अध्ययनों के अनुसार आज सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अलावा ये आंगनबाड़ी जहां–जहां मधह्यान भोजन या आंगनबाड़ी खुल रही है वहां दलित समुदाय, पिछड़ी जाति और अल्पसंख्यकों पर इसका उतना प्रभाव नहीं पड़ रहा जितना पड़ना चाहिए। हालांकि कोर्ट ने एक बार नहीं तीन बार ये स्पष्ट आदेश दिए हैं कि अगर किसी राज्य

में आंगनबाड़ी, खुलेगी तो वह दलित या न्यायाधिकरण क्षेत्र में खुलेगी। तीन सरकार से हम राज्य सरकारों को उनके वहां स्थित दलित, आदिवासी और पिछड़े इलाकों की सूची देने के बारे में कमिश्नर की ओर से लिख रहे हैं लेकिन अभी तक एक भी राज्य ने अपने यहां की सूची प्रस्तुत नहीं की। इसीलिए अभी कोर्ट ने अवमानना के जुर्म में 9 राज्यों और भारत सरकार को नोटिस दिया कि यदि दिसम्बर तक ऐसी सूची पेश नहीं की जाएगी तो भारत सरकार के सचिव को भी कोर्ट की अवमानना का आरोपी माना जाएगा। दलितों के साथ मधह्यान भोजन के समय होने वाले भेदभाव के विषय में, हमारे जितने भी एन.जी.ओ. सैक्टर हैं उन्हें इस बारे में सर्वे करने के लिए कहा गया। उन्होंने एक राज्य में सर्वे करके बताया कि उस राज्य में मधह्यान भोजन के समय दलितों के साथ किया जाने वाला भेदभाव 12 से 15 प्रतिशत के बीच है लेकिन जब हमने वही सर्वे एक दलित संगठन को दिया तो उन्होंने बताया कि राजस्थान के स्कूलों में इसकी मात्रा 75 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि सरकार के साथ–साथ गैर सरकारी संगठन भी इस बात को प्रमुखता से नहीं ले रहे हैं।

मैं, कहना चाहता हूं कि जब तक सरकारी और गैर सरकारी संगठन, स्वायत्तरूप से रहने वाले लोगों जैसे विकलांगों, अति पिछड़ी जनजातियों, आदिवासी समाज या वृद्धों के लिए कोई योजना नहीं बनाता तब तक इन योजनाओं से समाज के सभी क्षेत्रों को लाभ नहीं मिल पाएगा। ये कुछ ऐसी चीजें हैं जिनपर आने वाले वर्षों में कोर्ट और अभियान का खास ध्यान रहेगा। मैं, इस विषय पर कुछ खास सामग्री नहीं ला पाया लेकिन यदि आप और अधिक जानकारी चाहते हैं तो आप राइट टू फूड इंडिया की वैब साइट पर जाकर पता कर सकते हैं और अगर आप चाहें तो आप इन योजनाओं और कोर्ट के आदेशों के संबध में छपी पुस्तिकाएं हमसे प्राप्त कर सकते हैं। धन्यवाद !

रघु भाई (संचालक) : आपने जो सभी सवाल उठाए वो इस ओर इंगित करते हैं कि उदारीकरण की प्रक्रिया चल रही है और उदारीकरण की इस प्रक्रिया के अंदर समता का आंदोलन और जटिल रूप ले रहा है। इस सवाल पर हमारे दोनों साथियों ने अपनी बात रखी और हमें बताया कि हमारी सरकार इसपर क्या काम कर रही हैं। चाहे घाटे की वित्त व्यवस्था का मामला हो, बजट से घाटे को समाप्त करने का मामला हो या बराबरी पर जाने का मामला हो इसका प्रभाव गरीबों और वंचितों पर कितना पड़ रहा है? हमारी पी.डी.एस. पद्धति किस तरह से समाप्त हो रही है ? गरीबी रेखा के ग्राफ रोज–रोज कैसे बदल रहे हैं? ये हमारे समाज के गरीबों और वंचितों को प्रभावित करने जा रहा है। इसके कारण समानता आंदोलन स्थापित करने के लिए हमारे सामने

चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। अब मैं, मुकेश जी को बुला रहा हूं, वो भोजन के अधिकार पर अपनी बात रखेंगे। आइए मुकेश जी !

मुकेश : भोजन के अधिकार की बात को संविधान के दायरे में रखकर आपने जो बात की, हमें उसकी आवश्यकता थी। लेकिन जब हम संविधान के दायरे में अधिकारों की बात करते हैं फिर चाहे वो शिक्षा का अधिकार हो या फिर चाहे भोजन का अधिकार हो, क्या हम ये महसूस नहीं करते कि हम जाने–अनजाने राजसत्ता के उसी प्रश्न में फंसते जा रहे है जो राज्य को सर्वोपरी मानता है जिसमें आदमी की सभी जरूरतें जैसे वो कितना भोजन करेगा और शिक्षा कैसी और कितनी प्राप्त करेगा आदि बातें भी राज्य ही निश्चित करेगा। तो जब सभी बातों को राज्य निश्चित करेगा तो समुदाय क्या करेगा? इन कानूनों से संविधानों से सरकार तो मजबूत होती है लेकिन समुदाय मजबूत नहीं होते।

मुझे लगता है कि यह एक विपरीत प्रक्रिया है कि पहले हम जिस भोजन नीति के बारे में बात कर रहे हैं, हम उसके लिए पहले संविधान लिखेंगे, फिर किताब लिखेंगे, किताब को लिखने के बाद हम समाज के संविधाओं को संबोधित करेंगे बल्कि हमें सबसे पहले समाज के बीच जाना चाहिए। अगर यही प्रक्रिया चलती रही तो हम राज्य सत्ता के उसी चरित्र के जाल में फंसते जाएंगे जो सरकार को सर्वोपरि मानता है और मनुष्य की चाहत, समाज एवं समुदाय की चाहत की अपेक्षा सरकार की चाहत को सर्वोपरि मानता है। जबकि मुझे ऐसा लगता है कि भोजन शरीर की आवश्यकता है और मेरे शरीर को कितने भोजन की आवश्यकता है, मैं, कैसे खाऊंगा? कितना खाऊंगा ये मैं नहीं, मेरा शरीर तय करता है। अगर मैं, थका–हारा घर जाता हूं और मेरी बीवी मुझे प्यार से खाना न खिलाए तो मैं या तो कम भोजन खाता हूं या नहीं खाता हूं इसलिए हम कितना और कैसा भोजन करते हैं ये 'मैं' तय करता हूं। हम जिन आम सुविधाओं की बात करते है, हम जिस दलित समता की बात करते हैं उसमें शरीर जुड़ा नहीं होता है बल्कि इसमें मानव मात्र का 'मैं' जुड़ा होता है। तो जब हम संवैधानिक अधिकारों की बात करते हैं, हक की बात करते हैं तो हम शरीर की आवश्यकताओं की बात करते हैं अर्थात लोग जिस बाजारवाद या सम्राज्यवाद की बात करते हैं वो सीधा–सीधा शरीर से जुड़ा है, शरीर के विकास से जुड़ा है। मुझे लगता है कि हमें इस बारे में सोचने की आवशयकता है हो सकता है मैं, सोचने में गलती कर रहा हूं लेकिन मैं, ऐसा ही सोचता हूं। धन्यवाद !

रघु भाई : आपने राज्य को सर्वोपरि बनाने की बात की, आपके पास दो विकल्प हैं या तो इस काम को सरकार करेगी या बाजार करेगा। आज विश्व बैंक भी यही कर रहा

है, वह भी सरकार पर रोक लगाना चाहता है। जब हमने अपना संविधान बनाया तो उस समय भी हमारा उद्धेश्य लोगों की भलाई करना था। उसमें लोगों की भलाई के काम करने की जिम्मेदारी सरकार को दी गई। लेकिन आज सरकार यह कह रही है कि सभी के स्वास्थ्य या शिक्षा की बात करना हमारा काम नहीं है, यह तो समुदाय का काम है, बाजार का काम है। तो हम बाजार और नागरिक के बीच की कड़ी का काम कर रहे हैं। मैं, कहूंगा कि हमें विभाग को मजबूर नहीं करना चाहिए, समुदाय का भी रोल है लेकिन अगर आप ये कहेंगे कि इस काम में सरकार को कोई मदद नहीं करनी चाहिए तो ये भी गलत बात है। जहां तक मैं, मुकेश जी की बात को समझा हूं, उन्होंने ये प्रश्न किया है कि अधिकार सिर्फ संविधान और कानूनों के दायरे तक सीमित नहीं हो सकते हैं। समाज की मान्यताओं और समाज की जरूरतों से उभरने वाले अधिकार ही हमारे मूल अधिकार हैं। उन मूल अधिकारों का दायरा यदि संविधान और कानून से सीमित होता है तो ऐसे संविधान और कानून की मान्यताओं से बाहर निकलने की जरूरत है।

दूसरी बात आपने कही कि लोगों के जनाधिकार अर्थात उनके जीने का अधिकार, उनके रहने का अधिकार, वो एक–दूसरे के साथ कैसे रहते हैं आदि सरकार तय नहीं करेगी बल्कि ये बातें समाज तय करता आया है और समाज ही तय करेगा। ये जरूरी नहीं कि आप इस बात से सहमत हों।

इसी के साथ हम अगले वक्ता रामावतार सिंह को आमंत्रित करना चाहेंगे।

रामावतार : सदन में उपस्थित विद्वानों को नमस्कार ! इससे पहले समता आंदोलन पर बहुत कुछ वक्ताओं ने बातें की। अख्तर हुसैन और रघुपति जी ने बिहार के संबध में बात की और कुछ लोगों ने उत्तर प्रदेश के संबध में भी बात की। मैं भी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले से संबध रखता हूं। यहां दलित समुदाय के बारे में जो बात की वो शत–प्रतिशत रूप से सही है। लेकिन हमारे विचार से आर्थिक एकता और राजनीतिक सत्ता के चलते इसके अर्थ बदल जाते हैं। लेकिन शिक्षा से असमानता को समानता में बदला जा सकता है क्योंकि जब समाज में पढ़े–लिखे लोग होते हैं तो उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाती है और अच्छा समाज मिल जाता है जिससे समाज का विकास होता है। धन्यवाद !

रघु भाई : आज की हमारी बातचीत से कई बातें निकलकर सामने आयी हैं। हमारे साथियों ने समता आंदोलन को केन्द्र में रखते हुए हमारे समाज की सरंचना और

पूंजीवाद के नए स्वरूप के बारे में बात की। अब विजय जी अपनी कुछ बात कहना चाहते हैं।

विजय प्रताप : आज का सत्र काफी महत्वपूर्ण रहा। कल के सत्र में असीम श्रीवास्तव और मेहर इंजीनियर जी सिंगूर और नंदीग्राम का घटानावार ब्योरा देंगे। उसके बाद उत्तराखण्ड से आए रघु तिवारी प्राकृतिक संसाधन और सेज के सवाल पर अपनी बात रखेंगे। इसके अलावा एक और प्रस्ताव रखा गया है जिसमें चिन्नाराव जी आज के समय में दलित आंदोलन की राजनीतिक स्थिति के बारे में बात करेंगे। एक रितु प्रिया जी स्वास्थ्य के सवाल पर बात करेंगी। उसके अलावा एफ.आर.आई. से आए हमारे कुछ नौजवान साथी अपना कुछ प्रस्तुतीकरण करेंगे। अब आपसे कल मिलते हैं, आज की बैठक में अपना सहयोग देने के लिए धन्यवाद !

कार्यकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत गीत :
चलो बसाएं नया नगर हम,
चलो बसाएं नया नगर हम,
चलो बसाएं नया नगर हम,
धनवानों के राजमहल यहाँ,
गरीबों के हैं फांसी घर ।
धनवानों के राजमहल यहाँ,
गरीबों के है फांसी घर।
चलो बसाएं नया नगर हम,
चलो बसाएं नया नगर।
खून का अपना पानी करते,
खून का अपना पानी करते,
खून का अपना पानी करते,
बच्चे तड़प–तड़प कर मरते,
बच्चे तड़प–तड़प कर मरते,
बच्चे तड़प–तड़प कर मरते,
मेहनत–मजदूरी का पैसा,
मेहनत–मजदूरी का पैसा,
हाय! नहीं देते हंसकर।
चलो बसाएं नया नगर हम,
चलो बसाएं नया नगर हम,

चलो बसाएं नया नगर हम,
धनवानों के राजमहल यहाँ
गरीबों के हैं फांसी घर।
धनवानों के राजमहल यहां,
गरीबों के हैं फांसी घर।
चलो बसाएं नया नगर हम,
चलो बसाएं नया नगर हम।
धन्यवाद !

दूसरा गीत :
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
हिन्द की नजर में,
हिंद स्वराज चाहिए।
हिंद स्वराज चाहिए।।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
बजारों से हटकर हमको,
घर–समाज चाहिए।
अपनी भूमि पर विकास हमको चाहिए।
अपनी भूमि पर विकास हमको चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
शिक्षा का जीवन से हमें,
सीधा रिश्ता चाहिए।
शिक्षा का जीवन से हमें,
सीधा रिश्ता चाहिए।

धर्म, जीवन में समां हो,
ऐसी शिक्षा चाहिए।
ऐसी शिक्षा चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको,
अपना ही समाज चहिए।
गुलाम चित की जगह आजाद चित चाहिए,
गुलाम चित की जगह आजाद चित चाहिए।
अपने पैरों पर खड़ा हर भारतवासी चाहिए,
हर भारतवासी चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको अपना ही समाज चाहिए।
इस घर जमीं पर हमको अपना ही समाज चाहिए।
हिंद की नजर में हिंद स्वराज चाहिए।
हिंद स्वराज चाहिए।
हिंद स्वराज चाहिए।
धन्यवाद!

भुवन – मैं, इस बैठक के दूसरे दिन आप सब का स्वागत करता हूं। आज की बातचीत के शुरू के सत्र में कल वाली बात को ही आगे बढ़ाया जाएगा और बाद के दूसरे हिस्से में चिन्नाराव जी अपनी बात रखेंगे वे दलित आंदोलन की स्थिति पर प्रकाश डालेंगे जिससे कुछ इतिहास की, कुछ वर्तमान की और कुछ भविष्य की बात करने में मदद होगी। उसके बाद रितु प्रिया जी स्वास्थ्य, दलित, आदिवासी और महिलाओं से जुड़े विषयों पर अपनी बात रखेंगी। उसके बाद विजय प्रताप जी पूरी बहस के सांगठनिक महत्व के विषय में बात करेंगे। इस महत्वपूर्ण सत्र के संचालन की जिम्मेदारी हमारे गीतकार दोस्त बागेश झा की होगी। इस सत्र में हमारी पूरी बहस विशेष आर्थिक क्षेत्र पर केन्द्रित होगी क्योंकि हाल के दिनों में नंदीग्राम और सिंगूर के सवाल पर पूरे देश में बहस चली उसमें मेहर इंजीनियर साहब और असीम जी अपना दृष्टिकोण रखेंगे। इसके अलावा इस सत्र में हम समता के सवाल के अलावा पर्यावरण पर होने वाले बदलावों के बारे में भी बात करेंगे। मैं, बागेश भाई से निवेदन करूंगा कि वे मंच पर आकर आगे की कार्यवाही का संचालन करें।

बागेश जी : कल की बातचीत बहुत ही अद्‌भुत रही। इस दौरान हमें ऐसे कई युवा साथियों को भी सुनने का मौका मिला जो जमीनी स्तर पर काम करते हैं और आमतौर से कम ही मिल पाते हैं। जाति और दलित विषय पर भी कई साथियों ने अपनी बातें रखीं। इस सवाल की जटिलता पर भी कई साथियों ने इस समस्या की ओर हमारा ध्यान खींचा। हम लोगों ने इस विषय में अपनी कुछ व्यक्तिगत अनुभूतियां के बारे में बताया उनसे कुछ बातें और कुछ सवाल निकलकर आए हैं। आज की बातचीत से कुछ अहम मुद्दे निकलकर आए हैं पहले मैं, उनका प्रेक्षण रखूंगा उसके बाद चिन्ना राव को आमंत्रित करूगां।

कल अनुभवों की बात चल रही थी। तो मैं, अपने अनुभव बताता हूं। चिन्ना जे.एन.यू. में हमारे साथ रहे हैं, हम लोग एक ही केन्द्र में पढ़ते थे हम लोग कई वर्षों से एक साथ हैं लेकिन मुझे हाल के कुछ दिनों में ही पता चला कि चिन्ना एक दलित हैं इससे पहले मुझे इस बात का कुछ पता ही नहीं था। चिन्ना एक बहुत ही अच्छे विद्यार्थी थे, वो हमेशा हंसते रहते थे इसलिए मैं, उन्हें मजाक में चीफ मिनिस्टर कहकर पुकारा करता था। अभी सभी लोग समाज में दलितों के साथ होने वाले असमानता के व्यवहार की बात कर रहे थे। तो ऐसी स्थितियों में चिन्ना राव जी एक छोटे से गांव से देश के शीर्षस्थ विश्वविद्यालयों में पहुंच गए, उन्हें देखकर बहुत अच्छा लगता है लेकिन वहीं जब समाज में मौजूद स्थितियों को देखें तो बहुत ही निराशा होती है। राजनैतिक रूप से देश में जातिवाद के संबध में होने वाले सुधारों की बात होती है लेकिन वास्तव में पिछले साढ़े पांच हजार सालों से हमारे देश में जाति व्यवस्था मौजूद है।

ऋग वेद में जहां वर्णों की चर्चा हुई वहीं हमें मनुस्मृति को पढ़कर मालूम होता है कि उस समय वहां पर 400 जातियां विद्यमान थी लेकिन जैसे अभी रघुपति जी ने कहा कि आज 4000 जातियां हो चुकी हैं। सोचना यह है कि जिस देश में सामाजिक गतिशीलता ही न हो वह समाज जीवित नहीं रह सकता है। हमारे देश में जाति व्यवस्था विकृत रूप में मौजूद है। यहां अस्पृश्यता या दलित के साथ अत्याचार होता है। लेकिन ये समझने की जरूरत है कि समाज में ये जातिगत असमानता किस तरह से अभी तक बरकरार है। और इसका विरोध करने वाले लोगों ने ही इसे और मजबूत किया है।

जो बात बार–बार कही जा रही है वह यह है जाति, वर्ग और वर्ण की समस्या। ये कई वर्षों से चली आ रही है। मुझे याद है कि जब हिन्दुस्तान में 1857 की क्रांति हो

रही थी और उस समय भी कार्ल मार्क्स अपने लेखों में भारत के बारे में लिखते हुए कहा कि देश जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों में इस तरह से बंटा था कि जैसे वो अपने–आपको अंग्रेजों के लिए निमित होने के लिए पेश कर रहा हो। ऐसे में अंग्रेजों ने अगर इस देश में अपना अस्तित्व जमाया तो कोई खास बात नहीं है मगर उन्होंने इस बात की आशा की थी कि जिस तरह से भारत में पूंजी का निवेश हो रहा है और आधुनिक चीजें आ रही हैं उससे भारत में मौजूद पारंपरिक मूल्य और पारंपरिक पहचान जिसमें जाति भी एक है वो कमजोर पड़ जाएगी लेकिन आज इस बात को भी 150 साल हो गए हैं लेकिन देश में कोई खास सुधार दिखाई नहीं देता है। आज 1857 की क्रांति पर तो हम लोग बहुत खुश होकर ढ़ोल–नगाड़े बजाते हैं लेकिन उन पुराने, पारंपरिक बंधनों को तोड़ने के बारे में कुछ बात नहीं करेंगे और सारी आधुनिकताओं में यह विविधता अब भी मौजूद है।

जाति को देखने का हमारा जो नजरिया है उसमें विविधता और विशिष्टता जैसी दो बातें विद्यमान हैं। कल किसी ने कहा था कि वैशिष्ट तो एक विशेष पहचान को बरकरार रखने का तरीका है और विविधता को दिखाने का एक महत्वपूर्ण हथियार जातियों को माना जाता है। यहां जाति केवल एक हैरानगी, एक राजनीतिक अभिव्यक्ति नहीं, जाति तो सप्पूर्ण ज्ञान पद्धति, पारंपरिक ज्ञान पद्धति को सुरक्षित रखने की बात है। और कुछ लोग यह भी कहते हैं कि 150–200 साल के औपनिवेशिक साम्राज्य के बाद भी भारत पूरी तरह पराजित नहीं हुआ, उसने अंग्रेजों को भारत में मौजूद सभी ज्ञान नहीं दिया क्योंकि यहां मौजूद जातियों में ज्ञान को संरक्षित करने की पारंपरिक विधि मौजूद थी। यहां हर आदमी के पास अपने–अपने ज्ञान का परिवेश है इसीलिए यहां ज्ञान का लोकतांत्रिकरण भी होता गया। हम सभी को इस बात पर भी ध्यान देने की जरूरत है।

एक और बात यहां कई लोग कहते हैं कि मैं, जन्मना ब्राह्मण हूं और दूसरा दलित है लेकिन मैं, कहता हूं कि इसमें मेरा कोई भी योगदान नहीं है। यदि किसी भी आदमी की बातचीत को या उसकी संवाद की सारी प्रक्रियाओं को जाति से जोड़कर देखा जाए, यदि मैं, जो कुछ भी कहूं उसे एक स्वतन्त्र रूप में न देखने की बजाय ऐसे देखा जाए कि मैं, कौन हूं और किस जाति से संबध रखता हूं? और जो कुछ भी मैं, कह रहा हूं, उसे केवल यह सोचकर देखा जाए कि यह एक ब्राह्ममणिक षडयंत्र है, तो गलत है। यदि मैं, जो भी कह रहा हूं उसे मेरी जाति के साथ ही जोड़ा जाए तो फिर शायद संवाद हो ही नहीं पाएगा। उसी प्रकार अगर चिन्ना कुछ कहें तो यह कहना कि वो दलित दृष्टि से ही बोल रहे हैं तो ये गलत है। वह एक व्यक्ति है और उसे एक

स्वतंत्र वैचारिक विचार रखने की स्वतन्त्रता है। अगर ऐसा नहीं होता तो नारीवादी प्रेमचंद को पूरी तरह खारिज कर देना चाहिए क्योंकि हम जानते हैं कि उनके अपनी पत्नी से अच्छे संबध नहीं थे तो ये एक कठिन प्रश्न है जिसमें हमें विचार करने की जरूरत है।

जब हम अस्पृश्यता की बात करते है तो अपने राजनीतिक उत्साह में हम कई सारी बातों को नजरअंदाज कर देते हैं। मैं, आपके सामने एक उदाहरण रखूंगा मैं, मिथिला का ब्राह्मण हूं और आपको ये बताना चाहता हूं कि मिथिला में एक और ब्राह्मण है जिनका नाम है 'टंटाहाब'। 'टंटाहाब' ब्राह्मण वो होते हैं, जब हमारे घर में किसी की मृत्यु हो जाती है तब वे आते हैं और वो प्रेत भोजन करते हैं। उनके भोजन किए बिना हमारी प्रेतात्मा को शांति नहीं मिलती और वे ब्राह्मण हैं। वे शुद्ध ब्राह्मण हैं पूजा करते हैं, जनेऊ रखते है, ब्राह्मण देवता हैं उनके बिना कोई काम नहीं होता और उस ब्राह्मण को आंगन में घुसते ही उसके लिए अलग से बिल्कुल वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा दलितों के साथ किया जाता है। उन्हें छूने में हमारे समाज के लोगों को कोई दिक्कत नहीं होती। मगर उनके हाथ में खाना दे दिया जाता है, उसको घर में जाकर खाना खाने के लिए कहा जाता है। इस तरह से अगर आप अस्पृश ब्राह्मणों के बारे में सोचेंगे तो आपको अस्पृश्यता के कुछ ऐसे आयाम समझ में आएंगे जो आपको इस विषय को और नए ढ़ग से समझने में मजबूत करेंगे।

मैंने, हिन्दुस्तान में जाति का विरोध करने वाले लगभग सभी लोगों के साथ काम किया उनमें से एक जाति का विरोध करने वाले एक बड़े नायक थे। मैंने, उन सभी के साथ काम किया, गीत गाए और मेरे हिसाब से जाति का विरोध करने वाला ऐसा बुद्धिजीवी कोई दूसरा नहीं हुआ। लेकिन आज भी वहां अस्पृश्यता की बातें होती हैं आज भी वो पाण्डिचेरी में अभ्यास करते हैं, अपने घर में दूसरों को आने नहीं देते। उनके घर कौन आएगा और कौन नहीं आएगा ये भी वो ही तय करते हैं।

मेरे विचार से हिन्दुस्तान में दुनिया के पहले आदि कवि वाल्मीकि थे जो कि एक दलित थे। उन्होंने जिस रामायण की रचना की उसका 'राम' शंभू का वध करता है और वहीं उसके कुछ दिनों बाद तुलसीदास जो कि एक ब्राह्मण थे जब उन्होंने रामायण की रचना की जो जो राम, शंभू का वध करता है उसे उन्होंने अपनी रामायण में स्थान नहीं दिया। हमें दलित सवालों पर विचार करते समय इस विचित्र और विडंबना को गंभीरता से समझने की जरूरत है क्योंकि ये बातें हमारे सांस्कृतिक और वैचारिक परंपराओं से जुड़ी हुई चीजें हैं। मैं, लोक परंपरा पर काम करता रहा हूं और

सारी लोक परंपरा लिखित रूप में मौजूद न होकर मौखिक रूप से मौजूद है क्योंकि ब्राह्मणों ने कहा कि ये वेद हैं और आपको इसे स्वीकार करना है, उनकी बातें लोक परंपरा हो गई जिसे समाज के निचले तबकों ने जिंदा रखा। समाज जिसको स्वीकार योग्य मानता है उसे स्वीकार करता है। उन सारी लोक परंपरा में कभी भी उस जाति को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया। आप सभी जगह देख लें आपको पूरी लोक परंपरा में हजारों में ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे जिसमें अन्तर्जातीय विवाह हुए हैं और समाज ने उन्हें बिना किसी असुविधा के सहज रूप से स्वीकार किया है।

रघुपति जी जिस बात को कह रहे हैं कि इस देश में 4000 जातियां पैदा हो गई हैं उसका एक कारण यह भी रहा है कि समाज उसको मानता जा रहा था और दलितों के साथ अत्याचार भी होते रहे और आज हमारे सामने इसका विकृत रूप मौजूद है। मुझे लगता है कि मेरी इस बात पर और भी लोग बोलें और इसके लिए मैं, सबसे पहले चिन्ना राव जी को आमंत्रित करता हूं कि वो आएं और इस विषय पर अपने विचार रखें। हमारे देश में इस विषय पर सबसे पहली बार एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय में एक बड़ा सेंटर शुरू हुआ और चिन्ना जी उस केन्द्र के पहले प्राध्यापक हैं। आइए चिन्ना जी।

चिन्ना राव : (बागेश जी द्वारा किया गया अनुवाद) : चिन्ना जी की बातों को अनुवाद करना बहुत कठिन काम है लेकिन फिर भी मैं, आपके लिए उनकी कुछ महत्वपूर्ण बातों का आपको अनुवाद करने का प्रयास करूंगा।

चिन्ना ने इतिहास में अपनी रिसर्च की और इसलिए वो इस विषय पर आधिकारिक रूप से बात करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। वाल्मीकी रामायण की बात करते हुए जो चर्चा रखी गई थी इससे पहले उन्होंने कहा कि वाल्मीकी ने रामायण लिखी नहीं बल्कि वो उनसे लिखवाई गई है और उस समय जो बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था उसे देखते हुए और उसे निरस्त करने के लिए उनपर दबाव डाला गया और इसका उदाहरण यूं दिया गया कि संगमित्र बुद्ध के गुरू थे और राम के गुरू विश्वमित्र थे। इसके बाद वेदों की चर्चा हुई। इसमें चार वेदों की बात की गई और पंचम वर्ण की चर्चा नहीं हुई। इसलिए यहां दलित की बात होती ही नहीं है। लेकिन बाद में जब इसकी चर्चा शुरू हुई तो इसका नाम इतनी बार बदला गया कि जितना और किसी भी समुदाय का नहीं बदला गया। उन्हें कभी अवर्ण कहा गया, कभी पंचम कहा गया, कभी अंकेत कहा गया और कई तरह के नाम दिए गए, उसके बाद इन्होंने जो बात कही कि 1920 में पहली बार दलित को उनकी विशिष्ट पहचान की बात होनी शुरू हुई। उसमें 'आदि' अर्थात सबसे पहले जो लोग थे उनकी बात हुई। 1917 में

पहला प्रथम पंचम सम्मेलन हुआ वहां पर एक 'आदि' व्यक्ति भाटी वर्मा का उदाहरण दिया गया। जो न तो भाटी था और न ही वर्मा था, उनका कुछ और ही नाम था। महत्वपूर्ण बात ये है कि रेड्डी का अर्थ राजा होता है और इसीलिए उन्होंने अपने नाम के साथ रेड्डी शब्द इसलिए रखा क्योंकि उन्होंने कहा कि हम राजा हैं। और उन्हें वर्मा शब्द समाज के द्वारा दिया गया। इसका अर्थ है कि पहली बार उन्होंने अपनी पहचान को दिखाने की कोशिश की। पंचम की चर्चा वेद में भी नहीं की गई है इसका अर्थ है कि वो इससे भी पहले यहां मौजूद थे और वे भारत के मूल निवासी थे। उसी बीच 1920–22 में मद्रास में एक एक्ट बनाया गया और उसे जाना जाने लगा। उन्होंने दूसरी एक अद्‌भुत बात बताई कि जाति के आधार पर जनसंख्या की गणना नहीं की गई। लेकिन पहली तथा आखरी बार 1931 में जाति को जनसंख्या का आकलन करने के लिए जाति को भी शामिल किया गया। इस गणना से पता चला कि उस समय 6,635 जातियों को पहचाना गया। इस गणना के दौरान उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से 10 प्रश्न किए और जो लोग उन प्रश्नों पर खरे उतरे उन्हें एक अलग सूची में रखा गया और बाद में उसी सूची के लोगों को अनूसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति सूची में रखा गया। उसके बाद 1935 में एक एक्ट बना जिसमें अनूसूचित जाति और अनूसूचित जन जाति की चर्चा हुई। उसके बाद आजादी के पहले जो दलित आंदोलन का स्वरूप था उसमें मूल रूप से वो अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे और शिक्षा और स्वतन्त्रता की तरह छोटी–छोटी चीजें मांग रहे थे। उस समय कांग्रेस की भी ऐसी ही स्थिति थी, प्रजातंत्र और प्रतिनिधि प्रजातंत्र था और उसके बाद जब स्वतन्त्रता आंदोलन खत्म हुआ और जब प्रत्यक्ष रूप से उनकी भागीदारी हो सकती थी और जब उनकी भागीदारी की आवश्यकता थी तभी उनके स्वरूप में परिवर्तन हो गया और उनकी मांगें तो बहुत सामान्य और साधारण किस्म की थी। किसी भी तरह के राजनैतिक अधिकार की मांग नहीं की गई। जब गांधी जी 1931 में राउंड टेबल सम्मेलन से वापस आए तो उसके बाद पूरे देश में चारों और दलित आंदोलन हुए और गांधी को लगा कि उनको कांग्रेस की छत्रछाया में लाना जरूरी है इसलिए उन्होंने उसे एक हरिजन नाम दिया। और उन सारे नेताओं अर्थात स्वायत दलित आंदोलन के नेताओं को उन्होंने हरिजन का बिल्ला लगाकर कांग्रेस में उन्हें स्थान दिया। इस तरह उनका कहना है कि इस तरह से स्वायत दलित आंदोलन को कमजोर करने की एक साजिश थी। उनका ये भी कहना है कि केवल राजनीतिक रूप से ही नहीं विद्वानों के बीच भी दलितों के इस योगदान को हिन्दुस्तान में उनके समक्ष अपने आधिकारों की मांग को नकारते रहे।

1920 में उत्तर प्रदेश में मौजूद मंगू राम ने वहां एक जबरदस्त आंदोलन का नेतृत्व किया और उन्होंने ये बात की कि ज्ञानेन्द्र पाण्डे, मार्गेट सिद्धीकी, कपिल कुमार आदि तीनों लोगों ने यहां अपना पी.एस.डी. किया लेकिन इन तीनों में से किसी ने भी मंगू राम की बात नहीं की। लेकिन बाद में 1994 में आक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी से आयी नंदिनी गुप्ता ने अपनी रिसर्च के दौरान पहली बार उत्तर प्रदेश में मंगू राम का नाम लिया। उन्होंने कहा कि मंगू राम के एक दलित ने वहां एक बहुत बड़ा आंदोलन चलाया। तो इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि उस समय दलितों को नकारने की एक बौद्धिक परंपरा थी। और जब स्वतंत्र भारत में दलित पहचान मजबूत होने लगी और वो एक खतरे के रूप में सामने आने लगा पंजाब में सबसे अधिक दलित समुदाय हैं, वहां करीब 30–31 प्रतिशत अनुसूचित जातियां हैं और जब उन्होंने कहा कि हमें बजट में हिस्सा मिलना चाहिए, इससे उपजने वाले खतरे को देखते हुए राजनैतिक पार्टियों के कान खड़े हुए और उन्होंने सोचा कि अगर ये मजबूत होगा तो समस्या पैदा हो सकती है इसीलिए उन्होंने दलित आंदोलन में दरार डालने की कोशिश करते हुए उन्हें दो भागों में बांट दिया। इस प्रकार वहां दो तरह के दलित हो गए और आज भी वहां इस विषय पर लगातार झगड़े हो रहे हैं जिससे दलित आंदोलन में बिखराव आ गया है। इसी तरह हरियाणा में भी 1994 में ए और बी करके दो भाग कर दिए। वहीं आंध्र प्रदेश ने उससे भी एक कदम आगे बढ़ाया उन्होंने दलितों के चार वर्ग अ,ब,स,द बनाए इस तरह से वहां दलितों के चार भाग हो गए। इस प्रकार से जहां सरकारी और राजनीतिक रूप से दलित अस्तिमा की पहचान को मजबूत बनाने के लिए एक बड़ी लड़ाई हो सकती थी लेकिन इस विभाजनों ने इस एक साजिश के तहत उन्हें कमजोर बनाया।

चिन्ना जी ने अंत में स्वंय सेवी संस्थाओं की चर्चा की। इसके तहत कई स्वंय सेवी संस्थाएं आईं लेकिन उन्होंने भी दलित अस्तिमा को बचाने के लिए कोई मजबूत प्रयास नहीं किया। कुकरमुत्तों के तरह बहुत सी स्वंय सेवी संस्थाएं आयीं लेकिन उन्होंने दलित आंदोलन को मजबूत बनाने में कोई खास योगदान नहीं दिया। और कुल मिलाकर दलित आंदोलन का इतिहास बहुत ही गंभीर विषय रहा इस विषय पर आज भी बहुत नकारात्मकता से सोचा जाता है और चिन्ना राव जी के अनुसार इस पर विचार किया जाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि दलित आंदोलन और उसका इतिहास इतना भी छोटा नहीं कि उसपर कुछ ही मिनटों में अपनी बात समाप्त करना कठिन है इसलिए जो इस विषय

पर बात करना चाहते हैं वो अलग से अपनी बात और इसपर विस्तृत चर्चा कर सकते हैं।

बागेश जी (संचालक) : चिन्ना जी ने अपनी बात को जिस स्पष्टता से रखा उससे आपके मन में बहुत सारे सवाल और विचार आ रहे होंगे। उन्हें आप बाद में कह सकते हैं। पहले रितु प्रिया जी अपनी बात रखना चाहतीं हैं उसके बाद विजय जी अपनी टिप्पणी करेंगे और उसके बाद आप अपने सवाल–जवाब पूछ सकते हैं। अब मैं रितु प्रिया जी से अनुरोध करूंगा कि वो आएं और अपनी बात रखें। जैसे मैंने पहले कहा कि वो उनके पास न केवल जाति बल्कि स्वास्थ्य संबधी ज्ञान का भी भंडार होता है और वो स्वास्थ्य को दलित विषय से जोड़कर भी देखती हैं। इस विषय पर रितु जी ने बहुत महत्वपूर्ण और महत्ती काम किया है। रितु जी आइए !

रितु प्रिया : धन्यवाद बागेश जी। मैंने कल जो बातें की थी मैं, आज उनको विस्तार से कहने की कोशिश करूंगी। मैं, दलित और उनके विकास की नीति और सामाजिक आंदोलनों के बारे में अपनी बात रखना चाहूंगी।

अगर हम बीसवीं शताब्दी की उपलब्धियों को देखें तो उसमें बराबरी के मूल्य की स्थापना, विज्ञान के आधार पर विकास आदि दो महत्वपूर्ण बातें हैं जिसपर आज दुनिया भर में चर्चा हो रही है। मैं, आज यह बताने का प्रयास करूंगी कि इस दौरान दलित समूहों की खुशहाली और स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ा और उससे हम क्या सीख सकते हैं आदि। मैं, इसका आधार बनाऊंगी और आपके सामने रखूंगी।

मैंने, दो दलित समूहों पर अध्ययन किए हैं। एक तो राजस्थान से आए निमार्ण समूहों, दूसरा चिन्नई के दलित बस्तियों और तीसरा जौनपुर में किया। मैंने, इन तीनों समूहों से जो सीखा वो मैं, आपके सामने रखूंगी। इससे मैंने, दो–तीन नतीजे निकाले एक, स्वास्थ्य नीति के लिए और दूसरा दलित आंदोलन के लिए। मै, कोशिश करूंगी कि मैं, दलित मुद्दे से संबधित बातों पर ज्यादा गौर करूं।

जब मैं, निमार्ण मजदूरों के साथ काम कर रही थी तो उस समूह में लगभग सबकी ये अवधारणा थी कि पिछली शताब्दी में बेहतर खुशहाली थी और दूसरी बात यह थी कि इस शताब्दी में स्वास्थ्य बद्तर हुआ है। अगर हम पूरी दुनिया का नक्शा देखें तो पूरी दुनिया में मृत्यु दर घटी है और इसके साथ–साथ भारत में दलितों की संख्या भी घटी है। दूसरा अगर हम स्वास्थ्य की नजर से देखें तो पूरी दुनिया में मनुष्य जाति की लंबाई पिछली शताब्दी की अपेक्षा बढ़ी है लेकिन दलित वर्ग की लंबाई नहीं

बढ़ी है। इन दोनों बातों को हम कैसे समझें ? और इन दोनों बातों से विकास की गणना कैसे करें? लेकिन जब वो लोग कह रहे हैं कि पिछली शताब्दी की अपेक्षा उनके स्वास्थ्य में गिरावट आई है तो उसे हम कैसे समझें? क्या उनकी समझ कम है? क्या वो यह नहीं देख रहे कि हमारी मृत्यु दर कम हो रही है और ये अपने–आप में बेहतर स्वास्थ्य का सूचक है। मुझे लगता है कि वो लोग भी ये जानते हैं कि मृत्यु दर कम हुई है और वो सब मान रहे हैं कि जितने बच्चे पहले मरते थे वो अब नहीं मर रहे हैं मगर वो जिस स्वास्थ्य की बात कर रहे हैं उसमें भी पहले के जीवित व्यक्तियों की तुलना में आज के जीवित व्यक्तियों का स्वास्थ्य बेहतर होने की अपेक्षा बद्तर हो रहा है। बाकी मनुष्यों की अपेक्षा दलितों की लंबाई न बढ़ने का क्या कारण है? ऐसा कैसे हो गया ? ऐसा कैसे हुआ जब दुनिया भर में मृत्यु दर घटने से पोषण बढ़ा है इसलिए लंबाई भी बढ़ी है। दवा–दारू की वजह से पूरी दुनिया में चाहे वो यूरोप हो या अमेरिका कहीं भी मृत्यु दर कम नहीं हुई है। 1920 के बाद कई दवाएं आई, टीकाकरण और ऐनटीबायोटिक्स के आने और पोषण के स्तर में भी सुधार होने और रहन–सहन की सुविधाओं के कारण मृत्यु दर कम हुई है। दलितों की भी मृत्यु दर कम हुई लेकिन लंबाई कम क्यों हुई ?

इसके लिए हमने विकास का जो तरीका अपनाया है उसकी सीमाओं के तौर पर पर देख सकते हैं कि उसकी इतनी उपलब्धि तो हो ही गई कि उसकी वजह से मृत्यु दर तो कम हुई ही है मगर फिर भी वो इतनी उपलब्धि नहीं कर सके कि उनकी स्थिति बेहतर हो पाए। ये एक महत्वपूर्ण उपलब्धि तो है लेकिन इसकी सीमाएं हैं। ये दो बातें हैं और मैं, इनको साथ–साथ कह रही हूं। जब हम खुशहाली कहते हैं तो खुशहाली किस बात की, आज जब हम विकास की पूरी परिभाषा में खुशहाली को देखते हैं तो उसको आर्थिक विकास के रूप में, उसको शिक्षा और स्वास्थ्य के रूप में देखते हैं। अगर हम इन तीनों स्तरों पर ही देखें तो दलित समूहों में भी विकास हुआ है क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हुई है। अगर आप आंकड़े देखें तो देश भर में इनका जमीन पर हक भी बढ़ा है, नौकरियों में भी देखें तो वैसे तो ये छोटा समूह है लेकिन इन्हें आर्थिक लाभ भी हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इन्होंने प्रगति की है और दलित शिक्षकों की संख्या भी बढ़ी है। स्वास्थ के विषय में मैंने, जैसा पहले कहा कि मृत्यु दर घटी है खुशहाली और सामाजिक प्रतिष्ठा के संदर्भ में भी उनकी स्थिति पहले से बेहतर हुई है। उनके साथ बरता जाने वाला छुआछूत भी कम हुआ है और निमार्ण मजदूरों के रूप में शहरों में आने के बाद तो इसकी संख्या में और भी अधिक कमी आयी है। शारीरिक श्रम कम होने को खुशहाली का मापदण्ड माना जाए तो उस क्षेत्र में भी पहले उन्हें जो शारीरिक श्रम करना पड़ता था उसके बदले में उन्हें दो

रोटी भी नहीं मिल पाती थी जबकि आज वे निमार्ण कार्यों से निकलकर सफेद कॉलर की नौकरियों पर भी पहुंच गए हैं। अतः वो अपने शारीरिक श्रम के अनुपात में पोषण प्राप्त कर रहे हैं। तीसरी कसौटी उपभोग की रही है। उपभोग में रोटी, कपड़ा, खाना और रहने के तरीके आते हैं जो उस संदर्भ में भी उनकी स्थिति में सुधार हुआ है। इसके अलावा सामाजिक तौर पर उनके लिए जो चीजें पहले निषेद्य थी अब वे उन चीजों का भी प्रयोग कर सकते हैं। जैसे 1920 में जयपुर जिले में रहने वाली टोंग जातियों ने एक आंदोलन चलाया, उस समय चांदी को उच्च्य जातियों का सूचक माना जाता था लेकिन पिछड़ी जाति के लोगों को उसका प्रयोग करने की अनुमति नहीं थी लेकिन उस आंदोलन के बाद नीची जाति की औरतें भी नाक में चांदी पहनने लगीं। आज वे टैरीकोट के कपड़े भी पहन सकती हैं। पहले उनकी शादियों में उन्हें लड्डू खाना और बनाना निषेद्य था लेकिन आज वो सब निषेद्य भी खत्म हो गए हैं।

पहले तो हमें बीमार होने पर वैद्यों के लिए शहर जाना पड़ता था लेकिन आज तो डाक्टर हमारे घर में ही आ रहे हैं, वे हमारे घरों में ही स्वास्थ्य सुविधाएं जैसे टीका आदि पहुंचा रहे हैं जो कि एक उपलब्धि की बात है। और जब हम पूरी खुशहाली को परिभाषित करते समय इन सब चीजों को ध्यान में रख रहे हैं तो फिर जब लगभग सभी चीजों में सुधार हुआ है तो दलितों की लंबाई में कमी क्यों आ रही है ? मैंने देखा कि 20—40 साल की उम्र के पुरुषों की लंबाई 40—60 साल की उम्र के पुरुषों की अपेक्षा 3 इंच कम है। तो इस स्थित को हम कैसे देखें कि स्वास्थ्य घटा है या पोषण घटा है ?

इसको समझने के लिए मैंने, विकास प्रक्रिया को ध्यान में रखा। हमने विकास की प्रक्रिया के लिए जो मापदंड बनाए उसमें हरित क्रांति को भी शामिल किया। देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान में भी हरित क्रांति हुई यहां तक कि पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी हरित क्रांति को अपनाया गया। इससे 1920 में चमार के रूप में जो बैरवा समाज था और हरित क्रांति होने के बाद उन्हें चमड़े का काम मिलना बंद हो गया। इसलिए उन्होंने शहरों में पलायन करना और निमार्ण मजदूर के रूप में काम करना शुरू किया। जिससे उनका एक स्वतंत्र आर्थिक आधार बना। जिससे वे गांव में जातियों की पकड़ से निकलकर शहरों में आने लगे। और वहां आकर उन्हें स्वतंत्र रूप से अंबेडकर द्वारा किए गए विकास कार्यों के बारे में सुनने को मिला। उससे प्रेरणा पाकर उन्होंने वापस अपने गांव में लौटकर आंदोलन करना शुरू किया। कुछ लोगों ने वापस आकर धार्मिक गुरूओं का रूप धारण किया। कबीर पंथ की तरह कपड़े पहनना और उनकी तरह की बातें करके उन्होंने कबीर पंथ को मजबूत बनाया। इसके तहत

उन्होंने दो–तीन प्रचार किए। सबसे पहले उन्होंने अपने काम को बदलने की बात की। उनके अनुसार हमें अपना गंदा काम छोड़कर अच्छा काम करना चाहिए और उसके साथ–साथ यह बात भी हुई कि जो लोग अब भी गंदा काम करेंगे उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाएगा। इसके लिए सबसे पहले चमड़े का काम छोड़ने की बात की गई। दूसरा उनका नाम बदलकर उन्हें बैरवा नाम दिया गया। तीसरा धार्मिक प्रचार के साथ–साथ नैतिकता को भी प्रचारित किया गया कि आगे बढ़ने के लिए नैतिक मूल्य कितने जरूरी हैं। इसके अलावा उन्होंने सफाई रखो और पढ़ाई करो की बातें की और इन सब मूल्यों के साथ उन्होंने ऊपर उठने की बात भी की उनकी इस बात में सांस्कृतिक रूप था, इसमें उनके साथ वो सब लोग भी जुड़े जो निरक्षर थे और आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं थे। उन्होंने सम्पूर्ण रूप से एक आंदोलन चलाया।

इस आंदोलन के कारण जब 1950 में आरक्षण की नीति आयी तो उस समय निचली जातियों का एक पूरा समूह तैयार था जो आरक्षण के माध्यम से नौकरियां पाने का लाभ उठा सकता था। इससे पूरे समूह का उत्थान हुआ। 1960 के बाद के समय में तो उन लोगों ने जमीनें भी खरीदीं और उनके चमार वाला रूप अब खेतीहर का हो गया। कुछ लोग खेती में निमार्ण मजदूर हैं लेकिन उनका रूप भी किसान का ही है। वो किसी मजबूरी के चलते इस तरह से काम कर रहे हैं। लेकिन अधिकतर लोगों ने अपने खुद के खेत खरीदकर खेती करना शुरू किया और उत्पादन में वृद्धि हुई। उत्पादन बढ़ने से उनका खाने का चलन भी बढ़ा। पहले जहां वो मूल रूप से जौ–चने की रोटी और छांच जैसा खाना खाते थे वहीं अब हरित क्रांति आने के बाद वे गेहूं की रोटी और हरी मिर्च खाने लगे। क्योंकि उस समय उस इलाके में बढ़ते पलायन के चलते वन कटने लगे जिससे खेती योग्य जमीनें बढ़ गई और उन्हें खेती के लिए जमीनें मिलने लगीं। इस प्रक्रिया से उनका उत्पादन तो बढ़ा ही है लेकिन साथ ही साथ जंगलों के घटने के कारण बारिश में भी कमी होने लगी जिससे उनकी जमीन की उर्वरता कम होने लगी। उन्होंने दोनों ही बातें लिखी कि हमें विकास के कारण आर्थिक लाभ होने के साथ–साथ नुकसान भी हुआ। उनका जो खान–पान बदला अर्थात पहले वो जिस जौ–जने को खाते थे अब उसकी अपेक्षा गेहूं को खाने लगे हैं और गेहूं खाने से उनकी पोषकता कम हो गई है। क्योंकि मौजूदा खाद्य अनाजों में गेहूं सबसे कम पोषकता वाला अनाज है और जौ–चने से मिलकर जितनी पौषकता मिल सकती थी वो केवल मात्र गेहूं से नहीं मिल सकती थी। अब उन लोगों के हाथों में छांच भी नहीं है क्योंकि गांव में पशुओं की कमी हो गई है और जिस जजमानी पद्धति से उन्हें मुफ्त छांच मिल जाया करती थी अब वो भी बंद हो गया है। तो इस प्रकार अब जिस तरह का अनाज उगाया जाने लगा था उससे कम मात्रा में पोषक तत्व

मिलने लगे जिससे उनके स्वास्थ्य में कमी आने लगी। अब वो जिस हरित क्रांति वाली खेती को कर रहे हैं उससे वे केवल तीन उपज ही पा रहे हैं, इसके अलावा वो पहले जितनी मेहनत करते थे आज उससे कई ज्यादा मेहनत कर रहे हैं या यूं कहें कि लगभग तिगुनी मेहनत कर रहे हैं और उसकी तुलना में उनका पोषण कम हो गया है। अब प्रश्न यह है कि जब पोषण के कम होने के कारण उनका कद तो कम हुआ है लेकिन वहीं उनकी मृत्यु दर कम कैसे हो गई है ? क्योंकि पोषण कम होने से तो मृत्यु दर बढ़नी चाहिए जबकि वो कम हो रही है। वहीं भुखमरी भी कम हुई है। अगर इस बात को स्पष्ट किया जाए तो गावों से शहरों में जाकर निमार्ण मजदूरी का काम करने से वे भुखमरी से तो बच गए हैं और उससे भुखमरी से ऊपर उठ गए हैं लेकिन उनका कुपोषण वहीं का वहीं है।

मैंने अभी 2004 के आस–पास दूसरा अध्ययन भी किया। इसके लिए हमने सबसे पिछड़े राज्य उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाके का एक समूह लिया और दूसरा हमने तमिलनाडु जैसे विकसित राज्य को लिया। इस प्रकार हमने जौनपुर के दलित समूह और चैन्नई शहर के दलित समूह को लिया। वे दोनों ही समूह श्रम करते हैं लेकिन दोनों अलग परिप्रेक्ष्य में काम करते हैं। अब हमने इन दोनों समूहों के स्वास्थ्य को देखा तो वो तो स्पष्ट सी बात थी कि उत्तर प्रदेश के गांव में मृत्यु दर ज्यादा होनी ही थी। क्योंकि वे समूह विकास तथा अन्य किसी भी रूप में चैन्नई से पीछे था लेकिन हैरानी की बात थी कि चिन्नई के उस समूह की मृत्यु दर, उत्तर प्रदेश की अपेक्षा ज्यादा थी। जबकि पूरे तमिलनाडु की मृत्यु दर उत्तर प्रदेश की अपेक्षा बहुत कम है। जबकि जौनपुर, उत्तर प्रदेश का कोई अगड़ा जिला नहीं है वहां इतना अधिक औद्योगीकरण भी नहीं हुआ है लेकिन फिर भी ऐसा कैसे हुआ, तो इस बात को कैसे समझा जाए? उत्तर प्रदेश में अभी भी बाल मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर ऊँची होने के साथ–साथ संक्रामक रोग और कुपोषण की बहुतायत है। वहीं तामिलनाडु के समूह में बाल मृत्यु लगभग न के बराबर थी मातृ मृत्यु पिछले दो साल में एक भी नहीं हुई थी और संक्रामक रोग से भी मृत्यु बहुत कम हुई थी तो फिर मुत्यु के क्या कारण थे ? उत्तर प्रदेश में शराबखोरी, और दूसरा निमार्ण मजदूरी का काम करने के दौरान उन्हें चोटें भी लगती रहती थीं और उससे भी उनकी मृत्यु होती थी और तीसरा आत्महत्या के कारण भी उनकी मृत्यु दर ऊंची थी। इन सब बातों से विकास के तरीकों को कैसे समझा जाए? विकास करने में बच्चों और महिलाओं की मृत्यु तो कम हुई पर पुरूषों की बढ़ गई और वहीं पूरे परिवार की खुशहाली वहीं की वहीं है। तो इसको हम कैसे समझें ?

मुझे लगता है कि यह आगे के लिए पूरे विकास पर ही प्रश्नचिन्ह लगाता है। मगर साथ में दलित समूह भी अपने आगे के लिए क्या मापदण्ड रखें कि वो किस तरफ बढ़ना चाहते हैं? मैंने इस विषय पर बहुत ज्यादा नहीं पढ़ा लेकिन जितना सुना वो भी इसी तरह के समूहों में अंबेडकर जी को सुना, उनके अनुसार शहरीकरण और औद्योगीकरण से दलित समूह इस पूरी व्यवस्था से बाहर निकल सकते हैं। लेकिन मेरे इस सर्वे से यह बात स्पष्ट नहीं हो पायी। इसके लिए हमें अपने विकास के मॉडल को भी देखने की जरूरत है। दूसरा हमने देखा कि जौनपुर के समूह में और तमिलनाडु के समूह में जौनपुर का इलाका अपराध के लिए प्रसिद्ध है। जौनपुर, आजमगढ़ और नेपाल से जुड़ा है और वहां से तस्करी, मार–काट का भी एक ताना–बाना है उसके बावजूद भी वहां के दलित समूह में शराबखोरी बिल्कुल नहीं थी। हमने इसे समझने की कोशिश की, कि ऐसा क्यों हो सकता है? दूसरा वहां जिस तरह के आत्मसम्मान और स्वावलंबन का स्पष्ट रूप था वो चैन्नई के दलितों में नहीं था। और उससे हमने यह समझा कि यह वहां होने वाले राजनैतिक आंदोलनों के प्रभाव के कारण हुआ है।

तमिलनाडु में दलितों के लिए आंदोलन तो हुए लेकिन वो लोग दलित शब्द को ही नहीं जानते थे। क्योंकि वहां पर जाति के रूप में जो आंदोलन हुआ वो मध्यम जातियों का हुआ, दलित आंदोलन के रूप में नहीं हुआ तो दलित समूहों का अपना कोई आंदोलन वहां नहीं बना जबकि यहां मायावाती जी और काशीराम जी आदि का समूह भी रहा जिससे जबरदस्त राजनैतिक बल बहुत मिलता। वहां के लोगों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वे राजनैतिक रूप से समर्थ हैं। जैसे वहां की लड़कियां जबकि यहाँ मायावाती और काशीराम आदि का जो भी समूह रहा हो मगर उससे एक जबरदस्त राजनैतिक बल मिलता है जो कि वहां के लोगों को प्रत्यक्ष रूप में देखने से स्पष्ट भी हो जाता है। वहां की लड़कियां साइकिल पर चढकर स्कूल जा रही हैं, यहां तक कि दलितों की पूरी शारीरिक भाषा में ही साफ परिवर्तन दिखाई देता है। मुझे ये लगता है कि दलितों में आये इस बदलाव और आत्मविश्वास से ही वो शराब से दूर हो गए हैं। उन्हें आगे बढ़ने का विश्वास आ गया है उन्हें लगता है कि यदि वो आगे बढ़ें तो उन्हें एक बेहतर भविष्य मिलेगा। लेकिन चेन्नई के दलितों में ऐसी उम्मीद बिल्कुल नहीं है। उन्हें अन्य चीजों की अपेक्षा गैर बराबरी ज्यादा दिखाई दे रही है। वो अपने शहरों और यहां तक कि अपने पड़ोस में भी देख रहे हैं कि कई लोगों के महल खड़े हैं, वे कुछ लोगों को सभी किस्म के ऐशो–आराम को भोगते हुए देखते हैं स्वंय वो भी ऐसा ही चाहते हैं लेकिन वो वहां तक पहुंच नहीं पा रहे हैं। उनकी लड़कियां बी.ए. पढ़ी हैं लेकिन वो जानती हैं कि वो इससे आगे नहीं बढ़ सकती हैं। वहां दहेज प्रथा बहुत व्याप्त रूप में मौजूद हो गई है, तो अगर लोगों की ज्यादा कमाई हो भी रही है

तो वह दहेज के रूप में जा रही है। महिलाएं पढ़ तो रही हैं लेकिन वहां महिलाओं का सशक्तीकरण होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है। तमिलनाडु की अपेक्षा मायावती के रूप में उत्तर प्रदेश का सशक्तीकरण ज्यादा दिखाई दे रहा है। तो मुझे लगता है कि इस फर्क के पीछे कहीं न कहीं राजनीतिक स्थितियां भी मौजूद हैं। क्योंकि पिछले दिनों तमिलनाडु में बहुत आत्महत्याएं हुईं लेकिन उत्तर प्रदेश के जौनपुर शहर में उतनी आत्महत्याएं नहीं हुई। इसी तरह जौनपुर में शराबखोरी भी कम हुई तो इससे स्पष्ट है कि इसके पीछे कहीं न कहीं राजनीतिक कारण भी मौजूद हैं।

इस सब से हमने विकास की नीतियों के संबध में जो निष्कर्ष निकाला और इसके लिए जौनपुर के गावों को देखा कि वहां दो तरह के दलित परिवार मौजूद हैं, एक तो वो अब भी गरीब हैं और इनमें ज्यादातर वो लोग शामिल हैं जो शहर नहीं जा सकते और दूसरी और वो परिवार हैं जो काम की तलाश में दल्ली और बम्बई जा रहे हैं, उन्होंने वहां पर अपने–आपको स्थापित किया और गांव में रहने वाले अपने परिवार के लिए पैसा भी भेज रहे हैं। जौनपुर के लोग खेत श्रमिकों के काम में लगे हैं जबकि वहीं तमिलनाडु के लोग ईंट भट्टे जैसे खतरनाक कामों से जुड़े हुए हैं। चेन्नई शहर में उपभोक्तावाद को खुशी में नहीं बल्कि मजबूरी में अपनाया जा रहा है। वहां सामूहिकता की ललक इतनी अधिक है कि गांव से शहर गया व्यक्ति भी वापिस गांव आने के बारे में सोच रहा है और गांव में मौजूद उसके बीमार रिश्तेदार को इलाज कैसे मिले इसी के बारे में सोच रहा है। इस प्रकार पर्यावरणीय और सामाजिक परिवेश का आपस में जुड़ाव भी विकास से जुड़ा हुआ है। हमें सोचना चाहिए कि यदि विकास आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ है तो इस व्यवस्था में सुधार करना राजतंत्र और आर्थिक व्यवस्था की जिम्मेदारी है। हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि चैन्नई को उत्तर प्रदेश की तरह किस तरह बनाया जाए ? हम आज जिस विकास की बात कर रहे हैं उसे गांव के स्तर पर जोड़ने के बारे में भी सोचना होगा। इस सब बातों से मुझे यही बात समझ में आई कि दैनिक जीवन की जरूरतों को पूरा किए बगैर समाज, विकास की राह पर आगे नहीं बढ़ सकता और अगर गांव स्तर पर इन जरूरतों को पूरा कर दिया जाए तो अपने–आप ही इतने सशक्कत हो जाएंगे कि बाकी समस्याओं का सामना करने में समर्थ हो जाएंगे। धन्यवाद !

बागेश संचालक – धन्यवाद रितु जी। अभी आपने दो बहुत ही गंभीर और शैक्षिक लोगों की बातें सुनी। खासकर रितु जी विकास और पहचान के उभरते हुए द्वदों को विस्तार से आपके सामने रखने की कोशिश की इससे हम जैसे राजनैतिक कार्यकर्ता को इन बातों पर ध्यान देने की जरूरत है।

उन्होंने विकास की बात की, कि आज विकास किस गलत दिशा में जा रहा है। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस तरह की परिस्थितियों में हमें किस तरह के राजनैतिक दृष्टिकोण से सोचने की आवश्यकता है। रितु जी ने बहुत ही गंभीर और वाजिब प्रश्न उठाए और हम जैसे राजनैतिक कार्यकर्ताओं को लगातार इस तरह के आत्म मंथन की आवश्यकता होती है और चिन्ना जी और रितु जी जैसे शैक्षिक लोगों की ही जिम्मेदारी होती है कि वो इस तरह के सवाल उठाकर हमें आगे बढ़ने की एक उपयुक्त दिशा दें।

अब मैं, विजय जी को बुलाने जा रहा हूं कि वो दो शैक्षिक लोगों की बातों पर अपने राजनैतिक विचार प्रस्तुत करें। आइए विजय प्रताप जी !

विजय प्रतापः— इस सत्र में कई लोगों ने जाति के विषय में समाज के अपने अनुभवों पर बात की। यहां समता मूलक समाज के सपने को साकार करने के बारे में बात की। आप लोगों ने इस विषय पर इतने विद्धवतापूर्वक, दार्शनिक, समाजशास्त्रीय तथा ऐतिहासिक सवाल उठाए कि चिन्नाराव जी अपने विषय को तो जैसे भूल ही गए और आप लोगों की ही बातों का जवाब देते रहे। आप लोगों ने आज के सत्र में मेरी प्रतिक्रिया जाननी चाही। लेकिन मैं अफसोस के साथ कहना चाहता हूं कि समय आभाव के कारण मैं, कल हुई बातों पर ही वापस आना चाहूंगा।

कल रघुपति जी ने अपनी बात रखी। वे जन्मना रूप से ठाकुर हैं और आज भी कैबिनेट में मौजूद मंत्री, स्टडी सर्कस में हमेशा आते थे और इन्हीं के मार्गदर्शन में वो समाजवादी योजना सभा के सदस्य बने। इनके परिवार में ठाकुर लोग रोज आते हैं और इसके बावजूद भी इनके खिलाफ पूरा ठाकुर स्कूल बंद हो जाता है। ऐसा क्यों होता है इसके बारे में एक पूरी कहानी ही है, पर शायद कल समय आभाव के कारण इन्होंने अपने किस्से नहीं बताए कि किस तरह से इनकी अन्तः धार्मिक शादी हुई। इन्होंने अपने इलाके के सबसे मजबूत ठाकुर के खिलाफ 1977 में तब अभियान चलाया जब वो राज में थे। ये कोई एकमात्र घटना नहीं है जिसके कारण पूरे ठाकुर इनके खिलाफ लामबंद हुए लेकिन, मैंने ये उदाहरण इसलिए दिया कि राजनीति जिसे इतना अधिक सशक्त होना चाहिए वह भी निजी कारणों से अपनी शक्ति का दुरूपयोग करती जा रही है। उन्होंने किसी भी बात की परवाह किए बिना बेझिझक होकर अपनी बात की।

एक अन्य भाषण में मार्क्सवादी मुहावरे और भाषा का इस्तेमाल हुआ था। यह सुनकर मेरे मन में बहुत गहरा संतोष था कि कम से कम हम सभी लोगों ने विषमता की बुनियाद समझे जाने वाले आर्थिक शोषण, ढ़ांचे, व्यवस्था और अंतसामती व्यवस्था के खिलाफ आवाज तो उठाई है। वेद उनियाल जी उन ग्यारह लोगों की टीम में थे जिन्होंने अभी हाल ही में देश के फाजीवादी दलित विरोधी और ब्राह्मणवादी पार्टी के साथ होने का फैसला किया। सुबह मैंने उनसे आग्रह किया था कि आप राजनीति में होने वाले खेल के बारे में हमें बताएं कि ये खेल कैसे होते हैं कि जिस आंदोलन में आपने अपनी जिंदगी के कई साल दिए जैसे जार्ज फर्नांडिस ने लगभग पूरी जिंदगी एक आंदोलन में दी और आज आप उसके साथ सत्ता भोग रहे हैं। हम इस बारे में आपके दोस्तों के तर्क जानना चाहते हैं। उन लोगों ने मार्क्सवाद के ब्राह्मणवाद का बहुत प्रयोग किया है। उन्होंने कहा है कि जो लोग शेर तथा संस्मरण सुनाकर, ब्राह्मणवाद की जिन विषमताओं और शोषण के ढांचे को बचाते हैं, हमें उन लोगों के बारे में अधिक गहराई से जानना चाहिए।

संविधान बनने से पहले जो लोकतंत्र था उसमें जमींदारों को ही वोट देने का अधिकार था, आप उसे क्या कहेंगे कि वो लोकतंत्र था कि नहीं था? लेकिन नेहरू जी भी उन्हीं लोगों मे से चुनकर आए थे लेकिन हमें समझना चाहिए कि ब्रिटेन में हाउस ऑफ लार्ड की ताकत कम होने के बाद ही वोटर की ताकत बढ़ने लगी और समाज में राजतंत्र में मौजूद सत्ता के केन्द्र स्वतंत्र कर दिए गए। अब ग्लोबलाइजेशन भी इसी तरह का काम कर रहा है, वह पूरी दुनिया को एक बाजार की तरह प्रयोग करना चाहता है। इससे पहले राजतंत्र के दौरान भी पूरी दुनिया को मार्केट की तरह प्रयोग किया गया। उस समय समुदाय की कोई बात नहीं थी, पूरी ताकत राज्य ने ही ले ली थी और उस समय आप राज्य को अपनी जिम्मेवारी निभाने की बात कर रहे थे और उसके बाद आप समुदाय की बात करने लगे। इस तरह की बातें तो सर्वोदयी ब्राह्मवाद के संबध में भ्रम की स्थिति पैदा कर देती है। सत्ता के बारे में सर्वोदियों की समझ कुछ अलग है, गांधी जैसे आदमी का चेला होने के बाद भी वे आज सामाजिक सत्ता, समाज तथा सामुदायिकता की बात करते हैं और अगर आप ढूडने निकलें तो आपको एक भी गांधीवादी व्यक्ति नहीं मिल सकता और उनके नेतृत्व में कोई एक भी दलित मौजूद नहीं होगा। और गैर गांधीवादी लोग ये कह सकते हैं कि उनके विचार में भी ऐसी ही सीमा है। इस संबध में मैं, आपको बताना चाहूंगा कि एक बलप्रिय नामक सज्जन थे उनका अभी दो–तीन साल पहले ही देहान्त हुआ है। वे मरते दम तक कम्यूनिस्टों आंदोलनों से जुड़े रहे। वे गांधी जी की बातों को बहुत ध्यान से सुनते थे। और गांधी जी के बारे में जैसे अभी चिन्नाराव जी ने इस नजरिए से कहा कि वे स्वतंत्र दलित

आंदोलनों को समेटने की साजिश कर रहे थे। लेकिन वो साजिश नहीं थी। गांधी जी 'अपर कास्ट' और शेष समाज में समता का भाव लाने का प्रयास कर रहे थे।

आपने जिन दो–तीन सालों की बात की, ये सही है कि उसी दौरान उन्होंने अपना सबसे ज्यादा समय इसी सवाल पर दिया ओर पुलिस रिकार्ड में उनके भाषण एक किताब के रूप में सुरक्षित रखे गए हैं उसमें उन्होंने अपना परिचय भी दिया है। उस किताब तथा उसका परिचय पढ़ने पर आपको पता चल जाएगा कि किस तरह मार्क्सवाद ने हिन्दुस्तान में ब्राह्मणवाद के कवच के रूप में काम किया है। खुद मैं, एक सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते यह कह सकता हूं कि हमारे आंदोलन ने जब भी दलित पिछड़े का सवाल उठाया तो काम्यूनिस्ट पार्टी ने हमारे खिलाफ लगातार क्रांति की। उससे जुड़े संगठनों ने भी हमारे खिलाफ यह कहकर क्रांति की कि, हम मजदूर आंदोलन को तोड़ना चाहते हैं।

और इसी का नतीजा था कि जब 90 के बाद जब लोकतंत्र के वोट के तर्क से पिछड़ों की ताकत आई मंडल को मानना पड़ा वी.पी. सिंह को आप मंडल को कितना जानते–मानते हैं इस बहस में जाने का अभी मौका नहीं है जब मानना पड़ा उनको अपने अभिजनों से देवी लालजी से सत्ता संघर्ष में उसके नतीजे के तौर पर अगर कॉम्यूनिस्टों ने तैयारी की होती तो हर जगह के जिस तरह से कोई बिहार इकाई कोप हो गई और दो नंबर की लालू प्रसाद यादव की पार्टी की तरह काम करने लगी और अगड़े और पिछड़े का जैसे भेद आया वैसा नहीं आया।

मेरे कॅम्यूनिस्ट साथियों ने मुझसे पूछा कि रामविलास पासवान, मुलायम सिंह, लालू प्रसाद यादव आदि लोगों के साथ क्या हुआ ? ऐसे लगता है कि वो तो काफूर ही हो गए। उनमें से एक हिस्सा बीजेपी के साथ जुड़ गया। हमें इस सवाल पर सोचना चाहिए कि आखिर ऐसा कैसे हुआ? लेकिन गांधी जी के बाद इस सवाल को केवल समाजवादी दल ने ही उठाया और कहा कि जाति तोड़ने के लिए विशेष अवसर के सिद्धांत का पालन कीजिए और डॉ. राम मनोहर लोहिया ने अपने भाषण आरक्षण या विशेष अवसर देने के नुकसान गिनाए और उन्होंने कहा कि यादव जाति के लोग पिछड़ी जाति के लोगों को भूल जाएंगे। लेकिन लोहिया द्वारा दिया गया सूत्र तमाम लोगों के लिए था, उसमें तमाम औरतें, दस्तकार, मुसलमान, पिछड़ी जाति के मुसलमान और सभी दस्तकार, किसान जातियां तथा आदिवासी शामिल थे। ये जातियां 85 प्रतिशत की संख्या में मौजूद थी और वे लोग व्यवस्था में 60 प्रतिशत आरक्षण की मांग कर रहे थे।

इससे अगड़ी जाति की औरतों को भी आरक्षण मिलेगा और इससे अस्तित्वावाद संभव नहीं हो पाएगा। उन्होंने सोचा था कि तब मायावती, रामविलास पासवान ब्राह्मणवादियों से नहीं मिल पाएंगे। लेकिन उन लोगों को वोट मिले क्योंकि दलितों के पास अपने कोई विकल्प ही नहीं थे। रघुपति को ठाकुरों के खिलाफ वोट मिलना ही था। लेकिन जिस समय मंडल लागू हो रहा था उस समय लालू प्रसाद यादव ने डंके की चोट पर कहा कि हमें विकास नहीं करना है। उन्होंने कहा कि इससे लाला लोग (कायस्थ) पैसा खा जाते हैं। सड़क और ऐसे ही सभी कामों का पैसा वहीं जाना है। खादी कमीशन आयोग के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र मोहन ने जनता के काम के लिए कई चैक भेजे लेकिन, वो सभी चैक वापस आ गए। उन्होंने लालू प्रसाद यादव से पूछा कि तुम्हारा पिछड़ा राज्य है तो तुम इस पैसे को अपने राज्य में इस्तेमाल क्यों नहीं कर रहे हो? वे बोले इस पैसे को लाला लोग खा जाएंगे। तो अपर क्लास ने बहुत ही नियोजित ढ़ग से उनके लिए गुस्सा पैदा किया और गंदी भाषा का प्रयोग किया। इस दोष से श्री वी.पी. सिंह भी पूरी तरह से मुक्त नहीं हो पाए। तो समाज परिवर्तन के बदले समाजवाद के एजेंडे तथा जाति तोड़ों के एजेंडे के माध्यम से लड़ाई आगे करने की बजाय तो ऐसा कहा जाता है कि ऐतिहासिक भूमिका एक बार ही लिखी जाती है। लेनिन की क्रांति के बाद कोई स्टालिन पैदा हो ही जाता है। अगर कोई नई ताकत पैदा न हो तो पहले किया हुआ काम भी बेकार हो जाता है। अगर पहले वाले राजनेताओं के अनुपात में कोई नेतृत्व पैदा हुआ होता तो, जाति तोड़ो की लड़ाई इस हद तक आगे नहीं बढ़ती। उच्च जातियों में ये विस्तार नहीं होता लेकिन दलित की अलग पहचान जरूर बन जाती। जो आज से अधिक स्थिर, सुघड़ और उसका एक परिभाषित खूबसूरत घेरा होता लेकिन तब बाकी समाज को समता के लिए प्रोत्साहित करने की मजबूरी नहीं होती।

इस प्रकार समाजवादी आंदोलन की नीतियों से एक ऐतिहासिक काम सम्पन्न हो गया। अब पुराना समाजवादी आंदोलन समाप्त हो गया। अगर हमारे नौजवान साथी इस भम्र में रहेंगे कि पुराने समाजवादी ही नई किताब या क्रांति के अगवा होंगे तो वे भूल कर रहे हैं। अगर वे जयप्रकाश नारायण जी की कही हुई यह बात याद नहीं रखेंगे कि 'अब हमारी भूमिका समाप्त हो गई है' तो वो खामियाजा भुगतेंगे। नई क्रांति अपने संगठन, दर्शन तथा अपने तत्व दर्शन का सिद्धांत खुद लिखती है। अब जो नई लोकतांत्रिक, समग्र लोकतांत्रिक या स्वराज की क्रांति होगी जिसमें औरतों की आजादी, पर्यावरण से हमारे रिशते तथा नए ढ़ग से विकास का सवाल आदि बातों को तय करना होगा तो उसे नए लोग ही तय करेंगे। नई क्रांति को पुरानी किताबों, रघुपति या अख्तर

हुसैन की कुर्बानियों के अनुसार तय नहीं किया जा सकता। मैं इन लोगों के अनुभव और इनकी कुर्बानियों को कम नहीं मानता, लेकिन आज हमें इन लोगों तथा इन जैसे अनेक लोगों को अपने बराबर के साथी मानते हुए जाति तोड़ो विकास की परिभाषा तथा प्राकृतिक संसाधनों (जल, जंगल,जमीन) के विषय में तमाम सवालों पर अपने को नया समतावादी दर्शन, लोकतांत्रिक दर्शन तथा स्वराज दर्शन आदि सवालों पर नए सिरे से सोचना होगा।

आज हमारी क्रांति को वाल्मीकी, विश्वामित्र या संघमित्र जैसे नए प्रतीक स्थापित करने हैं। वे वाल्मीकी, विश्वामित्र या संघमित्र हो सकते हैं और पुरानी किताबों, नायकों या पुराने आंदोलनों की माला जपने से ऐसा संभव नहीं हो पाएगा। फिर चाहे वो गांधी की माला हो या अंबेडकर की। हम लोग मूर्ति भंजक परंपरा पर विश्वास करते हैं। अभी कल ही नागर साहब ने लोहिया जी को श्रद्धांजलि दी। लेकिन आमतौर से हमारी बैठकों में लोहिया के जन्मदिन पर लोहिया की तस्वीर लगाना कोई जरूरी नहीं है। हमारे जो साथी उनकी मूर्ति लगाने पर विश्वास करते हैं, हम उन बैठकों में कम ही जाते हैं। इन सब बातों से मैं, यही कहना चाहता हूं कि आज की वस्तुस्थिति के विषय में बात किए बगैर जाति तोड़ो के सवाल पर बात नहीं हो सकती।

इस बारे में हमारी पिछली बैठक में भी बहस हुई थी। जिसमें गोपाल भाई ने कहा था कि जाति तभी टूटेगी जब विभिन्न जातियों के लोग मिलकर काम करेंगे। यह बात अपने–आप में ठीक है, लेकिन ऐसा करते समय वे एक समाजशास्त्रीय गलती करते हैं। मैं, इस बारे में किशन पटनायक जी से भी बहस करता रहता था वे, संपादकीय लिखा करते थे लेकिन मुझे याद है कि उन्होंने अपने लेखन के दौरान कभी–भी दक्षिण पंथियों की आलोचना नहीं की। वे मधुलिमेय, कर्पूरी ठाकुर, सुरेन्द्र मोहन, एस.एन.जोशी तथा जॉर्ज फर्नांडिस के कार्यों के बारे में लिखते थे और मैं, उनसे कहा करता था कि कोई भी कार्यकर्ता किसी आंदोलन से सिर्फ इसलिए नहीं जुड़ा होता है कि उसके विचार अच्छे हैं बल्कि वह व्यक्तियों की भावना तथा संगठन के आस्था के स्तर से भी जुड़ा होता है। और आप केवल अपनी नैतिक ऊर्जा के हिसाब से अपना संपादकीय लिख देते हैं। जिसका अर्थ है कि आप समाज में एक ऐसा नैतिक रूप चाहते हैं जो सभी लोगों से अधिक ऊर्जावान हो। जबकि यह एक लोकतांत्रिक तरीका नहीं है। एक औसत समाजवादी कार्यकर्ता या औसत राजनीतिक कार्यकर्ता में जितनी आदत तथा नैतिकता की ऊर्जा है, आप उसी ऊर्जा के आधार पर उसकी आलोचना या टीका क्यों नहीं करते हैं? इसी तरह में हमारे उभरते हुए कार्यकर्ता किशन पटनायक तथा गोपाल जी से कहना चाहता हूं कि दलित सवाल पर बात करते समय वे अपनी उन पीड़ाओं तथा तकलीफों

की बात भी करें जिनका सामना करते हुए उन्होंने आज अपना आत्मगौरव तथा स्वाभिमान प्राप्त कर लिया है। उन्हें इस सवाल पर भी बोलना चाहिए कि क्यों एक दलित को औरतों तथा दलित औरतों के साथ होने वाले बलात्कार तथा उस समाज के साथ होने वाले अत्याचारों पर बात करने के लिए बौद्धिक तथा पत्रकारिता की शक्ति की आवश्यकता होती है। दलितों का कई क्षेत्रों में अत्याचार तथा शोषण होता है लेकिन बाकी समाज उसके बारे में बात ही नहीं करना चाहता। क्या यह सोचनीय बात नहीं है कि दलित की गैरमौजूदगी में दलित अत्याचारों के बारे में बात ही नहीं होती है।

मैं, चाहता हूं कि आज सभी दलित इस हद तक अपने गौरव और सम्मान को पाएं कि, आप राजनैतिक प्रक्रिया में न आ पाने वाले तथा यातना भुगत रहे दलितों को आगे लाने के बारे में तथा उनके बारे में बात करने की सोचें। आपको इस बात पर विचार करना है कि आपको अपने कार्यक्षेत्र रहे 4 जिलों से बाहर के दलित कार्यकर्ताओं को अपने काम में कैसे शामिल करना है? गैर दलित को शिक्षित करने, ऊंचे स्तर के कार्यकर्ता की कसौटियां तय करना आदि बातों पर विचार करना चाहिए। मुझे लगता है कि हम सब पर यह बात लागू होती है कि हम साल दो साल तक अपने–आपको कार्यकर्ता तथा नेता मानना छोड़ दें, अपने एजेंडे पर साल दो साल सोचना बंद कर दें और हिन्दुस्तान के सबसे औसत गृहस्थ व्यक्ति, फिर चाहे वो किसी भी समाज तथा तबके से हो लेकिन सबसे नीचे की सीढ़ी पर बैठे व्यक्ति के बारे में सोचना चाहिए कि आज वह क्या कर रहा है? वह पूरे समाज के बारे में कैसे सोचे तथा उसके लिए वह क्या योगदान दे सकता है? और खुद हम उसका सहयोग कैसे ले सकते हैं? इसके लिए एक वैचारिक ढ़ांचे, संगठन तथा संगठनों और चौपालों के बारे में सोचना। हमें अपनी बैठक का आरूप ऐसा करना होगा जिसपर वे सभी लोग बात कर सकें। और वह बात केवल किताबी न होकर वास्तविक होनी चाहिए। हमें इन सब बातों को सोचते हुए एन. जी.ओ. के नेतृत्व वाले आंदोलन समूहों, पार्टियों, अपने को स्वतंत्र क्रांतिकारी मानने वालों के समूह तथा आम साधारण जनता जिसे हम लालची, कायर तथा अपनी नौकरी के लिए सिफारिश करने वाले भी मानते हैं, उन सभी की बिखरी हुई नैतिक ऊर्जा को जोड़ने के बाद यदि हम आर.एस.एस. को भी जोड़ दें और इस संगठन में आम दलित, बहुजन की भागीदारी तथा उसके नेतृत्व निमार्ण को शामिल करते हुए लोकतंत्र के अनुरूप दल और संगठन बनाने के बारे में बात करनी चाहिए।

इस तरह से बने संगठनों द्वारा हम देश में मौजूद सभी समस्याओं पर आम इंसान की सोच के अनुसार सोच सकते हैं। जैसे विशेष आर्थिक क्षेत्र वाली समस्या को ही देख लीजिए इस विषय पर कुछ करने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि आखिर इस विषय को इतनी वैद्यता क्यों दी जा रही है? और हमारा राजनैतिक नेतृत्व ऐसा क्यों

होने दे रहा है? इस विषय पर एक षड़यंत्र की तरह क्यों काम किया जा रहा है? लोक मानस के ऐसे कौन से सपने हैं जिनके कारण अमेरिका के मॉडलानुसार बने विशेष आर्थिक क्षेत्र की नकल करने की बात की जाती है? इस सवालों के जवाब हम तभी जान सकते हैं जब हम इस समस्या को आम इंसान के विचार से सोचेंगे और समझेंगे। साधारण इंसान भी अपने–अपने तरीके से साम्राज्यवाद का विरोध करता है हमें यह देखना है कि इन सवालों तथा जाति के सवालों पर हम उसे कैसे जोड़ सकते हैं?

समय आभाव के कारण मैं अपनी बात इस बात के साथ समाप्त करूंगा कि इस पूरी प्रक्रिया में हमें अपने अंदर भी झांकना चाहिए। ऐसे कितने लोग होंगे जो रघुपति की तरह अपनी अलग पहचान बना पाने में सक्षम होंगे। मुझे आज भी याद है जब, बहुत साल पहले दिग्गविजय सिंह मेरे भाई का मैनिफैस्टो लिखते थे, वे ठाकुर तंत्र से संबध रखते थे इसलिए उनके संपर्क में आने के बाद मुझे पता चला कि ठाकुर तंत्र अन्य पिछड़ी जातियों के साथ कैसे व्यवहार करता है। वे उनेका साथ नहीं देते थे। इसके विपरीत कल किसी उत्तराखण्ड के साथी ने कहा कि हम तो साथ देते हैं लेकिन मैं इस बात को पूरी तरह सही नहीं मानता हूं। यहां तो सच्चा माहौल होता है इसलिए हम अपने मन की बात कह पाते हैं। वरना शरद यादव को ही देख लीजिए वे हममें से कितने साथियों को अपना सदस्य बनाना चाहते हैं। आज भी कई मंत्री हमें जलील करने से बाज़ नहीं आते हैं और वे इसी प्रयास में रहते हैं कि कहीं हमारी कोई हैसियत न बन जाए या हम कहीं ऊंचे स्थान पर न पहुंच जाएं आदि। यदि आप यह सोचते हैं कि जो हमने जिस सपने या जमीन पर खड़े होने का फैसला किया था वहां, हम खड़े हो पाएंगे कि नहीं। या सफलता या असफलता की मान्य कसौटियों पर अपने–आपको परखने लगेंगे तो आप निराश हो जाएंगे क्योंकि खुद आपको ही लगता है कि यह एक अलिखित और अनकहा एजेंडा है और आपको हाशिए पर ही रहना है। लेकिन यदि वास्तव में हम आज जो भी सोच रहे हैं वो, हो जाए तो हमें अन्य विरूपताएं, विरोध तथा शोषण दिखने लगेगा। तो ऐसे में हमें हमारे तथा आप जैसे लोगों को फैसला करना पड़ेगा कि हमें हाशिए पर नहीं रहना है। हमने व्यवस्था को भी अच्छे ढ़ंग से चलाना है तथा हमारी संस्कृति में उसके लोक संगीत और कला को भी भोगने की इजाजत है। इस प्रकार जो लोग ईमानदारी से ऐसा कर पाते हैं तो समाज का भला होगा। जाति का प्रयोग करते हुए ढ़ोंग से करेंगे तो भले ही मानसिक स्तर पर उनका भला हो लेकिन उन्हें आत्मिक शांति तथा संतोष नहीं मिल पाएगा और इससे बाकी लोगों का भी भला नहीं हो पाएगा। खुद मैं, भी कांग्रेस में शामिल हो सकता हूं, लेकिन मैं ऐसा नहीं चाहता कि मैं, बीजेपी को हराने के लिए कांग्रेस में शामिल हो जाऊं। हमें अपने भीतर इन सभी

बातों को सोचना चाहिए। कल हम संगठन के सिद्धांत पर चर्चा करते हुए इन विषयों पर भी बात करेंगे।

बागेश जी – (संचालक) : धन्यवाद विजय जी ! हमारे पास समय बहुत कम बचा लेकिन फिर भी बहुत से लोगों को अपनी बात रखनी है, इसलिए मैं, डॉ. वीर सिंह को बुलाना चाहूंगा।

डा. वीर सिंह – मैं, विजय प्रपात जी की बात से ही अपनी बात शुरू करता हूं। विजय प्रताप जी तोड़ने की बात करते हैं लेकिन मैं, जोड़ने की बात करता हूं। क्योंकि जो हमारे इतने दिनों की परिपाटी, संस्कृति और सभ्यता है उसे इतनी आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता है और अंबेडकर जी ने शिक्षा को महत्व देते हुए 'शिक्षा, एकता और फिर शिक्षा' की बात की थी उसका अर्थ भी यही था कि लोगों को जोड़ना है तो पहले उन्हें शिक्षित करो। लेकिन शिक्षित से उनका अर्थ स्कूली ज्ञान से नहीं था। उनके अनुसार हमें अपनी सारी समस्याओं, सारे माहौल से अवगत होना चाहिए। वे कहते थे कि सबको जोड़ने के बाद ही एकता स्थापित होती है और वो एकता विभाजन के बिना नहीं हो सकती अर्थात उस एकता में भिन्न–भिन्न तरह के लोग शामिल होते हैं। यदि विजय प्रताप जी अपनी तोड़ की बात को इसी संदर्भ में कहना चाहते हैं तो मैं, उनका समर्थन करूंगा।

जब जातियों और पार्टियों में भी एकता की बात होती है तो इसी से अलग जोड़ने की बात भी होती है। अगर हमें कोई बात कहनी हो तो हम उसी बात को कहने और उसका संबोधन करने वाले अन्य लोगों की भी तलाश करते हैं और फिर उनका एक संघटन बनाते हैं और उस संगठन को बनाने के बाद हम दूसरे लोगों से विरोध करते हैं। उसके बाद हम अन्य लोगों को शिक्षित करने के लिए अपने उपायों का प्रयोग करते हैं।

इन बातों को समझने के लिए हमें गांधी जी के विचारों को याद करना होगा। गांधी जी ने कहा कि हमें सत्याग्रह करने के लिए कोई भी शांतिपूर्ण तरीका अपनाना है इसीलिए उन्होंने दलितों को एक तटस्थ तथा भावनात्मक शब्द 'हरिजन' से पुकारा। ऐसा करने के पीछे उनके दो उद्धेश्य थे। एक, कि उस समय अछूत कहे जाने वाले लोग अपने–आपको हीन न मानें, छोटा न मानें, क्योंकि वो भी हमारी ही तरह ईश्वर की संतान हैं और दूसरी ओर अपने–आपको समाज में ऊंचा मानने वाले तथा दलितों

से दुराव रखने वालों को यह बता पाएं कि आप भी भगवान के वैसे ही बच्चे हैं जैसे दलित हैं। तो इस प्रकार से उन्होंने लोगों को जोड़ने की बात की।

जब मैं, 1982 में हरिजन वर्गवादी का अध्ययन कर रहा था। तब ये दलित शब्द इतना प्रसिद्ध नहीं था लेकिन उस समय भी लोगों ने उनसे सवाल करना शुरू किया कि आप हरिजन शब्द का इतना अधिक प्रयोग क्यों कर रहे हैं ? उस समय मेरे पास इंडियन कांउसिल ऑफ सोशल साइंस एण्ड रिसर्च था जिसके बहाने से मुझे दलितों के साथ बातचीत करने का मौका मिला। उस परियोजना की रिपोर्ट लिखते समय मैं, बहुत असंमज में था कि कहीं राजपूत होने के कारण उस रिपोर्ट में मेरा बाईस न झलके। लेकिन रिपोर्ट को पढ़ने के बाद मेरे साथियों सहित सबने मेरी रिपोर्ट की तारीफ की। उनके साथ बातचीत के बाद मुझे उनकी समस्याओं के बारे में पता चला और साथ–साथ यह बात भी पता चली कि इस समस्या से लड़ने के लिए हम सबको मिलकर काम करना होगा। हम अलग–अलग जाति समूह के लोगों को आपस में मिलकर उस दलित समूह के लिए काम करना होगा जिन्हें आज तक दबाया गया है। हमें उन लोगों को भी समाज की मुख्य धारा में लाने के बारे में सोचना चाहिए।

जहां तक हमारे पुराणों या धार्मिक किताबों की बात है तो उनमें जातियों का बहुत ज्यादा वर्णन न होकर वर्णों का अधिक वर्णन हुआ है और ये वर्ण काफी संख्या में मौजूद हैं। उनमें माना जाता है कि हमारे यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण मौजूद हैं लेकिन आजकल पंचम वर्ण भी पैदा हो गया है। हम ये कहते हैं कि जब पैर को हाथ का, हाथ को पेट का, पेट को मस्तिष्क का सहयोग चाहिए और इनमें से किसी को भी तोड़कर नहीं देखा जा सकता है तो उसी तरह से हम सब लोगों को भी मिलकर रहना चाहिए। हिन्दुस्तान में जाति व्यवस्था बहुत जटिल रूप में मौजूद है। यहां अलग–अलग धर्म भी आए लेकिन उनमें भी जातियां पैदा हो गई। धर्मनिरपेक्ष वर्ग में भी जातियां पैदा हो गई हैं, नेताओं की जातियां पैदा हो गई हैं, नौकरशाही की जातियां पैदा हो गई हैं और यहां तक कि स्वंय सेवी संगठनों की भी जातियां पैदा हो गई हैं तो हमारे यहां तो जातियां बनती रहती हैं, हमारे एक साथी ने कहा भी कि आज हमारे यहां 40,000 जातियां पैदा हो गई हैं। हमारे समाज में जातियां तो बढ़ी हैं लेकिन उनका सामाजिक संगठन घटा है और टूटा है। आज जात का प्रयोग राजनीतिक संगठन और राजनीतिक वर्ग के रूप में होने लगा है। आज अलग–अलग जातियां भी अपने राजनीतिक संगठन बनाने लगी हैं। पिछले 20 सालों से उत्तर प्रदेश से अस्तित्व में आयी बहुजन समाज पार्टी इसका एक उदाहरण है। उन्होंने शुरूआती दौर में ब्राह्मण, बनिया नहीं ! 'तिलक, तराजू और तलवार इनको मारो जूते चार' जैसे

नारे दिए लेकिन बाद में उन्होंने दलितों के अलावा अन्य जातियों को भी अपने साथ मिलाने के लिए एक नया नारा दिया, 'हाथी नहीं, गणेश हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं।' या 'ब्राह्मण शंख बजाएगा, हाथी बढ़ता जाएगा'। तो इस तरह से जातियों का आपस में मिलन हो रहा है और इस तरह से एक अलग ही संघ की स्थापना हो रही है।

हमारे यहां जातियों के बीच में विविधता मौजूद है। जैसे विजय प्रताप ही ने कहा कि यादव कभी बहुजन का हिस्सा नहीं हो सकता क्योंकि नीचे के लोग उनको बर्दाशत नहीं करेंगे। हमारे यहाँ रामधन थे, रामधन जी का कहना था कि हमारे जो पुराने शासक थे वो हमारी पीठ पर लात मारते थे, पेट पर लात नहीं मारते थे लेकिन जनता पार्टी के उभार के बाद जो पिछड़ी जातियों का सम्मिश्रण हुआ उसने हमारा ताना–बाना बदल दिया। उन्होंने कहा कि हमारे आज के शासक हमारे पेट और पीठ पर भी लात मारते हैं। अर्थात यदि हमारे पास कुछ ज्यादा हो गया तो वो उसे छीन लेते हैं और हमें उच्च जातियों के खेतों में काम नहीं करने देते हैं। पहले हमें कम से कम मजदूरी तो मिलती थी लेकिन आज वो भी नहीं हो पा रहा है। लेकिन आज अलग–अलग जातियां मिलकर अपना एक संगठन बना रही हैं और अपनी बातों को मनवाने का काम करने लगी हैं। इसी प्रकार से वे आरक्षण के विषय पर भी आवाज उठा रहे हैं। आरक्षण के विषय में मैं, एक बात कहना चाहता हूं कि इतिहास में जब आरक्षण की बात की गई थी तो उस समय इसे राजनीति के एक हथियार के रूप में प्रयोग किया गया। इसके माध्यम से दलितों और आदिवासियों के मुंह बंद करने का प्रयास किया गया। शुरू में केवल दलितों को आरक्षण देने की बात की गई लेकिन धीरे–धीरे आदिवासियों ने भी इसकी मांग करनी शुरू कर दी और आगे चलकर इसमें और लोग भी शामिल होते चले गए। आखिर इतने अधिक लोग आरक्षण की मांग क्यों कर रहे हैं? आरक्षण की अधिक से अधिक मांग इसलिए की जा रही है क्योंकि दलित लोगों को स्थिति को सुधारने, उन्हें शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में समाज में ऊंचा उठाने के लिए कुछ खास प्रयास नहीं किए गए। मुझे तो लगता है कि आरक्षण की इस मांग के साथ–साथ उन्हें आधुनिक शिक्षा पद्धति तथा अनेक शैक्षणिक संस्थानों की मांग भी करनी चाहिए।

रितु जी ने दलितों में पोषण, उनकी मृत्यु दर की बात की। मैं, ये कहना चाहता हूं कि दलितों में न केवल मृत्यु दर घटी है बल्कि उनके पोषण में भी सुधार हुआ है। लोगों के रहन–सहन में भी बदलाव आया है अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं, आपको एक उदाहरण देता हूं मैं, 80 वें दशक के शुरूआत वर्षों में काम कर रहा था। मैं, जिस भी गांव में जाता था वहां सैकड़ों बच्चे आ जाया करते थे और उन बच्चों को देखकर ऐसा लगता था कि जैसे उनमें से कोई भी छः–सात महीने से अधिक

जिंदा नहीं रहेगा। लेकिन जब मैं, उन्हीं इलाकों में 2002–2004 के दौरान गया तो मुझे दोबारा वहां ऐसा कोई भी बच्चा नहीं मिला। उन बच्चों को देखकर लगता था कि उनका पेट भरा हुआ है। इससे लगता है कि अब उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है। अन्य राज्यों की अपेक्षा उत्तर प्रदेश के दलितों की हालत कुछ अच्छी है। उत्तर प्रदेश में भूमिहीन दलितों की संख्या 30 प्रतिशत से भी कम है जबकि अन्य राज्यों में वो बहुत ज्यादा है। हमारे एक मित्र द्वारा उत्तर प्रदेश में किए गए सर्वे के अनुसार अब दलित लोगों में भी अधिक से अधिक जमीन खरीदने की ललक बढ़ी है। अब उनके पास जमीन के आ जाने से उनके पोषण में भी सुधार हुआ है। तमिलनाडु में अन्य राज्यों की अपेक्षा समाजिक और आर्थिक दोनों ही स्थितियां खराब हैं।

आज अगर हम 10 से 15 साल पीछे देखें तो हमें याद आता है कि उस समय हमारे रास्ते में किसी भी दलित का घर दिखता था तो वह हमें अपने घर मे बुलाता और हमारी आवभगत करने के लिए तत्पर रहता था लेकिन हम कोई न कोई बहाना बनाकर टाल देते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है आज हम उनके साथ बैठते हैं और समाज से लेकर राजनीति तक सभी विषयों पर बेबाकी से बात करते हैं। आज उनके भीतर एक असीम आत्मसम्मान पैदा हो गया है ओर उसका श्रेय मायावती, काशीराम और बी.एस.पी. को जाता है। उत्तर प्रदेश की राजनीति में पहले दलित को मिलाकर राजनीति की जाती थी और आज ये स्थिति पैदा हो गई है कि वे दलित के साथ मिलकर राजनीति कर रहे हैं। तो दलितों की स्थिति में निश्चित रूप से सुधार हुआ है और वो निरन्तर होता ही जा रहा है।

बागेश (संचालक) : धन्यवाद डॉ. वीर सिंह जी ! अब मैं, वक्ता के रूप में मुकेश बहुगुणा को आमंत्रित करना चाहता हूं।

मुकेश बहुणुणा : अभी विजय जी ने वेद उनियाल जी के संदर्भ में यू.के.डी. के संदर्भ में कुछ बातें कहीं। मैं, भी यू.के.डी के क्षेत्रीय कार्यकारणी का सदस्य हूं। ये बात सच ही है कि आजकल अधिकतर नेता बहुत जल्दी अपना दल बदल देते हैं यहां तक कि वेद उनियाल जी तथा जार्ज फर्नांडिस जैसे यू.के.डी. के क्रांतिकारी नेता भा.ज.प. या कांग्रेस के खेमे में क्यों चले जाते हैं? हमें इस सवाल के बारे में गहराई से सोचना होगा। हमने देखा कि कई बड़े–बड़े क्रांतिकारी विचारक बुनियादी परिवर्तन की बात तो करते हैं लेकिन निर्णायक मौके पर कांग्रेस या भा.ज.पा. में चले जाते हैं। मुझे लगता है कि इसका एक बुनियादी कारण है और यह कहानी 1967, 1968 से शुरू हुई, जिसे मैं, नकार की राजनीति का नाम दूंगा और जब राजनीति में नकार की राजनीति काम करने लगती है तो उसका अंत भी नकार से ही होता है। फिर चाहे हम कांग्रेस को

नकारने के नाम पर जिसको मर्जी इक्ट्ठा कर लें, इन्दिरा गांधी को हटाने के नाम पर किसी को भी इक्ट्ठा कर लें, भा.ज.पा. को हटाने के नाम पर किसी को भी इक्ट्ठा कर लें, ये नकार की राजनीति सकारात्मक परिणाम नहीं दे सकती। इसीलिए इस नकार की राजनीति के कारण कांग्रेस और भा.ज.पा. जैसी बड़ी पार्टियों के कई कुशल नेता भी ऐन मौके पर अपना दल बदल देते हैं। मेरी अपनी मान्यता है कि इस नकार की राजनीति से कोई भी बदलाव नहीं किए जा सकते हैं।

दूसरी बात, मैं ये कहना चाहता हूं कि आज अधिकतर लोग बाहरी रूप–रंग और पहनावे को किसी पार्टी विशेष जैसे सर्वोदय, आर.एस.एस. या कम्युनिस्ट के ढ़ांचे से देखने लगते हैं जो कि एक गलत धारणा है। अब जैसे मैंने, ही बीच में पीली धोती पहन रखी थी जिसे देखकर मेरे एक मित्र ने कहा कि 'तुमने बी.जे.पी. की तरह भगवा वस्त्र क्यों पहने हुए हैं ?' उसके जवाब में मैंने, कहा कि 'बी.जे.पी. को आए हुए अभी 50 या 60 ही वर्ष हुए होंगे और और यह भगवा रंग तो कुदरत के बनने के समय भी मौजूद था, आखिर इस रंग पर बी.जे.पी. का अधिकार कैसे हो गया ?' और अगर आप भगवा रंग को बी.जे.पी. का प्रतीक मानकर मेरी कही हुई बातों को बी.जे.पी. की बातें मानने लगेंगे तो यह ठीक नहीं है। रंग तो कुदरत के दिए हुए हैं और मेरी मर्जी मैं, जो भी रंग पहनूं।

आज हममें से अधिकतर लोग इस बात पर विचार कर रहे हैं कि ये दुनिया कैसे चलेगी? मेरा व्यक्तिगत रूप से यह मानना है कि यह दुनिया गांधीवाद या मार्क्सवाद से नहीं चलेगी, यह दुनिया तो दुनिया के तरीके से चलेगी। गांधी और मार्क्स जैसे लोग आते रहते हैं लेकिन पूरी दुनिया को केवल एक आदमी के तरीके से देखना गलत है। और यह कहना कि सारी दुनिया मार्क्स की तरह सोचे गांधी की तरह सोचे तो यह बात तो अमेरिका भी कह रहा है कि सारी दुनिया मेरी ही बात मानें, मेरा बनाया हुआ माल ही खाएं और मेरी ही तरह सोचें तो ये तो संभव नहीं है। सारी दुनिया में भिन्नताएं मौजूद हैं और हम लोगों को इन विभिन्नताओं के बीच में अपने–आपको समाहित करना है।

अब जैसे आजकल सिंगूर का मामला चल रहा है। यदि इस प्रकरण में कोई दिक्कत हुई तो मार्क्सवादियों को गालियां दी जाती हैं। लेकिन इस बात पर मार्क्सवादी ये जवाब दे सकते हैं कि आज की तारीख में सम्राज्यवाद के खिलाफ अमेरिका के खिलाफ जो लड़ाई चल रही है और कोई उनके विरोध में खड़ा है तो वह मार्क्सवाद ही है। इसलिए हमें इन सब बातों से दूर हटकर सहमति के बिंदु ढूंडने चाहिए क्योंकि

असहमति के 760 बिंदु हो सकते हैं लेकिन सहमति के केवल पांच ही बिंदु होते हैं, तो हमें उन पांच बिंदुओं पर काम करने के तरीके के बारे में सोचना चाहिए। इसलिए हमारी राजनीति, हमारी समाज नीति, सहमति के बिंदुओं से शुरू होनी चाहिए, और अगर हमारे विचारों में कोई असमति का बिंदु हो भी तो उसपर हम सबको मिल–बैठकर बात करनी चाहिए। धन्यवाद !

बागेश (संचालक) : धन्यवाद ! अब अमरीश जी अपनी बात रखेंगे।

अमरीश : विजय प्रताप जी समाजवादी के बिखराव और समाजवादी आंदोलन के खातमे से इतने निराश हुए कि उन्होंने गुस्से में आकर मार्क्सवादियों पर ही प्रहार कर दिया। मैं, मार्क्सवाद का पक्ष नहीं ले रहा हूं। मुझे लगता है कि मार्क्सवाद को आधुनिक बनाना होगा। और मैं, ये बात जरूर कहना चाहूंगा कि मार्क्सवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका अस्तित्व हिन्दुस्तान के साथ–साथ लगभग पूरी दुनिया में बना हुआ है। दुनिया में साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के खिलाफ लड़ी जाने वाली अधिकतर लड़ाइयों की अगवाई मार्क्सवादी ही कर रहे हैं, उनके साथ कई सामाजिक संगठन, पर्यावरण संगठन, और वो सभी संगठन जिनकी आप बात कर रहे हैं जुड़े जरूर हैं लेकिन उस विचारधारा का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी मार्क्सवाद ने ली है। इसलिए आप मार्क्सवादियों को गैर बुनियादी रूप में मत आंकिए, या हिन्दुतान में मौजूद परम्परागत कम्युनिस्ट पार्टियों से मत आंकिए।

हमारे देश में दलित आंदोलनों को देखने के बहुत सारे दृष्टिकोण हैं। मैं, बी.जे. पी. के दृष्टिकोण की बात नहीं करता, जिसकी बुनियाद ही ब्राह्मणवादी विचारधारा पर आधारित है और अगर वो दलित प्रेम या सहभोज की बात करते हैं तो निश्चित रूप से वो उसका राजनीतिक इस्तेमाल करना चाहते हैं। मैं, तीन विचारधाराओं की चर्चा करूंगा। गांधी ने दलितों को हरिजन कहकर इसलिए संबोधित नहीं किया था कि उन्हें याचक की श्रेणी में डाला जाए। मैं, गांधी द्वारा चलाए छुआछूत, दरिद्रता या दलित नारायण के आंदोलनों को कहीं से भी कम नहीं आंकता लेकिन मुझे लगता है कि जब अंबेडकर ने अधिकारों की बात की तो वे उस सीमा से आगे बढ़ गए। मुझे लगता है कि अंबेडकर के एक बड़े योगदान के कारण ही दलितों को हिन्दू धर्म में एक अलग पहचान मिली। ऐसा कहने के दौरान हम उन 40 हजार जातियों की बात नहीं कर रहे जो घृणा के बगैर टिक नहीं सकती, हम ब्राह्मण और ठाकुर जाति की बात नहीं कर रहे बल्कि हम उस जाति की बात कर रहे हैं जो छुआछूत, घृणा और वैमनुषता पर खड़ी है। इसलिए अंबेडकर ने उस कलच से दलितों को निकाला और उनके अंदर

जनाधिक चेतना का संचार किया लेकिन अंबेडकर की भी एक सीमा थी लेकिन मैं, इस बात से सहमत नहीं हूं। मैं, भी उसी पृष्ठभूमि से आया हूं जिससे आप आए हैं। आप जिस वैचारिक लड़ाई को लड़ रहे हैं यदि आप उसमें सतत रूप से काम करते रहे तभी आप दलित आंदोलन, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के लिए काम करते हैं लेकिन यदि वो लड़ाई थोड़ी सी भी कमजोर पड़ी तो वर्गीय पृष्ठभूमि आपके ऊपर कब्जा कर लेगी और तब आप अपने असली रूप में सामने आ जाएंगे। हम जिस सामन्ती पृष्ठभूमि से आए हैं उसको लगातार दर–किनार करते रहे, तभी जाकर हम समाज में जाति के प्रश्न पर उनके साथ खड़े हो सकते हैं। अगर यह प्रक्रिया रुक जाए तो आप उसके गाद में चले जाएंगे इसलिए हमें इस बात को समझने की जरूरत है कि अब हमें इस लड़ाई को अंबेडकर से भी आगे ले जाना है।

अम्बेडकर पेटी बुलावा क्लास से आए थे उन्होंने अधिकारों की बात तो की लेकिन अधिकारों को हासिल करने के लिए जिस सामाजिक और आर्थिक ढ़ाचे का तोड़ निकालने की जरूरत थी वो अम्बेडकर नहीं दे पाए और आज हमें वही करने का प्रयास करना है। मैं, समझता हूं कि वैश्वीकरण के दौर में दलित समस्या को कुछ अलग ढ़ग से देखना है। हमारे देश में पूँजीवादी विकास हुआ और उस विकास ने बहुत कुछ बंधनों को ढीला किया लेकिन उन्होंने कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जिससे हम एक नवजनवादी समाज को बना सकें। पूंजीवाद ने हमारे आधुनिक समाज को बेहतर शिक्षा जैसी बहुत सी बातें दीं जिससे बहुत से दलित बाहर निकलकर आए। लेकिन इसके कारण हमें कई नुकसान भी हुए। मुझे लगता है कि हमें उच्च जाति को पुराने रूप में नहीं देखना चाहिए और मैं, उन साथियों से भी कहता हूं जो वैश्वीकरण के पक्ष में खड़े होकर दलित सवाल के बारे में बात करते हैं, वो शायद ठीक नहीं करते क्योंकि एक बार फिर से हमारे देश में वित्तीय पूंजी के कन्धों पर चढ़कर हमारे देश में साम्राज्यवाद भी आ सकता है। इसलिए अगर वे ये उम्मीद करते हैं कि विकास के खास दौर में वो सामन्ती व्यवस्था और जाति व्यवस्था को तोड़ देंगें तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल होगी।

हिन्दुस्तान में इस पूरी व्यवस्था को बनाए रखने का सबसे बड़ा जरिया भूमि है इसलिए जब तक हम भूमि सुधार नहीं करेंगे, तब तक भूमि का प्रश्न हल नहीं हो सकता और उसे हल किए बिना जाति व्यवस्था को तोड़ना बहुत कठिन है। इसके अलावा मुझे लगता है कि हम आधुनिक विदेशी पूंजी से आधुनिक देश नहीं बना सकते इसलिए मुझे लगता है कि हमें जाति व्यवस्था के खिलाफ होने वाले संघर्ष को वैश्वीकरण के खिलाफ होने संघर्ष से जोड़कर देखना चाहिए। धन्यवाद !

संचालक बागेश जी – अमरीश जी ने जो भी बातें रखी उनसे मैं, खुद भी आकर्षित हूं। मुझे लगता है कि एक अच्छे और इस तरह के सम्मेलन की खासियत ये नहीं कि सवालों के जवाब दिए जाएं बल्कि हमें उपलब्ध जवाबों पर सवाल खड़े करने की मानसिकता बनाने की जरूरत है, अगर हम ऐसा कर पाए तो हम, समझेंगे कि हम सफल हो गए। अब मैं, बल्ली सिंह चीमा को आमंत्रित करना चाहूंगा।

बल्ली सिंह चीमा : मैं, कहना चाहता हूं कि हमारे न चाहते हुए भी पूरी दुनिया दो खेमों में बंटी हुई है–मार्क्सवाद और गैर मार्क्सवाद। नंदी ग्राम और सिंगूर की घटनाओं के प्रत्यक्ष में वामपंथी पार्टियों ने जितनी मर्जी बातें की हों लेकिन हमारे देश में जो दूसरी बुर्गा पार्टियां हैं उनके मुकाबले देखा जाए तो वास्तव में वे जनता के हित में ज्यादा सोचते हैं। लेकिन यदि हम मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखें तो यह सवाल उठता है कि मार्क्सवादी, साम्यवादी हैं कि नहीं हैं ?

मैं, ये कहना चाहता हूं कि, कल विजय जी की बातों से सहमत होते हुए भी जो मैंने, यह निचोड़ निकाला कि अगर हम चिल्लाते रहें कि जातिवाद मिटाना है, ऐसा करना है, वैसा करना है तो इन बातों से कुछ नहीं हो सकता। मेरे हिसाब से हमें जाति की लड़ाई के साथ–साथ जनता की आर्थिक लड़ाई भी लड़नी होगी। और जनता से मेरा अर्थ है दलित, गरीब ब्राह्मण, गरीब ठाकुरों के अलावा सभी शापित जनता की लड़ाई को लड़ने के साथ–साथ अगर हम इस लड़ाई को भी लड़ें तो वो ज्यादा कारगर होगी और उसमें हम कामियाब भी होंगे।

मैं, और मेरे जैसे संवेदनशील लोग यह चाहते हैं कि देश में जनता का भला हो, देश में परिवर्तन हो लेकिन हमारी राजनैतिक पार्टियां चुनाव के चक्कर में इस तरह से फंसी हुई हैं कि उन्हें जनता के हित दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। वो केवल अपने मतों को ध्यान में रखते हुए देश में जातिवाद को जिंदा रखे हुए हैं। वो धर्म और जाति पर आधारित राजनीति करने पर लगे रहते हैं। जैसे मैंने अभी कहा था कि हमारे देश के कई मार्क्सवादी नेता समाज के सामने तो धर्म के खिलाफ बोलते रहते हैं लेकिन अपने घर के मंदिर में अपनी बीवियों के पीछे हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। हमारे समाज की यही समस्या है कि चाहे गांधीवादी लोग हों या समाजवादी वे सभी लोग कहते कुछ और हैं और व्यवहार में कुछ और ही करते हैं।

अभी कुछ दिनों पहले मैं, ए.बी.वी.पी. के नौजवानों लड़कों से बात कर रहा था। उनकी बातों से मुझे पता चला कि कोई कांग्रेस के साथ है तो कोई बी.जे.पी. के साथ। लेकिन मैं, यह कहना चाहता हूं कि चाहे आप कितनी भी जोर से कांग्रेस या बी.जे.पी. के सिद्धांतों के बारे में चिल्लाएं लेकिन यदि आप दिल से ईमानदार नहीं हैं तो आप समाज के लिए कुछ भी अच्छा नहीं कर पाएंगे।

मैं, 73 से राजनीति में आया लेकिन आज तक मैं किसी वामपंथी राजनैतिक पार्टी का सदस्य नहीं रहा। मैं मूल रूप से मार्क्सवादी, वामपंथी हूं। मैं, वामपंथी पार्टियों, चुनाव लड़ने वाली पार्टियों से सहमत नहीं हो पाता हूं क्योंकि वो जमीनी रूप से कहीं भी काम नहीं करते। उनकी पूरी ताकत बंगाल को जिंदा रखने या केंद्र पर पहुंचने का प्रयास करने या पूरी हिंदी बैल्ट में कैसे और क्या करना है जैसे कामों में लगे रहती है। वहीं हमारे दूसरे भाई जंगलों में राइफलें लेकर घूम रहे हैं वे जनसंपर्क नहीं करते और जनता की मर्जी के बारे में जानकारी नहीं लेते और मुझे ऐसा लगता है कि जनता की मर्जी के बिना कोई भी काम करने का कोई लाभ नहीं होता है। मैं, सोचता हूं कि हमें जनसंघटन की लड़ाई को आगे बढ़ाना चाहिए और मार्क्सवाद एक विज्ञान है और उसमें नए प्रयोग होते रहने चाहिए और कट्टरता खत्म होनी चाहिए। हम लोगों को अपना स्वार्थ छोड़कर ऐसी बातों के बारे में सोचना चाहिए जिससे जनता का अधिक से अधिक भला हो। मैं, एक छोटी सी बात कहते हुए अपनी बात को समाप्त करता हूं कि ' आप जहां भी हैं, वहां आप क्या करते हैं ? यदि आप समाज के प्रति ईमानदार होते हुए गलत दिशा में भी चले गए तो आप, उस गलत दिशा में ज्यादा देर तक नहीं रहेंगे और उससे बाहर आ जाएंगे। ' धन्यवाद !

बागेश (संचालक) : इस सत्र के दौरान कई तरह की बातें अर्थात सामाजिक और राजनैतिक भी होने लगीं। मगर मुझे खुशी है कि इस सत्र के समापन तक आते–आते हम एक बार वापस अपने मूल मुद्दे पर आ रहे हैं। हम अभी इस तरह की राजनैतिक बातों को विराम देते हुए एक–दूसरे को तथा उनकी बातों को जानने के और अधिक प्रयास करेंगे। अब मैं, राकेश भट्ट जी से आग्रह करूंगा कि वो आकर अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को हमारे सामने रखें। आइए राकेश भट्ट जी !

राकेश भट्ट : साथियो, मेरा नाम राकेश भट्ट है और मैं ब्राह्मण माता–पिता की संतान हूँ। व्यक्तिगत रूप से मैं जिन संस्मरणों को खासकर जाति के सवाल पर जिया हूं उन्हें आपके सामने रखने का प्रयास करूंगा लेकिन हो सकता है उन्हें कहते हुए मैं, थोड़ा भावुक हो जाऊं क्योंकि मैं, कोई समाजशास्त्री नहीं हूं इसलिए मैं, भावुक हुए

बिना अपनी बात नहीं कह पाऊंगा। मेरा बचपन पहाड़ के एक गांव में बीता। मेरे दादा और मेरे पिता दिल्ली में नौकरी करते थे इसलिए पैसे की कोई कमी नहीं थी। मेरी मां पढ़ी–लिखी थी, हम पांच भाई–बहन थे और मेरी मां की यह इच्छा थी कि कम से कम उसका एक बेटा गांव में पढ़े इसलिए जब मैं, छह महीने का हुआ तो मैं, और मेरी माँ गाँव आ गए।

मैं, अपने एक–दो संस्मरण आपको सुनाना चाहता हूं। मेरा नाम राकेश भट्ट है, मेरे भाई का नाम नरेश, मेरी दादी का नाम इंदिरा, उसकी सास का नाम प्रतिमा, मेरी मां का नाम प्रियंवदा और जब मैं, इन नामों के समकक्ष अपने दलित साथियों के नाम देखता हूं तो उनके नाम थे आरम चेतू, दुल्लू आदि। मंगतू मेरी ही उम्र का लड़का था, वह मेरा साथी था। मां, मुझे हमेशा ही उसके साथ खेलने के लिए भेजा करती थी। मंगतू मुझसे ज्यादा ताकतवर था वो मुझे बचाता भी था। जब जंगल में हम जाते थे तो वो मेरी पूरी देखभाल किया करता था कि कहीं मुझे चोट न लगे। मैं, एक बार का अनुभव बताता हूं , एक बार हम पत्थर से आम तोड़ रहे थे, तभी मंगतू ने एक पत्थर पेड़ पर मारा जो कि मेरे सिर पर आकर लगा, गांव में ये बात फैल गई कि मंगतू अर्थात एक दलित ने, मुझ ब्राह्मण को मारा। मेरे सिर से खून निकल रहा था और मैं, रोता–रोता अपनी मां के पास गया। मेरी माँ को जब मेरे रोने का कारण पता चला तो उन्होंने कहा कि चलो आज थोड़ा सा पाप कम हो गया है। हालांकि उस समय मुझे माँ की बात पर बहुत गुस्सा आया। लेकिन आज मुझे माँ की बात ठीक लगती है।

मैं, वेद उनियाल जी का बहुत सम्मान करता हूं लेकिन कल जब उन्होंने यह कहा कि पहाड़ में उस तरह का दमन, शोषण और यंत्रणाएं नहीं मिलती जैसे और क्षेत्रों में होता है; तो उनकी यह बात सुनकर मै, उनका विरोध करना चाहता था लेकिन सभा की शालीनता को ध्यान में रखते हुए मैंने ऐसा नहीं किया। अपनी इस बात को साबित करने के लिए मैं, अपने एक–दो अनुभव बताता हूं। हमारे पहाड़ में जब स्कूल जाने से पहले बच्चे का नामकरण होता है तो उस समय बच्चे के माता–पिता के साथ–साथ गुरूजी और गाय मौजूद रहते थे। उस समय गुरू बच्चे की अनामिका को पकड़कर धरती पर ओउम् नमः सिद्धम लिखते थे। तो जब यह संस्कार मेरे साथ हो रहा था तो मेरी मां ने हमारे गांव के एक दलित आराम भाई की पत्नी को मेरा गुरू बनाया और कहा कि ये मेरी अँगुली पकड़कर यह संस्कार करेगी जबकि उन्हें पढ़ना–लिखना नहीं आता था। वो भी ऐसा करते समय बहुत डर रही थीं लेकिन मेरी मां ने एक तरफ से मेरा हाथ पकड़ा और दूसरी ओर से आराम भाई की पत्नी का हाथ पकड़कर ओउम् नमः सिद्धम लिखा। इस प्रकार आज के बाद वो ही मेरी गुरू बन गईं

थी। इसी प्रकार जब पहाड़ में नामकरण होता है तो उस समय ब्राह्मणों को जन्मपत्री के आधार पर एक नाम निकालना होता है जो या तो ब्राह्ममण को मालूम होता है, दूसरा आपकी मां को, तीसरा आपके गुरू को और चौथा गाय को। तो उस नामकरण में भी आराम भाई की पत्नी के कान में भी गुरू के रूप में मेरा नाम कहा गया। अर्थात अब से ये चारों अर्थात मेरी मां, गुरू, गाय और ब्राह्मण एक बराबर हो गए। मेरी माँ की इस हरकत के लिए लगभग सारा गांव ही नाराज हुआ लेकिन मेरी माँ ने इस बात की बिल्कुल की कभी भी परवाह नहीं की।

उसके बाद मैं, गांव से पांचवी पास करने के बाद दिल्ली में पढ़ने के लिए आया। दिल्ली से ग्यारहवीं कक्षा पास करने के बाद जब मैं, दोबारा गांव गया तो मेरे साथ कुछ स्वर्ण मित्र भी शामिल हो गए। जब हम जा रहे थे तो रास्ते में मुझे आराम भाई की पत्नी दिखाई दी, अब जिस तरह से मैं, अपनी माँ के पैर छूता उसी तरह मुझे उनके भी पैर छूने थे लेकिन न जाने मेरे मन में कौन सी झिझक थी जो मुझे ऐसा करने से रोक रही थी। लेकिन जब एक साल बाद मुझे उनके देहांत की खबर मिली तो मैं, बहुत दुखी हुआ कि उस दिन मैं, अपने दोस्तों और अपनी झिझक के कारण अपनी एक माँ के पैर नहीं छू सका।

अभी वेद उनियाल जी और दूसरे लोगों ने कहा कि पहाड़ में अन्य राज्यो की तरह दमन नहीं होता। लेकिन मैं, कहता हूं कि वहां भी दलितों का दमन होता है। मैं, उसका एक सीधा सा उदाहरण बताता हूं। आराम भाई की बेटी अर्थात मंगतू की बहन, मुझसे दो साल बड़ी थी। जब वो जवान होने लगी तो एक बार गांव के एक आदमी ने जो कि उम्र में मेरे चाचाजी के बराबर थे, उन्होंने आराम भाई से कहा कि 'हां, भई तेरी बेटी तो बहुत खूबसूरत हो गई है। उसकी इस बात को सुनकर मुझे इतना दर्द हुआ जितना गुजरात में हुए बलात्कार की घटनाओं को सुनकर नहीं हुआ। मुझे ऐसे लगा जैसे वो शब्द मेरी बेटी के लिए कहे गए हों। मुझे बलात्कार मंजूर नहीं हैं लेकिन उस तरह के शब्दों से बेहद घृणा है लेकिन हमारे समाज में दलित जाति के लिए इस तरह के शब्दों के अलावा और भी दुर्व्यवहार किया जाता है जैसे उनके साथ या उनका खाना न खाना, पानी न लेना, पानी न देना, आदि। लेकिन उसके बावजूद भी कुछ लोग कहते हैं कि हमारे यहां दलितों का शोषण नहीं होता, ये बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी गोपाल भाई ने जिस तरह की बातें कहीं, मैं, उनकी बातों से पूरी तरह सहमत हूं और मैं, समझ सकता हूं कि उन्होंने ऐसा कहने के लिए बहुत हिम्मत जुटाई है। यह सही है कि हमारे पहाड़ में हम ब्राह्मण लोग भैंस की बलि देकर उसे फेंक देते थे और फिर मेरे गांव के आराम भाई जैसे हरिजन लोग उस भैंसे के मांस को अपने

घर ले जाकर सुखाते थे क्योंकि उनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं होता था। और हम लोग कहते थे कि वो कितने गंदे हैं जो ये सब कुछ गंदी चीजें खाते हैं। उनकी इन बातों को देखकर अपनी माँ से कहता था कि तुम तो कहती हो कि ये भी हमारी ही तरह इंसान हैं फिर ये लोग मरे हुए जानवर का मांस क्यों खाते हैं ? मेरी इस बात पर मेरी माँ ने कहा कि ठीक है, तुम जिस दिन अपने हिस्से की बकरी इन्हें दे दोगे, ये इस तरह का मांस खाना बंद कर देंगे। मैं, और अधिक नहीं कहना चाहता हूं। धन्यवाद !

बागेश संचालक – धन्यवाद राकेश जी ! अभी यहां, बहुत सारे सवाल उठे, मैं, चाहता हूं कि अब चिन्ना राव जी आकर बताएं कि इन सब चीजों को कैसे समझा जाए। आइए चिन्ना राव जी !

चिन्ना राव : धन्यवाद ! दो दिन से यहां उपस्थित वक्ता दलितों के प्रति बरते जाने वाले असमानता के व्यवहार पर अपने अनुभवों को बता रहे थे और उनके अनुसार दलितों की स्थिति में कुछ बदलाव नहीं आया है। लेकिन मैं, कहता हूं कि बदलाव आया है, अगर बदलाव नहीं आता तो मैं, यहां नहीं होता। हां ! ये जरूर है कि जिस बदलाव की उम्मीद की जा रही थी उतना बदलाव नहीं आ पाया है।

यहां कई वरिष्ठ लोगों ने अपनी बात कही मैं, उनके सवालों का जवाब नहीं दे सकता हूं क्योंकि मेरी उम्र के बराबर तो उनके अनुभव ही हैं। लेकिन फिर भी मैं, आप लोगों के सामने अपनी बात रखना चाहूंगा, वो अच्छी और बुरी भी हो सकती हैं। महात्मा गांधी ने जिस 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया, उसका अर्थ है 'भगवान के बच्चे' लेकिन क्या दलित ही भगवान के बच्चे हैं तो बाकी लोग क्या हैं ? अगर इसमें साजिश नहीं है तो क्या है?

अगर आप उत्तर भारत में जाएं तो वहां देवदासी प्रथा चलती है उसी तरह दक्षिण भारत में भी एक ऐसी ही प्रथा होती है जिसमें पंचायत का मुखिया या अध्यक्ष की नजर गांव की जिस भी लड़की पर पड़ जाती है उसकी भगवान से शादी कर दी जाती है और फिर उसे वहां के मंदिरों में छोड़ दिया जाता है। उसके बाद उसकी बोली लगाई जाती है जो उसकी ऊंची से ऊंची बोली लगाएगा वह उसे अपने साथ साल दो साल तक रखता है उसके बाद कोई दूसरा बोली लगाने वाला उसे अपने साथ ले जाता है। यह प्रक्रिया 25–30 साल की उम्र तक चलती है तब तक उस महिला के तीन–चार बच्चे हो जाते हैं लेकिन उन बच्चों के बाप का कोई पता नहीं

होता है। वो बच्चे जिन लोगों के होते हैं वो भगवान के रूप में ब्राह्मण, पुजारी, या गांव का कोई मुखिया भी हो सकता है। भगवान के साथ जिस महिला की शादी होती है उसे देवदासी कहा जाता है। और इनके संबध से जो बच्चे पैदा होते हैं उन्हें 'हरिजन' कहा जाता है।

मैं, दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि जिस तरह गांधी ने दलितों के लिए कुछ नहीं किया, वे केवल उच्च जाति के लोगों का दिमाग बदलने का प्रयास करते रहे। जब हम गांधी या अंबेडकर की तुलना करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि अंबेडकर ने लोगों को जागरूक बनाने का काम किया और गांधी ने उच्च जाति के लोगों का दिमाग बदलने का प्रयास किया।

मैं, आपको 1930 की एक घटना सुनाता हूं, उस समय पहली राऊंड टेबल सम्मेलन के खत्म होते ही एक दिन रात को 2 बजे दिल्ली में गांधी जी और अंबेडकर जी अपने–अपने घरों में थे। तभी गांव से कुछ लोग आकर गांधी जी के घर गए, जैसे ही उन्होंने गांधी जी का दरवाजा खटखटाया, तुरंत उनका अनुचर आया और उसने कहा कि गांधी जी अभी–अभी सोए हैं और उन्हें सुबह चार बजे उठकर पूजा करनी है, उसके बाद राम मंदिर जाना है, उसके बाद ही वो आप लोगों से मिलकर आपकी समस्या का समाधान निकालेंगे। वे लोग निराश होकर वापिस जाने लगे तभी उन्हें एक घर दिखाई दिया जिससे अभी भी रोशनी आ रही थी और उस रोशनी में एक आदमी काम कर रहा था वो आदमी और कोई नहीं 'अंबेडकर जी' थे। गांव के वो लोग अंबेडकर के पास गए और जाते ही उन्होंने एक प्रश्न किया कि आप इतनी रात तक क्यों जग रहे हैं जबकि गांधी जी तो सो चुके हैं ? इसके जवाब में अंबेडकर जी ने कहा कि गांधी जिसको जगाना चाहते थे वो जग गए हैं इसलिए उन्हें सोने का मौका मिल गया लेकिन मैं, जिन लोगों को जगाना चाहता हूं वो लोग अभी तक सोए ही हुए हैं इसलिए जब तक वो लोग जाग नहीं जाते, तब तक मैं, कैसे सो सकता हूं। इस प्रकार इन दोनों में इस तरह का अंतर है। जब तक आप इन दोनों तथा समाज के प्रति इनकी समझ को नहीं समझेंगे, तब तक आपको इन दोनों में अंतर दिखाई ही देगा।

दूसरा, यहां पर साम्यवाद, जाति और दलित के बारे में अपनी टिप्पणी देने के लिए कहा गया था लेकिन मैं, इस विषय पर बात नहीं कर सकता क्योंकि अगर मैंने, ये बात शुरू की तो इसका अंत नहीं हो पाएगा और न ही इसका अंत समझ में ही आएगा। भारत में साम्यवाद के उदय के 25 साल हो गए लेकिन आज तक भी दलित

संगठन ही बन रहे हैं और कोई भी दलित नेता नहीं बन पाया है। उसके क्या कारण हैं ? अगर मैं, इस बात को अंबेडकर के शब्दों में कहूं तो " 'साम्यवाद', शब्द किसी कार्यक्रम के नाम के अलावा कुछ भी नहीं है।" मैं, आपको एक और उदाहरण देता हूं 1942 में आन्ध्र में साम्यवादी ने एक प्रस्ताव पास किया जिसका सारांश यह है कि मुस्लिम लीग एक राजनैतिक पार्टी है और अंबेडकर की अनुसूचित जाति महासंघ को एक साम्प्रदायिक पार्टी कहा गया। उस समय वहां साम्यवादी पार्टी आयी ओर उसके बाद सी.पी.एम. आया उसके बाद एम.एल.आया लेकिन इन सभी में जाति के सवाल को उठाया गया जो आज आपके सामने मौजूद है इसलिए मैं, इसके बारे में ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं।

अब मैं, दलित विषय पर उठे सवालों के बारे में ज्यादा कुछ नहीं कह सकता हूं इसके लिए हमारे संचालक साहब मौजूद हैं। मैं, बस इतना ही कहना चाहता हूं कि हमें स्वतन्त्र हुए 60 साल से अधिक और गैर छुआछूत एक्ट को बने हुए 60 से भी अधिक वर्ष हो गए हैं लेकिन फिर भी आज भी हमारे समाज में छुआछूत क्यों मौजूद है? आज हमारे कानून में छुआछूत का व्यवहार करने वाले के खिलाफ गैर जमानती वारंट का कानून है। लेकिन आज तक एक भी आदमी को छुआछूत कानून के तहत गिरफ्तार नहीं किया गया। आखिर इसका क्या कारण है ? मैं, इसी बात को आपके सामने रखता हूं। धन्यवाद !

बागेश (संचालक) : आपने कानून की बात करके इस सत्र को बहुत ही महत्वपूर्ण बना दिया। अब मै, आगे के सत्र के लिए असीम श्रीवास्तव जी को आमंत्रित करना चाहूंगा। पिछले सत्र में बहुत महत्वपूर्ण सवाल निकलकर आए हैं, जिनके बारे में हम आगे के सत्र में बातचीत करेंगे। धन्यवाद !

असीम श्रीवास्तव : मैं, आपके सामने 'सेज' के सवाल को रखना चाहता हूं, मुझे लगता है कि हमें इस सवाल को अन्य सवालों के साथ जोड़कर देखना होगा क्योंकि जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे तब तक हम इसका महत्व और भविष्य में होने वाले इसके अंजाम को नहीं जान पाएंगे।

सेज की यह नीति बहुत जल्दी में बनी है। पार्लियामेंट में 10 मई 2005 को सेज का बिल आया और 12 मई 2005 को पास हो गया। 23 जून 2005 को अब्दुल कलाम जी ने इस पर अपने हस्ताक्षर भी कर दिए। आखिर इस जल्दबाजी का क्या कारण है? उसे समझना बहुत जरूरी है।

मैं, अपनी बात को एक छोटी सी कहानी से शुरू करता हूं। सेज के विषय पर जे.एन.यू. में एक सम्मेलन हुआ, उस सम्मेलन में भारतीय सामाजिक विज्ञान संस्थान (इंडियन एकेडमी ऑफ सोशल साइंस) के सचिव चौबे जी ने हमें एक कहानी बतायी, इस कहानी से 'सेज' के पीछे छिपा रहस्य स्पष्ट हो जाएगा। वो एक बार पी.चिदंबरम से तब मिले जब निजीकरण का दौर चल रहा था। उन्होंने श्री चिदंबरम से थोड़ा गुस्से में कहा कि जब इतनी सारी चीजों का निजीकरण हो रहा है तो क्यों न सरकार का ही निजीकरण कर दिया जाए? चिदंबरम जी दो मिनट तक सोचते रहे और उसके बाद उन्होंने कहा कि 'हमें इस देश में पूंजीवाद बनाना है और अगर हमें पूंजीवाद बनाना है तो हम सरकार का निजीकरण नहीं कर सकते'। अब आप इस बात को समझने का प्रयास कीजिए कि वो निजीकरण क्यों नहीं कर सकते ? हमारी समझ में तो यह आया कि किसी भी देश की सरकार को अपना राज स्थापित करने के लिए वैद्यता की जरूरत होती है, अगर उसे कोई भी बुरा काम करना हो तो उसकी दुहाई देने की जरूरत होती है। अगर बुश को इराक में जाकर उनके तेल की चोरी करनी है तो उसे वहां गणतंत्र की स्थापना तो करनी ही पड़ेगी। हिटलर ने भी जर्मनी की सफाई करने के लिए ज्यूस को मारना था। इस प्रकार इंसान जब भी कोई बुरा काम करता है तो वह सबसे पहले उस काम की अच्छाई को बताता है। इस प्रकार वैद्यता के बिना आप पूंजीवाद की स्थापना भी नहीं कर सकते हैं। और हमें इन सब बातों को समझना बहुत जरूरी है।

अमेरिका में दस साल गुजारने के बाद मेरी यह समझ बनी कि आज के जमाने में ये सबसे बड़ा झूठ यह है कि 'अमेरिका में लोकतंत्र है।' अगर हम इससे पहले एक विशेषण लगा दें कि किस तरह का लोकतंत्र है तो शायद हमें, यह बात अच्छी तरह से समझ में आएगी। इसमें जनता के नाम पर जनता से लूट हो रही है। ये हमें स्टालिन के अनुभव, अमेरिका के अनुभव, चीन में माओं के अनुभव, बंगाल में दामपंथियो पर आ गए वामपंथियों के अनुभव से समझ सकते हैं। तो हमें इस पाठ को सीखना बहुत जरूरी है।

मुझसे पहले कई वक्ताओं ने अच्छी–अच्छी बातें की। अमरीश जी ने जमीन का सवाल उठाया। मैं, एक बुनियादी सवाल उठाता हूं , हमारे जैसे देश में जहां किसी भी तरह का बीमा नहीं है। आप पश्चिम के किसी देश में देखें तो वहां कल्याण राज्य हैं, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थय बीमा जैसी सुविधाएं हैं लेकिन हमारे देश में आदमी के पास जमीन के अलावा कोई भी बीमा नहीं है। जिनके पास थोड़ी या ज्यादा जमीन है उन्हें एक सुरक्षा मिलती है, वरना उनके पास कुछ भी नहीं रहता है। इसमें मैं, एक

दूसरी बात भी जोड़ना चाहूंगा जो मुकेश जी ने कही थी कि सरकार की राजनीति से ही कुछ बुनियादी बदलाव हो सकते हैं। नकारात्मक राजनीति के कारण दुनिया में कभी भी कोई दीर्घकालीन परिवर्तन नहीं हो सकता। इस बात को हमने 20 वीं शताब्दी में साम्यवादियों के अनुभवों से सीखा कि आप विरोध करने से आप नए तरीके का शोषण कर रहे हैं अर्थात इंसानी जाति का शोषण कर रहे हैं।

मैं, 'सेज' से संबधित एक बात बोलना चाहता हूं कि जब हम कहते हैं कि हमने 500 या 5000 सेज बनाएं हैं तो उसे हम special economic zone (विशेष आर्थिक क्षेत्र) कहते हैं जबकि हमें उसे सस्टनेबल इकोनॉमिक जोन कहकर पुकारना चाहिए। अर्थात आज हमारे सामने जिस तरह की दुनिया बनती जा रही है और हमारी दुनिया दिन–प्रतिदिन बदतर होती जा रही है, प्रकृति हमारी बेवकूफियों के कारण हमारे सामने सीमाएं डालती जा रही है। यदि हमें इन सब समस्याओं से निपटना है तो हमें अपने सोचने और जीने के ढ़ांचे को ही बदलना होगा। यदि सभी लोग अपने घरों में तीन–तीन गाड़ियां रखने लगें तो यह दुनिया 30–40 सालों में इतिहास के पन्नों में समा जाएगी। और इसकी दास्तान लिखने वाला भी कोई नहीं रहेगा। हमें इस सब को एक सकारात्मक स्तर पर सोचना चाहिए और इसके विकल्पों की तलाश करनी चाहिए लेकिन पश्चिम के देशों में खासकर रोगन और थैचर के जमाने से यह माना जा रहा है कि इस तरह के कोई विकल्प नहीं हैं। लेकिन मैं, कहता हूं कि नहीं इस तरह के इतने किकल्प हैं जिनकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। हमें उनसे से केवल एक विकल्प अर्थात सस्टनेबल इकोनॉमिक जोन के बारे में भी विचार कर सकते हैं। इस विषय पर मैं, आपको एक उदाहरण दूंगा। हमारे एक बहुत अच्छे मित्र हैं मल्लिका गिखी जो उत्तराखण्ड में मुनसियारी में रहते हैं। उन्होंने वहां पर एक वन पंचायत की स्थापना करवाई जिसमें गांव के लगभग सभी लोगों को शामिल किया। वहां के लोगों ने मिलकर वहां वृक्षारोपण किया जिससे वहां के सूख चुके तालाबों में भी पानी भर गया। जिन चिड़ियाओं ने वहां आना बंद कर दिया था उन्होंने दोबार वहां का चक्कर लगाना शुरू किया। यहां तक कि वहां इको–टूरिज्म की एक छोटी सी परियोजना भी शुरू हो गई। वो लोग समझ चुके थे कि पर्यावरण की स्थिति में सुधार करने से रोजगार की प्राप्ति भी हो सकती है। इसी तरह आन्ध्र प्रदेश के एक गांव टिम्बक्टू में भी एक ऐसा ही कार्यक्रम शुरू हुआ। इसके अलावा सुखमाजरी, चंडीगढ़ के पास रालेगंज सिदी के अलावा महाराष्ट्र में भी कई सारे उदाहरण मौजूद हैं। इस तरह हमारे देश में एसे कई उदाहरण मौजूद हैं, जहां लोग पर्यावरण पर ध्यान देकर अपने रोजगार के साधन पैदा कर रहे हैं लेकिन इन्हें प्रचार नहीं मिल पा रहा है अगर कभी उन्हें प्रचार मिल भी जाए तो उसका तुरंत खंडन कर दिया जाता है। तो इस प्रकार आप

स्थानीय स्तर पर भले ही ऐसा कर लें लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर आप ऐसा नहीं कर सकते। हमें इस बात को सोचने की जरूरत है कि आखिर ऐसा क्यों होता है ?

SEZ (सेज) के सवाल पर दो तरह की शक्तियां जुड़ी हुई हैं, इसलिए उसे समझने के लिए उन्हें समझना होगा। एक तो हमारा इतिहास है जिसका हम सामन्तवाद के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। सामन्तवाद के बिना SEZ (सेज) की कल्पना इस देश में मुश्किल है क्योंकि इसके लिए जिस तरह की जमीन की आवश्यकता है उसके बारे में केवल एक समान्तवादी दिमाग ही सोच सकता है। आजकल के आधुनिक समाज में उस तरह की सोच की कोई जगह ही नहीं होनी चाहिए लेकिन फिर भी कुछ लोगों ने ऐसी सोच बनाई हुई है। SEZ (सेज) का संबध वैश्विक पूंजी या वैश्वीकरण से भी है। मार्क्स ने कहा कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद भी कैदी बना हुआ है और हमें उस कैद, उसकी पाबंदियों और उसकी सीमाओं को समझना चाहिए। जैसे कि हम जानते हैं कि पूंजीवाद की प्रकृति में विस्तार करना शामिल है, वो एक जगह स्थगित नहीं हो सकती है। अर्थात उसमें वृद्धि होना और या उसकी निवेश लागत आना बहुत जरूरी है। पूंजीवादी लोग, पूंजीवाद की इन विशेषताओं को नैतिकता से छुपाने का प्रयास करते हैं। वे बताते हैं कि इस वृद्धि से रोजगार पैदा होता है। लेकिन यह वृद्धि हानि पहुंचाती है। इससे केवल कुछ ही लोगों को लाभ मिलता है। इसीलिए पूंजीवादी लोगों ने इसकी शुरूआत की। वैश्वीकरण की शुरूआत मालाबार समुद्र तट के किसी मछुवारे ने शुरू नहीं किया, या इसे विदर्भ के किसी किसान ने नहीं शुरू किया यहां तक कि हमारे संभ्रात को भी इस बारे में कुछ ज्ञान नहीं था। आप लोगों को याद होगा कि 1980 से पहले तक किसी ने भी वैश्वीकरण शब्द नहीं सुना होगा। इन लोगों ने 1990 में बर्लिन बाल गिरी साम्यवाद को खत्म कर दिया। 1990 के बाद जार्ज बुश वरिष्ठ ने दुनिया के नक्शे को नया ढ़ांचा दिया। उन्होंने अगस्त 1990 में सद्दाम हुसैन के खिलाफ और कुवैत पर आक्रमण के बाद सुरक्षा परिषद प्रस्ताव पास कराया। इसके पीछे भी एक कहानी है, उसमें भी अमेरिकी हाथ था। इस प्रकार इराक का युद्ध, प्रथम खाड़ी युद्ध था। यह विश्ष्टि शक्ति की उद्घोषणा थी। जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से दुनिया से कहा गया कि देखिए हमसे पंगे लेने की जरूरत नहीं है। हम विश्व में सबसे शक्तिशाली हो गए हैं और किसी को भी हमसे पंगे लेने की जरूरत नहीं है। अब हम दुनिया को संचालित करेंगे। इस प्रकार यहां से वैश्वीकरण की शुरूआत हुई। उसमें फ्री ट्रेड की बात तो की लेकिन वास्तव में उसके फ्री कुछ भी नहीं था। जैसे आजकल लोग कहते हैं कि हमारा फ्री ट्रेड है लेकिन मैं, कहना चाहता हूं कि जब फ्री ट्रेड है तो फिर अमरीका इतना स्टील, वस्त्र, पर इतना शुल्क क्यों लगाता है ? उन्होंने अपने कृषि व्यापार को इतनी आर्थिक सहायता क्यों दी जाती है कि वो पूरी दुनिया के खाद्य बाजार को हथियाने पर लगा है। तो मैं, ये कहना

चाहता हूं कि सेज को समझने के लिए हमारी पुरानी स्थापित परंपरा सामन्तवाद तथा दूसरी तरफ वैश्वीकरण को एक साथ जोड़कर देखने की जरूरत है।

अगर आप सेज के बारे में जानना चाहें तों सबसे पहले आप 2005 में पास हुए सेज के एक्ट को देखें। इंटरनेट पर सेज की जो परिभाषा दी गई उसके अनुसार देश के भीतर ही एक ऐसा क्षेत्र होगा जो कि विदेशी क्षेत्र के रूप में देखा जाएगा। जैसे कि हरियाणा में झज्झर, बंगाल में नंदीग्राम, महाराष्ट्र में रायगढ़ आदि को बिल्कुल एक नया ही रूप दिया जाएगा। और उस क्षेत्र से होने वाला सभी तरह के व्यापार या आयात–निर्यात को उसी रूप में देखा जाएगा जैसे कि किसी दूसरे देश से होने वाले आयात–निर्यात को देखा जाता है। इसके अलावा संविधान के अंतर्गत अर्थव्यवस्था को संचालित करने के लिए जो कानून बने हैं वो कानून सेज में लागू नहीं होंगे। सेज के माध्यम से हिन्दुस्तान में एक ऐसी व्यवस्था लागू हो जाएगी जो आज तक किसी अन्य देश में लागू नहीं हुई । इसके आधार पर किसी देश के संविधान को उसी देश में नकारा जाएगा जो कि गणतन्त्र पर हमला है। इसके अलावा सेज क्षेत्र में कर नहीं लगेगा अर्थात वहां पर बड़ी–बड़ी आय एकत्र की जा सकती है क्योंकि 15 साल के समय अन्तराल में से आप कोई भी ऐसे 10 वर्ष चुन सकते हैं जिसमें आपको कोई कर नहीं देना होगा अर्थात कोई आयकर, सीमा शुल्क, आबकारी शुल्क,स्थानीय कर, चुंगी कर, मंडी कर जैसे कोई भी कर नहीं वसूल किए जाएंगे। इससे हमें हर साल करीब 40–50 हजार का नुकसान होगा। वैसे करों में दी जाने वाली इस रियायत को चिदंबरम तथा कमल नाथ ने विरोध किया है।

स्थान– गांधी शांति प्रतिष्ठान
विषय– समता रथ (उत्तराखण्ड बैठक)
तिथि–10–1–2007

संचालकः–समता के सवाल का बड़े पैमाने पर अध्ययन करने से काफी मदद मिलेगी। सी.एस.डी.एस ने देवदासी तथा दलितों के लिए कई काम किए हैं इसलिए हम सी.एस. डी.एस. में दलितों के लिए एक स्टडी ग्रुप बनाने की सोच रहे हैं। इस विषय में हमने सी.एस.डी.एस. के तीन और साथियों के अलावा प्रभु तिवारी से बात की है। हमने पंचायतों को सशक्त बनाने एवं उन्हें संवैधानिक अधिकार देने के उपायों के बारे में बात की ताकि, पंचायतों की मदद से गांव के अंतिम व्यक्ति को भी लाभ पहुंचाया जा सके।

विशाल जी आपके गांवों तथा उत्तराखण्ड के अन्य गांवों में भी दस महीने बाद पंचायत के चुनाव होने वाले हैं। इन चुनावों के लिए हम सभी अपनी–अपनी ओर से प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए हम गांवों में एक रथ यात्रा भी करने जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि गांव में हर आदमी की अपनी अलग पहचान बने। हम ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाना चाहते हैं ताकि वे गांवों में एक क्रांति पैदा कर सकें।

मैं सुरेश भाई की इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि आज भी हमारे गांवों में उपजाऊ क्षमता की कमी के कारण कई लोग भूखों मर रहे हैं तथा आज भी हमारे गांवों में दलितों के साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है। एक बार मैं एक गांव में गया जहां ओला वृष्टि हो रही थी। वहां मैंने एक लोहार को बैठे हुए देखा, मैंने उससे उसका हालचाल पूछा तो उसने कहा कि, हम तो भूखे मर रहे हैं। मैंने कहा कि तुम्हारे पास तो खेत हैं फिर तुम भूख से क्यों मर रहे हो? उसने जवाब दिया कि हमारे यहां तो वस्तु–विनिमय चलता है तुम मेरे खेतों में काम करो तो मैं तुम्हें अनाज दूंगा उससे खेत वाले को भी अनाज मिल जाता है और कारीगर को भी लेकिन इस वर्ष ओला गिरने से गांव में खेती बर्बाद हो गई जिससे मेरे साथ–साथ मेरे खेत में काम करने वाले को भी भूख से मरना पड़ रहा है।

मैंने देखा है कि आज भी गांवों में पिछड़े वर्गों के साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है। अभी कुछ दिनों पहले मैं एक गांव में गया तो देखा वहां एक जगह पर पूजा हो रही है जिसमें ब्राह्मणों के साथ–साथ पिछड़ी जाति के लोग भी बैठे थे, पूजा समाप्त होते ही पंडित जी खाना खाने के लिए रसोई में बैठ गए जबकि दलित लोग दूर खेतों के किनारे बैठे रहे। एक और घटना सुनिए, एक बार एक सवर्ण की

लड़की को एक दलित से प्रेम हो गया और इस घटना के विरोध में सभी सवर्ण एक हो गए उन्होंने, लड़के तथा लड़की वालों के साथ अत्याचार करना शुरू कर दिया। उन्होंने इस बात को एक बड़े मुद्दे का रूप दे दिया। आज कई गांवों में ब्राह्मण लोग पक्के मकानों में रहते हैं जबकि दलितों को पैसा होते हुए भी कच्चे मकानों में ही रहना पड़ता है।

मुझे लगता है कि समाज में फैली इन विषमताओं को दूर करने के लिए हम सबको मिलकर प्रयास करने चाहिए। इसके लिए पिछड़ी जाति से संबधित लोगों को आगे आकर लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपना सहयोग देना चाहिए। उन्हें जन प्रतिनिधि बनकर चुनाव लड़ना चाहिए ताकि वे समाज में फैली असमानताओं को कम करने में अपना पूरा सहयोग दे सकें क्योंकि उन्होंने उन असमानताओं तथा दर्द को स्वयं झेला है तो ऐसे में वे उनकी समस्याओं को अधिक गहराई से समझकर उनके बेहतर उपाय ढूंढ सकते हैं। धन्यवाद!

मुकेश बहुगुणाः— मैं समता रथ के बारे में बात करूंगा और अरूण जी की कही बात को ही आगे बढ़ाऊंगा। वे सोचते हैं कि राजनीति में बहुत सारी बातें निहित हैं और राजनीति के जरिए ही सत्ता परिवर्तन किया जा सकता है लेकिन वास्तव में यह सामाजिक और सांस्कृतिक सिद्धांतों के खिलाफ है। हमें सामाजिक परिवर्तनों या सामाजिक प्रयासों के द्वारा सत्ता का निर्माण करने का प्रयास करना चाहिए। और सत्ता के समाज से जुड़े होने के कारण इन दोनों के साथ मिलकर काम करने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि यदि हम समाज की भागीदारी के बिना कोई राजनीतिक कार्य कर भी लें तो वो सकारात्मक परिणाम नहीं दे पाएंगे और यदि इसके विपरीत अगर हम कोई ऐसा सामाजिक कार्य करें जिसमें राजनीति शामिल नहीं है, तब भी हमें अच्छे परिणाम नहीं मिल पाएंगे।

अब हम समता रथ के बारे में बात करते हैं। हम लोकतंत्र के आधार पर समता कायम करने की बात करते हैं। आपने देखा ही होगा कि लोकतंत्र तो वोटों की गिनती का गणित है और वोटों की गणना के आधार पर ही किसी भी पार्टी को सरकार बनाने का निमंत्रण मिलता है। लेकिन चुनावों में तो केवल 50—55 प्रतिशत लोग ही वोट देते हैं, बाकी 45 प्रतिशत लोग वोट नहीं देते हैं और ऐसा नहीं है कि वोट न देने वाले लोगों को मार्क्सवाद एवं सामाजिकता की बातें समझ में नहीं आती हैं, लेकिन फिर भी वो शायद इसलिए वोट नहीं देते हैं क्योंकि उन्हें चुनाव लड़ने वाले लोगों में कोई रुचि ही नहीं होती है। अब 50—55 प्रतिशत लोगों के वोटों के आधार पर किसी भी पार्टी की सरकार बन जाती है और वो सरकार, वोट न देने वाले उन 45 प्रतिशत लोगों की इच्छाओं को जाने बिना ही 55 प्रतिशत लोगों की इच्छा से काम करना शुरू कर देते हैं

और उन 45 प्रतिशत लोगो की इच्छाओं को कोई महत्व ही नहीं दिया जाता है। यदि हम समाज में समता कायम करना चाहते हैं, तो हमें उन लोगों के पास जाकर उनकी इच्छाओं को जानना–समझना चाहिए कि आखिर वो अपने समाज को किस रूप में देखना चाहते हैं और किन–किन क्षेत्रों में काम करवाने के इच्छुक हैं। राजनीतिक कार्यों में उनकी इच्छाओं एवं सुझावों को शामिल करके सही अर्थों में समानता कायम की जा सकती है।

हम लोग 'स्वराज' की बात करते हैं जिसका, अर्थ है समाज एवं लोकतंत्र में सभी लोगों का समान अधिकार। इस स्वराज एवं समानता में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा पर्यावरण एवं अन्य चीजों पर सभी लोगों के समान अधिकारों एवं इन सभी क्षेत्रों में काम करने की आवश्यकता होती है। जैसे इन सभी क्षेत्रों में एक ही आदमी काम नहीं कर सकता उसी तरह से इन सभी कामों को केवल एक राजनीतिक पार्टी भी नहीं कर सकती है। क्योंकि आदमियों की तरह ही कई राजनीतिक पार्टियां एवं संस्थाएं भी किन्हरं विशेष कामों को ही अच्छी तरह से कर सकते हैं। गांधी जी भी इस बात को अच्छी तरह समझते थे तभी उन्होंने जिन लोगों को जिस काम में रुचि थी एवं जो लोग जिस काम को अच्छी तरह कर सकते थे उन्हें वही काम सौंप दिया गया। किसी को चरखा दिया गया तो किसी को हरिजनों की सेवा का काम दे दिया था। इस तरह से उन्होंने विभिन्न काम करने वाले लोगों के बहुत सारे संगठन तथा फोरम बनाए। ये संगठन अलग–अलग तो थे लेकिन फिर भी ये किसी न किसी रूप में आपस में जुड़े हुए थे और उन सभी का मकसद था अंग्रेजी शासन को हटाना और स्वराज कायम करना। हमें भी इसी तरह से अपने सभी कामों को आपस में जोड़कर एक समता आंदोलन कायम करना चाहिए। और हमारा यह समता आंदोलन उन्हीं विभिन्न प्रयासों का एक अंग है, यह अपने आप में समग्र नहीं है लेकिन यह उसका एक अंग है। हमें इन सभी मुद्‌दों को आपस में जोड़ने के बारे में सोचना चाहिए। हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार काम कर सकता है। कोई पत्रकार के रूप में इन मुद्दों पर बढ़िया लिख सकता है, कोई एक्टिविस्ट के रूप में काम कर सकता है, तो कोई जमीन के मुद्दे पर तथा कोई सामाजिक मुद्दों पर काम कर सकता है। लेकिन हमें इन सभी कामों को स्वराज तथा लोकतंत्र की भावना से जोड़ना होगा।

इस बारे में मैं, एक व्यक्तिगत आग्रह करना चाहूंगा कि हमें अपने इस समता आंदोलन को एक रथ का नाम नहीं देना चाहिए क्योंकि रथ का मतलब 'समर्थ' माना जाता है। और रावण रथ पर सवार होते हुए एवं समर्थ होते हुए भी हार गया था हालांकि वो इसलिए हारा था कि वह अन्याय के लिए लड़ रहा था। लेकिन, फिर भी मैं इसे रथ नाम दिए जाने से सहमत नहीं हूं। क्योंकि मूलतः हम इस लड़ाई को उन

लोगों के लिए लड़ रहे हैं जिनके पास रथ अथवा साधन नहीं हैं। हम तो पैदल लड़ने वाले सैनिकों के लिए लड़ रहे हैं। मैं पुरुषोत्तम भाई की इस बात से सहमत हूं कि जब हम गांव में जाएं तो गांव के लोगों से सरकार द्वारा पिछले पांच साल पहले हुए कामों एवं बातों के बारे में बात न करें बल्कि पिछले पांच सौ सालों की बात करें ,पिछले पांच सौ सालों एवं पांच हजार साल पहले हुई गड़बड़ियों की बात करें। हमें लोगों से बात करते समय पिछले पांच हजार एवं पांच सौ सालों से पिछले पांच महीने के कामों एवं घटनाओं के बारे में बात करनी चाहिए। उनसे बागेश्वर कांड और हलोद कांड के बारे में बात करनी होगी। इस प्रकार हमें इन सभी चीजों को जोड़कर देखना होगा। धन्यवाद!

वक्ताः– मैं यह कहना चाहता हूं कि आज भी हमारे उत्तराखण्ड में पिछड़ी जाति वालों के साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है। हमें यहां सुनने को मिला कि कफल्टा में हुए हत्याकांड के बाद वहां एक टीम गई और इस विषय पर जगह–जगह मीटिंग हो रही थी जबकि वास्तविकता में अल्मोड़ा जाने पर पता चला कि वहां ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा था। सच्चाई यह है कि वहां की जनता गांव में मंदिर का निर्माण करती थी और मंदिर बनते ही उस मंदिर पर सवर्ण कब्जा जमा लेते थे और नीची जाति के लोगों को वहां आने ही नहीं दिया जाता था।

मुझे लगता है कि हमारे उत्तराखण्ड में समता तथा दलितों की समानता की बात होनी चाहिए। क्योंकि अभी पिछले दिनों हमने पचास गांवों में देखा कि वहां के स्कूलों के विद्यार्थियों को मिड डे मील दी तो जाती है लेकिन उसे देने में भी भेदभाव बरता जाता है, वहां मास्टर जी पिछड़ी जाति के बच्चों की लाइन अलग बनाते हैं और ऊंची जाति वालों की लाइन अलग बनाते हैं। जब इस संबध में मास्टर जी से पूछताछ की गई तो उन्होंने कहा कि इस मामले में हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं हमें तो गांव के लोगों एवं प्रधान जी के आदेशों के अनुसार ही काम करना पड़ता है, अगर हम ऐसा न करें तो वे हमारे ट्रांसफर की धमकी देते हैं। ऐसे में मजबूर होकर हमें उनकी बातों को मानना ही पड़ता है। वैसे तो आज डोला–पालकी का सवाल बहुत पुराना हो चुका है लेकिन आज भी कई नेता और लोग उनका विरोध कर रहे हैं, इससे स्पष्ट है कि आज भी कई क्षेत्रों में डोला–पालकी के नाम पर भेदभाव बरता जाता है। वहां न केवल जाति के आधार पर भेदभाव होता है बल्कि वहां महिलाओं के साथ भी बुरा व्यवहार होता है। इसी प्रकार 1997 में अतेरा की एक घटना है कि वहां दलित परिवार ने एक मन्दिर बनाया इस मंदिर तथा इसकी मूर्तियों के निर्माण में कई शिल्पकारों तथा अन्य कई पिछड़ी जाति के लोगों ने काम किया था। कुछ दिन बाद उन मजदूरों में से किसी

एक की पत्नी गांव के प्रधान के पास आकर अपने पति का बचा हुआ पैसा मांगने आती है, उसे पैसे देने के बजाय उन्होंने उस औरत को नंगा कर दिया, बाद में इस घटना का विरोध हुआ और महिला आयोग के द्वारा आरोपियों को सजा दिलाने का प्रयास भी किया गया।

मुझे लगता है कि अनुसूचित करने की बात तो अलग बल्कि अनुसूचित शब्द ही अपने आप में एक धोखा है। कुछ लोग खुद को हरिजन पुकारे जाने के कारण संतुष्ट नहीं हैं। अगर किसी को हरिजन कह दिया जाए तो वह मारने–पीटने के लिए तैयार हो जाता है। वो हरिजन शब्द के विरोध में कहते हैं कि यदि वे हमें हरिजन कहते हैं तो क्या वे लोग दुर्जन हैं? हरिजन शब्द गांधी जी द्वारा दिया गया था और इस शब्द के संबध में मायावती कहती हैं कि गांधी जी द्वारा हमें हरिजन कहकर पुकारे जाने के पीछे कोई न कोई कारण रहा होगा, हो सकता हैं जब उन्होंने यह शब्द दिया तब यह शब्द वहां की परिस्थितियों के अनुसार सार्थक रहा हो। उन्होंने इसके बारे में एक पत्रिका में भी कहा कि यह 'हरिजन' शब्द डोम, शूद्र कहे जाने वाले शब्दों से तो कहीं बेहतर है।

वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ी जाति के कई लोग आज भी पढ़ाई–लिखाई करने की अपेक्षा शिल्पकला को ही महत्व देते हैं। वे आज भी इस पेशे को अपना अधिकार मानते हैं। ये सही है कि आज भी उनके साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता है, लेकिन फिर भी उन्हें पढ़ने–लिखने की जरूरत महसूस नहीं होती और वे अपनी इसी पुश्तैनी कला पर गर्व करना चाहते हैं। कहने को तो उत्तराखण्ड में 100 प्रतिशत लोग पढ़े–लिखे हैं, लेकिन वास्तविकता में वहां दलितों की दो प्रतिशत महिलाएं ही पढ़ी–लिखी हैं और 45 प्रतिशत से अधिक दलित पुरुष पढ़े–लिखे नहीं हैं। वे केवल अपना नाम लिखने के अलावा कुछ नहीं जानते हैं। इस विषय पर पिछले पांच सालों में उत्तराखण्ड में कोई चर्चा नहीं हुई।

उत्तराखण्ड में सवर्ण बहुल इलाके में असमानताएं व्याप्त हैं। ये असमानताएं सवर्णों और दलितों के बीच ही व्याप्त नहीं है बल्कि इस असमानता का शिकार कई सवर्ण भी हैं कई ऊंची जाति के सवर्ण थोड़ी सी नीची जाति वाले सवर्णों के साथ समानता का व्यवहार नहीं करते। वे अपने से छोटी जाति के सवर्णों के साथ अपने बच्चों का रिश्ता नहीं करते हैं। असमानता की यह स्थिति केवल सवर्णों के बीच ही मौजूद नहीं हैं दलितो के बीच में भी आपस में विरोध है और ऊंच–नीच की जाती है। दलित समुदायों के अंदर भी ढ़ोल बजाने वाले और लोहारों के बीच में शादियां नहीं

होती हैं। एक लुहार ढ़ोल बजाने वाले के हाथ का खाना नहीं खाता है। अगर किसी ढ़ोल बजाने वाले की लड़की को लोहार के लड़के से प्रेम हो जाए तो वहां भी शादी के नाम पर ऐसी ही लाठियां चलती हैं जैसे ब्राह्मणों एवं दलितों के बच्चों के बीच शादी की बात होने पर चलती हैं। मैं ये कहना चाहता हूं कि दलित समाज के अंदर भी ये सारी स्थितियां हैं तो इसके खिलाफ एक नव जागरण की मुहिम खुद दलित समाज के अंदर भी चलानी होगी।

मैं अपनी पूरी बात के बाद एक टिप्पणी करना चाहूंगा कि इस समस्या को हल करने के लिए हमें जाति व्यवस्था को पूरी तरह समझने की आवश्यकता है। तभी हम इस समस्या का उचित हल ढूढ़ पाएंगे। आज अधिकतर लोग इस समस्या को हल करने के लिए भावनात्मक तरीकों का ही प्रयोग करते हैं, जबकि मुझे लगता है कि इस समस्या को हल करने के लिए भावना के साथ–साथ राजनीति का भी सहारा लेना चाहिए क्योंकि भावनाओं को काबू कर पाना कठिन है। आज कई राजनीतिक पार्टियों ने दलितों के सपनों एवं उनकी भावनाओं को समझते हुए उन्हें राजनीति में हिस्सेदारी दी है। दलित नेतृत्व के कारण अन्य दलितों को भी लाभ हो रहा है। वे अपनी बातों एवं समस्याओं को अन्य लोगों के सामने आसानी से रख पा रहे हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की क्षमता जुटा रहे हैं। मेरा यही कहना है कि हम लोग समता आंदोलन को एक राजनीतिक रूप से समझने का प्रयास करें और इसका हल ढूढंने का प्रयास करें।

इस राज्य में दूसरा चुनाव होने जा रहा है। हम चाहते हैं कि इस बार हमारे अनुसार सरकार आए या ना आए लेकिन हमारे अगले पांच साल की नीतियों में समानता की बात जरूर होनी चाहिए। हम आने वाली सरकार के साथ समानता के विषय पर बातचीत करते रहें, और उनसे ऐसी नीति बनवाएं कि उनसे कहीं न कहीं उपेक्षित और दलित लोगों को न्याय मिले। हमें राजनीति में दलितों की हिस्सेदारी बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए ताकि दलितों की भलाई एवं उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा देने की और अधिक कोशिश की जा सकें। धन्यवाद!

अन्य वक्ताः– हमारे दलित साथियों ने पिछले पांच सालों में तीन छोटे–छोटे गांवों में स्थित जीवन शालाओं में काम किया है। वे लोग ब्राह्मण परिवारों में रहते थे और सामूहिक भोजों में भाग लेते थे। वहां वे भोजन बनाने से लेकर भोजन बांटने तक के कामों में हिस्सा लेते थे। वे नेतृत्व एवं लीडरशिप में काम करते थे। इसी प्रकार यदि दलितों को सभी क्षेत्रों में लीडरशिप मिल जाए तो उनकी संवैधानिक स्थिति के

साथ–साथ सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्थिति में भी सुधार आ जाएगा। क्योंकि संवैधानिक अधिकार मिल जाने के बाद ही आप सामाजिक, राजनीतिक सत्ता के केन्द्रों में हस्तक्षेप कर सकते हैं और संवैधानिक अधिकारों के द्वारा लोकतांत्रिक ताकत प्राप्त की जा सकती है।

हमारे समाने एक अन्य बात आती है। एक नारा था जो केवल एक नारा नहीं बल्कि एक गांव की वो स्थिति है जिसके विषय में हम चिंतित रहते हैं और जिसमें सुधार लाने की जरूरत है। उसमें सभी साथियों द्वारा लगाया गया एक नारा हैः

गांव–गांव में ग्राम सुधार।
हमारा गांव, हमारी सरकार।।

इस नारे के अनुसार यदि हम, हमारे गांव तथा हमारी सरकार की ही बात करें तो इससे उपेक्षित वर्ग की बात तो धरी की धरी रह जाएगी। इसलिए हमें इस सोच में सुधार लाना ही होगा। यहां लगभग सभी विषयों पर बात हो चुकी हैं लेकिन अगर आपकी इजाजत हो तो मैं कुछ कहना चाहूंगा जैंसे अभी अरूण जी कह रहे थे कि राजनीति के आधार पर ही कई चीजें तय होती हैं। ये सही है कि समाज महत्वपूर्ण है और राजनीति उसका एक जरिया है। समाज में आए बदलावों को भी राजनीति ही तय करेगी। लेकिन कुछ विद्वान लोकल और नेशनल के द्वंद में फंसे हुए हैं। उन्हें समझना चाहिए कि इन द्वंदों का कुछ अर्थ है भी या नहीं। क्योंकि मुद्दे केवल स्थानीय नहीं होते और आप तो कह रहे थे कि राजनीति में केवल स्थानीय और निजता के ही मुद्दे होते हैं, बल्कि ऐसा कुछ भी नहीं है। क्योंकि राजनीति में निजता और स्थानीयता के साथ–साथ राष्ट्रीय परिदृश्य भी शामिल होते हैं। जैसे कि अभी देखने में आया है कि यहां के अधिकतर मुसलमान कांग्रेस से खफा हैं लेकिन अभी होने वाले चुनावों में ही देखिए कि वही मुसलमान अल्मोड़ा के चुनावों में कांग्रेस को ही वोट देगा। क्योंकि यह सब राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निर्धारित हो रहा है। स्थानीय दृष्टि से कांग्रेस उसके खिलाफ है लेकिन फिर भी वे वोट देते समय राष्ट्रीय दृष्टि पर विचार करता है और उसे लगता है कि राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस उनके हित के लिए बात करती है। इसलिए वे बीजेपी को वोट देने की बजाय कांग्रेस को ही वोट देंगे। इस प्रकार राजनीति, स्थानीय और राष्ट्रीय सोच का परिणाम है।

आज तक तो जनता बहुत सोच–समझकर वोट करती आई है। वो अपने हिसाब से बहुत अच्छे विश्लेषण से वोट करती है। लेकिन आज राजनीति का स्तर गिरता जा रहा है। आज लोगों की राजनीति में कोई रुचि नहीं रही है। आज लोगों की सोच वोट देने तक सीमित रह गई है। आज वोट देने का अर्थ, भीख देना भर रह गया है। आज

बहुत कम लोग वोट देते हैं और जो लोग वोट देते भी हैं वे बिना कुछ सोचे–समझे बेमन से वोट देते हैं और समझते हैं कि उनका काम खत्म हो गया है।

इन्हीं सब बातों को सोचकर हमने इस यात्रा का आयोजन किया है। हम राजनीति को समाज के प्रति जिम्मेदार बनाना चाहते हैं। हम राजनीति को जन आधारित प्रजातंत्र के रूप में विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं। जैसा कि हम हर बार देखते आए हैं कि हर चुनाव से पहले प्रत्येक पार्टी अपना मैनिफैस्टो तैयार करती है और उसका प्रचार–प्रसार करती है लेकिन चुनाव होते ही उन सब बातों को भुला दिया जाता है। इस यात्रा में हमें हर पार्टी से उनके पिछले मैनिफैस्टो के बारे में पूछने के साथ–साथ उसके आधार पर किए गए कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहिए, उनसे जवाब पूछना चाहिए कि उन्होंने पिछले मैनिफैस्टो में कहे गए काम किए भी हैं कि नहीं। अगर हम अपनी इस यात्रा में इतना कर सके तो बहुत बड़ा काम होगा। जैसा कि हमें दिखाई दे रहा है कि इस यात्रा में स्थानीयता और राष्ट्रीयता के संबध में एक महत्वपूर्ण बात होने वाली है, हमारे उत्तरांचल के साथी भी स्थानीयता के सवाल को चिन्हित करने में सफल हो जाएंगे। यदि हम इस बार के जन घोषणा पत्र में स्थानीयता के साथ–साथ अन्य अनेक काम जैसे पुल, स्कूल तथा हैल्थ सैंटर बनाने आदि के कामों को शामिल न भी कर पाएं तो भी अगर हम इन दिनों होने वाली यात्रा में इन छोटी–छोटी बातों को उठा सके तो समझिए यह यात्रा काफी सफल हो गई है।

यह एक बहुत ही जबरदस्त राजनीतिक यात्रा है। जैसे कि अभी अरूण जी ने कहा है कि इस राजनीति में लोग विधवा विलाप कर रहे हैं। लेकिन मैं समझता हूं कि यह विधवा विलाप नहीं हैं बल्कि पहली बार राजनीति के इस उत्सव में अधिक विधवाएं शामिल हुई हैं और उन्हें चिन्हित भी किया गया है, एक अच्छी बात है।

अभी हमने सुना के कुछ पिछड़ी जाति के लोग पढ़ने–लिखने में रुचि लेने की बजाय अपने पुश्तैनी कार्यों जैसे शिल्पकारी को ही करना चाहते हैं, लेकिन वर्ष 1950 के आस–पास समाज में एक बदलाव आया। जिसमें उन्होंने अनुसूचित जातियों के साथ होने वाले भेदभाव को खत्म करने के लिए अनुसूचित जाति को ही खत्म करने की सोची। जिसके लिए उन्होंने पिछड़ी जाति के लोगों को जनेऊ देने के साथ उन्हें 'आर्य' शब्द भी दिया। अब वे आर्य हो गए और उन्होंने मांस–मच्छी का सेवन करना भी छोड़ दिया। जिससे वे शुद्धो की श्रेणी में ही आ गए। इस आंदोलन में उन्हें ऐसी शिक्षा दी गई कि उन्होंने आरक्षण तक की मांग करनी छोड़ दी और लगातार 23 वर्षों तक उन्होंने आरक्षण की मांग नहीं की। इस प्रकार इस बड़े आंदोलन के द्वारा

शिल्पकारों ने अपने वर्षों से चले आ रहे कामों को भी छोड़ दिया। इसलिए आज हमें भी अपने समाज में फैली इस असमानता को दूर करने के लिए ऐसे ही किसी बड़े आंदोलन का सहारा लेना होगा। धन्यवाद।

दलित सम्पति के अधिकार और कई पुरानी पीढ़ी से चले आ रहे संस्कारों के कारण ही पिछड़ा हुआ है। अपने संस्कारों के कारण वो भाषा तो सीख सके और भाषा सीखने के बाद संस्कारों का अनुसरण करने के काबिल भी बन सके लेकिन फिर भी वो स्वर्णों के बराबर नहीं पहुंच पाए। जैसे जगजीवन राम का ही उदाहरण देखिए, उनमें जवाहर लाल तथा महात्मा गांधी की तरह तमाम योग्यताएं थी लेकिन उनके पास महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू की तरह योग्यता नहीं थी इसलिए वे उनकी तरह प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके। हो सकता है मेरी ये बात कुछ लोगों को बुरी लगे लेकिन जिन लोगों ने गांधी वाङःमय पढ़ी हो और जगजीवन राम की सांस्कृतिक भाषा एवं सांस्कृतिक शब्दों को जाना हो उन्हें पता चल जाएगा कि दोनों की भाषा का स्तर लगभग एक जैसा ही था। लेकिन जगजीवन राम के पास गांधी जी वाले संस्कार नहीं थे। गांधीजी के पास सत्य का हथियार था और संस्कारों के कारण ही वे अपने इस हथियार का प्रयोग कर सके और नाम कमा पाए। लेकिन जगजीवन राम सत्य के संस्कार को लोकसभा में नहीं चला सकते थे। उस सत्य को खाली भाषा, सिद्धान्त और शिक्षा के आधार पर ही नहीं चलाया जा सकता था बल्कि उसके लिए संस्कारों की भी आवश्यकता पड़ती है और वो संस्कार उनके पास नहीं थे। गांधी जी ने अपने संस्कारों के आधार पर लोगों को जोड़ने का प्रयास किया और वो लोगों को भी संस्कार बांटते रहे लेकिन इन संस्कारों से समता कायम नहीं की जा सकती है। अगर ऐसा होता तो किसी बड़े पद पर बैठने के बाद आप भी उनकी बराबरी कर सकते थे, आज कई सरकारी तथा गैर सरकारी पदों पर कई पिछड़े लोग बैठे हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे लोग अन्य लोगों एवं सवर्णों से बराबर एवं समानता की स्थिति मे आ गए हैं। इससे तो असमानता घटने की बजाय और बढ़ने लगती है। आज लोग मुझसे मेरे ज्ञान के बारे में पूछने की बजाय ये पूछते हैं कि आप ये जूता कहां से लाए, कुर्ता कहां से लाए ये किस दर्जी से सिलवाया है आदि। मैं ये कहना चाहता हूं कि आज भी लोग संस्कारों पर विश्वास करते हैं यहां तक कि किसी से कुछ पूछने एवं ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी वो संस्कारों का ध्यान जरूर रखते हैं। मुझे लगता है कि इन बातों से मैं अपनी मूल बात से भटक जाऊंगा इसलिए मैं मुख्य एवं चुनाव की बात पर आता हूं। मैं चाहता हूं कि अधिक से अधिक लोग चुनाव में हिस्सेदारी करें ताकि वे चुनावी प्रक्रिया को आसानी से समझ सकें। और आगे चलकर किसी राजनीतिक पद को प्राप्त कर सकें, और सत्ता में बैठे अन्य लोगों को भी अपनी ताकत का एहसास

करा सकें। क्योंकि ताकत के एहसास से ही समाज आगे बढ़ सकता है। और समाज को बदलने एवं उसमें बदलाव लाने में सक्षम हो सकता है।

वक्ताः— अध्यक्ष जी और मंच पर उपस्थित साथियों को नमस्कार। संचालक महोदय के बाद मैं इस विषय पर अपनी बात रखना चाहूंगा। इस यात्रा में बहुत से लोग भाग लेना चाहते हैं इसलिए हम इस यात्रा को सावधानी और सजग ढंग से करेंगे। अरूण जी ने इस यात्रा के बारे में अपने विचार रख दिए, जो लोग उनकी बात से सहमत हैं वे अपना दृष्टिकोण भी दें ताकि इस यात्रा के संबध में अन्य लोगों के विचार भी जाने जा सकें।

हम गांधी जी की पुण्यतिथि 30 जनवरी से कस्तूरबा जी की पुण्यतिथि 22 फरवरी तक एक समता रथ चलाएंगे। और उसी के दौरान अपना घोषणा पत्र भी बाटंगे। हम इस यात्रा के दौरान जनता से संवाद भी करेंगे। हमारी इस यात्रा का उद्धेश्य जनता को ज्ञान देने की बजाय स्वंय ज्ञान प्राप्त करना है क्योंकि हम दूसरों को तो बहुत सी नसीहत देते हैं लेकिन स्वंय उन बातों को नहीं मानते हैं, हमारी इसी प्रवृति के कारण ही गांधीजी जैसे बड़े आदमी के होते हुए भी हम समाज में समता कायम नहीं कर पाए। आज ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गई हैं कि एक पार्टी जिसका कोई निश्चित ढ़ाचा नहीं है, जिसका नेतृत्व किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में नही है वो पार्टी अपने प्रत्याशी खड़े करती है और तमाम दलित वोट बी.एस.पी. को पड़ जाते हैं। ये परिस्थितियां हमारी अपनी कमियों तथा दलित समाज को न समझ पाने तथा करूणा और संवदेना की कमी के कारण पैदा हुई हैं। इस यात्रा के दौरान हमें इन सब बातों के बारे में सोचना होगा।

हम इस यात्रा के दौरान समाज नीति की महत्वपूर्ण बातों को समझने तथा उसमें आई कमियों के कारणों को जानने की कोशिश करेंगे। इसके अलावा हम समाज की शक्तियों को भी अपने घोषणा पत्र में शामिल करेंगे। हम इस यात्रा के दौरान गोष्ठियां और संवाद करेंगे जिसमें हम सच्चाई, समता, स्वावलम्बन, स्वदेशी, सादगी और संस्कृति के सवाल के बारे में बात करेंगे। हम इस यात्रा का प्रयोग वोट मांगने के लिए नहीं करेंगे बल्कि इस यात्रा के दौरान तमाम दलों के बारे में विश्लेषण करना होगा लेकिन इस यात्रा के दौरान किसी दल विशेष के खिलाफ या किसी दल विशेष के पक्ष में प्रचार नहीं किया जाएगा। क्योंकि हमारा संबध किसी भी दल विशेष से नहीं है। लेकिन राजनैतिक दलों के संदर्भ में हमारे कुछ साथियों की अलग ही राय है। हमारे एक साथी का कहना है कि इस दौरान यात्रा करने से दलों को प्रतिस्पर्धा की

छाया से नहीं बचाया जा सकता। और वहीं अरूण कुमार जी ने कहा कि इन चुनावों के दौरान अपनी ताकत का प्रदर्शन करो और अपनी हैसियत बताओ। इसलिए लोग अपनी समझ के अनुसार इस यात्रा का प्रयोग कर सकते हैं। हमने इस यात्रा के लिए जो समय चुना है उसका राजनैतिक महत्व है क्योंकि अभी चुनाव होने वाले हैं और ऐसे में सभी राजनैतिक दल अपनी–अपनी ओर से चुनावों की तैयारी में लगे हुए हैं। लगभग सभी दलों ने अपना घोषणा पत्र तय कर लिया है तो ऐसे में एक गैर राजनीतिक यात्रा कर पाना कठिन है। अब जब ये यात्रा हो रही है तो हमें प्रयास करना चाहिए कि हम अपना सही घोषणा पत्र तय कर सकें। हमें गंभीरता से सोचते हुए इस यात्रा का राजनैतिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

अध्यक्षः– अभी तक हमारे साथी दलित आंदोलन की स्थिति और उसके प्रति तिरस्कार की भावना के बारे में बोले। अब हम अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए मुकेश बहुगुणा और सुरेश भाई जी से उनके पिछले चुनावी अनुभवों के बारे में जानेंगे। और उसके बाद सभी लोग अपनी–अपनी ओर से टिप्पणीं करेंगे।

सुरेश भाई :– आप इस यात्रा के पक्ष एवं विपक्ष की बात मत कीजिए, यदि आप ऐसा करेंगे तो बहुत से लोग इस यात्रा से बाहर चले जाएंगे। इस यात्रा के पक्ष एवं खिलाफ होने का अर्थ है आप इस यात्रा को चाहते हैं कि नहीं चाहते हैं, अब जब ये यात्रा शुरू ही हो गई है तो इस तरह की बहसों का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए इसके अलावा और भी बहुत से सवाल हैं जिनपर विचार किया जाना चाहिए। यहां आए लोग कई राजनैतिक दलों से संबध रखते हैं, अब जैसे मैं भी उत्तराखण्ड क्रांति दल से संबध रखता हूं , यहां मेरे और साथी भी आए हैं जिन्होंने अपनी–अपनी बात रख दी है। अब ऐसे में आपका कहना है कि जो इस यात्रा के पक्ष में हैं वे पक्ष में कहें और जो विपक्ष में हैं वे विपक्ष में कहें और एक राजनैतिक कार्यक्रता के रूप में मैं जानता हूं कि चुनाव के समय ऐसा कर पाना कठिन है। इसके लिए आप तय कर दीजिए कि इस यात्रा में किसी राजनैतिक दल विशेष के बारे में बात नहीं होगी ऐसी बातें बाद में की जा सकती हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि जब आप इन चीजों को पक्ष या विपक्ष में रखेंगे तो ऐसे में हमारे कई राजनीतिक दलों से आए साथी गौण हो जाएंगे।

वक्ताः– यहां खुलकर बातें हो रही हैं जो यात्रा नहीं चाहते वो पहले बोलेंगे और जो यात्रा चाहते हैं वो बाद में बोलेंगे। तमाम चर्चा के बाद ज्ञात हुआ कि बहुसंख्य लोग यात्रा चाहते हैं। और ये स्पष्ट हो गया कि दलों में और चुनाव को अपनी राष्ट्र सरकार मानने वाले लोग इसमें शामिल नहीं होंगे। मैं दलों के तर्कों में फंसना नहीं चाहता हूं।

मैं सिर्फ ये कहना चाहता हूं कि लोकतंत्र का तकाजा है कि तुम जो कुछ भी करना चाहते हो उससे पहले लोगों की बातों को ठीक से सुन लो। कई लोगों के मन में कई तरह की दुविधाएं रहती हैं, अब अगर यहां पक्ष और विपक्ष वाले बोलेंगे तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपनी दुविधाएं न रखें।

यहां कई राजनैतिक पार्टियों के लोग मौजूद हैं। कुछ पार्टियों के एक से अधिक लोग भी मौजूद हैं। लेकिन फिर भी प्रत्येक आदमी की अपनी अलग राय हो सकती है। अब अरूण कुमार को ही देख लीजिए इनकी राय अन्य लोगों से मिलती है लेकिन वे किसी राजनीतिक पार्टी में नहीं हैं फिर भी सभी पार्टियों की बहस करते हैं लेकिन अपने को राजनैतिक कार्यकर्ता मानते हैं। उनकी राय है, कि राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण काम चुनाव है तो उसमें चुनाव की बात करो और आप अपनी पोजिशन के बारे में बात करो। मुझे इस पूरी बहस के बाद ये लगने लगा है कि हमें अपने इस कार्यक्रम को सामाजिक आंदोलन से जोड़ना चाहिए।

पुरुषोत्तम शर्माः— मैं पुरुषोतम शर्मा सी.पी.आई. (एम.एल.) से हूं। अभी यहां पक्ष और विपक्ष के बारे में बात हो रही थी। यहां इस यात्रा के मकसद और इस यात्रा के होने या न होने के बारे में बात हो रही थी। एक पक्ष यदि कह रहा है कि यात्रा होनी चाहिए तो दूसरा पक्ष भी यह नहीं कह रहा है कि यात्रा नहीं होनी चाहिए। वो भी यह कह रहा है कि यात्रा तो हो लेकिन इस समय उसका मकसद क्या हो? और मुझे भी लगता है कि हम लोग यात्रा न चाहने वाले नहीं हैं लेकिन ये ठीक है कि हम लोगों में से कुछ लोग आंदोलनकारी या समाजिक कार्यकर्ता हैं जो चुनाव के समय किसी राजनैतिक पार्टी के साथ अपने जुड़ाव को सीधे—सीधे प्रदर्शित नहीं करते या उनके लिए काम नहीं करते हैं। लेकिन उस दौरान वो कुछ करना चाहते हैं। चुनाव के समय एक ऐसा माहौल होता है कि कोई कुछ भी कहे, आम आदमी उसे सुनना चाहता है।

जैसे कि आप सभी जानते ही हैं कि कोई भी सरकार पांच साल तक काम करती है और जनता चुनावों के समय अपना निर्णय सुनाती है। जनता जिन मुद्दों से लगातार पांच साल तक जूझती रही है, चुनाव के समय वह उन मुद्दों के प्रति एवं उन पर काम करने वाली राजनैतिक पार्टी के प्रति अपना निर्णय सुनाती है। और समाज के एक सामाजिक कार्यकर्ता, एक आंदोलनकारी तथा एक जागरूक नागरिक होने के नाते हमारा ये दायित्व होना चाहिए कि हम जनता को सही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करें। अगर हम सीधे—सीधे उन्हें किसी पार्टी विशेष को वोट देने के बारे में न भी कहें तो

हमें उन्हें एक सही प्रत्याशी एवं पार्टी को वोट देने के लिए प्रेरित करना चाहिए। यदि हम ऐसा कर पाए तो हमारी ये यात्रा काफी हद तक सफल साबित होगी।

हम देखते हैं कि हर चुनाव से पहले राजनैतिक दल अपने प्रचार के लिए पोस्टरों, पर्चों, गोष्ठियों तथा सभा–सम्मेलनों का सहारा लेते हैं। ऐसे समय में एक से अधिक प्रत्याशियों के मैदान में रहने के कारण लोगों के मन में भ्रम की स्थिति रहती है। इसके अलावा आज से पांच या छह साल पहले किस पार्टी ने क्या तथा कौन से काम किए हैं उनके बारे में भी जनता भ्रम की स्थिति में रहती है। अगर हम लोग उन्हें इस भ्रम में फंसने से निकाल सके एवं उन्हें किसी भी प्रत्याशी या पार्टी के बारे में सही–सही निर्णय दे पाए तो समझो हमारी यह यात्रा काफी हद तक सफल हो गई।

उत्तराखण्ड में एक ओर समस्या मौजूद है। मूलतः उत्तराखण्ड एक सवर्ण बहुल इलाका है। और अगर मैं ये कहूं कि सवर्ण बहुल ही नहीं बल्कि सवर्ण मानसिकता का इलाका है तो गलत नहीं होगा। माना कि वहां दलितों की आबादी कम है लेकिन वहां जितने भी दलित रहते हैं वे कमजोर, पिछड़े तथा इतने अधिक गरीब हैं कि उनके पास अपना भोजन पैदा करने तक के लिए जमीन तक नहीं है। कई साल पहले तक ये दलित अपने काश्तकारी के पेशे से जुड़े रहते थे और सवर्ण लोगों के लिए काश्तकारी का काम करके बदले में अनाज प्राप्त कर लेते थे, लेकिन धीरे–धीरे सवर्णों को उनकी इस दस्तकारी की आवश्यकता नहीं रही जिससे अब उन दलितों के पास काम की कमी तो हो ही गई उसके साथ अब वह अपने लिए अन्न भी पैदा नहीं कर सकता था क्योंकि उसके पास खेती के लिए जमीन ही नहीं थी। जिससे मजबूर होकर उसने सवर्णों से जमीन का कुछ टुकड़ा लेकर उस पर खेती करनी शुरू कर दी। इसके अलावा वे अपनी छोटी–बड़ी समस्याओं के लिए सवर्णों से कर्जा भी ले लेता था। इस प्रकार सवर्ण उन लोगों की कई समस्याओं में उनकी मदद करते आ रहे हैं। चुनावों का समय नजदीक आते ही दलितो की भलाई के लिए काम करने वाले विभिन्न दल अपनी रैलियों के माध्यम से यह बताने का प्रयास करते हैं कि उनके एहसानों के तले जीने वाले दलित उनके साथ हों। लेकिन चुनावों से दो दिन पहले ही गांव में कोई बाहुबली सवर्ण आ जाता है और कहता है कि, 'तुम आजकल जिस भी पार्टी के साथ घूमना चाहते हो घूमो, लेकिन अगर तुमने हमारी मर्जी के अनुसार वोट नहीं दिया तो हम तुमसे अपनी जमीन छीन लेंगे और वक्त–बेवक्त पर दी जाने वाली सहायता भी बंद हो जाएगी।' इससे डरकर कोई भी दलित सवर्णों की इच्छा के अनुसार ही वोट देता है। मैदानी इलाकों में बूथ कैपचरिंग, गरीबों और दलितों को वोट न डालने देना तथा लाठी एवं गोली के बल पर उनको डराने तथा धमकाने की प्रक्रियाएं होती हैं वहीं

पहाड़ी इलाकों में दलितों को इसी तरह धमका दिया जाता है। इस सब से ऐसा लगता है कि आज भी हमारे पहाड़ों मे सामंती व्यवस्था और सवर्ण मानसिकता काम कर रही है। हम उन क्षेत्रों में पिछड़े लोगों के लिए काम करना तो चाहते हैं लेकिन वहां के लोगों की इसी मानसिकता के चलते हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। यदि हमें वहां की स्थ्यितियों को बदलना है तो हमें वहां के लोगों की इसी मानसिकता को समझकर उसके बारे में सोचना होगा।

जैसे कि हम सब जानते हैं कि यह यात्रा चुनावों के समय में हो रही है और हम चाहते हैं कि किसी दिन देहरादून, अल्मोड़ा तथा ऋषिकेश जैसे कुछ चुने हुए क्षेत्रों में सभी राजनैतिक पार्टी के प्रत्याशियों को इक्ट्ठा किया जाए ताकि वे बता सकें और बहस कर सकें कि उस प्रदेश की जनता के हितों के लिए उनके पास क्या कार्यक्रम तथा नीतियां हैं और वे उन नीतियों को किस तरह से लागू करने पर यकीन रखती हैं आदि। क्योंकि आज के समाज में भी अधिकतर लोग वोट डालने से पहले किसी पार्टी की नीतियों के बारे में नहीं जानते और न ही जानना चाहते हैं, वे तो वोट डालते समय प्रत्याशी की जात, धर्म एवं इलाके को देखते हैं। और कई लोग तो ऐसा सोचते हैं कि मेरा पिता कांग्रेस को वोट देते हुए आया है तो मैं भी कांग्रेस को ही वोट दूंगा, मेरा परिवार अगर भाजपा को वोट देता है तो मैं भी भाजपा को ही वोट दूंगा। वे यह नहीं सोचते हैं कि मेरा पिता उस पार्टी को क्यों वोट देता है, उस पार्टी की नीतियां एवं विचार क्या हैं आदि। हमें ऐसे लोगों की सोच को बदलने का प्रयास करना चाहिए इसके लिए हमें एक–एक दिन के हिसाब से वहां के हर क्षेत्र में खड़े प्रत्याशियों को एक सामने एकत्र करना चाहिए ताकि वे अपनी बातों एवं नीतियों को रख सकें और लोगों की मनःस्थिति कुछ सपष्ट हो पाए और वे पूरी तरह सोच–समझकर अपने मत का प्रयोग कर सकें, ताकि अच्छी तरह सोच–समझकर चुने नेता उनके हितों की रक्षा कर सकें। धन्यवाद!

अन्य वक्ताः– इस यात्रा के बारे में अरूण जी तथा प्रताप जी ने जो बात की उसके बारे में बात करने की अपेक्षा हमें यह सोचना चाहिए कि उन्होंने ये बातें किन संदर्भों में की हैं। मुझे लगता है कि अगर दलों का आन्तरिक स्वास्थ्य ठीक होता तो वे राजनैतिक काम और राजनैतिक संगठन में दलितों के मुद्दे भी जरूर उठाते। क्योंकि जैसा कि आप लोगों ने कहा कि गांधीजी जैसी विलक्षण प्रतिभाएं होने के बावजूद भी दलितों को काफी मेहनत करनी पड़ती है और सर्वोदय के विषय में तो उनका कोई स्थान ही नहीं है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं और इस विषय में उत्तराखंड एक अपवाद है, वहां अपवाद स्वरूप दलित लोग नेतृत्व करते हैं। इसी तरह उत्तराखण्ड के

पिछले चुनावों के आंकड़ों को देखें तो दलित समाज से आए कई उम्मीदवार कुछ राजनीतिक काम किए बगैर तथा किसी तन्त्र के बिना भी राजनीति में प्रवेश करते हैं। अगर दलित समाज का कोई उम्मीदवार सामान्य सीट से भी खड़ा हो जाता है तो दलितों के वोट का एक बड़ा हिस्सा बी.एस.पी. की झोली में चला जाता है। इससे स्पष्ट है कि दलित समाज में एक सुगबुगाहट है, उनकी अपनी एक समझ तथा सपना है। लेकिन तमाम वामपंथी दलों सहित अन्य लोकतांत्रिक दल उसको समझ नहीं पाते हैं। इसीलिए जो पार्टी उत्तराखण्ड के सपने तथा आंदोलन के खिलाफ थी, वही पार्टी अलग ही तरह के बयान देती है तो भी पूरे वोट उन्हीं को मिल जाते हैं। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है।

हमने सोचा था कि चुनाव से पहले व्यापक परिवर्तन वाली पार्टियों का एक मोर्चा बना दिया जाए। इसके लिए भुवन, मुकेश तथा तिवारी जी ने सी.पी.आई., सी.पी.एम., लोकवाहिनी के साथ–साथ जनमोर्चा और यू.के.डी. जैसे क्षेत्रीय दलों के साथ छोटे गोरखा दलों के साथ बातचीत की। अब इसी संदर्भ में 11 तारीख को एक बैठक होने वाली है लेकिन लगता इस तरह का मोर्चा बनाने में अब भी कठिनाइयों का ही सामना करना पड़ रहा है। अगर ये मोर्चा बन भी जाए तो माफिया के बारे में बोलने वाले लोग हाशिये पर चले जाएंगे। सामान्य राजनैतिक कार्यकर्ता एक मुद्दे को दूसरे मुद्दे से दलित मुद्दे को माफिया के मुद्दे से, माफिया को रोजगार से, रोजगार को निजीकरण से, निजीकरण को इकोलोजिकल की भावी संभावनाओं से जोड़ने का प्रयास करते हैं जो आसान नहीं जान पड़ता और इससे कोई हल निकल ही नहीं सकता है। भारतीय मानसिकता में भी अमेरिकी भोगवादी भावनाओं को स्थान मिलता जा रहा है। बंगाल में ही देख लीजिए वहां लोग किसी भी वस्तु के ब्रांड की बात करते समय सोवियत संघ तथा वियतनाम की बात करते हैं। आज सभी लोग पूंजीवाद और बहुराष्ट्रीय निगमों की वकालत करने लगे हैं लेकिन वे यह नहीं जानते कि इस पूंजीवाद को माफिया ही संचालित करता है। और इससे हमारे देश के हजारों–लाखों लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। इसके अलावा वहां दलितों एवं वहां के स्थानीय लोगों के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं हो रहा है। इसीलिए उत्तराखण्ड के अधिकांश लोग वहां की क्षेत्रीय एकता एवं यू.के.डी. या फिर कांग्रेस के पक्ष में वोट डालना चाहते हैं। लेकिन हमारे विचार में कांग्रेस के विचार दलित विरोधी दिखाई देते हैं। वे पूरे समाज एवं हिमालय में रोते ही रहते हैं किसी भी विषय पर एकमत नहीं हो पाते हैं। इसलिए हम सीधे कांग्रेस के प्रचार का काम नहीं कर सकते हैं। मैंने सोशलिस्ट फ्रंट के लोगों से विस्तार से बात की वे कहते हैं कि यदि यू.के.डी दलितों के हितों की बात नहीं करेगी तो वे उनके साथ जुड़ने की अपेक्षा घर बैठ जाना पसंद करेंगे और कांग्रेस के साथ तो हम जुड़ना

ही नहीं चाहते हैं तो ऐसी स्थितियों में तो हमें घर ही बैठना पड़ेगा। इस मंच का निमार्ण हमने अपने ऐसे ही साथियों के लिए किया है वे यहां आकर बिना किसी संकोच के अपनी बात रख सकते हैं। हमारे मन में दलित समाज के लिए जो पीड़ा है हम उसे अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इसके अलावा हम जाति को तोड़ने, समाजिक समता, अस्पृश्ता तथा हिमालय को बचाने के सवाल पर बात करेंगे। हम लोग सम्पूर्ण जनता को एक विकेन्द्रीकृत स्वराज की राजनीति से जोड़ना चाहते हैं।

अभी कुछ लोगों ने कहा कि गांधीजी के समान गुणवान होने के बावजूद भी कोई दलित उनकी तरह नहीं बन सकता क्योंकि उनके पास गांधीजी जैसे संस्कार नहीं हैं। आज भी गांधीजी के शहादत दिवस तथा कस्तूरबा गांधी की पुण्य तिथि पर कोई यात्रा न भी करें तो भी इन दोनों दिनों में कम से कम 10 हजार महिलाएं एकत्र हो जाती हैं। इसके अलावा देश के किसी भी इलाके में गांधी जी एवं कस्तूरबा के नाम पर आज भी हजारों लोग एकत्र हो जाते हैं। मेरे कुछ मित्रों का कहना है कि गांधीजी के समय मौजूद परिस्थितियों के कारण ही वे इतना नाम कमा पाए, आज अगर स्वंय गांधी जी भी चाहें तो वे अपने काम की हूबहू नकल नहीं कर सकते हैं। हम सभी को भी गांधीजी द्वारा दिए गए दिशा संकेतों से उत्तराखण्ड, देश तथा हिमालय के लिए काम करना चाहिए। हमारे उत्तराखण्ड में भी ऐसे कई साथी हैं जो इन विषयों पर काम करना चाहते हैं। इस विषय पर पी.सी.तिवारी, बोलकाकर या फिर विजय प्रताप जी भी काम करने के लिए तैयार हैं और अगर हमारे इन साथियों ने इसमें भाग न लिया तो हमारे ऐसे अनेक साथी हैं जो इन मुद्दों पर आस्था रखते हैं और इनके लिए काम करना चाहते हैं।

हमें जनता को जातिगत सवाल के विषय पर लामबंद करना है। इसके लिए जनता के बीच जाकर संवाद करने की आवश्यकता है। पुशपेश त्रिपाटी जैसे विधायक अभी–अभी राजनीति में गए हैं वे स्वंय गांव–गांव जाकर पंचायतों की बैठकों में पंचों से बात करते थे। इसके अलावा उत्तराखण्ड क्रांति दल अध्यक्ष जी भी यहां आए और उन्होंने बात की। मैंने उत्तराखण्ड क्रांति दल के अलावा ऐसी कोई पार्टी नहीं देखी जो स्वंय जनता के बीच जाकर उनसे बातचीत करती है। हम लोगों का आपस में कोई झगड़ा भी नहीं है। हम लोग सहयोग के रवैये से काम करेंगे। यहां कुछ दलों के बीच में आपस में छोटे–मोटे मतभेद हैं लेकिन वे तो राजनीतिक संस्कृति है और वे उसे निपटा लेंगे। पहाड़ की सादगी और सरलता ही उसकी संस्कृति है। इसलिए हम इसी सादगी से अपना घोषणा पत्र निकालेंगे और शांतिपूर्ण तरीके से पहाड़ की भलाई का काम करेंगे।

अन्य वक्ताः– आज के दौर में कई संगठन ऐसी बड़ी–बड़ी बातें करते हैं कि उनका मतलब ढूंढ पाना कठिन है। और आज के जो कई सैद्धांतिक लोग हैं वे तो इस तरह से बातें करते हैं कि उनकी बातें मेरी समझ में आती ही नहीं हैं। इसके विपरीत आज भी हमारे पहाडों के लोग सरलता से बात करते हैं, वे कोई दोगली बात नहीं करना चाहते हैं। ये बातें हम दलों के बैनर तले नहीं कह सकते हैं लेकिन, जब जन घोषणा–पत्र बने तब हमें अपने समाज की अच्छाई तथा बुराई के बारे में भी बात करनी चाहिए। हम जो भी बात लिखेंगे वो राजनीति या वोट के हिसाब से नहीं लिखेंगे बल्कि जीवन के हिसाब से लिखेंगे। और हमें अपने जीवन में स्वराज की चाहत है इसलिए हम लोग स्वराज की बात करते हैं। इसलिए आपसे विनती है कि आप समाज में समानता कायम करने तथा अस्पृश्यता को दूर करने के लिए जो कुछ भी कर सकते हैं करें। हमें समाज के आखरी आदमी तक अपनी बात पहुंचानी है। इस यात्रा का प्रारंभिक काम सुरेश भाई जी करेंगे और इसके समापन का काम उमेश जी करेंगे और बीच के काम के लिए इन दोनों के साथ एक टीम बनेगी। और इन सब के अलावा उत्तराखण्ड में जिन लोगों को समय मिलेगा वे भी अपना योगदान देते रहेंगे। जो लोग जितना समय दे पाएंगे उसी आधार पर वे संयोजक मंडल तथा उसके कार्यकर्ताओं में शामिल हो जाएंगे।
संचालकः– अब हम लोग आज के दूसरे मुद्दों पर बात करेंगे। अब सुरेश भाई उत्तराखण्ड में चलने वाले समता आंदोलन तथा दलितों के सवालों को उठाने के बारे में अपनी बात रखेंगे!

सुरेश भाईः– साथियो हम लोग सुबह से ही चर्चा में लगे हुए हैं, हमें यहां कई प्रकार के विचारों को सुनने का मौका मिला। लेकिन यह जरूरी है कि हम उत्तराखण्ड के बारे में अच्छी तरह से जानें। इसके अलावा हमें दलितों तथा आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों को आगे लाने के उपायों के बारे में बात करनी चाहिए।

आज भी हमारे अंदर ये भावना आती रहती है कि वह पिछड़ा है, वो अंधविश्वासी है, वो अशिक्षित है तथा वह उपेक्षित है। ये बातें हमारे दिमाग में घर कर गई हैं और हम यही चाहते हैं कि कोई आए और हमारा उद्धार करे। आज सभी पार्टियां और सभी सामाजिक संस्थाएं उद्धार की बात करती हैं वे कहती हैं कि, 'हम आपको मुख्य धारा से जोड़ देंगे।'

मैं आपको इतिहास की बात तो नहीं बताऊंगा लेकिन मैं अपने तमाम साथियों का ध्यान हमारे समाज की सच्चाई पर आकर्षित करना चाहता हूं। आज हमारे समाज में अनुसूचित जातियां या गांधीजी द्वारा हरिजन कहकर पुकारे जाने वाले लोगों के अलावा समाज में और भी कई नामों से लोगों को पुकारा जाता है। इन नामों को सुनने भर से ही एहसास हो जाता है कि इन दलितों तथा अन्य नामों से पुकारे जाने वाले पिछड़े समाज के साथ कितना उपेक्षित और घृणित ढ़ग से व्यवहार होता है। जब हम उत्तराखण्ड के पारस्परिक समाज की बात करें तो हमें पता चलता है कि वहां वनवासी और आदिवासी समाज रहा है जो पशु पालन का काम करता था, वो बर्तन बनाने, लोहा गलाने, जूता बनाने तथा लकड़ी का काम करने जैसे अनेक शिल्पकारी के काम करते थे। इसके अलावा एक वो समाज भी था जो गांव के जंगलों और गांवों के तालाबों को जिंदा रखने, गांव के प्राकृतिक संसाधनों को सहेजने और गांव की खेती को विकसित करने का काम करते थे। और इन शिल्पकारों के आभाव में शिल्पकला को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था जिन लोगों ने ऐसा करने की कोशिश की भी वे भी बीच में ही फंस जाते थे। इतिहास में तो ये बातें आंकड़ों के रूप में प्रस्तुत है लेकिन इतिहास में इन बातों को सही ढ़ग से प्रस्तुत नहीं किया गया है। क्योंकि इसे समझने और इस पर शोध करने की आवश्यकता है।

उत्तराखण्ड में जो अन्य एवं ब्राह्मण जातियां और बहुत सारी ठाकुर जातियां हैं उनमें से अधिकांश राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बंगाल की अलग–अलग जातियों से वहां आई हैं। और कहीं–कहीं ऐसा हुआ है कि बाहर से आने वाले लोगों ने वहां की शिल्पकला पर अधिकार करने की चेष्टा की और उसमें वो सफल भी हो गए। और धीरे–धीरे सामाज और पर्यावरण के मुख्य संरक्षक कहे जाने वाले मीडिया कर्मी भी अपने काम से हट गए और उन्होंने शिल्पकला को अपना लिया लेकिन धीरे–धीरे वो पिछड़ने लगे और आज वे दलित हो गए हैं। आज से पहले तक अनुसूचित जाति में मुख्य रूप से चार–पांच जातियां होती थी। एक वो जाति है जो शादी–ब्याह में ढ़ोल बजाने का काम करती है, जब तक वे ढोल न बजाएं तब तक ब्राह्मण के घर पर भी पूजा नहीं होती, देवता चाहे ठाकुर पर आए या दूसरी जाति के किसी व्यक्ति पर लेकिन इस पूरे काम को करवाने उसे ऊर्जावान बनाने की कोशिश तो ढोल ही करता है और उसे ढोली जाति का व्यक्ति बजाता है। और उसी ढोली जाति में एक और जाति है जिसे बेदा कहते हैं। वहां के स्थानीय उच्च जातियां फिर चाहे वो ब्राह्मण या ठाकुर हों उनके घर पर यदि कोई मर गया हो या कोई पैदा हुआ हो तो उस काम की जानकारी अन्य लोगों तक पहुंचाने का काम ढोली और बेदा जाति के लोग ही करते थे। इसके अलावा पुराने समय में एक और परंपरा थी कि दो अलग–अलग सिरों

पर मौजूद पहाड़ पर एक रस्सी बांधी जाती थी और उसमें एक डोली बांध दी जाती थी जिसे, पीड़ा बर्थ कहते थे। एक डोली के अंदर एक पीड़े को बांधकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंचाया जाता था यदि वह पीड़ा जीवित बच गया तो समझा जाता था कि उस क्षेत्र में चार–पांच साल तक कोई बीमार नहीं होगा। और वहां सुख और स्मृद्धि रहेगी। और यदि किसी कारण से वो दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उसमें मौजूद बर्थ मर गया तो समझ लीजिए कि उस क्षेत्र में कोई दुर्घटना एवं अपशगुन होने वाला है। उस गांव के लोग अपने–आपको बीमारियों एवं दुर्घटनाओं से बचाने के लिए इस तरह के अंधविश्वासों पर यकीन करते थे।

इसके अलावा अनुसूचित जातियों में कई ऐसे किस्से हैं जिनकी आसानी से सुनवाई नहीं हो रही है। इन समस्याओं पर अनुसूचित जाति के लोगों ने ही गीत, जागर तथा पैराडी आदि बनाई हैं, आज नरेन्द्र सिंह नेगी जिस लक्ष्मी नारायण शब्द की बात करते हैं वो, शब्द भी इन्हीं लोगों ने दिया था। श्रीकृष्ण को लक्ष्मी नारायण कहकर पुकारा जाता है। जनपुर में एक घाटी है जहां शिल्पकार लोग जागर और पैरोडी लगाने का काम करते हैं वे लक्ष्मी नारायण को कृष्ण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कई प्रकार की सूचनओं को गीत के द्वारा एक घर से दूसरे घर में पहुंचाते थे। इस सबसे बड़ी बात ये थी कि ये लोग उत्तराखंड के मूल निवासी थे। इनके पास अपनी जमीनें थी लेकिन बाद में बाहर से आने वाले लोगों ने इनकी जमीनों पर कब्जा कर लिया और उस जमीन पर काम करना शुरू कर दिया। फिर बाहर से आए लोगों ने उन्हीं खेतों पर हल चलवाने तथा खेती करने का काम पहले से मालिक रहे जमीन के असली मालिकों से करवाया। उसके बदले में उन्हें सवर्णों द्वारा अनाज दे दिया जाता था। वे लोग भी उसी अनाज से अपना पेट भरकर अपना वही पुराना मीडिया कर्मी का काम करते रहते थे। भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह यहां भी वर्ण व्यवस्था उसी रूप में मौजूद है।

आज भी उत्तराखण्ड में, पहले की तरह वर्ण व्यवस्था मौजूद है बस इतना हुआ है कि आरक्षण की बात चलते ही अब उसके संकेत पहले की अपेक्षा ज्यादा उभरने लगे हैं। देश के आजाद होने के बाद तथा अम्बेडकर तथा अन्य लोगों की कोशिशों के कारण अनुसूचित जातियों के लिए हुए आरक्षण से सवर्ण वर्ग में एक आक्रोश पैदा हो गया है क्योंकि अनुसूचित जातियों को मिलने वाले 17–18 प्रतिशत आरक्षण के कारण उन सीटों पर सवर्णों को आने का मौका नहीं मिल रहा है। इस आरक्षण की मदद से पिछड़ी जाति के लोग कई ऊंचे पदों पर पहुंच पा रहे हैं और इस सब से परेशान होकर ऊंची जाति के लोगों में आरक्षण को समाप्त करने की मानसिकता पैदा होती जा रही है। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का चिन्ह आज भी मौजूद है।

हमें उत्तराखण्ड के लोगों के मन में बैठी इस मानसिकता का पता कई बार लगता है। मैं आपको इसका एक उदाहरण देता हूं जब उत्तराखण्ड राज्य के लिए हुए आंदोलन के दौरान हमने एक नाटक बनाया 'उत्तराखण्ड से कम पर समझौता नहीं', इस नाटक को हमने टिहरी, उत्तरकाशी और पौड़ी के करीब 200 गांवों में किया। इस नाटक के दौरान जब मुजफ्फरनगर , मसूरी और खटीमा की घटनाओं के प्रदर्शन के समय सभी लोग रो पड़ते थे। इन नाटकों को देखकर सभी लोग खासकर सवर्ण वर्ग के लोग कहते थे कि हम लोग दिल्ली वालों से परेशान हैं, हम लोग उत्तर प्रदेश की सरकार से परेशान हैं, उनके द्वारा दिए गए आरक्षण से हमारे बच्चों को नौकरी नहीं मिल रही है। मुलायम सिंह तथा मायावती जी हमारे लिए कुछ अच्छा नहीं कर रहे हैं। उनके खिलाफ नारे लगने शुरू हो जाते थे और वास्तव में उस दौरान उन्होंने कुछ ऐसा किया भी जैसे कि आंदोलनों के दौरान महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचारों के कारण लोगों ने उनके खिलाफ नारे लगाने शुरू कर दिए। जिनके खिलाफ नारे लगने ही चाहिए थे। लेकिन, उस दौरान समाज में जो अशलीलता पैदा हुई, महिलाओं के साथ जिस तरह के अत्याचार हुए उन्होंने आरक्षण का विरोध करने वाले आंदोलन को पृथक उत्तराखण्ड राज्य का आंदोलन बना दिया। मायावती ने इस आंदोलन की आलोचना करते हुए कहा कि इस तरह के आंदोलन से अनुसूचित जाति को कुछ लाभ नहीं होगा लेकिन वहां के राजनीतिक दल के लोगों और कई पढ़े–लिखे लोग समझते थे कि पृथक राज्य बन जाने से हमारे क्षेत्र की समस्याओं का हल आसानी से निकाला जा सकेगा। और धीरे–धीरे यह आंदोलन बढ़ते चले गए। इतना बढ़ गया कि आखिरकार इसके कारण पृथक उत्तराखण्ड राज्य की स्थापना हो गई।

वे लोग पृथक उत्तराखण्ड राज्य की स्थापना की मांग तो कर रहे थे लेकिन उन्हें वहां की वास्तविकताओं के बारे में जानकारी नहीं थी। गांवों में जाकर हमने देखा कि वहां की वास्तविक स्थिति कुछ ओर ही थी वहां सवर्णों एवं हरिजनों के बीच एक बहुत बड़ा भेदभाव मौजूद था। इस कारण से हमें अपना कार्यक्रम बीच में ही स्थगित करना पड़ा। लेकिन फिर टिहरी में जाकर हमें बयान देना पड़ा कि ऐसी बात बिल्कुल नही है। उस समय उत्तराखण्ड में एक मात्र प्रसून जी ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि जैसे–जैसे हम सत्ता के नजदीक आएंगे, कमजोर और दलितों पर होने वाला अत्याचार और अधिक बढ़ जाएंगे। दूसरा उन्होंने कहा कि इन छोटे राज्यों का निमार्ण एक साजिश के तहत हो रहा है। इससे प्राकृतिक संसाधनों तथा जल, जंगल, जमीन का दोहन बढ़ता जा रहा है। उन्होंने कहा कि आप लोग उत्तराखण्ड की मांग करके गलत

कर रहे हैं। उनकी इस बात को सुनकर पी.सी. तिवारी, डॉ. शमशेर सिंह बिष्ट, पाठक जी, सुन्दर लाल जी और चंडी प्रसाद जी सहित कई लोगों को बहुत बुरा लगा।

उत्तरांचल में कई आंदोलन चलने के बाद पृथक राज्य की स्थापना हो गई। पहले एक वर्ष तक तो अंतरिम सरकार बनी लेकिन पिछली सरकार के पांच साल के कार्यकाल में उनके पास समाज के दलितों, उपेक्षितों और टिहरी बांध के कारण बेघर हुए लोगों के लिए पांच मिनट का भी समय नहीं था। राज्य बनने से पहले हमें उत्तर प्रदेश में होने वाली बैठकों में भाग लेने के लिए बुलाया जाता रहता था लेकिन अलग राज्य बनने के बाद संवाद हीनता ही देखने को मिलती है। संवाद हीनता इतनी ज्यादा है कि हमें पता ही नहीं चलता था कि यहां की सरकार के नुमाइंदे देहरादून में रहते हैं या उनके लिए कहीं और से आदेश आते हैं। उनकी इन अनियमितताओं को उजागर करने के लिए कई गीत बने जिनके कारण कई मंत्रियों पर आपदाएं आईं। लेकिन फिर भी वहां स्थित जातीगत समीकरणों में कुछ बदलाव नहीं आया है। और वैसे भी हम सभी लोग जानते हैं कि दलित, हरिजन तथा अनुसूचित जाति के नाम से कहे जाने वाले शब्द बहुत ही उपेक्षित हैं। अनुसूचित का मतलब ही होता है कि ये अनुसूचि में नहीं थे और इन्हें अनुसूचित किया गया है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि उत्तराखण्ड में तो कोई अनुसूचित जाति है ही नहीं, वहां तो शिल्पकार लोग रहते हैं। वे अलग–अलग तरह की शिल्पकारी जानते हैं और जब उनकी शिल्पकला पर दूसरे लोगों को अधिकार हो गया तो वे बेरोजगार हो गए।

हम लोग समाज में समानता लाना चाहते हैं लेकिन आज भी हमारे समाज में 'नाम' के साथ जातिसूचक शब्दों का प्रयोग होता है जिससे पिछड़े लोगों को समाज में हीनता का शिकार होना पड़ता है। इसी हीनता से बचने के लिए आज अनुसूचित जाति के लोग भी अपने नाम के साथ चौहान तथा ठाकुर का इस्तेमाल करने लगे हैं, वे लोग जब उत्तराखण्ड को छोड़कर किसी अन्य राज्य में आते हैं तो अपने नाम के पीछे ऊंची जात को जोड़ देते हैं। इसलिए जब तक इन जाति सूचक शब्दों का प्रयोग होता रहेगा तब तक हमारे समाज में जाति की बू आती रहेगी।

अगर हम महाभारत या रामायण काल को देखें तो उस समय समाज में ऐसा भेदभाव नहीं किया जाता था। जैसे अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण या राम के नाम के साथ दत्त, सिंह या प्रसाद तो नहीं लगा हुआ था। फिर न जाने हमारे समाज में यह बातें कहां से आई कि जो सिंह होगा वो ठाकुर होगा, जो प्रसाद होगा वो ब्राह्मण होगा तथा जो लाल, पाल या इस तरह की किसी जाति से संबध रखता होगा वह दलित ही होगा। मुझसे भी कई लोग यही सवाल करते हैं कि आपके नाम में सुरेश भाई के बाद

क्या लगा है? तो हम कहते हैं कि अब आगे तो मैं मनुष्य ही होऊंगा। तो इस प्रकार आज भी हमारी परिस्थितियों में कोई खास बदलाव नहीं आया है।

आज दलितों की स्थितियों को सुधारने के लिए सरकार एवं अन्य क्षेत्रों से पैसा आता तो है लेकिन वे उन तक नहीं पहुंच पा रहा हैं। जैसे अभी पिछले दिनों हमने समता आंदोलन के नाम पर काम करने के लिए एक रणनीति बनाई थी, इसके लिए विशेष कम्पोनेन्ट प्लान के नाम से 720 करोड़ रूपए आए थे। उन रुपयों से बारात घर बनाने की योजना बन रही है। जिस दलित समाज को आज भी बारातों में अपमानित किया जा रहा है, उसी समाज के नाम से बारात घरों को बनाने के लिए पैसा मिल रहा है और वो बारात घर भी दलितों की अपेक्षा सवर्णों की बस्ती में बन रहे हैं। इसके अलावा दलितों के लिए पेय जल का प्रबंध करने के लिए पैसा तो आ रहा है लेकिन उस पैसे से सवर्णों के आवासों के पास पानी आ रहा है। इसका अर्थ है कि अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि भी दूसरी बार चुनावों में लड़ने के लिए सवर्णों की भलाई के कामों में ही लगे रहते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि आजादी के बाद से ही उत्तराकशी में दलितों के लिए सीटें आरक्षित रही हैं लेकिन उन सीटों पर वही व्यक्ति खड़ा होता है जिसपर सवर्णों की कृपा रहती है। और हमने देखा कि पिछले कुछ सालों में आरक्षित सीट पर जीते प्रत्याशी लीपा–पोथी के कामों में ही लगे रहे और उन्होंने भी दलितों के समानता के मुद्धे को अनदेखा ही कर दिया।

आज हमारे देश में वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण जैसे पद्धतियां जन्म ले रही हैं। इनके कारण पानी, विद्युत तथा अनाज आदि का भी निजीकरण हो रहा है, ऐसी स्थिति में शिल्पकला से जुड़े दलित समाज के लोगों की शिल्पकला, आज टाटा की शिल्प कला हो गई है। आज वो किसी वैश्विक इन्टरनेशनल कम्पनी की शिल्पकला हो गई है जिसका स्थानीय कला से कुछ लेना–देना नहीं है। जबकि आज से पहले ये काम जैसे जूता बनाना, चमड़े का काम करना तथा बर्तन बनाने का काम दलित ही करते थे, इन्हीं कामों के कारण तो उन्हें दलित कहकर पुकारा जाता है। लेकिन यदि किसी ठाकुर ने चमड़े की दुकान खोल दी या जूता बेचने की दुकान खोल दी, किसी ब्राह्ममण ने दर्जी की दुकान खोल दी है लेकिन इन कामों को करने के बाद भी वे दलित नहीं हुए, वे आज भी ऊंची जाति के ही कहलाते हैं, ऐसा इसलिए भी है कि ऐसे काम करते समय दलितों की दुकानों एवं कामों में चकाचौंध नहीं थी इसके अलावा उनके पास अपनी शिल्पकला की मार्केटिंग करने की योग्यता नहीं थी। इसलिए ये जो शिल्पकलाएं हैं वे कहीं न कहीं असमानता को प्रकट करती हैं।

हम इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं कि दलितों ने अपने कामों से समाज में बड़ा योगदान किया है। सबसे पहले दलितों ने (कोकोनटी) ही हमे भूकम्प आने की पूर्व जानकारी के बारे में बताया, कि जब सांप अपने बिल से बाहर आ जाए, छिपकली भारी मात्रा में सड़कों पर उतर आए और जंगल के पशु जब गांव की और आने लगें तो समझो भूकम्प आने वाला है। इसके अलावा भूकम्प आने पर भी लोगों को दलितों की शिल्पकला द्वारा बनाए गए उपकरणों जैसे कि दरवाजे एवं दीवार के पास जाने की बात कही जाती है ताकि भूकम्प आने पर उसके नीचे बैठे आदमी को कोई नुकसान न हो क्योंकि दलित द्वारा बनाया गया सामान भूकम्प में भी टूटकर नहीं गिरेगा। इसके अलावा आज से हजारों साल पहले बनाए गए बूढे केदार को ही देख लीजिए उसको बनाते समय पत्थरों तथा लकड़ी की ऐसी कलाकारी की गई है कि वह आज भी नया का नया ही दिखता है। यहां तक कि नरेन्द्र सिंह नेगी जिन गीतों को गाते हैं वो सब दलितों द्वारा ही बनाए गए हैं। और उनमें से कुछ गीत तो ऐसे हैं जों हमने अपने बचपन में ओजियों (दर्जी) से सुने हुए हैं, आज कहे जाने वाले जागर हमने अपने दादा–नाना से सुने हुए हैं। लेकिन आज उनका नाम खत्म हो चुका है। आज उनकी शिल्पकला, संस्कृति तथा मीडिया कर्म पर सवर्ण वर्ग का अधिकार हो गया है। उनकी कलाओं से सवर्ण वर्ग के लोग तो लाभ कमा रहे हैं लेकिन यदि वो लोग सवर्णों के काम जैसे कि पूजा–पाठ आदि करें तो भूकम्प ही आ जाएगा। आज उत्तराखण्ड में बनने वाली जल विद्युत परियोजना भी दलितों तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों की जमीन पर ही बनाई जा रही है। यह असमानता सरकारी तंत्र में तो मौजूद है ही इसके अलावा स्वैच्छिक संस्थाएं भी इस असमानता से अछूती नहीं हैं। यदि कोई ब्राह्मण ऐसी किसी संस्था को चलाता है तो वो चाहता है कि उसमें अधिक से अधिक ब्राह्मण हों और यदि कोई दलित उस संस्था को चलता है तो वह चाहता है कि उसमे अधिक से अधिक दलित हों और अगर कोई ठाकुर चलाता है तो वो चाहता है कि इसमें ब्राह्मण या ठाकुर हों। यहां तक कि कई राजनैतिक पार्टियों में भी यही स्थिति देखने को मिलती है। इससे स्पष्ट है कि आज भी समाज में भेदभाव बरता ही जा रहा है।

आज हम समाज में समानता कायम करने के लिए वैकल्पिक बदलावों की बात करते हैं। लेकिन, उन वैकल्पिक बदलावों में भी बहुत सारी बातें छुपी हुई हैं। और इन बातों को कर पाना तो दूर प्रकाशित कर पाना भी काफी कठिन है, क्योंकि उत्तराखण्ड में इस तरह की बात करना और इस तरह की राजनीति संस्कृति बनाना एक चुनौतीपूर्ण काम है। इस विषय में, मैं आपको एक उदाहरण बताता हूं। 1952 और 1953 में जब सुंदर लाल बहुगुणा के नेतृत्व में बिमला बहुगुणा, धर्मानन्द नौटियाल, मैं तथा मेरे ससुर ने सर्वोदयों के साथ मिलकर हरिजनों कों गंगोत्री मंदिर, बूढ़ा केदार

मंदिर, यमनौत्री मंदिर, बदरीनाथ तथा केदारनाथ के मंदिरों में प्रवेश की बात की तो हमारे सिर पर बहुत जूते पड़े। लोग बताते हैं कि सुन्दर लाल जी ने अपनी पत्नी से कहा कि कम से कम अपने सिर के बाल तो बचाओ। सुन्दर लाल जी हरिजनों को मंदिर के अंदर तो ले गए लेकिन उसके परिणामस्वरूप उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ा। उस समय उत्तराखण्ड का सम्पूर्ण समाज उनसे बहुत नाराज रहता था। यहां तक कि कई लोग उनसे तथा उनके परिवार के सदस्यों से रिशतेदारी करने से भी मना करने लगे। हमारे गांव के धर्मानन्द जी ने तो एक दलित परिवार को चार साल तक अपने पास रखा जिससे उनके अपने रिश्तेदार भी उनके घर खाना नहीं खाते थे। लोगों को ताने देकर यह कहा जाने लगा कि अब ये लोग दलितों के साथ रिशते भी कायम करेंगे। इस प्रकार समानता का व्यवहारिक रूप में प्रयोग करने वालों के साथ इस तरह का व्यवहार किया जाता था।

दलितों के साथ असमानता तो बरती जाती है लेकिन, यदि हम अपने समाज को देखें तो इसी दलित समाज ने स्वर्णों के उपयोग की कई चीजों को बनाने में अपना पूर्ण सहयोग दिया है। और उसके बदले में हमने कुछ भी नहीं किया उल्टे, दलित और अनुसूचितों के बारे ज्यादा बात करने से उनपर होने वाला अत्याचार और भी अधिक बढ़ गया और निरन्तर बढ़ता जा रहा है। कई दलित लोग शराब के उद्योग में काम करते थे और कांग्रेस पार्टी ने शराब को बढ़ावा दिया तो उनकी जीविका आसानी से चलने लगी थी लेकिन, ऐसा करने से दलित लोग सर्वोदयों एवं शराब का विरोध करने वालों के विरोधी हो गए। वे शराब को बंद करके इन लोगों को शिल्पकला जैसे रोजगारों से जोड़ना चाहते थे। इसके लिए दलित समाज का बहुत अधिक उत्पीड़न भी किया गया। क्योंकि महिला संगठनों द्वारा कच्ची शराब तथा पक्की शराब के खिलाफ भी आंदोलन किए गए। उन संगठनों का कहना था कि इन दलितों के कारण ही हमारा समाज बर्बादी की ओर बढ़ रहा है। जबकि ये तो दलितों की नहीं अपितु सरकार की इच्छा थी।

उत्तराखण्ड के दलितों को वर्ष 1952–53 तथा बाद में 1965 से लेकर 1970 तक मंदिरों में प्रवेश करने दिया गया। लेकिन आज भी बदरीनाथ, बूढ़ा केदार, केदारनाथ, के मंदिर तो दलितों के लिए खुल गए हैं लेकिन, गांवों में स्थित हमारे बहुत सारे शिव मंदिर तथा अनेक छोटे–छोटे मंदिर अब भी दलित समाज के लिए बंद ही हैं। यहां तक कि शिवरात्रि या जन्माष्टमी जैसे कई त्यौहारों में उपवास के दौरान यदि कोई दलित सवर्ण को छू भी गया तो उसकी खैर नहीं। मंदिर को बनाने का काम तो

दलित ही करते हैं लेकिन मंदिर बन जाने के बाद उसी मंदिर में दलित को प्रवेश नहीं मिलता है।

दलितों के प्रति बरती जाने वाली इन असमानताओं के विरोध में वर्ष 2006 में समता आंदोलन हुआ। जिसमें, सवर्ण, हरिजन और अनुसूचित जाति के सभी लोगों ने एकसाथ मिलकर आमने–सामने बैठकर चर्चा की। पहली बार अछूत समझी जाने वाली जाति के लोगों ने अपनी तकलीफों एवं स्थितियों के बारे में आमने–सामने बैठकर चर्चा की। इस मीटिंग में भुवन जी इस बात पर जोर देते रहे कि हमें दलितों के इस मुद्दे को अच्छी तरह से समझना चाहिए। क्योंकि आज भी हमारे कई नौजवान साथी इस समस्या को अच्छी तरह से समझ ही नहीं पा रहे हैं। आज वो लोग दूसरी दुनिया की कल्पना करते हैं जिसमें दलित लोग महत्वपूर्ण भूमिका में शामिल होंगे। यदि हम उन लोगों को शामिल करना चाहते हैं तो हमे उनकी बातों तथा विचारों को बिना किसी लाग–लपेट के वैसा ही शामिल करना चाहिए। इस समस्या को हल करने के लिए इसपर लगातार बातचीत करनी पड़ेगी।

अन्य लोगों तथा खासकर दलितों की इन समस्याओं का हल निकालने के लिए ही हम समता रथ निकाल रहे हैं। चुनावों के दौरान वोटर महत्वपूर्ण हो जाते हैं इसलिए उन्हें सोच–समझकर उस पार्टी को वोट देना चाहिए जो उनके हितों के लिए लड़ती रहे। लेकिन मुझे लगता है कि उत्तराखण्ड के वोटरों में अभी वो समझ स्थापित नहीं हो पाई है। वहां अधिकांश लोग बहुजन समाजवादी पार्टी को वोट देते हैं, उत्तराखण्ड के अधिकतर दलित वोटर कांग्रेस को वोट देते हैं। क्योंकि कांग्रेस पार्टी ने ही वहां के दलितों की जल, जंगल और जमीन की समस्याओं को अच्छी तरह समझा और उनके अधिकारों के लिए बात की है। खासकर गोविन्द सिंह नेगी ने उत्तरकाशी और टिहरी जिले में इन्हीं मुद्दों को लेकर काम किया। हम भी यही चाहते हैं कि हम जिन लोगों के विकास, अधिकार और रोजगार की बात कर रहे हैं उनके प्रति हमारा व्यवहार एक परिवार की तरह रहे। समता रथ के माध्यम से हम ये संदेश देना चाहते हैं कि चुनावों के दौर में उन लोगों को किसी के भी भुलावे में नहीं आना चाहिए। उन लोगों को अपने अधिकारों तथा अपनी ताकत के बारे में सचेत हो जाना चाहिए। उन्हें, उन प्रत्यााशियों को वोट देना चाहिए जो उन्हें पानी, जल विद्युत परियोजना तथा इसी तरह चलने वाली अनेक परियोजनाओं में उन्हें हिस्सेदार बना सकें। वे भूमिहीनों तथा इन परियोजनाओं से प्रभावित लोगों की भलाई के लिए काम कर सकें, जो आने वाली निजी कंपनियों में उनकी हिस्सेदारी तय कर सकें, जो उत्तराखण्ड में लगने वाली निजी कंपनियों में भी आरक्षण लागू कर सकें। क्योंकि आरक्षण की मदद से ही दलित लोगों को अधिक से अधिक संख्या में नौकरियां मिल सकती हैं जिससे वे अपनी आर्थिक

स्थिति को मजबूत करने के साथ–साथ अपने विकास को भी सुनिश्चित कर सकते हैं। मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि ये सब बातें उत्तराखण्ड की बड़ी पार्टियों के एजेंडे में शामिल न होकर छोटी क्षेत्रीय पार्टियों के एजेंडे में शामिल होती हैं। और वे पार्टियां तथा उनके नेता अब तक सड़कों पर रहते हैं इनमें पी.सी. भाई और शमशेर सिंह जैसे नेता शामिल हैं। इन लोगों ने सुन्दर लाल जी से प्रेरणा लेकर राजनीतिक, सामाजिक तथा संस्कृति की जो शुरूआत की थी उसे सुन्दर लाल जी ने जीवित रखा। सुन्दर लाल जी वही व्यक्ति हैं जिन्होंने लोगों की भलाई के लिए संघर्ष किया और जूते खाए। आज उत्तराखण्ड में किसी भी बात पर खुले रूप से लिखने वाले ब्रह्मानंद, तथा कुअंर प्रसून जैसे पत्रकार दिखाई नहीं देते। उन्होंने वैश्यावृति में धकेले जाने वाले दलित वर्ग के लोगों के बारे में बड़ी बेबाकी से लिखा। उन्होंने लिखा कि उत्तराखण्ड में लकड़ी तथा लड़की दो प्रकार के माफिया काम करते हैं। लकड़ी माफिया के साथ लड़ाई लड़ना आसान है लेकिन लड़की माफिया के साथ लड़ना हमारे लिए आसान नहीं है। उनकी इन बातों से सबक लेकर हमें उत्तराखण्ड की स्थितियों को सुधारने वाले प्रत्याशियों की खोज करनी चाहिए।

हमारे समाज में दलित लोग अपेक्षित तथा अपमान की स्थिति का सामना कर रहे हैं, पहले तो उन्हें आरक्षण मिल ही नहीं पा रहा है और जब मिला भी है तो उसका पूरी तरह से विरोध करने का प्रयास किया गया अब वी.पी.सिंह की सरकार का ही उदाहरण लें तो उस दौरान आरक्षण की घोषणा की गई जिसका जोर–शोर से विद्रोह हुआ। यहां तक कि लोगों ने अपने–आपको जलाने तक की कोशिश की। जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए था। हमें उत्तराखण्ड में दलितों की स्थिति सुधारने के लिए आरक्षण का सहारा लेना ही पड़ेगा।

इसके अलावा आज हमारे सामने ग्लोबलाइजेशन और निजीकरण भी एक गंभीर समस्या का रूप लेता जा रहा है। जिससे गरीबों की बची–खुची शिल्प कला, यहां की संस्कृति और यहां के गीत सभी कुछ नष्ट हो गया है। उन सबका ग्लोबलाईजेशन और निजीकरण हो गया है।

उत्तराखण्ड में एक और समस्या है कि वहां कुछ लोग तो अछूत हैं और कुछ लोगों को अछूत न होते हुए भी अछूत बनाया गया है ताकि उनकी व्यवस्था और परंपरा को खत्म किया जा सके। आमतौर से ऐसा होता है कि जब कोई परिवार दूसरे गांव में बसने जाता है तो उसको कई सालों तक विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है। दलितों की भी यही हालत थी वे मूलतः न तो अछूत थे और न ही अपेक्षित, उन्हें ऐसा

बनाया गया था। राजनीतिक पार्टियों को इन स्थितियों को गंभीरता से समझना होगा। और इन विषयों पर खुलकर बात करनी चाहिए लेकिन उत्तराखण्ड में ऐसी स्थिति पैदा नहीं हो पा रही है। वहां के राजनीतिज्ञ ऐसा कुछ भी नहीं करते हैं, वे इस विषय में अपने घोषणा पत्र में केवल एक लाइन लिख देते हैं लेकिन ऐसी किसी भी बात को व्यवहार में नहीं लाते हैं। इस बारे में कुछ लोग मन से प्रयास करना चाहते हैं और वे ये सोचते हैं इसके लिए आपस में रोटी और बेटी के संबध स्थापित किए जांए। लेकिन मैं ऐसी बात नहीं कहता हूं और न ही इस बात को मान्यता देता हूं , ये तो लोगों की इच्छा की बात है जो चाहें ऐसे संबध स्थापित कर सकते हैं और जो न चाहें वो न करें। लेकिन हम ऐसे संबधों के खिलाफ नहीं हैं। हमारे बहुत से साथियों ने दलित लड़कियों से शादी की है और बहुत सारी लड़कियों ने स्वर्णों से भी शादी की हुई है और वे आराम से अपना जीवन यापन कर रहे हैं।

हम चाहते हैं कि इस रथ यात्रा द्वारा हमारे अंदर की भावनाओं पर खुलकर चर्चा की जाए। और हम यह भी चाहते हैं कि हमारे उस वर्ग से आने वाले लोग गलत मंशा रखने वाले राजनीतिज्ञों के झांसे में न आएं। वे ऐसी पार्टी को ही वोट दें जो उन्हें अपेक्षित और अपमानित होने से बचा सके। इस समता यात्रा की मदद से हम उस स्वराज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका अर्थ स्वावलंबन, सहयोग, समानता और संवाद होता है। जब तक हम स्वावलंबी नहीं होंगे तब तक हम एक–दूसरे से बात नहीं कर पाएंगे और इसके आभाव में हम एक–दूसरे से सहयोग नहीं कर पाएंगे। और ऐसी स्थिति में स्वराज बिल्कुल अधूरा ही होगा। हमें इस स्वराज में प्रत्येक व्यक्ति को शामिल करना चाहिए। यदि हम इस दिशा को लेकर आगे बढेंगे तो हमारे जितने भी मैनिफेस्टो एवं घोषाणा पत्र हैं वो, केवल जबानी जमा खर्च की रह जाएगा। धन्यवाद!

विषय : समता, राजनीति
स्थान : गांधी शांति प्रतिष्ठान

विजय प्रतापः– हम लोग जन घोषणा पत्र बनाने की पहल कर रहे हैं लेकिन उसे ठीक तरह से बनाने के लिए हमें कई बातों की गहरी समझ होनी चाहिए। इसके लिए हमें विभिन्न संगठनों, मंचों के माध्यम से व्यवस्थित ढंग से जनता से संवाद करना चाहिए। अपने इसी उद्धेश्य के लिए हमने हिमालय स्वराज अभियान और साउथ एशिया डायलॉग ओन इकोलोजिकल डेमोक्रेसी (पारिस्थितिकी लोकतंत्र पर दक्षिण एशियाई संवाद) जैसे संगठनों के माध्यम से इसकी पहल करने का प्रयास किया है। हमने इसी विषय पर कल बात करते हुए देश में वैचारिक यात्रा करने के बारे में बात की। इस बैठक में, इस विषय से जुड़े देश और दुनिया के कई महत्वपूर्ण लोगों ने अपने विचार रखे। इस विषय पर सी.एस.डी.एस. भी काम करता रहा है। वह रिसर्च के आधार पर चुनावी विश्लेषण करता है। सी.एस.डी.एस. से देश के कई नामी समाजशास्त्री जुड़े हुए हैं। इसके अलावा वे पिछड़े वर्गों के लिए बने आयोग के सदस्य भी हैं। वे समाज के अलग–अलग हिस्सों में जानकारी के अभाव में होने वाले धु्व्रीकरण के विरोध में तथा समाज के चहुंमुखी विकास के लिए प्रयासरत रहते हैं। इसके लिए वे समाज में संवाद कायम करते रहते हैं। इसी क्रम में सी.एस.डी.एस. ने 1980 में आंदोलन समूहों और राजनीतिक, सामाजिक कार्यकर्ताओं से संवाद का एक कार्यक्रम शुरू किया, जिसको 'लोकायान' नाम दिया गया। लोकायान का अर्थ होता है लोकहित में काम करना। इसकी पहली बैठक 16 मई 1980 को आयोजित की गई जिसमें वर्ष 1977 में बनी जनता पार्टी की सरकार की असफलता तथा 1979 तक उसके टूटने के कारणों को जानने तथा सत्ता का विकेन्द्रीकरण एवं समाज का विकास करने के बारे में संवाद हुआ। इसकी दूसरी बैठक अगस्त 1982 को हुई। वैसे तो इस दौरान इसकी केवल एक संवाद प्रक्रिया हुई लेकिन फिर भी लोगों के मन में इसकी छवि एक संगठन के रूप में न होकर एक आंदोलन के रूप में बनी। और इसके माध्यम से समाज में संवाद की प्रक्रिया शुरू हुई। इसकी शुरूआत में हमारे साथ डॉ. सुरेश शर्मा के अलावा नरेन्द्र नाथ जी शामिल थे जिन्होंने आन्ध्र के चित्तूर जिले में भूमिहीनों का सर्वेक्षण किया कि उन्हें कागजों मे कितनी भूमि मिली हैं तथा वास्तव में कितनी भूमि मिली है। उनकी पत्नी डॉ. उमा शंकरी सी.पी.एम के अधीन लोक उद्यान की संयोजिका हैं और देश में पानी पर बहुत काम कर चुकी हैं। हमने लोकायान के नेटवर्क में करीब ढाई साल में करीब 100 संवाद आयोजित किए हैं। इन संवादों के द्वारा हमने बुनियादी परिवर्तनों के लिए स्थानीय संसाधन जुटाने संबधी बात की। इसके लिए हमने तमाम गैर सरकारी संस्थाओं से मिलकर संवाद चलाया, उन्होंने अपनी गैर परियोजनाओं के साधनों की

बचत, अपनी आर्थिक बचत, वेतन से बचत तथा जनता से पैसा मांगकर लोकायान को चलाया। हमारी अपेक्षा थी कि हम एक बहस चलाकर लोकायान को एक स्वतंत्र संगठन के तौर पर बनाकर उसका संबध सी.एस.डी.एस. से समाप्त कर दें क्योंकि हमें लगता था कि कोई भी विचार – आंदोलन किसी शोध संस्थान के रूप में नहीं हो सकता है। हमारी बातों और लोकायान का विरोध करने वाले प्रो. बी.एल.शीर्ष ने भी इस बात को मान लिया और उसके बाद लोकायन अपना काम करने लगा। लेकिन ग्लोबलाइजेशन के कारण इसे सुचारू एवं तय सिद्धांतों के आधार पर चलाया न जा सका। और मुझे इस असफलता को स्वीकार करने में जरा भी शर्म महसूस नहीं हो रही कि लोकायान को चौपाल की तरह नहीं चलाया जा सका। बस इतना संतोष है कि, आज भी लोकायान एफ.सी.आई. लिए बिना चल रहा है। वैसे तो यह कोई अहंकार की बात नहीं है, बस हमने सोचा था कि एफ.सी.आई. नहीं लेंगे और नहीं लिया। हम औरों के मुद्दों को अपना मानकर एक चौपाल की तरह काम कर रहे हैं। हम अलग–अलग जात, धर्म और राज्य से संबध रखते हुए भी आपस में बैठकर चर्चा करते हैं, फिर चाहे वो धर्म का विचार हो, या क्रांति का। हम सब लोग आपस में मिलकर काम करने का खाका बनाते हैं।

हमारे इन प्रयासों से समाज के कई क्षेत्रों में सुधार भी आया है। जबकि 1991 में ग्लोबलाइजेशन शुरू होने के बाद लोगों को लगता था कि समाज में कुछ हो ही नहीं सकता जबकि, आज बड़े पैमाने में लोग सत्ता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पहले लोग बोलते थे कि सत्ता में बैठे लोग गरीब तथा जरूरतमंदों की बातों को सुनते ही नहीं हैं। लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा है। आज देश तथा समाज को चलाने की प्रक्रिया तथा अर्थनीति के बारे में सबके अपने विचार हैं। लेकिन उन विचारों को मूर्त रूप देने, उन्हें संयोजित करने, समाज एवं न्याय की संस्थाओं के बारे में सोचने, आर्थिक उत्पादन की नीतियां तय करने आदि बातों के बारे में विचार करने से ही इन्हें सुचारु रूप से कायम किया जा सकता है इसके लिए हम लोग कल भी प्रयास कर रहे थे और आज भी प्रयास कर रहे हैं। हम लोग चाहते हैं कि समाज की आखरी सीढ़ी पर बैठे व्यक्ति एवं उसके सामाजिक विचारों को भी जान पाएं क्योंकि वही व्यक्ति किसी समाज, देश एवं सरकार को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उसी आखरी व्यक्ति के विवेक ने बी.जे.पी. जैसे समाज को तोड़ने वाली तथा गरीबों की विरोधी पार्टी को इतनी आसानी से हरा दिया। हम लोग अपने संगठनों के माध्यम से लोक संग्रह तथा संघर्ष का काम करते हैं। लेकिन इस तरह की चौपालों में एक सर्वसम्मत राय नहीं बन पाती है हमें उसे बनाने के बारे में विचार करना चाहिए।

हमने इस कल की बैठक में कुछ बातें रखीं। और हम चाहते हैं कि उन विचारों के ऊपर एक्शन और व्यवहारिकता होनी चाहिए। हमारी और आपकी बात में असहमति है इसलिए मैंने अपनी बात को विस्तार से रखा। क्योंकि जब हम लोग शोध संस्थान के माध्यम से बात करते हैं तो सही एक्शन के बारे में बात तो करते हैं लेकिन एक्शन में ऐसा नहीं कर पाते हैं। वहीं जब हम सोशलिस्ट फ्रंट के माध्यम से या किसी सामाजिक, राजनीतिक संगठन के माध्यम से जो काम और कार्यक्रम करते हैं तो उसमें ठोस बात होती है। इस प्रकार मैं यह कहना चाह रहा था कि दोनों की अलग–अलग भूमिका होते हुए भी दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

हम लोगों ने इस विषय पर विचार करने के बाद एक प्रारंभिक ड्राफ्ट बना लिया है। इसके लिए हमारे कुछ दोस्तों ने सुझाव भी दिया है। उनके बारे में आप लोगों को अनौपचारिक ढंग से मिलकर आपस में बात करनी है, जिससे एक समग्र किस्म का दस्तावेज बन जाएगा, इससे पहले उत्तराखण्ड का दस्तावेज भी बना था उसकी तमाम बातों को इसमें शामिल किया गया था लेकिन ऐसा न हो कि वो दस्तावेज इसकी सीमा बन जाए। इस दस्तावेज को बनाते समय हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि राजनीति समाज का एक अंग है। राजनीति समाज की नियंत्रक नहीं है। समाज में धर्म नीति, अर्थ नीति तथा संस्कृति है। समाज में इतिहास के बारे में समझ है। आज समाज में तमाम ऐसे शक्ति केन्द्र हो गये हैं जो राज्य की शक्ति केन्द्र पर अंकुश रखते हैं। समाज में मौजूद विभिन्न गैर सरकारी संस्थाएं राज्य को चलाने के लिए आवश्यक संवेदना, नैतिक शक्ति प्रदान करते हैं। ऐसा नहीं है कि गांधी एवं विनोबा जैसे लोगों के बाद समाज को सही राह दिखाने वाले लोगों की समाज में कमी हो गई है, जबकि आज भी हमारे बीच गांधी जैसे लोग होंगे। बस हम अपने जीवन की दौड़–भाग में उन व्यक्तियों को पहचान नहीं पा रहे हैं। इसलिए हमें समाज की राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से अपना योगदान देने वालों की मदद लेकर सच्चाई के आधार पर इस दस्तावेज को बनाना होगा।

यदि समाज में शक्ति प्राप्त लोग समाज में नैतिकता की स्थापना करने एवं धार्मिक संस्थानों में होने वाले भ्रष्टाचार के बारे में बात नहीं करते हैं, तो उसकी घोषणा भी जन घोषणा पत्र में होनी चाहिए। राजनीति के तौर पर हम चाहते हैं कि राज्य का धर्म के काम में कोई हस्तक्षेप न हो लेकिन, एक सामाजिक आन्दोलन के तौर पर हम एक ऐसा धर्म तन्त्र चाहते हैं जो सच्चाई, बराबरी, करुणा तथा संवेदना पर आधारित हो। मेरे हिसाब से ऐसा कोई भी मुद्दा नहीं है जिसे जन घोषणा पत्र में शामिल नहीं किया जा सकता है। फिर चाहे वो जीवन का सवाल हो या धरती मां का सवाल हो

सभी मुद्दों को इस घोषणा पत्र में शामिल किया जाना चाहिए। उसी तरह विशेषज्ञों की मदद से जलवायु परिवर्तन की बातें तथा पूरे देश के लिए उत्तराखण्ड के महत्व को इसमें शामिल करने की कोशिश करनी चाहिए।

हमारा जनता के बीच जाने का उत्सव 21 फरवरी को खत्म हो जाएगा इसलिए हमें अपने कार्यक्रम की कोई समय सीमा बना लेनी चाहिए और इसको जारी करने के बारे में भी बात कर लेनी चाहिए। इसके अलावा मैं यह कहना चाहता हूं कि जो घोषणा पत्र अभी तक बना है वो आंदोलन समूहों के कार्यकर्ताओं की आज तक की समझ के आधार पर बना है। लेकिन इसमें कई ऐसी बातें भी शामिल की गई हैं जिन्हें बिना किसी ज्ञान एवं सोच–विचार के आधार पर रखा गया है जैसे विज्ञान की समझ के बिना ही विज्ञान पर आधारित बातों को इसमें शामिल करके एक डर फैलाने का प्रयास किया गया है। ऐसे में हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि जनता के स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारियों को उस क्षेत्र के विशेषज्ञों के आधार पर तय करके इसमें शामिल करना चाहिए। उसी तरह हाल के वर्षों में जलवायु में आने वाले परिवर्तनों से उत्तराखण्ड के पर्यावरण में आने वाले परिवर्तनों के बारे में भी समझाने की कोशिश करनी चाहिए।

अभी हाल के वर्षों में ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश इराक जैसे तेल और ऊर्जा उत्पादक देशों पर अपना कब्जा कायम करने के लिए उनके साथ विभिन्न युद्ध लड़ता आ रहा है और वे उनकी प्राकृतिक संपदा पर पूरी तरह कब्जा करने के लिए उन्हें राजनीतिक रूप से भी हथियाना चाहते हैं। सौभाग्य से अभी तक उत्तराखण्ड में ऐसे किसी ऊर्जा स्रोत की जानकारी नहीं मिल पाई है, लेकिन वहां जैव–विविधता पाई जाती है और जिस तरह से आजकल वैज्ञानिक एक जीन के माध्यम से दूसरे जीन का निर्माण कर देते हैं उनके लिए तो यहां अपार संभावनाएं हैं। इसलिए धीरे–धीरे वे लोग उत्तराखण्ड का रुख कर रहे हैं इसके अलावा कांग्रेस और भाजपा अपनी विभिन्न नीतियों के द्वारा बड़े औद्योगिक और बहुराष्ट्रीय निगमों को यहां आने का न्योता देती जा रही हैं तो फिर ऐसी स्थिति में जल,जंगल,जमीन पर जनता का अधिकार कायम रख पाना कठिन होगा। इससे आगे चलकर यहां के निवासियों को रोजगार की तलाश में पलायन करते हुए दिल्ली एवं अन्य शहरों की ओर रुख करना होगा। अपनी जमीन से कटकर इन लोगों को छोटी–छोटी नौकरियां करके अपना पेट भरना होगा। इसके अलावा उन्हें रोजगार की तलाश में ऐसे देशों में भी जाना होगा जहां नागरिक अधिकार तो हैं ही नहीं और फिर यहां के लोगों को एक समृद्ध जीवन की अपेक्षा एक गुलाम एवं साधनविहीन जीवन जीने को विवश होना पड़ेगा। हो सकता

है उत्तराखण्ड में भी ग्लोबलाइजेशन के कारण समृद्धि आए भी, लेकिन वह समृद्धि कई लोगों को घर से बेघर करके और जल, जंगल, जमीन पर से उनके अधिकार छीनने पर ही कायम की जा सकती है, जिससे कुछ 1–2 प्रतिशत लोगों को ही लाभ होगा और बाकी की जनता बेघर, बेरोजगार तथा गुलाम हो जाएगी। उसके सभी लोकतांत्रित अधिकार भी छिन सकते हैं। अपने उत्तराखण्ड की इस भयावह स्थिति से बचाने के लिए हमें अपनी जैव–विविधता का प्रयोग करते समय अपने ज्ञान तथा परंपरा को ध्यान में रखना चाहिए। हमें यहां के पानी को बांधने तथा जंगलों के नवीनीकरण के साथ–साथ जल, जंगल तथा जमीन पर अपना अधिकार कायम करने के लिए वन पंचायतें बनानी चाहिए ताकि हमारे प्राकृतिक संसाधनों का कोई दुरुपयोग न कर पाए और इन संसाधनों पर गैरसैंण तथा दिल्ली का हस्तक्षेप न हो, बल्कि इन संसाधनों पर यहां की स्थानीय जनता का हक हो।

आप में से कुछ लोग चुनाव नहीं लड़ रहे हैं लेकिन आप किसी न किसी विषय में विशेषज्ञता प्राप्त किए हुए हैं तो ऐसे में आप लोगों को 10–15 दिन जनता के बीच जाकर संवाद करना चाहिए और अपनी इन्हीं बातों को उनके सामने रखना चाहिए। आपको उन्हें अपनी बात समझानी होगी तथा उनकी बातों को भी गौर से सुनना होगा क्योंकि कई बातें ऐसी होती हैं जो हम जनता से बड़ी आसानी से समझ सकते हैं। इसके विपरीत यदि हमें चुनावों में शक्ति प्रदर्शन करना है तो ऐसा करने के लिए हमें अपने राजनीतिक संगठनों से बात करनी चाहिए। लेकिन यदि हमें जनता से सीखकर जनता का सशक्तीकरण करना है तो इसके लिए गैर सरकारी संस्थाओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं, वकीलों, डाक्टरों तथा पत्रकारों के संगठनों का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इनका काम राज्य शक्ति में हिस्सा पाना नहीं है बल्कि समाज की शक्ति बढ़ाना है। इनके माध्यम से हमें घोषणा पत्र को लोगों के बीच ले जाना पड़ेगा।

मैं इस काम के लिए विशेषज्ञों की बैठकों को व्यवस्थित ढंग से बुलाना चाहता हूं। आजकल हमारे सैकेट्री राकेश भट्ट जी कीनिया तथा नैरोबी में होने वाले वर्ल्ड सोशल फोरम की तैयारियों में व्यस्त हैं। इसके अलावा हमारी स्वतंत्र रूप से मदद करने वाले धस्माना जी तथा मुकेश बहुगुणा जी आजकल अस्वस्थ चल रहे हैं। अगर वे स्वस्थ होते तो हमारा काम हो जाता, लेकिन इन लोगों की गैर मौजूदगी में जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी के कई श्रेष्ठ प्रोफेसर और अर्थशास्त्री प्रोफेसर अरुण कुमार, प्रोफेसर सतीश जैन, वैकल्पिक अर्थशास्त्र के बारे में सरकार की ओर से होने वाले सर्वेक्षण के समान्तर एक सर्वे निकालने वाले अर्थशास्त्री प्रोफेसर कमल नयन कालरा जैसे लोग उत्तराखण्ड सरकार में सेक्रेटरी के कामों में हमेशा मदद करते रहते हैं। हम

अपने मैनिफेस्टो एवं घोषणा पत्र में इन लोगों की मदद प्राप्त कर सकते हैं। इस काम में मुकेश बहुगुणा तथा भुवन जी भी हमारा साथ देंगे। इसके लिए हमने नागरिक अधिकारों के संस्थापक निदेशक से भी बात की उन्होंने कहा कि वे चुनावों के कामों में सीधी तौर पर नहीं आ सकते, लेकिन, वे लोक वाहिनी, शमशेर सिंह बिष्ट के साथ किए गए वायदों को जरूर पूरा करेंगे और हमारी मदद करेंगे।

अब आप लोग जनता के बीच जाकर काम करें और हम सैडेड के तौर पर पानी वाले काम में शामिल होते हैं और जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर शोध करना चाहते हैं। हम आपके लिए विज्ञान के प्रमाण जुटाने का प्रयास कर रहे हैं। हमें लगता है कि उत्तराखण्ड में जाति के सवाल पर भी कई लोगों को कुछ जानकारी नहीं है। हमने देखा कि यहां के ब्राह्मण तथा ठाकुर लोग समाज में अग्रणी भूमिका में स्थापित हैं लेकिन फिर भी वे दलित समाज की परिस्थितियों, उनकी जानकारियों और समझ के बारे में कुछ नहीं जानते। वे यह भी नहीं जानते हैं कि वे लोग समाज में किस तरह के तिरस्कार का जीवन जी रहे हैं। वहां के दलितों को मंदिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। मुझे लगता है कि अगर हमें एक समग्र परिवर्तन के आंदोलन पर विचार करना है तो हमें जन घोषणा पत्र में समाज के हर तबके के सपने, दलित समाज से जुड़े हुए प्रश्नों के बारे में विचार करना चाहिए और उन्हें इस राष्ट्रीय परिस्थिति से उबारने के लिए हम क्या काम कर सकते हैं इन बातों पर विचार करना चाहिए। क्योंकि जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि उत्तराखण्ड एवं उसके पर्यावरण को बचाने के लिए हम सबको मिलकर काम करना होगा इसके लिए हमें गैर बराबरी, भेदभाव, तिरस्कार और जन्म आधारित कर्मों के आधार पर होने वाले शोषण को समाप्त करते हुए समाज में एकता स्थापित करनी चाहिए। समाज में समानता कायम करने और समाज के सामने दलितों के दुःख–दर्दों को खुलकर लाने के लिए हमें समाज के उन पिछड़े एवं दलित कहे जाने वाले लोगों की ही मदद लेनी चाहिए। उन्हें आगे लाना चाहिए क्योंकि उन्होंने इस असमानता एवं अत्याचार को स्वयं भोगा है इसलिए वो अपनी स्थिति को बहुत स्पष्ट रूप से रख सकते हैं। इस समझ के साथ हम समाज में दलित और गैर–दलित संवाद, आदिवासी और गैर–आदिवासी संवाद तथा पुरुष–स्त्री संवाद भी कायम कर सकते हैं।

उत्तराखण्ड के घोषणा–पत्र में सामाजिक क्रांति के मुद्दों के साथ सामाजिक बुराइयों के बारे में भी बात होनी चाहिए। ऐसा न हो कि हम केवल अपने कामों एवं समाज में मौजूद बड़ी–बड़ी बातों की ही चर्चा करें बल्कि, हमें अपनी असफलताओं के बारे में भी बात करनी चाहिए। अब जैसे गांधीजी को ही देख लीजिए उन्होंने अगड़ी जातियों के लोगों को भी सफाई का काम खुद करने के लिए प्रेरित किया। उनके

आदर्शों पर चलते हुए अगड़ी जाति के लोगों ने मंदिर–प्रवेश के काम के दौरान बहुत मार खाई, फिर भी इस आंदोलन को सफल बना ही दिया। वहीं, आज हम लोग ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। कांग्रेस को ही देख लीजिए। वहां दलितों को नेतृत्व सौंपने के लिए उन्हें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। चुनावी सभा के बारे में कहते हुए हम यह कह सकते हैं कि कांग्रेस ने कुछ नहीं किया है, लेकिन कांग्रेस ने गांधीजी तथा जगजीवन राम के नेतृत्व में बहुत बड़ा काम किया है। उन्होंने जाति की मानसिकता को खत्म करने के लिए प्रयास किए। उन्होंने शारीरिक श्रम करने वाले को छोटा तथा मानसिक श्रम करने वाले को बड़ा मानने के संस्कार को खत्म करने के लिए बड़ा प्रयास किया। उन्होंने बहुत कम समय में समाजिक क्रांति लाने का प्रयास किया। कांग्रेस अपने उसी प्रयास से जीतती आई है, लेकिन उत्तराखण्ड में यह सवाल केन्द्र में नहीं है वहां बी.एस.पी. अपने उम्मीदवार खड़े करती है और जो वोटर आज तक कांग्रेस को वोट देते आए थे वे स्वतः ही बी.एस.पी को वोट देने लगते हैं। इसका अर्थ है कि वे ताकतें कांग्रेस की प्रगतिशील ताकतों से कहीं आगे निकल चुकी हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है कि जो लोग हमारी सामाजिक एकता तोड़ रहे हैं उनके पास कोई मन्त्र नहीं है, बल्कि वे ऐसा इसलिए कर पा रहे हैं क्योंकि हम लोग समता की बात करते हैं, लोकतंत्र की बात करते हैं लेकिन सामाजिक लोकतंत्र की बात नहीं कर पाते हैं। और हमारे दलित समाज की स्थिति तथा उनके सपनों के बारे में हमारी कोई सामूहिक समझ नहीं है। लेकिन हमें अपना घोषणा पत्र बनाने के लिए इस स्थिति को अच्छी तरह समझना होगा। और कोशिश करनी चाहिए कि इस बात के लिए सामाजिक दबाव पैदा करने के लिए इसे केन्द्रीय भूमिका में लाना होगा। ताकि चुनावी ताकत के चक्कर में कोई भी व्यक्ति गरीबों की एकता को भंग न कर सके।

अभी मैंने अपनी सोच को आपके सामने रखा। अभी इसी क्रम में सुबह पांच–छह लोगों से बातचीत हुई। हम सोच रहे थे कि जनता से संवाद कायम करने और हमारी तमाम संस्थाओं की अर्थ नीति, राजनीति एवं राजकाज को संभालने वाले संस्थानों की नीतियों को बदलने तथा जनता को प्रथम शक्ति बनाने के लिए गांधी जी की पुण्य तिथि 30 जनवरी से कस्तूरबा गांधी की पुण्य तिथि 22 फरवरी तक उत्तराखण्ड में 'समता रथ' के नाम पर एक यात्रा निकालें। ये रथ यात्रा गैर–राजनीतिक तथा गैर–चुनावी होगी ताकि, गैर सरकारी संस्थाएं, बौद्धिक लोग और गैर–दलीय लोग भी इसमें शामिल हो सकें। इसकी परिकल्पना इस तरह से की जानी चाहिए कि चुनाव लड़ने वाले लोग इसमें प्रत्यक्ष रूप से भागीदार न बनें और समाज से संवाद करने गैर–सरकारी संस्थाओं को इसमें भागीदारी बनाने में सुविधा हो। ये मेरा एक सुझाव है। आगे आप लोग इस विषय पर बात करके अपनी राय दे सकते हैं।

आज की कार्रवाही को चलाने के लिए मैं, सुरेश भाई का नाम प्रस्तावित करना चाहता हूं। कल की बातचीत के अंत में हमारे दो साथियों ने टिप्पणी की थी। आज की कार्यवाही के अंत में धस्माना जी टिप्पणीं करेंगे। अब मैं अध्यक्ष महोदय से आग्रह करना चाहता हूं कि वे आगे की कार्रवाही चलाएं। सुरेश भाई जी आइए!

सुरेश भाईः— मेरा नाम सुरेश भाई है। कल भी यही बात हो रही थी कि उत्तराखण्ड में समता के नाम पर एक कार्यक्रम आयोजित किया जाए जिसे समता—रथ का नाम दिया जाए। हम इस तरह का कार्यक्रम इस लिए आयोजित करना चाहते हैं, क्योंकि आज भी हमारी मानसिकता में सवर्णों और असवर्णों के बीच भेदभाव की मानसिकता मौजूद है। इसके अलावा स्वयं दलितों में भी इस तरह की सोच कायम है। कई दलित अपनी जात के कारण इतने भयभीत हैं कि वे अपनी जात बताते ही नहीं हैं और अगर वे आरक्षण के बल पर या फिर ऐसे भी किसी ऊंचे ओहदे पर बैठ गए तो वे अपने—आपको दलित कहते ही नहीं है और खुद को उस समाज से काट भी देते हैं। इस कार्यक्रम के लिए हमें जगह—जगह जाकर भ्रमण करना चाहिए और इसकी शुरूआत करने के लिए 'हनोल' जगह उपयुक्त होगी। क्योंकि पिछले दिनों वहां महाशिव देवता के मंदिर में कुछ दलित समाज के लोग घुस आए थे, जिसके लिए मंदिर के पुजारी और वहां मौजूद सवर्णों ने जमकर विरोध किया। इसके लिए उन लोगों को काफी अपमानित भी होना पड़ा। दलितों ने भी अपने साथ हुए इस व्यवहार के विरोध में एक बैठक की और कई दिनों तक इस विषय पर विवाद जारी रहा। हमें अपने इस समता रथ की शुरूआत इसी स्थान से करनी चाहिए। उसके बाद हम लोग उत्तरकाशी से होते हुए, रानी का पर्वत जाएंगे और वहां से फिर उत्तरकाशी। फिर उत्तरकाशी के बाद बूढ़ा केदार होते हुए खिदरी नगर, केशव नगर होते हुए हम उनाव की तरफ चलते हुए बागेश्वर निकल सकते हैं। या तो हम रास्ता बदलते हुए शिवनगर से कोटद्वार और कोटद्वार से नैनीताल, हल्द्वानी होते हुए बागेशवर में समाप्त कर सकते हैं क्योंकि वहां 22 फरवरी को कस्तूरबा दिवस के अवसर पर वहां की महिलाएं एक सम्मेलन के लिए एकत्र होती हैं।

हमने यह समय इसलिए चुना है, क्योंकि वह चुनाव का समय है और चुनाव की सरगर्मी में लोग बहुत गर्म होते हैं और ऐसे समय में यदि हम अंतिम जन को प्रथम जन मानने की बात कहेंगे तो ये मील का पत्थर साबित होगी। इस यात्रा में समानता के अलावा कई अन्य विषय भी शामिल होंगे। इस यात्रा में हमारे अन्य साथी भी हमारे साथ होंगे लेकिन, हो सकता है कि वे किन्हीं अन्य स्थानों से निकलें। इसलिए हम इस

बैठक में इन सब बातों पर विचार कर लेंगे। इसके अलावा इस यात्रा के लिए साधनों की भी जरूरत है। उसके लिए साधन कहां से आएंगे? किस तरह का रथ होगा? इतनी दूर पैदल यात्रा तो हो नहीं सकती है तो इसके लिए गाड़ियां कहां से आएंगी? कितनी गाड़ियां मंगानी पड़ेंगी? आदि बातों पर विचार करने के बाद ही यात्रा शुरू की जा सकती है।

इस यात्रा के दौरान हम अधिकांशतः उन जगहों पर जाएंगे जहां पर लोग छुआछूत और इन सब परेशानियों से जूझ रहे हैं। जिन–जिन क्षेत्रों में आरक्षित सीटें हैं वहां की हालत को भी देखना होगा। यदि हम इस यात्रा को 30 जनवरी से शुरू करना चाहते हैं तो हमें 22 फरवरी से ही चले जाना चाहिए। पदयात्रा के बारे में सोचने से पहले हमें यह भी सोचना होगा कि इस दौरान लोग वहां पैदल चल भी पाएंगे या नहीं क्योंकि उस समय वहां बहुत ठंड होती है।

अन्य वक्ता : मेरा सुझाव है कि यदि हम स्थानीय स्तर पर काम कर रहे हैं तो हमें गांव–गांव में घूमना पड़ेगा। इस यात्रा से पहले इसके उद्देश्य तथा मुद्दे भी स्पष्ट हो जाने चाहिए। इस समय माहौल गर्माया होता है, इसलिए इस समय हमें लोगों के हस्तक्षेप के बारे में बात करनी चाहिए। इस यात्रा के शुरू होने से पहले हमें एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए कि यात्रा वाले दिन इस यात्रा का सभी जगह स्वागत हो सके।

हां! हम सभी को यह फैसला ईमानदारी से लेना होगा कि इस यात्रा के काम में लगे लोग इस यात्रा के दौरान किसी और पार्टी के काम को हाथ में न लें।

इस दौरान हमें किसी पार्टी के पक्ष एवं विपक्ष में बोलने की बजाय इस विशलेषण के बारे में बोलना चाहिए कि बी.एस.पी. समाज को कैसे तोड़ रही है, कांग्रेस अपनी विरासत को कैसे तोड़ रही है और किस तरह से दलितों का विरोध कर रही है। हम इन सब बातों को विश्लेषण में तो कर सकते हैं लेकिन वोट के संदर्भ में नहीं कर सकते हैं। मेरी यह राय है कि जो व्यक्ति चुनावी काम करना चाहता है, उसे सोशलिस्ट फ्रंट, उत्तराखण्ड क्रांति दल जैसे वोट के मंचों का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि वे लोग अपने चुनावी काम के लिए इस मंच का प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि यदि हम वोट की राजनीति करते हैं तो इस काम में गैर सरकारी संगठनों और सामान्य समाज को शामिल करना मुश्किल होगा। मुझे लगता है कि जब इसका नाम ही समता–रथ है तो इसमें वोट की बात तो हो ही नहीं सकती। बस इसमें ज्यादा से ज्यादा हम अपने घोषणा पत्र पर ही बात कर सकते हैं। हम अपने घोषणा पत्र के बारे

में राय लेने तथा दलों द्वारा इसे अप्रोच करने के लिए इसकी प्रतियां लोगों और दलों में बांट देंगे।

इस दौरान हमारे दो तरह के रथ निकलेंगे एक उन्नाव के लिए तथा दूसरा गढ़वाल के लिए। इसमें महिलाओं का नेतृत्व तो होगा ही क्योंकि यह रथ समाज के समता मूल्यों को लेकर चलेगा जिसके लिए इसमें समाज के हर तबके को भाग लेना होगा।

यात्रा के दौरान हम कुछ जगहों पर एक–एक दिन का शिविर या गोष्ठियां करेंगे। इस पूरे रास्ते और समय को देखकर मैंने यह तय किया कि यदि हम हनोल से चलते हुए कपूर पहुंचते हैं तो इस दौरान 10 दिन यात्रा में लगेंगे और 10 दिन पड़ाव में लगेंगे। हम पहले दिन हनून से चलकर उत्तरकाशी पहुंचेंगे और मातली के शिविर में भाग लेंगे। दूसरे दिन मातली से चलेंगे और टिहरी घनशाली तथा फलेंडा होते हुए बूढ़ा केदार पहुंचेंगे और बूढ़े केदार के शिविर में भाग लेंगे। तीसरे दिन हम बूढ़ा केदार से चलकर चिरकुटी और रुद्रप्रयाग होते हुए श्रीनगर पहुंचेंगे और वहां शिविर और गोष्ठी में भाग लेंगे। चौथे दिन हम श्रीनगर से चलकर पौड़ी और कोटद्वार में मानसिंह जी द्वारा आयोजित शिविर में भाग लेंगे। पांचवें दिन हम कोटद्वार से चलकर काशीपुर, रामनगर होते हुए नैनीताल आ जाएंगे। वहां गोष्ठी और शिविर का आयोजन होगा। छठे दिन भवानी, मुक्तेश्वर होते हुए अल्मोड़ा पहुंचेंगे, वहां शिविर और गोष्ठी होगी। सातवें दिन अल्मोड़ा से चलेंगे और बनवानोला, आतुला और जागेशवर होते हुए बूढ़ा बाग जेनिया में आ जाएंगे। वहां हमारे साथी मुख्य शिविर आयोजित करेंगे। सातवें ही दिन हम दनिया से चलकर घात होते हुए पिथोरागढ़ पहुंचेंगे और वहां एक शिविर होगा। आठवें दिन हम पिथोरागढ़ से दो रास्तों से जा सकते हैं। एक तो, मुवाना, थल, गंगोली हाट होते हुए धर्मपुर आ जाएं और वहां एक शिविर करें। या फिर हम लोग पिथौरागढ़ से चलकर थम्वबानी होते हुए धर्मपुर आ जाएंगे और वहां अपना शिविर करेंगे। और नौवें दिन हम धर्मपुर से कपूर पहुंच जाएं, तो इस लिहाज से 10 दिन यात्रा में बीत जाएंगे और 10 दिन बैठकों में बीत जाएंगे। मातली में शिविर का आयोजन सूरज भाई और उनके साथी करेंगे। बूढ़ा केदार की जिम्मेदारी बिहारी भाई और उनके साथियों के साथ त्रैपन सिंह चौहान संभालेंगे। छठे दिन श्रीनगर की जिम्मेदारी अनिल स्वामी और साथी संभालेंगे। कोटद्वार में मानसिंह जी, रावत जी और सर्वोदय के साथी शिविर का आयोजन करेंगे। नैनीताल के शिविर का आयोजन डॉ. शेखर पाठक, राजीव लोचन साह, मैनाली जी और उनके साथी करेंगे। अल्मोड़ा के शिविर का आयोजन हम सभी लोग मिलकर करेंगे। बूढा बाग में शिविर का आयोजन

करने के लिए संदीप, शंकर और कई युवा साथी मौजूद होंगे। फिर पिथौरागढ़ की गोष्ठी का आयोजन मोहन सिंह रावत और सर्वोदय आंदोलन के नेता विनय जोशी जी करेंगे। उसके बाद धर्मधर में शोभा बहन, सजन मिश्रा और बाकी साथियों द्वारा बैठक का आयोजन किया जाएगा। तो इस प्रकार से पूरे यात्रा मार्ग में 30 तारीख के बाद 10 दिन तक यात्रा और 10 दिन तक शिविर और गोष्ठियां आयोजित की जाएंगी।

अगर हम अपने तय कार्यक्रम के अनुसार चलें तो कुमाऊं का एक बड़ा हिस्सा तथा गढ़वाल का एक हिस्सा आसानी से पूरा कर लेंगे। दो टोलियों एवं पदयात्रा के माध्यम से उत्तराखण्ड के इतने बड़े भाग की यात्रा नहीं की जा सकती है। इसके अलावा इस यात्रा से ऐसा सोचना कि जगह–जगह गोष्ठियां और शिविर हो जाएं और एक ही यात्रा और एक ही जीप द्वारा हम समता और घोषणा पत्र के बारे में बात कर लें, ऐसा भी संभव नहीं है। आप लोग यह क्यों मानते हैं कि हम लोग इतने गरीब हैं कि हमें एक ही गाड़ी में जाना चाहिए। मैं आपको एक बात बताता हूं मैंने कुछ आदिवासियों की डायरी पढ़ी। उसके अनुसार आज से कुछ साल पहले वे इतने गरीब थे कि उनके पास इतना पैसा भी नहीं था कि वे अपना पक्का मकान बना सकें। इसलिए वे अपने पुश्तैनी मकान में रहते थे और आजादी के बाद वे सभी चुनावों में भाग लेने लगे। उनका कांग्रेस से कोई सीधा संबध नहीं था, लेकिन जब गांधीजी शराबबंदी के लिए आवाज उठा रहे थे तो उस समय वे भी अपने इलाके की समस्याओं के विरोध में अपनी आवाज उठा रहे थे। दोनों का मकसद एक ही था और उन्होंने आपस में कोई संबध स्थापित किए बिना ही संकल्प लेकर सामाजिक काम करना शुरू कर दिया। उनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। शुरू में वे रेलवे की एक छोटी सी नौकरी करते थे और बाद में वह भी छूट गई। बाद में वे पूरी तरह कांग्रेसी हो गए। इस प्रकार से वे लोग इतने गरीब और पिछड़े समाज से संबध रखते हुए भी अपने आप को स्थापित कर पाए तो हमें अपने–आपको इतना ज्यादा गरीब और बेसहारा नहीं समझना चाहिए।

आप लोगों ने जो एक टीम बनाकर काम करने का सुझाव दिया है उसपर फैसला करें और उसको अच्छी तरह से अमल में लाएं। लेकिन आजकल जो यह इस अलग तरह का माहौल बना हुआ है कि इस यात्रा के लिए गैर सरकारी संगठन की जीप आदि का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए, यह गलत है। वास्तव में हर गैर सरकारी संगठन की जीप रखना अपराध नहीं है अगर इस मिशन को पूरा करने के लिए सबने सोच ही रखा है तो इसके लिए जीपों का प्रयोग करना ही चाहिए, क्योंकि जब तक मिशन पूरा न हो जाए, और सबके पास जीपें हैं ही, तो उसका प्रयोग करने

वालों को गाली देना ठीक नहीं है। और गैर–सरकारी संगठनों का प्रयोग कई पार्टियों के नेता करते हैं इनमें सी.पी.एम. के नेता शामिल हैं इनके अलावा सी.आई.ए. के ऐजेन्ट प्रकाश कारत हैं। इनके अलावा मैं जिस डब्लू.एस.एफ. से संबंधित हूं उसमें सी.पी.आई. के प्रोफेसर कमल चिनाय और डॉ. रघुनंदन तथा सी.पी.एम. से संबंधित तथा इन्डीपेन्डेन्ट मार्क्सवादी लेफ्ट रजिया अब्बासी आदि लोग संबधित हैं। इसलिए यदि हम गांधी प्रेरित लोग हैं तो हमें दोहरे अर्थ और ढ़ोंग नहीं करना चाहिए। हमें अपनी सीमा के बारे में साफ बात करनी चाहिए। और अगर इसमें गैर सरकारी संगठन या फिर रिसर्च इनस्टीट्यूट की भागीदारी भी हो तो साफ तौर पर डंके की चोट पर होनी चाहिए। और हर गैर–सरकारी संगठन को यह कहना चाहिए कि उसकी जीप होने का तर्क तभी है जब वो इस यात्रा में जन घोषणा पत्र के बारे में लोगों से स्थानीय संवाद स्थापित करने के लिए अपने साधन, अपने लोगों का समय और अपनी जीप को प्रयोग में ला सकें। इस प्रकार यदि आप इस सभी का प्रयोग करते हुए पूरे उत्तराखण्ड के कथित रूप से पंजीकृत 16 हजार गैर सरकारी संस्थाओं तथा भुवन के अनुसार 2–3 हजार सक्रिय गैर–सरकारी संस्थाओं को सक्रिय नहीं कर पाते तो उस अंश तक आपकी सफलता अधूरी ही रह जाएगी।

दूसरा आप लोग सभी गैर–सरकारी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) की आपस में तुलना न करें। इसकी बजाय आप उनके साथ आम लोगों के घरों तक खासकर दलित और पिछड़े लोगों की बस्ती में जाएं। दलितों में भी पहले सबसे नीची सीढ़ी वाले दलित के घर जाएं उसके बाद उससे थोड़ी ऊपर वाली सीढ़ी में आने वाले दलित के घर जाएं और उसके बाद उसी क्रम में आगे बढ़ते जाएं। इस प्रक्रिया में यदि आप पढ़े–लिखे या उन दलितों को छोड़ भी दें जो कुछ पढ़–लिखकर ऊंचे पदों पर चले गए हैं और अपने–आपको दलित मानने से इंकार करते हैं तो कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जो अपनी कमजोरी को भूलकर आज भी समाज में उन्हीं कमजोरियों का सामना करने वालों के बारे में सोचना नहीं चाहते तो उन्हें छोड़ भी दिया जाए तो कोई हर्ज़ नहीं। उनके अलावा जो भी लोग इस यात्रा एवं काम में शामिल होना चाहते हैं वे हो सकते हैं। इस काम को सावधानी से करना हमारे पूरे समूह की जिम्मेदारी है। हमें इस काम को इस आव्हान से करना है कि उत्तराखण्ड का हर नागरिक, हर संगठन, हर ट्रेड यूनियन, हर किसान संगठन, कारीगरों के बीच सक्रिय हर संगठन, हर जन संगठन तथा हर गैर–सरकारी संस्था (एन.जी.ओ.) इसमें पूरी ताकत लगाए और बाकी सब लोगों को भी इस काम में लगा सके। जिससे उत्तराखण्ड की हर पार्टी पर समता मूलक सपने का दबाव बने और वे 21 तारीख तक इसमें अपनी पूरी ताकत लगा सकें और पूरे चुनाव की दिशा बदल जाए।

अगर समता–रथ चलता रहा तो अधिक खर्च करने वाली पार्टी, ईमानदारी का पैसा खर्च करने वाली पार्टी, सादगी से चुनाव लड़ने वाली पार्टी तथा भ्रष्टाचार के पैसे से चुनाव लड़ने वाली पार्टी की पहचान आसानी से की जा सकती है और किसी भी पार्टी के चरित्र एवं कार्यों के बारे में बहस की जा सकती है। समता रथ के माध्यम से पार्टियों की प्रतिबद्धता, समाजनीति तथा स्वराज के सवालों को आसानी से उठाया जा सकता है। इसके माध्यम से जन घोषणा–पत्र के बारे में आम लोगों की राय जानकर उसके प्रारूप में लगातार संशोधन करते रहेंगे। अभी आप सब मिलकर जन घोषणा–पत्र पर बहस की तारीख भी तय कर लें, तो अच्छा रहेगा।

अध्यक्षः– हम लोगों के सौभाग्य से आज हमारे बीच जमीनी स्तर पर पराक्रमी कार्यकर्ता रहे गांधी शांति प्रतिष्ठान के श्री सुरेन्द्र मोहन जी मौजूद हैं। आपको तमाम महत्वपूर्ण नेताओं के साथ मिलकर मुजफ्फरपुर में सर्वोदय आंदोलन में काम करने का मौका मिला। सुरेन्द्र मोहन जी उत्तराखण्ड में स्थित तमाम गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.), जन संगठनों, ट्रेड यूनियनों, किसान संगठनों और गांधीवादी संगठनों को आपस में मिलाकर 30 जनवरी से कस्तूरबा जी की पुण्य तिथि 22 फरवरी तक समता रथ के नाम से एक वाहन यात्रा तथा पद यात्रा निकालने की पहल कर रहे हैं। हमारे विचार एवं बातचीत के अनुसार इस दौरान एक जन घोषणा पत्र वितरित किया जाएगा और उसे बेहतर बनाने के लिए उसपर की गई प्रतिक्रियाओं को भी शामिल किया जाएगा। इस यात्रा में न तो चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों को शामिल किया जाएगा और न ही इस यात्रा के माध्यम से वोट बांटा जाएगा। जन घोषणा पत्र बनाने के क्रम में पार्टियों का विश्लेषण तो होगा, लेकिन चुनावी अभियान में इसे किसी भी पार्टी के पक्ष में या किसी भी पार्टी के खिलाफ यात्रा का हिस्सा नहीं बनने दिया जाएगा। इस यात्रा के दौरान तमाम गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.), जनसंगठन आंदोलन समूहों और पार्टियों के कार्यकर्ता अपनी बैठकों के लिए अपने मंच का प्रयोग करेंगे। इस बारे में आपके सुझावों का स्वागत है।

बाबूलाल शर्मा : जहां तक मैंने इस गोष्ठी को समझा है उसके अनुसार हम चुनाव के दौरान कुछ जागरण के काम करना चाहते हैं और क्योंकि हम इस पदयात्रा तथा वाहन यात्रा को चुनाव के मौके पर कर रहे हैं तो हमें इस दौरान होने वाले कामों के बारे में सोचना चाहिए। इस दौरान न तो हम किसी पार्टी का समर्थन कर रहे हैं और न ही किसी का विरोध कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि लोग इस घोषणा–पत्र के आधार पर अपनी सोच के अनुसार चुनाव में उतरें और अपनी मन–मर्जी के अनुसार अपने राजनीतिक अधिकार का प्रयोग करें। इस यात्रा के माध्यम से हमें लोगों की समझ तथा

दिशा बनाने में मदद करनी चाहिए। आप इस यात्रा को चुनाव के समय पर कर रहे हैं, अतः आपको जनता को सही प्रत्याशी का चुनाव करने के लिए जाग्रत करना चाहिए।

पी.सी.तिवारी : मेरा नाम पी.सी.तिवारी है, मैं अल्मोड़ा से आया हूं। जैसे कि हम सभी एकता, समता और सबसे पिछड़े और कमजोर की बात कर रहे हैं तो सबसे पहले तो हमें यह जानना चाहिए कि वे लोग कमजोर एवं पिछड़े क्यों हैं ? और चुनाव के समय ऐसा क्यों हो जाता है जो बाकी समय में नहीं होता ? चुनाव के समय धन, पैसे और शराब को तो पानी की तरह बहाया जाता है और साथ ही साथ इस दौरान माफिया तथा राजनीतिक दलों के साथ संबधों का भी खूब प्रयोग किया जाता है। इसलिए हमें उन राजनीतिक दलों की पहचान करनी चाहिए जो चुनाव के दौरान इन तरीकों का प्रयोग करते हैं। उन लोगों की पहचान करने के लिए हमें यह देखना होगा कि जो लोग पांच सालों के दौरान वास्तव में ही कोई काम करते हैं। वे चुनाव प्रचार के दौरान इतना पैसा नहीं बहाते। और हमें इन लोगों के खिलाफ अभियान चलाना चाहिए। यदि हम लोग उन लोगों को राजनीति के बाहर न कर पाए तो हमारे इस अभियान का कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। हमें इस यात्रा के दौरान ऐसा प्रचार करना चाहिए कि हमें कालाबाजारी करने वालों, गुंडे, माफिया और शराब की तस्करी करने वालों को सम्मान न देने की बात करनी चाहिए क्योंकि यदि उन व्यक्तियों को सम्मान मिलने लगेगा तो वे लोग भी राजनीति के शीर्ष पर चले जाएंगे और हमारे लोकतंत्र एवं हमारी सामाजिक व्यवस्था को नष्ट–भ्रष्ट कर देंगे।

इस यात्रा के दौरान हमें चुनाव सुधार करने का प्रयास करना चाहिए। हमें यह सवाल उठाना चाहिए कि चुनाव के दौरान होने वाले खर्च को सरकार स्वयं क्यों नहीं उठाती है ? बहस में यह बात भी निकलकर आई कि यदि सरकार प्रयास करे तो बिना पैसे के भी चुनाव हो सकता है या फिर जितना पैसा सरकार चुनावों में खर्च करती है, उससे कम में भी चुनाव हो सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि सरकार एक विधानसभा क्षेत्र से खड़े सभी उम्मीदवारों को एक गाड़ी में बिठाकर उनके चुनाव क्षेत्र में ले जाए और एक मंच पर खड़ा कर दे। उसके बाद वहां की जनता को उनसे सवाल–जवाब करने दिया जाए। यदि हमारी सरकार इस बारे में सोचे तो चुनाव प्रक्रिया में बहुत सुधार हो सकता है।

जहां तक हम दलितों की बात कर रहे हैं, तो मुझे तो लगता है कि आज उनकी स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं आपके सामने एक उदाहरण रखना चाहता हूं। हमारे एक साथी हैं जीवन सिंह। वे

किसान नेता हैं और किसानों के कार्यकर्ता हैं। वे हमेशा अपने क्षेत्र में काम करते रहते हैं और सब जानते हैं कि दलित लोग भी उनके पक्ष में रहते हैं। वे पिछले साल पानी के सवाल पर गांव में एक अभियान चला रहे थे। वहां से गुजरते समय दलित समाज के साथ हमारा कुछ मन–मुटाव हो गया। इसी बात को लेकर दलित समाज के बी.एस.पी. के नेताओं ने एक मुद्दा बनाकर इसके खिलाफ अनुसूचित जाति एक्ट में रिपोर्ट करा दी। यह बात पूरे गांव में फैल गई कि दिवान सिंह फलां–फलां काम करते हैं और उन्होंने दलित समाज के साथ गलत व्यवहार किया है। इस बात पर हम सभी ने कहा कि यदि दीवान साहब से कोई गलती हुई है तो वे माफी मांग लेंगे और समस्या का समाधान हो जाएगा और उन्होंने ऐसा किया भी, लेकिन उसके बावजूद भी पूरा माफिया, पूरे दलित समाज के बड़े–बड़े नेताओं ने इस पूरे मामले में लड़ाई भड़काने का पूरा–पूरा प्रयास किया। लेकिन अंततः बहुत प्रयत्न के बाद वो मामला खत्म हो गया। इसके अलावा भी इस तरह के कई किस्से हैं लेकिन मैं चाहता हूं कि हमारे समता रथ में इस तरह के किसी भी कार्यक्रम को स्थान नहीं मिलना चाहिए। हमें समता के साथ–साथ धार्मिक समानता के कार्यक्रम पर भी विचार करना चाहिए।

अध्यक्ष : अभी समानता तथा बाकी यात्रा के बारे में बात हुई। हमें इस बात को विस्तार से समझना चाहिए। मुझे लगता है कि कुछ लोग इस यात्रा को अभी करने के पक्ष में हैं और कुछ लोग चाहते हैं कि इस यात्रा को अभी नहीं करना चाहिए। यह एक अच्छी बात है, क्योंकि ये कोई जरूरी नहीं कि सभी लोगों की एक जैसी सोच हो ही। और लोकतंत्र में होते हुए हमें सभी की बात को सुनना होगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि जो लोग इस यात्रा को अभी कराना चाहते हैं वे अपनी बात को थोड़ी देर बाद रखें और जो लोग इस यात्रा को अभी नहीं कराना चाहते हैं वे लोग अपनी बात को पहले रखें और इसके बारे में वे अपनी राय तथा सुझाव भी दें। क्योंकि यदि आप समझते हैं कि ये गलत है तो हम इस काम को नहीं करेंगे और भविष्य में होने वाले नुकसान से भी बच पाएंगे। और यदि बहुसंख्य लोग इस यात्रा को करने के पक्ष में हैं तो हम इस यात्रा को करेंगे।

दूसरे, जो आपने कहा कि चुनाव का मौसम होने के कारण हमें अपनी सभी बातों के केन्द्र में चुनावों को रखना चाहिए। और श्रम शिक्षण तथा लोक शिक्षण की बातें बाद में करनी चाहिए। आप लोग समता की बात कर रहे हैं। उस समता के स्वर को पहचानने की कोशिश करें चाहे आप जिस भी शब्द का प्रयोग करें लेकिन वास्तव में आप राजनीतिक माहौल तथा राजनीतिक समता की ही बात कर रहे हैं। अगर आप सच में ही समता स्थापित करने की बात कर रहे हैं तो आपको गांधी जी द्वारा दर्शाई

गई समता के बारे में ही बात करनी चाहिए, क्योंकि मुझे लगता है कि गांधीजी ने समता की लड़ाई को सांस्कृतिक समता के आधार पर लड़ा। भले ही उनकी शब्दावली में अस्पृश्यता निवारण तथा दूसरी बातें शामिल रही हों लेकिन मूलतः हिन्दुस्तान में वे सांस्कृतिक समता का आंदोलन चला रहे थे और आर्थिक समता, राजनीतिक समता, सामाजिक समता तथा बहुत सारी समताएं उसी में शामिल थीं। गांधी जी ने सिखाया कि अगर सांस्कृतिक समता स्थापित हो जाए तो बाकी समताएं अपने–आप ही स्थापित हो जाएंगी। इसके लिए उन्होंने खादी का नियम मानने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि अगर हम लोग खादी पहनेंगे और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर देंगे, तो इससे संस्कृति और संस्कारों के माध्यम से समता स्थापित हो जाएगी।

लेकिन आप लोग जिस समता की बात कर रहे हैं वह राजनीतिक समता है। आपके स्वर राजनीति के स्वर हैं और ये बात कुछ गलत भी नहीं है, क्योंकि आज राजनीति, समय की मांग बन गई है। मैं आज आपके सामने एक साधारण व्यक्ति की तरह बोलने आया हूं तो मुझे ज्यादा लोग नहीं सुनेंगे और जो सुनेंगे भी तो वे सोचते हैं कि चलो सुन ही लेते हैं। लेकिन यदि आज मेरे पास किसी प्रकार की राजनीतिक सत्ता होती तो मेरी बात को कई गुणा लोग सुनने आते और मेरी बात का असर भी कई गुणा ज्यादा होता। हम सभी लोगों के दिल में सत्ता के लिए एक अलग विशेष सोच है। राजनीति एक हैसियत बन गई है और यह हैसियत सत्ता से और पावर से जुड़ी हुई है।

मैं यह कहना चाह रहा हूं कि राजनीति का मूल तत्व चुनाव है। चुनाव ही राजनीति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे तो चुनाव के ऊपर कुछ होता नहीं है, होता भी है तो वह सत्ता का खेल होता है और सत्ता के नफे–नुकसान का खेल होता है। बाकी राजनीति चुनाव तक ही सीमित रहती है। और चुनाव वो समय होता है जब आप जनता के बीच जाकर जो भी बात और काम करें लेकिन उनका ध्यान तो केवल चुनावों पर ही लगा रहता है। और अगर आप चुनाव के दौरान चुनावों से हटकर कोई बात कर भी लेंगे तो उससे जनता का ध्यान बांटने के अलावा और कोई प्रभाव नहीं डाला जा सकता है। चुनावों में जनता को केवल वोट की बात समझ में आती हैं क्योंकि अपने सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावी अधिकार का प्रयोग करने का यही एक उचित समय होता है। उस समय आप उनसे कुछ और बातें कहेंगे तो वे आपकी बातों को केवल सुन लेंगे क्योंकि सुनना उनकी आदत है।

आज हम चुनाव के मुद्दे पर संवाद कर सकते हैं। हम इसपर बात कर सकते हैं कि आज कौन सा उम्मीदवार आपकी बात को समझ सकता है ? वो आपकी किसी बात को समझता है या नहीं समझता है ? आपके क्या मुद्दे हैं ? मुद्दे सब स्थानीय ही होने चाहिएं। वैसे तो हिन्दुस्तान में कभी भी अन्तराष्ट्रीय मुद्दा नहीं बना। सभी मुद्दे स्थानीय होते हैं बस उनका राष्ट्रीय चरित्र बन सकता है।

हिमालय स्वराज अभियान दिनांक–10–11–2006
विषय – जातिगत व्यवस्था
स्थान – आई.एस.एफ.(जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम

संचालकः– आज विश्व सामाजिक मंच के गठन को छह साल हो गए हैं। जिसमें देश के कोने–कोने तथा विश्व के कई हिस्सों से मौजूद हजारों कार्यकर्ताओं का स्वागत है। इसका आयोजन सबसे पहले बेलसी में हुआ उसके बाद मुम्बई में और फिर अगले साल कीनिया की राजधानी नैरोबी में होगा। हम सब इसलिए इक्ट्ठा हुए हैं ताकि सब मिलकर एक ऐसा लोकतंत्र स्थापित करें जिसमें दुनिया के आखिरी व्यक्ति को भी उसके हिस्से की जमीन, पानी और मकान आसानी से मिल जाए। साथियो हम लोग कई सालों से साझा चौपालों, साझा मंच तथा साझा पंचायत के साथ मिलकर अपने आस–पास तथा समाज में मौजूद समस्याओं तथा उन्हें दूर करने के उपायों पर बहस और संवाद करने के लिए एकत्र होते आए हैं और आज फिर हम सब एक साथ मौजूद हैं। मैं वसुधैव कुटुम्बकम के व्यापक परिवार तथा जाति तोड़ो अभियान तथा अपने सहयोगी भारतीय साथियों की तरफ से आप सभी का स्वागत करता हूं।

साथियो कई बार हमें अपनी बात तथा अपनी समस्या कहने के लिए मंच नहीं मिल पाता है लेकिन आज हमें अपनी बातें सबके सामने रखने के लिए एक उपयुक्त मंच मिला है। इस बातचीत को आगे बढ़ाने से पहले मैं मंच पर अपने उन सभी साथियों को बुलाना चाहूंगा जो अपना सपना तथा अपनी बातचीत को हमारे सामने रखेंगे। मैं सबसे पहले कीनिया से आईं बाहुतारा जी को आमंत्रित करना चाहूंगा, आपका नाम डब्लू. एस. एफ. के साथ जुड़ा हुआ है। आपने आदिवासियों के बीच रहकर दबे–कुचले और हासिए पर रह रहे लोगों के साथ वर्षों काम किया है। मैं बाहुतारा जी का स्वागत करता हूं। उसके बाद मैं उत्तराखण्ड में लगभग बीस साल से परिवर्तन की राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने वाले हमारे मित्र तथा कार्यकर्ता रघु तिवारी को मंच पर आमंत्रित करूंगा। इसके बाद मैं उत्तर प्रदेश से आईं नीलिमा चतुर्वेदी से अनुरोध करता हूं कि वे मंच पर आएं और अपना स्थान ग्रहण करें। आप लगभग दो दशकों से महिलाओं तथा जातियों के सवाल पर काम कर रही हैं। इसके बाद मैं वर्षों से जाति के आंदोलन पर काम तथा बहस करने वाले साथी जगदीश जी को आमंत्रित करूंगा। उसके बाद मैं समता आंदोलन को आगे बढ़ाने तथा जातियों के बीच मौजूद अवरोध को खत्म करने का प्रयास करने वाले हमारे युवा साथी भाई गोपाल को मंच पर आमंत्रित करूंगा। मैं चाहता हूं कि वे मंच पर आकर अपना स्थान ग्रहण करें। अब मैं

हमारे पुराने समाजवादी नेता अख्तर हुसैन जी से निवेदन करूंगा कि वे मंच पर आकर अपना स्थान ग्रहण करें। अब मैं अमर सिंह से आग्रह करता हूं कि वे मंच पर आकर अपना स्थान ग्रहण करें। अगर सतेन्द्रनाथ चौधरी जी पंडाल में मौजूद हों तो वे कृप्या अपना स्थान ग्रहण करें।

साथियो अब हम अपनी बहस की शुरूआत करते हैं, मैं सबसे पहले श्री विजय प्रताप जी से निवेदन करूंगा कि वो आएं और अपने विचार रखें।

विजय प्रताप : आज मुझे ऐसे लोगों के बीच बोलते हुए बहुत अच्छा लग रहा है जो धर्म तथा जाति की किसी दीवार को नहीं मानते हैं, वे केवल इंसानियत की जात पर ही विश्वास करते हैं। आप सब अपने–अपने क्षेत्र में जातियों के बीच मौजूद भेदभाव को दूर करने का एक बड़ा काम कर रहे हैं। लेकिन आज भी हमारे समाज के कुछ तबकों तथा क्षेत्रों में जातिगत भेदभाव दिखाई दे जाता है। आज कुछ नौजवान लड़के–लड़कियां जाति के बंधनों को अनदेखा करते हुए अन्तर्जातीय विवाह कर रहे हैं लेकिन ऐसा करने के बाद उनको बहुत कुछ बर्दाशत करना पड़ता है। उन्हें अपने घर–रिश्तेदारों तथा समाज के ताने सुनने पड़ते हैं। अगर कोई ऊंची जाति का लड़का किसी छोटी जाति की लड़की से शादी कर ले तो लोग लड़के को बेइज्जत करते हैं और कहते हैं कि उसने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा हैसियत की परवाह किए बगैर खुद अपनी तथा अपने खानदान की नाक कटा दी। लड़की को भी भला–बुरा कहते हैं कि उसने उनके समाज एवं जाति में घुसपैठ कर ली है। गांवों–देहातों में तो अन्तर्जातीय विवाह करने वाले लड़के–लड़की को अनेक प्रकार से सताया जाता है यहां तक कि उन्हें मार भी दिया जाता है। अगर किसी लड़के ने छोटी जात वाली लड़की से शादी कर ली तो उसे गांव एवं समाज से बाहर कर दिया जाता है। उसके परिवार के साथ अत्याचार किया जाता है।

आज भी हमारे समाज में जातिगत भेदभाव देखने को मिलता ही रहता है। जाति के रूप में अगड़े लोग उन्नति करते जा रहे हैं और पिछड़े लोग और अधिक पिछड़ते जा रहे हैं। अगड़ों की रिशतेदारी तथा जान–पहचान अगड़े लोगों से ही है जिससे वे उनकी सलाह या मदद से जीवन में तरक्की करते जा रहे हैं जबकि वहीं पिछड़े लोग साधनों की कमी के चलते पिछड़ते ही जा रहे हैं।

दुनिया में मौजूद सभी समाजों में जाति व्यवस्था मौजूद थी। यूरोप और अमेरिका में भी लोग अपने–अपने समूह बनाकर रहते थे फिर चाहे वो राष्ट्रपति बुश हों या अमेरिकी संसद में मौजूद कोई और व्यक्ति। पहले से ही मानव की समूहों में रहने की प्रवृति रही, भारतीय समाज भी इसी तरह बना हुआ है। लेकिन धीरे–धीरे वह समाज

जातियों, भाषाओं तथा अमीर–गरीब में विभाजित हो गया। बड़े लोगों ने अपने समाज को सम्पन्न बना लिया जबकि साधनों के आभाव में अन्य जाति के लोग पिछड़ने लगे। धीरे–धीरे जाति के आधार पर भेदभाव तथा राजनीति होने लगी।

आगे चलकर जातिगत भेदभाव के खिलाफ लोगों ने आवाज उठानी शुरू की। इसके लिए कानून भी बनाए गए, जाति के आधार पर भेदभाव करने वालों को सजा भी दी जाने लगी। लेकिन कानून बनने के बाद भी लोगों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। समाज वैज्ञानिकों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार इस तरह के केस तो दर्ज होते हैं लेकिन वे किसी तार्किक परिणति पर नहीं पहुंच पाते हैं। समाज वैज्ञानिकों ने चौंकाने वाले आंकड़े पेश किए हैं। इन आंकड़ों को देखकर लगता है कि हम जुबानी रूप से ही समानता की बात करते हैं वास्तव में असमानता ही ज्यादा देखने को मिलती है।

समाज में जातिगत भेदभाव आज ही पैदा नहीं हुआ है यह पहले से ही कायम था। जब देश छोटी–छोटी रियासतों में बंटा हुआ था तब जाति के खिलाफ बड़ी बगावत नहीं होती थी। कभी भी समता की भूख ने राष्ट्रव्यापी रूप धारण नहीं किया। आजादी से पहले भी जातिगत भेदभाव मौजूद था, उस समय समाज में सभी लोगों को साथ मिलाकर चलने के लिए प्रोत्साहित किया गया ताकि राष्ट्रीय एकता कायम हो सके और ऐसा हुआ भी।

समाज में समानता कायम करने के लिए कई आंदोलन चलाए जाते रहे हैं इसके लिए कई राजनेता भी काम करते रहते हैं। कई राजनेता अपने–आपको दलित समर्थक बताते हुए पिछड़ी जाति के लोगों के हितों के लिए कार्य भी कर रहे हैं। समता बनाने में लोकशाही ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की है। जनता की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले राजनेता पिछड़ी जाति के प्रति होने वाले अत्याचार के खिलाफ आवाज भी उठाते हैं और उन्हें न्याय दिलाने का प्रयास भी करते हैं। लेकिन सत्ता में काबिज जो राजनेता समाज में मौजूद जातिव्यवस्था के प्रति संवेदनहीनता दिखाते हैं वे छोटी जातियों के प्रति होने वाले अत्याचार को और तीखा बना देते हैं।

जातिगत भेदभाव के प्रति हम लोगों को मिलकर आंदोलन चलाने चाहिए । इन मिश्रित आंदोलनों से एक ताकत पैदा होती है। इन संगठनों में कई लोग जाति को अनदेखा करते हुए केवल सरकारी नौकरियों में आरक्षण चाहते हैं। अमीरों और गरीबों के बीच मौजूदा शोषण की बात ही करते हैं इससे जाति का सवाल टल सा जाता है। हम सबको गांधी जी के संगठन की तरह संगठन बनाना चाहिए, जिस प्रकार जैसे ही गांधीजी कांग्रेस में सक्रिय हुए तो उन्होंने 1920 में एक ऐसा फैसला लिया जिससे

प्रत्येक कार्यकर्ता सम्मानजनक रूप में ईमानदारी से कार्य कर सके। उन्होंने कार्यकर्ताओं की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए 'तिलक स्वराज फण्ड ' नाम का एक फण्ड बनाया। जिससे वे अपनी जरूरतों को आसानी से पूरा कर सकें और ईमानदारी से काम कर सकें। अगर हम भी अपने संगठनों को लोकतंत्र कायम करने तथा जाति तोड़ने में सक्षम बनाना चाहते हैं तो उन्हें भी ईमानदारी और इज्जत से काम करने के लिए सुविधाएं दो। गांधी जी ने इस बात को समझा और कांग्रेस जैसी पार्टी जिसमें अधिकतर लोग अंग्रेजी बोलते थे, उसमें जवाहर लाल नेहरू जैसे पैसे वाले घरों के लोग भी शामिल थे, लेकिन उन्होंने कहा कि मैं सबसे पहले फंड बनाऊंगा ताकि सभी लोगों को तनख्वाह दी जा सके। उन्होंने मोतीलाल नेहरू जैसे अमीर आदमी के बेटे जवाहर लाल नेहरू को भी कहा कि अगर उन्हें कांग्रेस में काम करना है तो तनख्वाह लेकर ही करना पड़ेगा। उन्होंने उसी तरह से एक पूर्णकालिक कार्यकर्ता बनकर एक अच्छे कार्यकर्ता के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। उन्होंने खादी और टोपी पहनकर गांव–देहात में घूम–घूमकर लोगों को एकत्र किया और जाति तोड़ो संगठन के लिए काम किया।

हमें भी ऐसा ही कार्यकर्ता बनकर जाति के बंधनों को तोड़ने का हर संभव प्रयास करना है। अपने रोजमर्रा के कामों को छोड़कर समाज के कामों को महत्ता देने का प्रयास करना होगा। हर आंदोलन के लिए कुछ पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है इसलिए हममें से कुछ लोगों को इस काम को पूर्णकालिक रूप से अपनाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा तभी होगा जब हम उन लोगों को आर्थिक साधन उपलब्ध करा सकेंगे। क्योंकि जब तक पूरे समाज का नेतृत्व दलित और पिछड़ी जातियों द्वारा नहीं होगा तब तक जाति बंधन नहीं टूट सकते। अगर समाज का नेतृत्व करने वाले नेता उस विशेष समाज से आएंगे तो वे उनकी समस्याओं को आसानी से समझ सकते हैं क्योंकि उन्होंने उन समस्याओं को स्वंय भोगा है और महसूस किया है। वे लोग सामाजिक समता का नारा जोर से लगा सकते हैं। जब तक लोकतंत्र पर ब्राह्मणों का कब्जा रहेगा तब तक जाति बंधन नहीं टूट पाएगा। देश में सामाजिक रूप से समता कायम करने के लिए आर्थिक समानता कायम करने का प्रयास करना चाहिए।

समाज में मौजूद असमानता को मिटाने के लिए समाज के निचले एवं पिछड़े तबके के अधिक से अधिक लोगों को आगे आना चाहिए। समाजवादी तथा कांग्रेसी भाई सभी पिछड़ी जातियों को समानता दिलाने के लिए जागरूक करते रहते हैं लेकिन स्वयं जनता सोती रहती है, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए। हम सभी लोगों को अपने

अधिकारों तथा समाज में अपनी समानता की बात की समझ होने के साथ–साथ उसके प्रति जागरूकता होनी चाहिए तभी समाज को बदला जाएगा। इस क्षेत्र में मेहनती तथा मुद्दों को सबके सामने लाने वाले इच्छाशील व्यक्तियों को आगे आना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि कुछ समाजों तथा क्षेत्रों में आर्थिक सम्पन्नता तथा अन्य कारणों से जातिगत भेदभाव देखने को नहीं मिलता है तो उस समाज में मौजूद व्यक्ति अन्य लोगों की बातों तथा अन्य क्षेत्रों में होने वाली असमानता को अनदेखा करते हुए अपने में ही खोया रहता है। उन लोगों को अपने व्यवहार को बदलकर अन्य लोगों के बारे में जरूर सोचना चाहिए। क्योंकि सभी जगह एक समान व्यवहार नहीं होता है। जैसे अभी हमने उत्तरकाशी में सम्मेलन तथा उसके बाद कई छोटी–छोटी गोष्ठियां की थी, उन गोष्ठियों में जाने से पहले हमने सोचा भी नहीं था कि उत्तराखण्ड जैसे क्षेत्र में भी जातिवाद मौजूद है लेकिन, वहां भी जातिवाद मौजूद था। इसलिए सबसे पहले हमें बुराई को मानना पड़ेगा तभी उसको दूर करने के उपाय किए जा सकते हैं।

समाज में मौजूद असमानता को तभी दूर किया जा सकता है जब समाज के हर क्षेत्र एवं वर्ग से इसके खिलाफ आवाज उठाई जाए, ऐसा तभी हो सकता है जब ब्राह्मण या अन्य उच्च कुलों में पैदा हुए लोग अपने घमंड को त्यागकर सबके दर्द को समझकर मानव कल्याण के लिए प्रयास करेंगे, तभी समाज का कल्याण होगा और समानता कायम हो सकेगी। जैसे बिहार में जयप्रकाश जी के नेतृत्व में चलाया गया 'सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन' था। इस आंदोलन के दौरान 5 जून 1974 को जयप्रकाश जी ने पूरे समाज को सम्पूर्ण रूप से बदलने का प्रयास किया। उस आंदोलन में उन्होंने अगड़ी जाति के लोगों को अपने जनेयुओं को तोड़ने का आह्वान किया। उनके अह्वान पर रेलवे स्टेशन पर सैकड़ों लोगों ने अपने जनेऊ तोड़े। जयप्रकाश जी के इस आंदोलन में कई ऊंची जातियों के लोग भी शामिल हो गए। इसी के आधार पर 1 जनवरी 1975 को छात्र युवा संघर्ष वाहिनी नाम से एक संगठन भी बनाया गया इस संगठन में शामिल लोग आज भी अपने नाम के साथ अपनी जाति का प्रयोग नहीं करते हैं। आज भी कई लोगों को अपनी जाति के बारे में पता नहीं है। अभी भी उस संगठन को मानने वाले ऊंची और पिछड़ी जाति के लोग आपस में दोस्त हैं।

इसी प्रकार यदि हमें जाति के आंदोलन को जनता का आंदोलन बनाना है तो हमें जाति के बंधनों को भूलकर इस आंदोलन को मिलकर चलाना होगा। अपने धैर्य को कायम रखते हुए अपने आपको ईमानदार और अपने आंदोलन के प्रति निष्ठावान बनाना होगा ताकि हम सब मिलकर आगे बढ सकें और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। धन्यवाद !

अब मैं गोपाल जी से निवेदन करूंगा कि वे मंच पर आकर अपनी बात रखें। आइए गोपाल जी !

गोपाल : साथियो मुझे इस बात की जानकारी नहीं थी कि मुझे यहां बोलना है, पर भाई जी का आदेश हुआ इसलिए मैं यहां उपस्थित हो गया। हम लोग जिस इक्कीसवीं सदी में रह रहे हैं वहां की स्थितियां बिगड़ती जा रही हैं। यहां सामाजिक तथा जातिगत रूप में असमानता बढ़ती जा रही है किसी को खाना नहीं मिलता तो किसी के पास खाना और पैसा तो बहुत है लेकिन उसका इस्तेमाल करने वाला कोई नहीं है। जातिगत भेदभाव भारत की ही समस्या नहीं है यह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की समस्या है। यहां बड़ी जाति वाले लोग अहंकार में रहते हैं तथा नीची जाति वाले लोग भी अपने–आपको नीची जाति का समझते हैं तथा हीन भावना में जीते हैं।

जातिगत असमानता को कम करने तथा समाप्त करने के लिए हम राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कार्यक्रम तथा गोष्ठियां आयोजित करते हैं लेकिन भारतीय समाज की व्यवस्थाओं को देखें तो यहां भाषा के आधार पर भेदभाव किया जाता है। किसी को दलित, हरिजन तथा शूद्र कहकर पुकारा जाता है। इन बातों से लगता है कि समतापूर्ण समाज की स्थापना कर पाना बहुत मुश्किल है। इस समस्या को दूर करने का प्रयास करने वाले इस समस्या को पूरी तरह समझे बिना इसका हल ढूंढने का प्रयास तो कर रहे हैं लेकिन वो सफल नहीं हो पा रहे हैं क्योंकि वे समस्या को पूरी तरह समझ ही नहीं पाए हैं तो इलाज कैसे होगा। जैसे बहुत साल पहले एक जंगल में ऋषि तपस्या कर रहे थे तभी उन्हें लगा कि उन्होंने पूरी दुनिया को समझ लिया है। उन्होंने अपनी आंख खोली तो पेड़ पर बैठी चिड़िया भस्म हो गई। फिर ऋषि को विश्वास हो गया कि उन्हें पूरी दुनिया तथा ब्रहमाण्ड का ज्ञान हो गया है तथा वे जो चाहें वो कर सकते हैं। अब वे अपने ज्ञान का बखान करने और लोगों को अपने ज्ञान के बारे में बताने गांव में चल पड़े। वे एक घर के पास पहुंचे और दरवाजे को खटखटाने लगे। वहां एक स्त्री अपने पति की सेवा में लगी थी जिससे दरवाजा खोलने में देर हो गई। ऋषि को उसके व्यवहार पर बहुत गुस्सा आया। जैसे ही उसने दरवाजा खोला ऋषि ने उसे भी उसी नजर से देखा जिस नजर से उसने चिड़िया को देखा था, लेकिन ऋषि यह देखकर हैरान रह गया कि उस औरत का तो कुछ भी नहीं हुआ। वह तो पहले की तरह आराम से उसके आगे खड़ी है। ऋषि ने अपनी हार पर परेशान होकर उस स्त्री से पूछा कि तुम्हारे पास ऐसा कौनसा ज्ञान है जो मेरी तपस्या से बढ़कर है। महिला ने कहा कि यहां पास में एक साधू रहता है वह तुम्हें मेरे ज्ञान के बारे में बता देगा। ऋषि उस महिला की शक्ति का राज पूछने कसाई के पास

गया। कसाई ने कहा कि वह महिला अपने काम में तत्पर है। वह दिनभर अपने परिवार की अच्छी तरह से देखभाल करती रहती है उसका परिवार ही उसकी तपस्या और साधना है। इस तरह हम भी ऋषि की तरह अपने समाज में मौजूद जातिगत भेदभाव को अच्छी तरह समझे बिना ही उसका उपाय ढूंढ रहे हैं। इसी तरह एक अन्य उदाहरण है कि एक बार दो ऋषियों में संवाद हो गया। एक के अनुसार सारे मनुष्य एक ही मनुष्य की संतान हैं तो फिर वो वर्णों और जातियों में कैसे विभाजित हो गए। उनके बीच में यह संवाद चलता रहा जिससे बहुत सारी बातें निकलकर आईं। इसलिए हमें भी इस तरह के संवाद करने चाहिए ताकि हम सबको वास्तविकता का आभास हो जाए।

समाज में फैले इस भेदभाव के लिए हमारी मान्यताएं भी कम दोषी नहीं हैं। एक मान्यता के अनुसार भगवान की इच्छा से हम छोटी तथा बड़ी जाति में पैदा हुए हैं। अब कोई ये बताए कि ऐसा उन्हें किसने कहा है, क्या उन्होंने कभी भगवान को देखा है? क्या भगवान उनके साथ रहता है? यदि ऐसा नहीं है तो फिर वे लोग ऐसी बातों पर क्यों विश्वास करते हैं? क्यों नहीं हम भगवान के बदले अपने पड़ोसी की परवाह करें। आधुनिक युग में लोगों के काम बदल गए हैं समाज में इतनी बेरोजगारी पैदा हो गई है कि लोगों ने अपने काम छोड़कर दूसरे के कामों को अपना लिया है जो पहले नाई या मोची थी आज उन्होंने दुकान खोल ली है तथा जिनकी पहले दुकानें हुआ करती थी वे किसी और काम में लगे हुए हैं। इससे काम के आधार पर होने वाला वर्गीकरण तो खत्म हो गया है लेकिन फिर भी पुराने जमाने के अनुसार जो आदमी मोची या नाई का काम करता था उसे आज अन्य काम करने पर भी नीची जात का ही समझा जाता है।

अपने समाज में पैदा हुई असमानता को खत्म करने के लिए हमें इन मान्यताओं को भूलकर अपने आज को देखते हुए समाज में समानता कायम करने का प्रयास करना चाहिए। पुराने जमाने में यह मान्यताएं रही होंगी लेकिन हो सकता है तब इनका कोई और अर्थ रहा हो। इन मान्यताओं को आज के संदर्भ में देखना ठीक नहीं है। आज 21 वीं सदी में जीते हुए हमें 19 वीं सदी की ओर नहीं देखना चाहिए। आज हमें इस ढांचागत असमानता के गलत परिणामों को देखते हुए अपनी सोच को विकसित करना होगा। समय की मांग के अनुसार हम सबको मिलकर अपने समाज तथा देश को विकसित करने का प्रयास करना होगा। हमें गांवों तथा शहर को साथ लेकर चलना होगा तभी हम एक बेहतर चिंतन विकसित कर सकते हैं और अपने आपकों विकसित तथा समृद्ध बना सकते हैं। धन्यवाद!!

रमणिकाः आज के दौर में जाति के साथ राजनीति जुड़ गई है। लोग जाति के आधार पर राजनीति करने लगे हैं। अगर हम वास्तव में ही जातिगत भेदभाव को दूर करना चाहते हैं तो हमें जाति को नकारकर सबकी बराबरी की बात करनी चाहिए। लेकिन ऐसा हो नहीं रहा है। जाति के आधार पर हमें जमीन, ज्ञान तथा नौकरी मिल सकती है लेकिन आज भी बाबू साहब एवं ब्राह्मण के घर और उसके सामने हमें समानता का अधिकार नहीं मिल रहा है। केवल दिल्ली की स्थिति को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि सब जगह समानता मौजूद है। आज भी अगर हम दूर गांव में जाएं तो देखेंगे कि जाति व्यवस्था ने अपनी जड़े बहुत मजबूती से जमाई हुई है।

आज भी हम जाति एवं आरक्षण की बात करते हैं लेकिन हमें जाति के नाम पर आरक्षण लागू करने की बजाय जाति को तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए। जाति को तोड़ने की बात डॉ. लोहिया तथा अम्बेडकर ने उठाई थी लेकिन आज जाति तोड़ने की बजाय जाति का प्रयोग राजनीति में किया जा रहा है। हर जगह जातीय समीकरण की बात हो रही है। डॉ. अम्बेडकर ने जाति तोड़ने का उपाय भी बताया। उन्होंने कहा कि हमें जातियों को तोड़ने के लिए अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा देना चाहिए। इसके अलावा उन्होंने कहा कि यदि भारत में धर्म से मुक्ति मिल जाए तो जाति अपने–आप ही टूट जाएगी, क्योंकि भारत में धर्म ने ही जाति को बढ़ावा दिया है।

आज जाति राजनीति का आधार बन गई है। किसी चुनाव में खड़े होने से पहले हर उम्मीदवार यही कहता है कि वह सत्ता में आते ही परिवर्तन कर देगा। वे जातिगत भेदभाव को हटाएंगे तथा गरीबों की हर समस्या को दूर करने का हर संभव प्रयास करेंगे। लेकिन, चुनाव जीतने के बाद वही चलता है जो चलता आया है। सब गांव के स्तर से राजनीति शुरू करते हैं और शहर तक पहुंच जाते हैं लेकिन पिछड़ी जातियां और उनके साथ होने वाला असमानता का व्यवहार ऐसे ही चलता रहता है।

जाति को तोड़ने के लिए दलित, आदिवासी तथा स्त्री, पुरुष सबको आगे आना चाहिए। आज स्वयं दलित लोग अपने–आपको हरिजन, जाट, चमार, आदिवासी तथा दलित कहकर पुकारते हैं। जिस दिन दलित अपने–आपको हरिजन चमार या दलित कहना बंद कर देंगे उस दिन एक नई सोच पैदा होगी। हमें अपनी मान्यताओं, अंधविश्वासों को तोड़ना होगा। आज कुछ लोग कहते हैं कि हमें आरक्षण नहीं चाहिए और उन्होंने अपना धर्म बदल लिया लेकिन, दूसरे धर्म को अपनाकर भी वो कहते हैं कि जो भूत हमें पहले आता था वो अब भी हमपर आता है। हमपर देवी–देवता आते हैं

तो ऐसे में धर्म बदल लेने का क्या अर्थ रह गया जब पुरानी मान्यताएं तथा पुरानी सोच बदली ही नहीं है। इसलिए विजय जी ने ठीक ही कहा है कि वर्ग तथा जात को छोड़े बिना हमें मुक्ति नहीं मिल सकती है। अगर दलित भी यह सोचने लगे कि हम जात को नहीं मानते हैं तो समस्या को कुछ हद तक सुलझाया जा सकता है। आज कुछ दलित लोग अपने पुराने परंपरागत पेशे से हटकर अन्य व्यवसाय करने लगे हैं लेकिन फिर भी वो अपने को दलित ही कहते हैं। जब वे अपनी मेहनत से अपनी रोजी–रोटी कमाते हैं तो फिर उन्हें ऐसी बातें करके अपने–आपको नीचा नहीं दिखाना चाहिए। इस समस्या से निपटने के लिए हम सबको प्रयत्न करना चाहिए। केवल मात्र लेक्चर देने से समस्या हल होने वाली नहीं है। हमें परजीवी बनकर दूसरे को लूटने की प्रवृति को भूलना होगा क्योंकि गरीब लोग अपनी मेहनत का खाते हैं। जाति व्यवस्था के विरोध में हम सबको एक साथ इक्ट्ठा होना होगा। हमें समाजवाद तथा आरक्षण की लड़ाई भी लड़नी होगी। हमें अपने आत्मसम्मान की लड़ाई लड़नी होगी। धन्यवाद !

प्रभु तिवारीः अगर हम उत्तराखण्ड में हुए सामाजिक आंदोलनों की तरफ एक नजर डालें तो राज्य में 20 वीं सदी में शिल्पकार तथा राजपूत आंदोलन हुए। शिल्पकार आंदोलन में उत्तराखण्ड की पिछड़ी जातियों में शिक्षा तथा संस्कारों के लिए था। इस आंदोलन में उत्तराखण्ड के सभी अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोग शामिल हुए वे शिक्षा तथा समता के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे तभी वहां एक और आंदोलन उठ खड़ा हुआ। उत्तराखण्ड में डोम, हच और लाजवंती नामक मूल जातियां वहां से चली गई और राजपूत तथा ब्राह्मण जातियां उत्तराखण्ड में आ गए। तो उत्तराखण्ड की मूल जातियां आंदोलन करने लगी। राजपूत आंदोलन से उत्तराखण्ड में परिवर्तन आ गया। वहां आदिवासी समाज राजपूत समाज में परिवर्तित हो गया। लोगों के अनुसार 1994 में भड़का आंदोलन उच्च जाति की चाह के कारण पैदा हुआ जिसने एक बड़े वर्ग को राजपूतों में परिवर्तित कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप यह आंदोलन पैदा हुआ। इन आंदोलनों से पता चलता है कि ब्राह्मण चाहे कितना भी काम कर लें जाति के आधार पर उनके जातिगत संस्कार कायम रहेंगे। इसका परिणाम स्पष्ट है कि जातियां खत्म नहीं हुईं बल्कि उनके अंदर अंतर्विरोध खड़े हो गए।

हम अपने पिछले अनुभवों को देखें तो हमें पता चलता है कि देश तथा दुनिया में इस तरह के आंदालनों से जातियां नहीं टूटती हैं। समता का आंदोलन अपने आप में एक विशेष आंदोलन है, यह छोटी–छोटी चीजों से हासिल नहीं किया जा सकता। इसे प्राप्त करने के लिए समाज में आर्थिक और राजनैतिक ढ़ांचे में समानता लाने का प्रयास करना होगा। राजनैतिक और आर्थिक समानता के आभाव में राजनैतिक ढ़ाचों

की समानता कायम नहीं की जा सकती है। तो साथियो इस मूल ढ़ाचे को तोड़ने के लिए हमें लंबी लड़ाई लड़नी होगी। समाज में अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़ी जाति के लोगों को समाज में समान दर्जा पाने के लिए आंदोलन करने से पहले आर्थिक तथा राजनैतिक समानता के लिए आंदोलन चलाना होगा। जल, जंगल और जमीन जैसी सार्वजनिक चीजों पर सभी लोगों को समान अधिकार दिलाने के लिए प्रयास करना होगा। धन्यवाद !

धन्यवाद प्रभु जी! अब मैं नीलिमा चतुर्वेदी जी को मंच पर आमंत्रित करूंगा। नीलिमा जी आइए ।

नीलिमा चतुर्वेदीः— साथियो हम नारा लगाते हैं 'आवाज दो हम एक दुनिया के सभी मेहनतकश एक हैं' और अक्सर हम जाति विश्लेषण तथा राजनैतिक क्रांति की बात करते रहते हैं लेकिन ध्यान से देखें तो आज भी जातिगत अंतर एक गंभीर समस्या बनी हुई है। विजय प्रताप जी ने जाति के विषय में आजादी से पहले तथा बाद की बहुत सारी बातें की। उन्होंने कहा कि यदि वी.पी. सिंह चाहते तो ग्राम सभा से लेकर संसद तक सारी जातियों, उपजातियों तथा जनजातियों का प्रभुत्व हो जाता। आज तक कई नेताओं ने कहा कि वे जातिवादी नहीं हैं लेकिन वास्तव में जातिवाद की जड़ें कितनी गहराई तक जमीं हैं इस बात का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि वैसे तो पण्डित जवाहर लाल नेहरू जातिवाद को नहीं मानते थे लेकिन वे अपने नाम के साथ हमेशा पण्डित लगाना पसंद करते थे। पण्डित जी जिन लोगों के साथ बैठते थे उनमें से 80—85 प्रतिशत लोग सवर्ण होते थे। पण्डित जवाहर लाल नेहरू के अलावा राजनीति में जाति की बिसात हमेशा बिछी ही रहती थी। जमीनदारी का उन्मूलन हुआ लेकिन सामन्तवादी सोच हमेशा कायम रही। उस समय गांवों तथा शहरों में लघु तथा कुटीर उद्योग कायम थे जिसके आधार पर अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त था, उद्योग—धंधों के क्षेत्र में मुरादाबाद, सहारनपुर तथा कानपुर जैसे क्षेत्र प्रसिद्ध थे। वहां चमड़ा, कपड़ा तथा फर्नीचर के उद्योग बहुतायत में स्थापित थे लेकिन उन उद्योगों में भी ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित था।

इन बातों से स्पष्ट है कि उस दौरान जातिवाद अच्छी तरह फलता—फूलता जा रहा था। दलितों को कपड़ा तथा खाना नसीब नहीं होता था। उनके मन में यह बात घर कर गई थी कि हम चाहे दस बार नहा लें फिर भी हमारी पहचान अछूत के रूप में ही होगी। इस तरह की मान्यता समय के अनुसार फलती—फूलती रही है और इसको मान्यता भी मिलती रही। ये माना जाता था कि भगवान के बाद यदि कोई है तो वे ब्राह्मण हैं जिनको दान देने एवं उन्हें भोजन खिलाने से पुण्य मिलता है। धीरे—धीरे इस

विषय पर लोग संगठित होने लगे। कुछ लोग जातिवाद का विरोध करते दिखे तो कुछ लोग उसका समर्थन करते रहे, समाज में व्याप्त इन संगठनों को देखते हुए राजनीतिज्ञों ने भी अपनी रोटियां सेकनी शुरू कर दीं। वे जाति के नाम पर राजनीति करने लगे। आज राजनीति के गलियारों में जाति का घिनौना रूप देखने को मिलता है। राजनीतिज्ञ जातिवाद को खत्म होता नहीं देख सकते हैं क्योंकि जाति का यही सवाल तो उन्हें राजनीति मे कायम रखने में मदद करता है। आप उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान कहीं भी चले जाइए आपको हर जगह जाति के नाम पर राजनीति होती दिखाई देगी। राजनीति में आने के लिए दलितों को टिकट देने की बात तो की जाती है और कई मायावती जैसे नेता दलितों के मसीहा बने फिरते हैं लेकिन टिकट वे तभी देतीं हैं जब उन्हें पैसा मिल जाए। अब गरीब दलित तो पैसा देकर सीट खरीद नहीं पाते हैं तो ऐसे में अमीर दलित ही टिकट प्राप्त कर पाएंगे और उन्हें तो पहले से ही पैसे के बल पर सभी सुख–सुविधाएं मिली हुई हैं तो फिर वे राजनीति में आ भी जाएं तो भी वे गरीब दलितों के लिए कुछ नहीं करते हैं क्योंकि उनकी सोच सवर्णों की तरह हो गई है। वे उनकी समस्याओं को तो समझ ही नहीं पाते हैं।

साथियो इन परिस्थितियों को देखकर तो यही लगता है कि हमें अपनी भलाई के लिए स्वयं ही सोचना होगा इन राजनीतिज्ञों का मुंह ताकते रहने से कुछ होने वाला नहीं है। मैं एक शेर से अपनी बात खत्म करना चाहूंगाः 'खुदी को कर बुलंद इतना, कि, खुदा बंदे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।' धन्यवाद !

धन्यवाद, नीलिमा जी! अब मैं उत्तराखण्ड से आए अपने साथी जगदीश भाई को मंच पर आमंत्रित करना चाहूंगा, आप पिछले दस–पन्द्रह सालों से दलित तथा जाति तोड़ो अभियान के लिए काम कर रहे हैं। जगदीश भाई जी आइए, अपने विचार रखिए।

जगदीशः धन्यवाद संचालक महोदय, आज हम सभी समता के सवाल पर बातें कर रहे हैं, मैं स्वयं एक दलित परिवार से आया हूं। एक दलित होते हुए मैंने जितनी कठिनाइयां झेली हैं, मैं अभी उनके बारे में बात नहीं करूंगा लेकिन मैं इतना ही कहूंगा कि अब हम चुप रहने वाले नहीं हैं। अब हम हमेशा सुनते रहने वाले दलित नहीं रहे। अब हम भी वाद–विवाद कर सकते हैं। हमारे पास भी संघर्ष करने की क्षमता आ गई है।

आज कुमाऊं के कई विद्यार्थी संगठनों ने जाति के संघर्ष को एक आंदोलन का रूप दे दिया है। आज हम लोग आंदोलन तो कर रहे हैं लेकिन अभी भी एक समझ

विकसित नहीं हो पा रही है। कहीं–कहीं तो दलित लोग केवल ब्राह्मणों की तरह जनेऊ धारण करने को ही बराबरी मान बैठे हैं। इसके अलावा हम अपने आंदोलनों में कुछ घटनाओं का ही वर्णन करते हुए दिखते हैं और कहते हैं कि हम आंदोलन कर रहे हैं लेकिन सिर्फ ऐसा कर लेने से ही तो यह व्यवस्था बदलने वाली नहीं है। जब तक हम इस व्यवस्था या अपनी समस्या पर शोध नहीं कर लेते तब तक समस्या का समाधान नहीं ढूंढा जा सकता है। आज लोग चांद पर घर बनाकर रहने की तैयारी करने लगे हैं और हम इतने अवैज्ञानिक हैं कि अभी तक जाति व्यवस्था के सवाल पर ही अटके हुए हैं। आज भी अगर कोई किसी को पांडे या बिष्ट जी कहकर पुकारे तो हमें तो बहुत अच्छा लगता है ऐसे लगता है। जैसे हमें बहुत बड़ा सम्मान मिला है। लेकिन वहीं दलितो को अपमान का सामना करना पड़ता है।

आज अपने तथा अपने समाज की भलाई के लिए हमें इस समस्या से छुटकारा पाना होगा। इसके लिए सबसे पहले तो हमें शोध करना होगा उसके बाद इस विषय पर कई लोगों से विचार–विमर्श करना होगा। इस काम में संवेदनशील लोगों को आगे आना होगा ताकि वे दलितों की भावनाओं को आसानी से समझ सकें और इस सामाजिक बुराई को जड़ से मिटा सकें। मैं अपनी बात को यहीं पर समाप्त करता हूं धन्यवाद !!

धन्यवाद जगदीश जी। अब मैं चाहूंगा कि केनिया से हमारे बीच आईं वाहुकारा जी मंच पर आएं और अपनी बात रखें। आप सोशल फोरम की महत्वपूर्ण कार्यकर्ता हैं और आजकल हमारे बीच आई हुई हैं। आइए वाहुकार जी !

वाहुकाराः धन्यवाद। मुझे इस बात की खुशी है कि मुझे, आप जैसे लोगों के बीच अपनी बात रखने का मौका मिला। लेकिन मैं अपनी बात संक्षिप्त में कहने का प्रयास करूंगी।

अभी हमारे बीच गोपाल जी ने अपनी बातें रखी हैं, मैंने उनका भाषण बड़े ही ध्यान से सुना। उन्हें सुनकर मुझे ऐसा लगा जैसे वे किसी विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे हों। इन्होंने ये सभी बातें अपने जीवन के अनुभवों से सीखी हैं इसलिए इनकी बात में गहराई और दूरदर्शिता थी। ये हमारा दुर्भाग्य है कि गोपाल जी की यह बातें हमारे समाज की सड़ी–गली व्यवस्था की समझ में नहीं आती है। वे आज भी लगातार दलितों का शोषण करते आ रहे हैं। सत्ता में काबिज लोग भी दलितों का शोषण करते आ रहे हैं।

मुझे आज गोपाल जी की बात सुनकर लगा कि आज का दिन सफल रहा। आज भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में सभी लोग इस सड़ी–गली सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। इसके लिए वे प्रयास भी करते जा रहे हैं, उनके इन प्रयासों से यह लगता है कि एक दिन ये दबे–कुचले लोग सत्ता में बैठे लालची राजनीतिज्ञों को दरकिनार करते हुए समाज की इस सड़ी–गली व्यवस्था को दूर फेंक देंगे। हमें इस कमरे में हुई बहसों को इस कमरे तक नहीं रखना है, बल्कि वास्तविकता में भी लागू करना है। अब हम लोग इस विषय पर बात करने के लिए 26 जनवरी को नैरोबी में होने वाले सम्मेलन में मिलेंगे। उसमें आप लोग जितनी अधिक से अधिक संख्या में आ सकें, उतना अच्छा होगा।

आज हमारे कई नौजवान भी इस आंदोलन में हमारे साथ जुड़ गए हैं। अभी इस नौजवान ने जो कहा उससे स्पष्ट है कि हम सभी एक ऐसी दुनिया का सपना देख रहे हैं जिसमें शोषण नहीं है। चोरी का नामोनिशान नहीं, जिसमें हत्याओं का ख्याल तक नहीं है, जिसमें सभी लोग एकता से, बिना किसी भेदभाव के शांति से रह सकेंगे। वो दुनिया एक अलग तरह की तीसरी दुनिया होगी जिसमें जीवन तथा सहकारिता तथा समानता होगी। मुझे इस नौजवान के भाषणों को सुनकर ये भरोसा हो गया कि यह सपना पूरा होने ही वाला है। अफ्रीका तथा एशिया के बीच होने वाली एकता से पूरी दुनिया को नया रास्ता दिखाया जाएगा। अब हम लोगों को केवल एक देश का नहीं बल्कि विश्व नागरिक बनना होगा। इस कबीले या उस कबीले या किसी भी देश के प्रति हमारे मन में कोई भेदभाव नहीं होगा। जाति, राज्य तथा देश के आधार पर भी कोई भेदभाव नहीं होगा और सभी लोग मिलजुलकर रहेंगे। हम सब मिलकर एक नई दुनिया बसाएंगे। धन्यवाद !!

केनिया से आई हमारी मेहमान वाहुकारा तथा उनकी बातों का अनुवाद करने वाले भाई विजय प्रताप जी का धन्यवाद। अब मैं धीरू भाई जी को आमंत्रित करूंगा कि वे आकर अपने विचार रखें। आइए धीरू भाई जी !

धीरू भाई : मैं देरी से आने के लिए आप सभी से क्षमा चाहूंगा, देर से आने के कारण मैं सभी वक्ताओं को सुन नहीं पाया इसलिए हो सकता है मैं, कुछ बातों को फिर से आपके सामने रखूं। सबसे पहले मैं कहना चाहूंगा कि जाति तथा वर्ग व्यवस्था का अन्त कैसे हो, इसके लिए कैसी राजनीति होनी चाहिए और कैसे आंदोलन होने चाहिए। इस पर काम करने से पहले हमें जाति व्यवस्था के बारे में जान लेना चाहिए।

कई वक्ताओं को मैंने सुना जिनके अनुसार हमारी सामाजिक परिस्थितियों में कुछ भी नहीं बदला है, आज भी हम मनुस्मृति के काल में जी रहे हैं। आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ, लोकतंत्र नहीं आ पाया है तथा आज भी पुराने समय की बनी हुई जाति व्यवस्था ही आज चलती जा रही है। लेकिन मुझे लगता है कि सिर्फ यह सोचते रहने से कि कुछ बदला ही नहीं है, हम राजनीति नहीं कर सकते।

जाति व्यवस्था के खिलाफ काम करने से पहले जाति व्यवस्था को जान लेना बहुत जरूरी है। जाति के नाम पर होने वाली संघर्षों को 'अपर कास्ट' वाले लोगों ने जाति का नाम दिया है। मायावती कहती हैं कि वे तथा उनके लोग जो बातें करते हैं वे जातिवाद है लेकिन 1950 और साठ के दशक में जो व्यवस्था चलाई गई वह पूरी तरह से जातीय व्यवस्था थी। उस समय के आई.पी.एस., आई.ए.एस. या सरकारी नौकरियों तथा बिजनेस को ही देख लीजिए उनमें से 90 प्रतिशत सीटों पर 'अपर कास्ट' की भूमिका थी। हमने उनकी इस भूमिका को सहा है। यह स्थिति तो जातिवाद की है। लेकिन आज ऐसी स्थिति नहीं है, आम तौर से मैंने यह देखा है कि लोग सुनी–सुनाई बातों पर अपना कुछ अनुभव लगाकर बात करते हैं और अन्य लोग उनकी बातों पर विश्वास भी कर लेते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जाति व्यवस्था आज तक कायम रही और आगे भी कायम ही रहेगी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वो पत्थर की लकीर हो गई। और इसका मतलब यह भी नहीं कि जाति व्यवस्था के शिकार जिन लोगों का शोषण तथा अपमान हो रहा है उन्हें कोई अवसर ही नहीं दिए जा रहे हैं। इन बातों में किसी भी प्रकार की सच्चाई नहीं है। वास्तविकता में जितनी जातियां हैं उतनी ही उनकी सोच भी हैं।

आज जातियां पहले जैसी नहीं रहीं। उनमें बहुत बदलाव आ गया है। अगर आप जाति के आधार पर विद्यमान भेदभावों को दूर करना चाहते हैं तो सबसे पहले आपको लोगों के कानूनी मतभेदों को भूलते हुए अन्य मतभेदों को समझना होगा। आज स्थानीय लोगों में व्याप्त मतभेदों को रोक पाना आसान नहीं है, इसलिए जबतक आप उन मतभेदों को पूरी तरह से समझ न लें उन मतभेदों में न पड़ें। लेकिन अगर आप अपनी तथा उनकी स्थिति की समझ रखते हैं तो उससे निकलने तथा जातीय रूप से स्वावलंबी होने की संभावना बनती है। आज कई पिछड़ी जाति के लोग भी शिक्षा के द्वारा कई ऊंचे ओहदों पर बैठे हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में मौजूदा प्र्याप्त अवसरों का लाभ उठाने में सफल हो पाए हैं इसीलिए वह समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान बना पाने में सफल हुए हैं, इसलिए यदि शिक्षा के पर्याप्त अवसर पाने के लिए कोई व्यवस्था बने तो जातिगत रूप से पिछड़े लोगों को भी स्वालंबी बनाकर समाज में रह सकते हैं। लेकिन ऐसा नहीं कि सिर्फ स्कूल व कॉलेज ही खोले देने से ही सबको समान शिक्षा

मिल जाएगी, इसके लिए तो पर्याप्त प्रयास भी करने होंगे। स्कूल और कॉलेज स्तर पर विद्यार्थियों को भेदभाव रहित शिक्षा देने से आगे चलकर जाति प्रथा को खत्म करने में मदद मिल सकती है। हमें अपने तथा अन्य बच्चों के साथ जाति के आधार पर भेदभाव नहीं अपनाना चाहिए ताकि आगे चलकर वे भी भेदभावों को न मानें।

आज यहां मौजूद लगभग हर वक्ता ने जाति तोड़ने की बात की है। लेकिन हम सभी को जाति व्यवस्था तोड़ने के उपाय करने चाहिए। आज तक जाति व्यवस्था को तोड़ने के उद्धेश्य से कई आंदोलन हुए हैं। मुझे लगता है कि हमें जाति व्यवस्था को दूर करने के लिए कुछ उपाय करने चाहिएं, जातिगत रूप से पिछड़े लोगों को शारीरिक तथा मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है इससे बचने के लिए उन्हें शिक्षा तथा आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। इसके अलावा उनको राजनीति में हिस्सेदारी दिलाकर भी समृद्ध बनाया जा सकता है। क्योंकि राजनीति में आकर ही वे अपने समाज के बारे में बेहतर तरीके से सोच पाएंगे तथा अपने समाज को बराबरी का दर्जा दिलाने में राजनैतिक रूप से स्मृद्ध भी हो सकेंगे। आज हम जिस बहुजन समाजवादी पार्टी को देख रहे हैं वह आरक्षण के बल पर ही इतनी सफल हो पाई है। उनकी राजनैतिक सफलता के परिणामस्वरूप ही आज कई राजनैतिक पार्टियां जाति को ही खत्म करने की बात कर रही हैं। हमें समाज में समानता स्थापित करने के लिए देश में मौजूद प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार का अवसर प्रदान कराने का प्रयास करना चाहिए ताकि वे आर्थिक रूप से समृद्ध होकर अपना तथा अपने परिवार की बेहतरी के बारे में अधिक गहराई से सोच सकें। आज औद्योगीकरण तथा शहरीकरण बढ़ता जा रहा है। अगर इस बदलती व्यवस्था में दलितों को भी समान अवसर मिल जांए तो वे एक बेहतर कल की स्थापना कर सकते हैं। हमें डॉ. अंबेडकर के सिद्धांतों पर चलकर समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहिए। जाति व्यवस्था को मिटाने के लिए हम सबको मिलकर चलना होगा। हमें एक नई राजनीति बनानी होगी। धन्यवाद!!

प्रोसिन : मंच पर विराजमान भाई, बहनों तथा मेरे साथियो नमस्कार! मुझे लगता है कि ग्लोबलाईजेशन के कारण जाति व्यवस्था की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। आजकल मीडिया में आरक्षण की बात आने से यह जाति आंदोलन का रूप लेता जा रहा है। ये बात सही है कि महात्मा गांधी तथा बाबा साहेब ने कहा था कि जाति व्यवस्था का यह आधार धर्म ग्रंथ के आधार पर तय किया गया था। धर्म ग्रंथ में काम के आधार पर जाति तथा जाति के आधार पर काम का वर्गीकरण किया गया था। लेकिन उन्होंने कहा कि आज के संदर्भ में इस वर्गीकरण का कोई आधार नहीं है और इसलिए इसकी

जरूरत भी नहीं है। इसलिए समाज में भी धीरे–धीरे बदलाव आते जा रहे हैं। पहले छुआछूत को बहुत माना जाता था, महाराष्ट्र में अछूत लोगों को मंदिर में प्रवेश भी नहीं करने दिया जाता था, जाति के आधार पर संसाधनों का बंटवारा होता था जैसे महाराष्ट्र में आज से चालीस साल पहले समाजवादी नेता डॉ. बाबा राम ने एक गांव में दलितों के लिए ही एक कुंआ खोदा क्योंकि सवर्ण लोग दलितों को अपने कुंओं से पानी नहीं भरने देते थे इसलिए अब वे अपने लिए खोदे गए कुंए से आसानी से पानी भर सकते थे। लेकिन आज ऐसी स्थिति नहीं है। लेकिन बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर जैसे कई समाज सुधारकों ने दलितों के लिए जमीन का आबंटन तथा शिक्षा में रिजर्वेशन की बात करके दलितों की भलाई का मॉडल तैयार किया जिसने जाति व्यवस्था पर बड़ा प्रहार किया था। इसकी मदद से दलित समाज भी समृद्धि की सीढ़ियां चढ़ने लगा और समय–समय पर अपने अधिकारों के लिए विभिन्न आंदोलनों में भाग लेने लगा।

कुछ समय तक तो दलित लोगों को शिक्षा तथा नौकरियों में आरक्षण मिलने लगा लेकिन 1991 में पब्लिक सेक्टर के टूट जाने या उसका सरकारी तंत्र में विलय हो जाने से इन क्षेत्रों में दलितों के लिए मौजूद आरक्षण व्यवस्था को आघात लगा। बाद में तीव्र गति से होते शहरीकरण तथा आर्थिक रूप से आती समपन्नता के कारण दलितों तथा पिछड़ों में भी अगड़ा–पिछड़ा वर्ग बन रहा है, यह बात राजनीति में भी देखने को मिल रही है। लेकिन केवल मात्र आर्थिक रूप से आत्म निर्भर होने से ही स्थिति में परिवर्तन आने वाला नहीं है। अगर हमें पुराने समय से जाति व्यवस्था के आधार पर किए अत्याचारों के प्रति किसी भी प्रकार का दुःख और पश्चाताप है तो हमें पुरानी व्यवस्था को उखाड़ फेंककर एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना होगा जिसमें कोई छोटा–बड़ा नहीं होगा। मैं यहां पर एक उदाहरण देना चाहता हूं कि एक बार साउथ अफ्रीका में दंगा हो गया, इन दंगों में गोरो ने कालों को मार डाला। इन दंगों तथा असमानता के विरोध में आंदोलन हुआ और आंदोलन में कालों पर अत्याचार करने वालों के लिए फांसी की सजा की बात भी की गई। इन अत्याचारों को करने वालों को जब कोर्ट में हाजिर किया गया तब अत्याचार करने वाले तो रो ही रहे थे उनके साथ–साथ उनकी दर्द की दास्तांन सुनकर तथा उनपर हुए अत्याचारों को खुद महसूस करते हुए पश्चाताप के कारण अत्याचार करने वाले गोरे भी रो पड़े। हमारे मन में भी इसी तरह के पश्चाताप की भावना होनी चाहिए। इसके विपरीत मैं आपको एक अन्य उदाहरण देता हूं, एक दिन मैं औरंगाबाद से आ रहा था, रास्ते में मुझे एक तीस साल की पत्रकार मिली, उसके साथ बातचीत के दौरान जब आरक्षण की बात चली तो उसने कहा कि ये तो दलितों की समस्या है इससे मुझे क्या लेना–देना लेकिन, जब वही पत्रकार इस समस्या के बारे में मीडिया में कहती है तो ऐसे लगता है कि यह

समस्या उसकी अपनी ही है। तो हमें ऐसी सोच को पनपने से बचाना है। दलितों की समस्याओं एवं उनके दर्दों का हल निकालने के लिए सबको मिलकर काम करना है। आज आरक्षण की मदद से कई दलित लोग भी आसानी से रोजगार प्राप्त कर सकते हैं लेकिन अब भी ज्यूडिशरी एवं कानून से संबधित कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जहां आरक्षण से कुछ लेना–देना नहीं है वहां मैरिट के आधार पर ही सब काम होते हैं। मेरा कहना है कि इस क्षेत्र में भी आरक्षण को शामिल किया जाना चाहिए। इसी तरह राजनीति में भी कुछ क्षेत्रों में अगड़ों को ही प्राथमिकता दी जाती है। कहीं अगड़ी जाति के लिए 15 प्रतिशत सीटें होती हैं लेकिन वो 36 प्रतिशत पर कब्जा कर लेते हैं और बाकी की बची हुई सीटों पर भी खुद ही कब्जा करने का प्रयास करते हैं। ऐसी अनियमितताओं को रोकने की कोशिश करनी चाहिए। जिससे राजनीति में अधिक से अधिक पिछड़े आकर अपने हितों की रक्षा में सरकार को सहयोग दे पाएंगे। संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में भी ऐसी व्यवस्था करने का प्रयास करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक दलितों को रोजगार मिल सके और वे अपनी आर्थिक स्थिति के साथ–साथ अपनी राजनैतिक तथा सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति को सुधार सकें। धन्यवाद !

सैफुद्दीन चौधरी : आपने मुझे बोलने का मौका दिया इसके लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद। मैं धीरू भाई जी की इस बात से सहमत हूं कि, आज जाति का भेदभाव कम हो गया है या उसका रूप बदल गया है। पहले वो अपने पुराने जातिगत काम करते थे लेकिन अब उनकी स्थिति में परिवर्तन आ गया है। अब भी कुछ लोग अपनी मर्जी से उन कामों में लगे हैं लेकिन आज उनपर किसी भी तरह का कानूनी दबाव तो नहीं है।

ये सत्य है कि आज पहले जैसी स्थिति नहीं रही, लेकिन आज भी कुछ गांवों में यह भेदभाव अब भी मौजूद है। वहां अब भी सभी जातियां किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। अब भी कई जगह कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें दलित लोग नहीं कर सकते हैं। कानून तथा प्राइवेट सैक्टरों में आरक्षण की सुविधा मौजूद नहीं है जिससे आज भी अनेक दलित रोजगार से वंचित हैं। इसलिए यही कह देने भर से कि आज पहले जैसी स्थिति नहीं है, समस्या हल होने वाली नहीं है। साथियों हम सभी को पूर्ण सफलता एवं समानता मिल जाने तक अपने संघर्ष को जारी रखना होगा। धन्यवाद!!

धन्यवाद साथियो, मुझे लगता है कि तीन घंटे तक चली इस बातचीत से न केवल मेरा मनोबल और समझ ही बढ़ी है बल्कि मुझे ये भी लगने लगा है कि हम जिस बेहतर दुनिया का सपना देख रहे हैं वह संभव हो सकती है। हमने यह भी जाना कि उस बेहतर दुनिया के लिए हमें क्या–क्या करना होगा? उस समता को स्थापित

करने के क्या तरीके होंगे। हमने यह भी जाना कि एक समतामूलक समाज को बनाने के लिए हिन्दुस्तान के नागरिक कितने प्रयास कर रहे हैं। ऐसे तमाम तरीकों तथा अभ्यासों के बारे में हमने खुलकर बात की। एक बार फिर से आयोजन मंडल की ओर से आप सभी श्रोताओं को धन्यवाद! जय हिन्द !

पर्यावरणीय लोकतन्त्र पर संवाद
श्रृंखला – दो

विषय	– समता आन्दोलन
दिनांक	– 21 अप्रैल 2007
स्थान	– शेवाप होटल अल्मोड़ा
आयोजक	– हिमालय स्वराज अभियान, उत्तराखण्ड, पानी पंचायत
सहयोग	– सैडड दिल्ली (C.S.D.S.)

विजय प्रताप जी – : हम आज की भारतीय परिस्थिति में पारिस्थिकीय लोकतन्त्र मानव और प्रकृति के संबध और उसकी विद्रूपताओं के बारे में मानते थे। उनको लगता था कि यदि हम लोकतंत्र की कमियों के बारे में सोचेंगे तो कम्युनिस्ट पार्टी जैसी अलोकतांत्रिक ताकतें शुरू में खुले रूप से आजादी को ही झूठा बताने लगेंगी। वे लोकतंत्र को कई तरह की गालियों से विभूषित करती थी और वे स्वराज के बारे में तो कल्पना ही नहीं कर सकते थे। वे लोग लोकतांत्रिक केन्द्रीयता को मानते थे, उन्हें लगता था कि विष्कृत समाज में सबसे अंतिम जन की अगवा सामाजिक शक्ति होगी और अंतिम जन में एक पार्टी होगी जो कि अपनी तानाशाही चालू रखेगी। उससे समाज बदलेगा ओर समतामूलक समाज बनाने के क्रम में जो संक्रमणकालीन समाज होगा उसमें आखरी आदमी की तानाशाही ही होगी लेकिन वो विचार बाकी दुनिया में हार गया। स्टालिस उसकी विद्रूपताएं, भाव की क्रूरताएं और उस भाव से देश में अंधे विकास का मॉडल आदि सभी बातें विफल हुई। ये बहुत विडम्बना की बात है कि जो लोग करूणा से प्रेरित होकर, समता की इच्छा से प्रेरित होकर यदि वो माओवादी विचारधारा के संपर्क में आ जाते हैं तो धीरे–धीरे उनका पार्टी और विचारधारा से वे अपने वर्ग शत्रुओं का जीवन नष्ट करने के बारे में सोचने लगते हैं। लेकिन मैं, तो यह

कहना चाहता हूं कि जो लोग जीवन दे नहीं सकते उन्हें जीवन लेने का क्या अधिकार है ? सोवियत संघ के बिखरने के बाद भी संस्करणीय कम्युनिस्ट पार्टियां कहती हैं कि उससे बड़ा नुकसान हुआ लेकिन जब तक विषमता है तब तक मानव बराबरी की इच्छा करता ही रहेगा।

वहां के मार्क्सवाद अभी भी क्षेत्रीय मार्क्सवादी हैं, वो अभी भी कालवाहक के रूप में काम करता है। वह पहले पूंजीवाद विकास से जुड़ा हुआ था लेकिन फिर भी माओवादी अपनी पार्टी का नाम लिए बिना ही ये स्पेषल इकानॉमिक क्षेत्र या नंदी ग्राम जैसी जगहों पर जनता के बीच में घुलमिलकर दानवीय विकास के मॉडल का विरोध कर रहे हैं। लेकिन उसके विपरीत साधन और सुविधाओं से लैस हम लोग मानते हैं कि जिस रास्ते से चलकर आप जो लक्ष्य प्राप्त करेंगे अगर वो रास्ता ठीक नहीं है तो उसका नतीजा भी सही नहीं हो सकता। इन सब बातों के आधार पर माओवादियों के संगठन में दो–तीन कमियां हैं। एक तो वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा का सहारा लेना चाहते हैं जबकि वास्तव में कोई भी नया समाज या नया इंसान हिंसा के आधार पर नहीं बन सकता। ऐसा समाज बनाने के लिए खुलेपन, करूणाओं के साथ–साथ समग्र का भाव भी होना चाहिए। समाज में व्यापत विषमता के ढ़ांचे को दूर करने के लिए कुर्बानी देनी ही पड़ेगी। समाज में व्याप्त इस असमानता की भावना को दूर करने के लिए गांधी जी ने सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। इस रास्ते पर चलने के लिए सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलना बहुत जरूरी है। हमें भी गांधी जी के बताए रास्ते के आधार पर शांतिमय ढ़ंग से सत्याग्रह आंदोलन चलाना होगा। क्योंकि जीवन का कोई भी क्षेत्र क्योंकि जीवन के किसी भी काम को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए सत्य की खोज करना अनिवार्य है। सत्य की खोज करने के लिए खुद कष्ट झेलने पड़ते हैं। इसलिए गांधीवादी कोई भी नहीं हो सकता है बस केवल गांधी से प्रेरित हो सकते हैं। आप गांधी द्वारा देश भर में किए गए कार्यों से प्रेरणा ले सकते हैं लेकिन आज के समाज में सत्य को समझना और उसके मूल्यों के आधार पर समाज को समझना और उसका जायजा लेना बहुत ही कठिन है। क्योंकि गांधी ने अपने अपने कार्य करने के तरीके को, राजनैतिक, सामाजिक कर्म को इस तरह से परिभाषित किया है कि जिसमें हर धर्म, हर जात और हर व्यापार से जुडे व्यक्ति और उसके सत्य को समझना बहुत ही आवश्यक है।

समाज को समझने और उसे समझाने के संदर्भ में गांधी और मार्क्स के विचारों में कुछ अंतर है जैसे मार्क्सवाद कहता है कि मैं, साइंटफिक सोशलिस्ट हूं वहीं गांधी ऐसा नहीं कहते हैं वो अपनी अंर्तआत्मा की आवाज को सुनते हैं और अपने सभी काम उसी के आधार पर करते हैं इसलिए गांधी में पूंगापंथी संभव नहीं है क्योंकि गांधी जी शरीर की अपेक्षा आत्मा पर विश्वास करते थे और शरीर तो कभी भी नष्ट हो सकता है

लेकिन आत्मा कभी भी नष्ट नहीं हो सकती है इसलिए आज भी गांधीवाद और उसके विचारों को सम्मान मिलता है और अधिक से अधिक लोग उसे अपनाने को तैयार रहते हैं। इसीलिए जिस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना 1934 में हुई और सर्व सेवा संगठन का 1954 में औपचारिक गठन हुआ तो वो केवल मात्र एक शरीर की तरह से ही रही और वह अपने शरीर का धर्म अर्थात खत्म होने का धर्म निभाते हुए धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा है। आज राष्ट्रीय स्तर का ऐसा कोई भी समाजवादी संगठन नहीं है जो गांधी जी द्वारा दिए गए सत्याग्रह के विचार, उनके आधार पर विकास के मॉडल, चुनाव की सीमाओं आदि के बारे में गांधी जी के नजरिए से बात करता हो। आज ऐसा कोई भी संगठन नहीं बचा है जो गांधी जी की इन बातों को मानता हो। आज सर्वोदय के लक्षण तो मौजूद हैं लेकिन यदि मान लिया जाए कि कल को वो संगठन नहीं रहते हैं तो क्या होगा ?

आज स्थानीय स्तर पर समाजवादियों के बहुत से संगठन हैं। आप लोगों में से कुछ लोग पुराने समाजवादियों से मिलकर उत्तराखण्ड के समाजवाद और उसके इतिहास के साथ गांधीवादी राष्ट्रीय इतिहास, समता के संघर्षों के बारे में लिखना चाहते हैं। ये सत्य है कि ये सभी समांतर धाराएं हैं लेकिन हम लोगों के संस्कार ही हमारा काम करने का तरीका हो सकते हैं। गांधी जी ने राजनैतिक कामों को जिस तरह से परिभाषित किया है उसके अनुसार प्रत्येक इंसान में नैतिक उर्जा के साथ सत्य की तलाश की भावना होगी तो वह अपना नाम खोजने के लिए तड़पेगा ही और कुछ न कुछ करेगा। जब हम उस कसौटी से देखते हैं तो आज भारतीय समाज में गांधी विचार के प्रति जितनी स्वीकारता या जैसी परिस्थितियां हैं वह शायद आज से पहले तक नहीं थी। क्योंकि गांधी विचारकों ने मार्क्सवादियों और समाजवादियों से सबसे पहले फर्ज की बात की। गांधी के तरीकों में विनम्रता है, वहीं कम्युनिस्ट और गांधीवादी भी कहते हैं कि हमें ज्ञान है और हम मूर्ख जनता को ज्ञान दे रहे हैं। वहीं समाजवादी कम्युनिस्टों की नकल पर कहते हैं कि हम अगवा हैं और हम क्रांति करेंगे। इस प्रकार अपने–आपको क्रांतिकारी चेतना से लैस बताने के समय में वे गैर गांधीवादी हैं। यदि मैं सीमित अर्थों में कहूं तो दोनों एक ही हैं और अपने–आपको समाज अगवा मानते हैं जबकि गांधी के तरीकों पर चला जाए तो सत्य को खोजने के लिए जो भी अपनी कुर्बानी दे रहा है वो सत्य के दायरे को व्यापक करता चला जा रहा है। वहीं आज के जमाने में जो गुज्जर है वो गुज्जर को एस.पी. बनाना चाहता है। फिर चाहे उससे लाखों–करोड़ों लोगों का नुकसान ही क्यों न हो जाए उससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। जबकि वहीं गांधीवादी प्रक्रिया में ऐसा नहीं है जिस प्रकार आप किसी झील या नदी में कोई पत्थर फेंकते हैं तो पानी में एक बड़ा घेरा बनता है और फिर उस घेरे के भीतर कई छोटे घेरे बनते चले जाते हैं वे घेरे एक घेरे के भीतर कई घेरों से भरा होते

हुए भी सभी घेरे अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं और एक—दूसरे को प्रभावित नहीं करते हैं वहीं गांधीवादी विचारों के अनुसार भी समाज में कई विचार, शक्तियां और रूझान होते हुए भी वो सत्याग्रह नामक एक ही केन्द्र सू जुड़े हुए होते हैं।

मैं सार्वजनिक कार्यों में किसी भी तरह से रुचि नहीं लेता हूं, लेकिन मैं, मोक्ष पाने के लिए सामाजिक कर्मों में रूचि लेता हूं और मुझे विश्वास है कि मोक्ष सत्य की खोज से हो सकता है और सत्य की खोज करने के लिए आखरी आदमी के लिए काम करना होता है। इसी तरह से जो लोग इहलोकवादी, परलोकवादी, ईश्वरवादी ताकतों को न मानते हुए भी अपने—आपको क्रांतिकारी कहेंगे वो मोक्ष के नाम पर अंतिम आदमी के लिए काम करने की बात ही कहेगा। इसी प्रकार गांधी जी ने अंतिम आदमी को अपने केन्द्र में रखा, इस प्रकार यदि आप मोक्ष को नहीं मानते हैं लेकिन सत्य को मानते हैं तो भी आप गांधी जी के नजरिए से सम्मान के पात्र हैं।

इसी के आधार पर हम भी चाहते हैं कि हम लोग अपने काम को करने के लिए सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलें। यदि हममें सत्य और अहिंसा को अपनाने की इच्छा शक्ति होगी तो हम साधनों के पीछे नहीं दौड़ेंगे। दूसरा, आदमी की अपनी अलग पहचान समवर्ती केन्द्र होगा अर्थात कोई भी व्यक्ति चाहे वो आदमी हो, औरत हो, किसी भी जाति, धर्म या कुल में पैदा हुआ हो लेकिन फिर भी वो अपने—आपको एक ही केन्द्र से जुड़ा हुआ महसूस करे या किसी भी तरह से भेदभाव न करते हुए अपने—आपको एक ही देश का हिस्सा तथा मावजाति मानते हुए सबसे घुलमिलकर रहे तो वह व्यक्ति या ऐसे व्यक्तियों का समाज ही उन्नति एवं विकास कर सकता है। क्योंकि ऐसी सोच वाले व्यक्ति ही एक—दूसरे में घुलमिल कर एक—दूसरे की मदद कर सकते हैं।

कुछ लोगों ने अपने—आपको राजनीति के क्षेत्र में स्थापित करने के लिए जाति और धर्मों का सहारा लेकर यह नारा लगाया था कि तिलक, तराजू और तलवार इनको मारो जूते चार। वहीं आज समाज के आधार पर हमारा जो सपना है उसके अनुसार और राजनीति में अपना एक स्थान कायम करने के अलावा समाज के हर वर्ग और खासकर उच्च वर्ग से वोट पाने के लिए उन्हीं लोगों ने अपने नारे को बदला और कहा कि हाथी नहीं गणेश हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। क्योंकि अंबेडकर या दलित आंदोलनों के प्रतीकों में हाथी का महत्व रहने के अलावा जन—जातियों में भी हाथी का महत्व रहा लेकिन आज के लोगों ने हाथी को भुलाकर एक कोने में रख दिया और ब्राह्मणों और अपर कास्ट का वोट पाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश का सहारा लिया। यदि वे लोग पहले ही गांधी जी की बातों पर अमल करते तो न तो उन्हें पहले ऐसी बातें कहनी पड़ती और न ही अपर कास्ट का वोट प्राप्त करने के लिए अपनी कही बातों में सुधारकर अन्य बातें कहनी पड़ती।

आज के समय में मुलायम सिंह या लालू प्रसाद यादव, जैसे नेताओं की जितनी भी समाजवादी या न्यायवादी पार्टियां हैं वे समाज के अंतिम आदमी के बारे में भी सोचना चाहती हैं क्योंकि आज समाज का माहौल ही ऐसा बन गया है कि चाहे कोई नेता समाज के सभी वर्गों की चिंता भले ही न करता हो लेकिन वह समाज के हर वर्ग को अपने साथ जोड़कर चलना चाहता है क्योंकि अभी भी मायावती की ओर से सर्वजन के लिए नारे आए। और मुझे भी लगता है यदि बाकी समाज में जातिवाद कम होगा और हम लोग दलित समाज को बराबरी का हिस्सा और स्थान देंगे तो मुझे लगता है कि इससे बी.एस.पी. जैसी पार्टियों में भी बहुत सकारात्मक परिवर्तन आएंगे। ये लोग केवल संगठन के सहारे पर ही समाज को नहीं बदल सकते हैं। लेकिन क्योंकि यह पार्टी विषमता की अनेकता के खिलाफ सजग है और उस अनेकता के खिलाफ लड़ाई लड़ेगी तो उसमें नैतिक ऊर्जा पैदा होगी।

जब हम लोग बी.एस.पी. को ऊपर से देखते हैं तो हमें वो काफी अवसरवादी पार्टी लगती है। कभी वो कांग्रेस से मिलने के लिए भी तैयार है और कभी बी.जे.पी.से भी मिलने को तैयार दिखती है। इन सब बातों से मैं, सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि इन चीजों को सापेक्ष दृष्टि से देखें तो राजनीति में दलित समाज के लिए जगह नहीं है। अक्सर उन्हें हाशिए पर रखने का प्रयास किया जाता है। राजनीति में इन गरीब, दलित, अल्पसंख्यक समाज को राजनीति में आने के अवसर नहीं दिए जाते हैं। दूसरा समाज में भ्रष्टाचार और अनैतिकता का इतना अधिक बोलबाला हो गया है कि समाज के सबसे कमजोर तबके भी सत्ता पाने का लालच करने लगे हैं लेकिन उन्हें पूरी तरह से सत्ता से बाहर रखा जाता है। इस वजह से उनके मन में सत्ता पाने या सत्ता के माध्यम से समाज को बदलने की भावना जोर पकड़ती रहती है। क्योंकि जिंदा रहने के लिए जिस भी तरह के समझौते करने पड़ते हैं वो भयावह होते जाते हैं। समाज के काबिल तबके समता की बात को मानने लगें, समता में ही नैतिकता देखने लगें तो फिर किसी भी पार्टी की इतनी हिम्मत नहीं होगी कि वह अनीतिवादी ढ़ंग से खड़ी हो सके।

दूसरी बात हमें यह देखनी होगी कि जिस तरह से गांव–गांव में जैसे उत्तराखण्ड को एक पृथक राज्य बनाने के खिलाफ मायावती ने कई बयान दिए थे उसके बावजूद भी उन्हें पहाड़ में आज तक भी वोट मिलता रहता है इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस सब के पीछे एक ही कारण है जब हमारा समाज दलित समाज के अस्तित्व को बनाए रखकर समाज में एक अलगाव पैदा करने की बात करता है उससे मायावती जैसे लोगों को सामाजिक आधार पर वोट प्राप्त होते रहते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि यदि हमारे समाज में समरसता की भावना पैदा हो जाए तो फिर समाज में सकारात्मक सामाजिक प्रवृतियां पैदा होंगी। आज कोई भी पार्टी नैतिकता, ऊर्जा,

सपने और लालच का मिला–जुला रूप हैं। यदि हमें प्रकृति से अपने रिशते को कायम रखना है तो हमें अपनी सभी बातों और सोच के केन्द्र में समता को रखना होगा। अगर हम अपने समाज को समता की इसी सोच से देखेंगे तो तभी हम यह जान पाएंगे कि दिल्ली के फाइव स्टार होटल में कितना पानी खर्च होता है तथा गरीब बस्ती या दलित बहुल बस्ती में जहां अधिकतर दस्ताकार जातियों के लोग रहते हैं उन्हें हम कितना पानी देते हैं। इसी तरह से हम वायु, परिवहन आदि सवालों पर सोच पाएंगे। इस प्रकार हम अपनी मूल गलती को सुधारे बिना पारिस्थितिकीय लोकतंत्र की सीापना नहीं कर सकते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि पारिस्थितीय लोकतंत्र स्थापित करने के लिए समता को कायम करना भी बहुत जरूरी है। यदि हम इसी बात को गांधी के विचारों से कहें तो उसे स्वराज की राजनीति कह सकते हैं। जिसमें एक–दूसरे की सांस्कृतिक अस्मिता का सम्मान करना, सामाजिक जीवन के नैतिक पक्ष का सम्मान करना, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से हटकर बड़े समाज के स्वार्थ के बारे में सोचना आदि। इसे आप आध्यात्मिकता और धर्म भी कह सकते हैं। जिस प्रकार गांधी जी कहते थे कि धर्म को हटाकर राजनीति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है उसी तरह से हमें भी इन सभी चीजों को जोड़कर सार्वजनिक कर्म पैदा करना होगा और इस तरह से पैदा राजनीति स्वराज की राजनीति होगी। इस काम के लिए कोई दल बनाने की आवश्यकता नहीं है। ये बात ठीक है कि यदि कोई व्यक्ति किसी दल के माध्यम से काम करने की इच्छा रखता है तो वह ऐसा कर सकता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सार्वजनिक कर्मों को राजनीति के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है। आप इस तरह की या उससे भी बड़ी सेवा किसी ओर माध्यम से भी कर सकते हैं। आप इसके लिए कोई संस्था या आंदोलन चला सकते हैं लेकिन यदि आपको राज्य शक्ति का चरित्र बदलना है तो उसके लिए स्वस्थ दलों का होना बहुत जरूरी है, लोकतांत्रिक दलों का होना बहुत जरूरी है। जिसमें आखरी आदमी के हाथ में भी कमान होनी चाहिए लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हम सब लोग दल में ही हो जाएं बल्कि हमें अपने–अपने स्तर पर समाज को बदलने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि हम लोग गांधी जी के आदर्शों के अनुसार स्वराज की राजनीति नहीं खड़ी पर पाए हैं जिसमें सांस्कृतिक, सामाजिक तथा विश्वव्यस्था राजनीति जैसे शब्दों की अपनी एक सीमा है। क्योंकि हम गांधी जी की राजनीति के सही उत्तराधिकारी नहीं बन पाए हैं इसलिए राजनीति समग्र ढ़ंग से खड़ी नहीं हो पायी। कोई कहीं किसी छोटे से कोने से काम कर रहा है तो कोई दूसरे कोने से काम कर रहा है इस तरह से। किसी का भी एक साझा संगठन मंच नहीं हैं। इसलिए यदि हम ऐसे में स्वराज की बात करें तो खोखली लगेगी।

मुझे लगता है कि यदि सामाजिक समता तथा सामाजिक लोकतंत्र और जीवन के मूल्यों की बात करना आध्यात्मिक लोकतंत्र है यदि इसमें किसी भी व्यक्ति की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो उसे भी नैतिक होने का अवसर मिलेगा नहीं तो उसे केवल मात्र जीने के लिए भी समझौते करने होंगे। गांधी जी ने अपने ढ़ंग से ऐसी भाषा पैदा की थी, उन्होंने अपने ढ़ंग से ऐसा संदेश दिया कि उन्हें इतने लंबे और इतने टेढ़े–मेढ़े ढ़ंग से अपनी बात करने की आवश्यता ही नहीं पड़ी। सीधी बात दिल और दिमाग तक जल्दी ही पहुंचती हैं। इन सब बातों को शुरू करने का मेरा मकसद सिर्फ बातचीत शुरू करना था। मैं चाहता हूं कि आप मुझसे प्रशन करने की बजाय अपनी टिप्पणियों को संचालक महोदय को दे दें तो ज्यादा अच्छा रहेगा। धन्यवाद !

जगदीश लाल (संचालक महोंदय) : धन्यवाद संचालक महोदय। मेरा ये सौभाग्य है कि मुझे आप जैसे प्रसिद्ध खासकर विजय प्रताप, बाबूलाल जी तथा राधा बहन जैसे लोगों से बहुत कुछ सीखने का मौका मिल रहा है। मेरा नाम जगदीश लाल है, मैं स्वंय एक दलित के रूप में पीड़ा झेलने का भुक्तभोगी हूं। मैं, दिल्ली से आए आप सभी नामचीन व्यक्तियों का स्वागत करता हूं। इस अल्मोड़ा शहर को नवलोकी शहर के नाम से जाना जाता है अर्थात नौलों का शहर। इस शहर में 216 से अधिक नौले हैं लेकिन उनमें से किसी को भी किसी शिल्पकार के नाम से नहीं जोड़ा गया है जबकि वास्तव में उन नौले के जनक वही शिल्पकार ही हैं लेकिन फिर भी इन नौलों में उनका नाम कहीं पर भी नहीं है। आज यहां मौजूद लगभग सभी लोग अंतिम आदमी की बात करते दिखते हैं लेकिन उस आम या अंतिम व्यक्ति की न तो आवाज और न ही उसके ज्ञान को ही कोई महत्व दिया जाता है।

यदि वास्तव में हम उन वंचित तबकों के लिए कुछ करना चाहते हैं तो हमें एक ऐसी विचारधारा और ऐसे विद्वानों की जरूरत है जिसके आधार पर हम अपनी एक साझा समझ बना सकें। मैं अपनी बात को यहीं पर समाप्त करूंगा लेकिन मेरा एक ही सवाल है कि हम उन पिछड़े लोगों को कैसे जीवित करें, उन लोगों तक कैसे पहुंचे। मुझे तो लगता है कि इस तरह का संवाद गांव–गांव होना चाहिए। क्योंकि दिल्ली में बैठकर ग्रामीण या पिछड़े समाज की विषमताओं या विभिन्नताओं को नहीं समझा जा सकता है। किसी शहरी आदमी को गांव से घास काटने के लिए कह दिया जाए तो वह घास के बदले कोई विषैली चीज भी ला सकता है। उसी तरह हम शहर के लोग कोका–कोला तथा पैप्सी जैसी चीजों के बारे में गांव वालों से ज्यादा अधिक अच्छी तरह से जानते हैं उसी तरह से हम गांव तथा दूर–दराज के स्थानों तथा उनकी समस्याओं के बारे में वहां जाए बिना तथा वहां के लोगों से बात किए बिना नहीं जान

सकते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि हमें जन समुदाय में जाने की जरूरत है। धन्यवाद!

बाबू लाल शर्मा : विजय प्रताप जी ने बहुत ही अच्छे ढ़ंग से गांधीवादी विचारों की बात रखी। मुझे विजय जी द्वारा कही गई अंतिम आदमी की बात में अपनी बात भी जोड़ना चाहूंगा। गांधी जी एक अंतिम व्यक्ति की कल्पना करते थे, आज वो अंतिम व्यक्ति एक समूह के अंदर दिखाई नहीं देता है। यदि हम अपने गांव में सबसे कमजोर आदमी के बारे में राय बनाने लगें तो हम इस विषय पर एकमत नहीं हो पाएंगे। इस प्रकार से हमें गांवों के अंदर एक ऐसी सहमति को विकसित करना चाहिए जिससे गरीब एवं सताए हुए आदमी को कुछ राहत पहुंचाई जा सके। आज भी हमारे समाज में पिछड़ों के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं होता है कहीं—कहीं तो पिछड़ा वर्ग खुद पिछड़ों के खिलाफ खड़ा दिखाई देता है अभी राजस्थान में गुज्जरों के बीच हिंसात्मक संघर्ष चला इस संघर्ष में पिछड़े लोग खुद पिछड़े लोगों के खिलाफ ही खड़े थे। हम अपने समाज में पिछड़े वर्ग के लिए काम तो कर रहे हैं लेकिन हम उन्हें किसी भी प्रकार का लाभ नहीं दे पा रहे हैं।

हम उस देश में रह रहे हैं जहां से गांधी जी ने न केवल देश बल्कि दुनिया भर के लोगों को शांति का संदेश दिया उसके बावजूद भी पिछले दिनों दुनिया के 197 देशों की सूची बनाई गई जिसमें भारत 150 वें स्थान पर था जबकि वहीं नार्वे जैसा देश प्रथम स्थान पर था। आखिर हमारे यहां ऐसा क्या हो रहा है कि हम दुनिया में अशांतिप्रिय देशों में गिने जाने लगे हैं। यदि हम इस प्रश्न का जवाब ढूंड़ने के लिए अपने समाज के सबसे छोटे अंग अर्थात गांवों से ही शुरू करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि इस अशांति का कारण हमारे भीतर ही मौजूद है।

दूसरा, विजय जी ने कम्युनिस्ट, समाजवाद, साम्यवाद की बात की, मैं उस संदर्भ में अपनी बात कहना चाहूंगा कि जर्मनी के एकीकरण को 17—18 साल हो गए हैं उसके बावजूद भी आज आप पूर्वी जर्मनी के किसी आदमी से पूछें कि एकीकरण से आपको क्या लाभ मिला तो वह एकदम से जवाब देगा कि वो तो एकीकरण था ही नहीं इसमें तो पश्चिमी जर्मनी को हड़पा। दूसरा, मैं कहना चाहता हूं कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में तो हमें कम्युनिस्ट, समाजवाद तथा साम्यवाद जैसी तीनों बातों में अनिश्चितता ही दिखाई देती है। ये ठीक है कि आज से पहले हमारे पास अस्पताल, बड़े बाजार तथा कारें आदि नहीं थी लेकिन फिर भी उस समय हमारा पेट भरा होता था अर्थात हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं आसानी से पूरी हो जाया करती थी। इस सब बातों को कहने का मेरा अर्थ है कि पूंजीवादी प्रधान अर्थव्यवस्था के कारण

हमारे देश में समान उद्योग और रोजगार नहीं बढ़ पा रहे हैं। वर्तमान व्यवस्था लोगों के कल्याण की बजाय सत्ता हथियाने के प्रति अधिक उत्सुक दिखाई देती है।

जैसा कि विजय जी ने कहा कि एक बार गांधी जी ने हिन्द स्वराज में अपनी बात रखते हुए कहा कि वे लोकतंत्र को वैश्या तथा पश्चिमी विकास को शैतानी सभ्यता का नाम देते थे। आज लोकतंत्र की परिभाषा करते समय कुछ लोग पश्चिम के विकास को ईसाइयत के विकास के साथ जोड़ते हुए सांप्रदायिक रूप खड़ा कर देते हैं अब जहां तक लोकतंत्र को वैश्या कहकर पुकारने की बात है तो गांधी जी ने बहुत सोच–समझकर ही इस शब्द का इस्तेमाल किया। इससे स्पष्ट होता है कि गांधी जी की कही हुई बात काफी मायने तक सही भी है क्योंकि संसदीय लोकतंत्र तो सत्ता को ही संवारेगा और इस लोकतंत्र को संवारने में गांधीवादियों के साथ–साथ समाजवादियों का भी उतना ही हाथ है। लेकिन हम अपने लोकतंत्र को इस तरह कोसते रहने के बाद उसे खत्म तो नहीं कर सकते हैं। और हम में से कोई भी लोकतंत्र को समाप्त कर किसी दूसरी व्यवस्था को लागू नहीं करना चाहेगा। गांधी जी ने स्वराज की कल्पना की थी लेकिन हमें लोगों को ऐसा संदेश देना चाहिए जिससे लोकतंत्र को सुधारा जा सके। मैं बस यही कहना चाहूंगा कि हमारा लोकतंत्र सही है लेकिन उसमें लाखों कमियां मौजूद हैं जिन्हें दूर करने के लिए हमें मिलकर प्रयास करना होगा।

गोपाल कृष्ण : मंच पर बैठे सभी विद्धजनों और और मेरे कई साथियों ने भारतीय दर्शन की बात की है। मैं, उनकी इस बात पर कोई नई बात नहीं कहूंगा बस मैं अपनी इस बात को ऐतिहासिक संदर्भ और भारतीय दर्शन के संदर्भ में कहने की कोशिश करूंगा। भारतीय इतिहास का एक सत्य है इसमें कुछ चीजें दिखाई देती हैं और कुछ चीजें नहीं दिखाई देती हैं और जो चीजें नहीं दिखाई देती हैं उसमें कुछ ऐतिहासिक हिस्से भी होते हैं।

हमें लगता है कि हम आज जिस राजनीतिक और आर्थिक संदर्भ में जिन क्रिया कलापों के साथ जी रहे हैं वो स्थितियां लगभग वैसी ही हैं जैसी कि 1757 में प्लासी के या बक्सर के युद्ध के दौरान हुई थी, क्योंकि उस समय जो बिखराव पैदा हुआ वो कम्पनी राज के रूप में तब्दील हुआ। आज वही कम्पनी राज फिर से हावी हो रहा है। कम्पनी अर्थात ब्रिटिश राज अर्थात ब्रिटिश संसद का साम्राज्यवाद यह वही ब्रिटेन की संसद का सम्राज्यवाद है जिसने 1947 में भारत को स्वतंत्रता एक्ट दिया।

हम आज एक ऐसे समाजवादी देश में रहते हैं जहां हर एक चीज का निजीकरण हो रहा है इतिहास, भूगोल के साथ–साथ संविधान भी दोबार लिखा जा रहा है। उसका संदर्भ यह है कि आजादी से ठीक पहले बाम्बे प्लान बना जिसमें पूंजीपतियों ने बाजार को न छोड़ने की बात की अर्थात वे बाजार पर नियंत्रण करने के

अलावा जल, जंगल और जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों को राज्य के अधिकार में रखना चाहते थे। लेकिन अब वही पूंजीवादी कहते हैं कि इन प्राकृतिक संसाधनों को राज्य के अधिकार से बाहर निकालना चाहिए और वो निकाले भी जा रहे हैं। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है। 1980 तक उन्होंने इसे राज्य के संरक्षण में रखा लेकिन 1980 में जब इंदिरा गांधी वापस चुनकर आयी तो उनकी रैली में जो मुख्य चेहरा दिखाई दे रहा था वो धीरू भाई अंबानी जैसे पूंजीपति थे और ये वही समय था जब जय प्रकाश नारायण को जेल में रखा गया था विड़ल ने कांग्रेस पार्टी को पांच करोड़ का चैक दिया।

ये सब बातें मैं, इसलिए कह रहा हूं क्योंकि आजकल राजनीतिक पार्टियां निगमित फंडिंग से चल रही हैं। इससे स्पष्ट है कि जो भी निगमत क्षेत्र इन पार्टियों को फण्ड देता वो इनके माध्यम से अपना कोई ने कोई स्वार्थ पूरा करना ही चाहेगा। आज दुनिया का सबसे बड़ा प्रोजेक्ट 5 लाख 60 हजार करोड़ रुपए का है जो कि नदी जोड़ने का नहीं बल्कि नदी तोड़ने का प्रोजेक्ट है। ये नदियों को विभाजित कर उनके प्राकृतिक स्रोत्र से बदलकर स्पेशल इकॉनोमिक जोन में ले जाएंगे। वहां ये इस प्रकार के उद्योग लगाएंगे जो जल को जहरीला बना देंगी। आज हमारी लगभग सभी नदियां एक राजनैतिक सर्वसम्मति से प्रदूषित होती चली जा रही हैं। यदि इस काम में राजनैतिक सर्वसम्मति न होती तो हमारी नदियां इस तरह से बर्बाद नहीं हो पाती। आज हमारी राजनैतिक पार्टियां नदियों में फैलते प्रदूषण के प्रति चिंतित होने की बजाय नदियों को स्पेशल इकॉनोमिक जोन में विभाजित करने के प्रति अधिक चिंतित दिखाई देती हैं।

अब देखिए आज जितने भी प्राकृतिक संसाधन हैं उनमें से अधिकतर को स्पेशल इकॉनोमिक जोन का हिस्सा बना दिया गया है लेकिन वहां के उद्योगों में होने वाले उत्पादन के बाद निकलने वाले कचड़े को राजनीतिक, आर्थिक पहले के तहत गरीब बस्तियों में भेजा जा रहा है। गरीबों के साथ होने वाले इस अन्याय के लिए कांग्रेस, भाजपा, सी.पी.आई. जैसी पार्टियां ही जिम्मेदार हैं क्योंकि वो पार्टियां इन उत्पादनों के खिलाफ नजर नहीं आती हैं।

स्पेशल इकॉनोमिक जोन को अक्टूबर 2005 में संसद में पास किया गया और 2006 में इसके लिए कानून बनाए गए। इन क्षेत्रों को देश के अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों से अलग रख फोरनट्रेटरी बना दिया गया है। ये वही राज्य हैं जिनके बारे में सरदार पटेल ने 600 से ज्यादा राजघरानों को जोड़कर भारत बनाया था लेकिन अब वे टूटकर बिखर रहे हैं। इसके अलावा इन स्पेशल इकॉनोमिक जोन पर एक और बात लागू होगी कि इन क्षेत्रों में मुख्य मंत्री या राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भी भारतीय कानून लागू नहीं होगा। आपने देखा ही होगा कि आजकल नेताओं पर भ्रष्ट्राचार के

आरोप लगाए जाते हैं लेकिन गर्वनर उन नेताओं पर मुकदमा चलाने की अनुमति तक नहीं देता है क्योंकि हमारे जल, जंगल तथा जमीन का तो निजीकरण हो ही रहा है लेकिन साथ ही साथ हमारी राज्यसत्ता का भी निजीकरण और हमारी सरकार का पूंजीकरण हो रहा है।

आज हमारे लिए बहुत ही खुशी की बात है कि आज साउथ एशिया के स्तर पर पर्यावरणीय लोकतंत्र की बात हो रही है। हम अपने खुले विचारों को लेकर इन बातों को एक–दूसरे के समक्ष रख रहे हैं। यहां पर्यावरणीय लोकतंत्र के विषय में जितनी भी बातें रखी गई हैं मैं उनसे सहमत हूं क्योंकि स्वंय मैं, भी एक नौजवान संगठन से जुड़ा हुआ हूं जो कि संगठित नौजवान आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करता है। हम मानते हैं कि हम एकजुटता के माध्यम से अपने देश में मौजूद इन समस्याओं का सामना करने के अलावा अपनी देश की स्थिति में सुधार भी कर सकते हैं क्योंकि आज हमारे देश में धर्म तथा जाति के आधार पर ऐसे संगठन भी टूटते जा रहे हैं।

हम अभी तक लोकतंत्र के सवालों पर बात कर रहे थे, मैं इस बात से पूरी तरह से सहमत हूं कि आज हमारे लोकतंत्र में चाहे जितनी भी कमियां हों लेकिन उसके बावजूद भी उसमें कुछ अच्छाइयां हैं हमारे देश के लाखों स्वतंत्रता सेनानियों के कारण हमें स्वतन्त्रता मिली और उसके साथ कई अधिकार भी मिले हैं जिनमें अपनी बात को कहने का अधिकार भी शामिल है जिसके माध्यम से समाज के सताए हुए लोग अपने–अपने तरीकों से रोटी, कपड़ा, मकान और पर्यावरण जैसी मूलभूत सुविधाओं के लिए आंदोलन करते हुए नजर आते हैं लेकिन फिर भी पिछले दिनों ऐसी कई घटनाएं हुईं जिसमें लोगों को शांति और व्यवस्था भंग होने के डर से जलूस निकालने और आंदोलन करने तक की अनुमति नहीं दी गई थी। ऐसी स्थितियों से हमारे देश के लोगों की मानसिक स्थिति बिगड़ रही है तो इस प्रकार ये कुछ ऐसी चीजें हैं जिसका हमें कोई विकल्प नहीं दिखाई देता है।

दूसरा, यहां समाजवादी व्यवस्था के सवाल पर तथा गांधीवादी व्यवस्था के बारे में भी बातें हुई हैं। व्यक्तिगत रूप से मेरा यह मानना है कि दुनिया में कभी भी समाजवाद का एक मॉडल नहीं हो सकता है, वो अलग–अलग देशों में अलग–अलग पिरिस्थितियों के अनुसार विकसित होता रहता है। यह बात सत्य है कि समाजवाद लोगों की बुनियादी सुविधाओं की बात जरूर करता है लेकिन इसके विपरीत पूंजीवाद ऐसा नहीं करता। हम देखते हैं कि पूंजीवाद में अगर आपके पास पैसा है तो आप अपना अच्छा इलाज करवा पाएंगे, अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा सकेंगे। हम गरीब और निम्न जाति के लोगों को आरक्षण दिलवाने के संबध में संघर्ष तो करते हैं लेकिन आज पैसे वालों को ही आरक्षण मिलता है जिसके बल पर वे बडी–बड़ी डिग्रियों

के साथ अच्छी नौकरी भी प्राप्त करते हैं जबकि वहीं गरीब और पिछड़ा वर्ग वहीं का वहीं दिखाई देता है।

समाजवादी व्यवस्था में हम बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन और रहन–सहन के लिए संघर्ष करना और लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की बात की करते हैं। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूं और मुझे भी लगता है कि ये व्यवस्था एक ऐसा समाज दे सकता है जिससे लोगों का भला हो सकता है। क्योंकि आज हम देखते हैं कि पूरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधन अमेरिका के कब्जे में आते जा रहे हैं ऐसा करके अमेरिका अन्य देशों को अपना गुलाम बना लेना चाहता है क्योंकि पूंजीवादी विकास के माध्यम से ही वो अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है। इस बारे में फिडेल कास्त्रों ने बहुत सही बात की है। उन्होंने कहा कि यदि हम विकास की बात ही करें तो हमें चीन जैसे देश की तरह विकसित नहीं होना है क्योंकि वहां जिस तरह से पूंजीवाद विकसित हुआ है उसमें वह अपने देश के सभी लोगों को गाड़ियां मुहैया तो करा सकता है लेकिन फिर वो अपने देश में एक कटोरा धान नहीं उगा सकता है क्योंकि फिर न तो उसकी गाड़ियां बन पाएंगी और न ही गैरेज ही रहेंगे। इस प्रकार जमीन की बात और उससे जुड़े सभी विषयों पर बहस करने की आवश्यकता है।

आज हम एक तरफ तो पर्यावरण सुरक्षा की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर हमने यह नहीं देखा कि हमारी फैक्ट्रियों ने कितनी गाड़ियां बनाईं। एक ओर तो हम अंधाधुंध रूप से गाड़ियां बनाने वाली फैक्ट्रियों को लगाते जा रहे हैं और दूसरी ओर हम पर्यावरण को बचाने की बात भी करते हैं। ये तभी संभव हो पाएगा जब हम समानता से सोचें और बात करें जैसे किसी क्षेत्र को विकसित करने कि लिए यदि किसी क्षेत्र के पेड़ को काटा भी जाए तो उसकी भरपाई के लिए अन्य स्थान पर पेड़ लगा दिया जाए या अपनी आवश्यकताओं को अपने संसाधनों के अनुसार ही तय करें। इस सभी सवालों पर समाज में एकजुटता कायम हो और इन सवालों का जवाब एकजुटता के आधार पर खोजा जाए।

अभी नंदीग्राम का जिक्र आया, इस संबध में मुझे लगता है कि इसके लिए हमारे पश्चिम बंगाल का डी.वाई. एफ.आई. का बहुत बड़ा आधार है। नंदी ग्राम प्रसंग को भी एकतरफा ही लिया जा रहा है। इसमें मीडिया, ममता बैनर्जी, भाजपा और नक्सली ग्रुप आदि सभी पूरी तरह से जुड़े हुए हैं। वहां डी. वाई. एफ. आई. भी सेज जैसे कानून में किसी भी तरह के बदलाव की उम्मीद नहीं रखता है। उन्होंने सेज के लिए 2000 स्कावयर फीट के टुकड़ों में विभाजित किया है। इसके अधीन किसी भी फैक्ट्री को किसी भी हद तक दिये जाने की बात है, लेकिन कई लोगों ने 25 प्रतिशत क्षेत्र में निमार्ण उद्योग और 75 प्रतिशत क्षेत्र में कुछ अन्य उद्योग लगाने की बात का विरोध किया है। दूसरा, यदि हम चीन का उदाहरण लें तो उन्होंने भी आज सेज को मंजूर

किया है लेकिन उसके बावजूद भी आज क्यूबा जैसे ऐसे कितने ही देश हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ रहे हैं। कहते हैं कि साम्राज्यवाद के कारण रूस खत्म हो गया है लेकिन समाजवाद के अंदर जो पूंजीवादी धारा तो आज भी चल ही रही है। कुछ लोग वहां पर भी समाजवाद को खत्म करके उसकी वैचारिका को खत्म करके आगे बढ़ जाना चाहते हैं।

जहां तक नंदीग्राम की बात है तो वहां के मुख्यमंत्री ने बहुत पहले ही नंदीग्राम की भूमि का अधिग्रहण न करने की बात की थी। उनके यह बात कहने के बाद कई पार्टियों ने इस विषय में काफी प्रयास किए लेकिन उस समय ममता बनर्जी शामिल नहीं हुई। इन सब कोशिशों के बाद भी नंदीग्राम में भूमि का अधिग्रहण जारी है। आज लगभग सभी लोग इस समस्या को हल करना चाहते हैं, राजनैतिक रूप से प्रयास किए जा रहे हैं। पार्टी मीटिंग हो गई हैं और लोगों ने ऐलान कर दिया है कि नंदी ग्राम में भूमि अधिग्रहण नहीं होगा। इस संबध बहुत सारे राजनैतिक दल संसद तक में लड़ रहे हैं। हमें उनकी इस कोशिश को सफल करने के लिए उनका साथ देना होगा क्योंकि अकेलेपन से कोई भी लड़ाई नहीं जीती जा सकती है। जैसे एक उदाहरण ही देखिए यू.पी.ए. सरकार के आने के बाद हमने 300 दिन के लिए रोजगार गारंटी बिल की बात की थी लेकिन सरकार और यू.पी.ए. सरकार ने उसमें तमाम संसोधन कर पहले तो ग्रामीण रोजगार गारण्टी बिल तक सीमित रखा लेकिन फिर भी पहली बार सरकार ने कहा कि रोजगार गारंटी नहीं दे सकते, स्वरोजगार दीजिए। हमें पहली बार संवैधानिक गारंटी का ये अधिकार मिला है। इसी प्रकार हम लोगों ने आम जनता के साथ मिलकर सूचना का अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया और आज इसे प्राप्त भी कर लिया है।

इस प्रकार हमें साधारण जनता की समस्याओं को दूर करने के लिए एकजुट होने के साथ उन लोगों की पहचान भी करनी होगी जो पहले से ही इस काम में लगे हुए हैं। जैसे हमें यह देखना होगा कि महिलाओं के आरक्षण के सवाल पर कौन लोग काम कर रहे हैं, असंगठित क्षेत्र की बीमा योजना के सवालों पर कौन लोग संघर्ष कर रहे हैं आदि। इस प्रकार हमें अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए इन सब बातों की जानकारी होनी चाहिए जैसे कि नंदीग्राम के विषय को ही ले लें, नंदीग्राम के विषय में मुख्यमंत्री, भूमि का अधिग्रहण न करने के बारे में बात करते रहते हैं। सेज के सवाल पर वे कहते हैं कि ग्राम पंचायतों के ये अधिकार होने चाहिए जिसमें खुद ग्राम पंचायत यह तय करेगी कि उनके क्षेत्र में कोई उद्योग लगाया जाए या नहीं। वहां के मुआवजे के पैकेट में उन्होंने सिंगूर का नाम लिखा। इस प्रकार इस विषय पर लड़ने के लिए हमें तमाम स्रोतों से प्राप्त जानकारी को संग्रहित रखना होगा। हमें संविधान के आधार पर प्राप्त अपने अधिकारों के बारे में जानकारी होनी चाहिए ताकि जरूरत पड़ने पर हम

उनका प्रयोग कर सकें। हम चाहते हैं कि किसी भी इलाके या राज्य की जनता खुद यह तय करेगी कि उन्हें किस तरह का विकास चाहिए जैसे रोजगार, पर्यावरण और कृषि आदि सवालों पर मंथन करने की जरूरत है।

संचालक : अब मैं, अनिल भाई को मंच पर आमंत्रित करूंगा।

अनिल भाई : यहां उपस्थित सभी भाईयों को मेरा नमस्कार ! यहां दो विषयों पर बात हो रही है हिमालय और स्वराज। हिमालय से हमारा अर्थ है पर्यावरण और उसका विकेन्द्रीकरण। आज का दौर वैश्वीकरण का दौर है और इसमें गैर बराबरी को बढ़ावा दिया जा रहा है। वैश्वीकरण सुनने में बहुत अच्छा लगता है कि पूरी दुनिया के भीतर एक ऐसा संसार बनाना है जहां पर किसी भी तरह का भेदभाव ना हो, ये सुनने में बहुत अच्छा लगता है लेकिन इस सब के पीछे गैरबराबरी और वैश्वीकरण दो बड़े सवाल हैं। वास्तव में दुनिया के अमीर एक जगह पर खड़े हो जाते हैं और गरीब पीछे हट जाते हैं तो इस तरह से विकास के मॉडल, पर्यावरण के सवाल या फिर समतामूलक समाज बनाने के बारे में जो बातें चल रही हैं क्या इनसे एक समतामूलक समाज बन पाएगा या नहीं ? ये एक बड़ा प्रश्न है और मुझे लगता है कि वैश्वीकरण के इस दौर में समतामूलक समाज का निमार्ण कर पाना लगभग असंभव सा है।

यहीं पर मैं, गांधी, लोहिया या अम्बेडकर की बात को उठाता हूं जिसमें उन्होंने समाज में व्याप्त गैर बराबरी को कम करने की बात की। इसके लिए गांधी जी ने ग्राम स्वराज की कल्पना की थी वे पश्चिमी संसदीय व्यवस्था को एक वैश्या मानते थे उनके अनुसार पश्चिम की संस्कृति निश्चित रूप से एक बेहतर लोकतांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। गांधी जी सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। क्योंकि यहां एक ओर तो लोकतंत्र की बात की जाती है और दूसरी ओर सत्ता को केन्द्रीकृत किया जा रहा है। गांधी जी को लगता था कि इस तरह से सत्ता का बहुत बड़ा दुरुपयोग हो रहा है। और आज आपको दिख भी रहा है कि कहने को तो भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है लेकिन जिस तरह से हमारे देश में वैश्वीकरण के दौर में सेज के नाम पर कानून बनाए जा रहे हैं वे संसदीय व्यवस्था में किस तरह के समाज का निमार्ण करेंगे? ये एक सोचनीय प्रश्न है। अभी हमारे एक मित्र ने पूरे देश की नदियों को जोड़ने की बात की लेकिन जिस पानी का बाजारीकरण किया जा रहा है वो स्थानीय लोगों को कैसे मिल सकता है ?

इसी तरह से लोहिया जी ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात तथा चौखम्बा राज की बात की। उनके अनुसार लोकतांत्रिक प्रक्रिया के आधार पर सत्ता को सही ढ़ंग से चलाने के लिए चौखम्बा राज का निमार्ण करना होगा और उसके आधार पर एक ऐसे समाज का निमार्ण करना होगा जिसमें गांव, जिला, राज्य तथा केन्द्र को जोड़कर एक नए राज्य की कल्पना करें। उसी तरह से लोहिया जी ने कहा था कि जाति व्यवस्था

को परिवर्तित करना बहुत ही जरूरी है और जाति के टूटे बिना समाज में बराबरी कायम नहीं की जा सकती है।

आज भी हम समाजवाद की बात करते रहते हैं और ये सत्य भी है कि जब तक समाज में गैरबराबरी रहेगी तब तक समाजवाद भी कायम रहेगा। 1990 में दुनिया भर में मार्क्सवाद और लोहिया के समाजवाद में अंतर किया जाने लगा। लेकिन जब तक समाज में गैरबराबरी रहेगी तब तक समाजवाद का महत्व खत्म नहीं होगा इसीलिए तो दुनिया में साम्यवाद तथा समाजवाद का विचार विद्यमान है। दुनिया भर में जब पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने पांव बढ़ाए तो उन्होंने कहा कि इसके बाद से समाजवाद खत्म हो जाएगा, उनके अनुसार पूंजीवाद से पूरी दुनिया एक नए दौर में आ जाएगी जिससे नए समाज का निमार्ण होगा जिससे समाजवाद का महत्व ही नहीं रह जाएगा लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था जिस तरीके से वैश्वीकरण के आधार पर नए समाज का निमार्ण कर रही है और उसके आधार पर जो प्रक्रियाएं चल रही हैं उन्हें ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि वो समाज को विभाजित कर रही हैं। आज वैश्वीकरण के आधार पर दुनिया के कई देशों के लोगों को राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आधार पर विभाजित किया जा रहा है। इसलिए हम ये मानते हैं कि समाजवाद को समझे बिना गांधी जी के स्वराज के सपने को वास्तविक रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि गांधी जी चाहते थे कि समाज के अंतिम व्यक्ति के हितों को पूरा करने के लिए समाज के अंतिम अर्थात निचले स्तर पर बैठे आदमी के पास सत्ता या राजनैतिक सत्ता पहुंचनी चाहिए इस प्रकार ऐसा करने के लिए समाजवाद का सहारा ही लेना पड़ेगा। लेकिन आज वैश्वीकरण के कारण जिस तरह की व्यवस्था चल रही है उसमें लोगों को विकास का सपना दिखाकर विभाजित किया जा रहा है। लेकिन हमें उसके पीछे छिपी सच्चाई का पता लगाना होगा क्योंकि ये केवल मात्र विकास का एक सपना है। जिसके माध्यम विकास की बजाय विनाश ही होगा।

इस प्रकार हमें विकास के एक ऐसे मॉडल की बात करनी होगी जिसमें एक ऐसे समाज का निमार्ण करना होगा जिसमें सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक आधार पर गैरबराबरी ही कायम हो। हम गांधी, लोहिया या अम्बेडकर के सिद्धान्तों के आधार पर समता मूलक समाज का निमार्ण कर सकें। हमें विकास के एक ऐसे मॉडल का निमार्ण करना होगा जिसमें पर्यावरण को बचाने के साथ–साथ विकास भी किया जा सके।

संचालक : धन्यवाद अनिल भाई जी। अब मैं दयाकृष्ण काण्डपाल जी को आमंत्रित करूंगा।

दयाकृष्ण काण्डपाल : उपस्थित साथियों को मेरा नमस्कार। मैं कोई विद्यान नहीं हूं बल्कि एक जिज्ञासु हूं और आप लोगों से एक सवाल करना चाहता हूं कि जब हम

लोग पैदा हुए तो कितने लोगों को पता था कि हम ब्राह्मण के घर पैदा हुए हैं, क्षत्रिय के घर पैदा हुए हैं या फिर किसी शुद्र के घर पैदा हुए हैं ? स्पष्ट है कि उस समय हममें से किसी को भी इस बारे में पता नहीं रहा होगा लेकिन जैसे–जैसे हमारी उम्र बढ़ती गई हमें हमारे माता–पिता, आस–पड़ोस या अन्य रिश्तेदारों से खुद अपने ही धर्म तथा जाति के बारे में ज्ञान हुआ। हमें पता चला कि हमें कुछ लोगों को छूना नहीं है तथा कुछ लोगों को छूना भी नहीं है। कॉलेज में जाने के बाद हमारी राजनैतिक सोच शुरू हुई और फिर वोट के सौदागर आए। हिन्दू को हिन्दू को वोट देने की सलाह दी गई, मुसलमान को मुसलमान को वोट देने की सलाह दी गई इसी तरह भिन्न जाति वालों को उन्हीं की जाति के नेताओं को जिताने की बात की जाती थी। लेकिन इससे किसी का भला हुआ है तो वो केवल नेता का हुआ है आम आदमी तो आज भी वहीं है जहां वो पहले था।

मैंने उत्तराखण्ड के धारचूला तथा मुनस्यारी जैसे कई इलाकों में जाकर देखा आज भी वहां के विभिन्न क्षेत्रों में जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता है। आरक्षण के कारण पिछड़ी जाति के कई लोगों ने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ऊंचे ओहदे तक प्राप्त कर लिए हैं लेकिन वहीं अन्य लोगों के हालात आज भी वैसे के वैसे हैं। राजनीति के बारे में गांधी जी का अपना एक मॉडल वे समाज में बराबरी कायम रखने की बात करते थे लेकिन आज नोटों की मदद से वोट प्राप्त करने की राजनीति के हावी होने के कारण हमारे देश के आम आदमी का नुकसान ही हो रहा है।

मैं एक विद्यार्थी हूं और अपने आस–पास होने वाली घटनाओं से ही सीख रहा हूं और इन सब चीजों को देखकर मुझे लगता है कि समाज में व्याप्त इन समस्याओं का कारण तथा इनका समाधान भी इसी समाज में मौजूद है। इसलिए हमें मिलजुलकर इस समस्या का समाधान निकालना चाहिए लेकिन फिर भी समाज में मौजूद कुछ गाइड़ों के कारण हमें गुमराह कर दिया जाता है और हम उनके बहकावे में आकर अपने तथा अपने समाज का नुकसान करते चले जाते हैं। इस स्थिति से बचने के लिए हमें एकजुट होने के साथ–साथ स्वंय शिक्षित करना तथा समाज को भी शिक्षित करने का प्रयास करना चाहिए ताकि हम अपने प्रतिनिधित्व का चुनाव करते समय अच्छी तरह से सोचविचार करने के बाद ही किसी अच्छे या सम्पूर्ण समाज के भलाई के लिए काम करने वाले व्यक्ति का ही चुनाव करें। धन्यवाद !

संचालक : दयाकृष्ण जी आपका धन्यवाद ! अब मैं गोपाल जी को आमंत्रित करूंगा।

गोपाल दा : आदरणीय साथियों को प्रणाम। अभी दयाकृष्ण जी ने बहुत सारी बातें रखी, उनकी बातें सुनने के बाद मैं, कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं कर पा रहा हूं।

यहां गांधी जी के बारे में भी बातें हुई हैं उन्होंने किसी सभा में यह सवाल उठाया कि क्या आर्थिक उन्नति ही वास्तविक उन्नति है ? आज भी ये प्रश्न हमारे सामने वैसे का वैसा ही खड़ा है और जहां तक आधुनिकता की बात है गांधी जी ने हिन्द स्वराज नाम की अपनी पुस्तक में पांच आयाम गिनाए जिसमें उन्होंने स्वास्थ्य प्रणाली, न्याय प्रणाली और स्वस्थ राजनीति की बात की लेकिन आज की स्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे हमारे ऊपर अर्थव्यवस्था ही हावी हो गई है।

अभी कुछ लोगों ने कहा कि आज हम कहीं न कहीं फंसे हुए हैं। एक तरफ तो हमें ढ़ेर सारी सुविधाएं चाहिए और दूसरी ओर हम लोग इसका विरोध भी करेंगे। आज के दिन जब हम लोग समाज परिवर्तन, समाज में मौजूद गैरबराबरी और उसको कम करने के बारे में सोचते हैं इससे स्पष्ट है कि आज भी हमारे समाज में प्राचीन व्यवस्थाएं ही चल रही हैं। आपका अर्थतंत्र मॉर्डन हो गया है उससे जो आदमी समाज के आखरी पायदान पर बैठकर शोषित हो रहा है वह अब और ज्यादा शोषित होता जा रहा है। तीसरी बात हम लोग राजनीति की बहुत बात करते हैं कि राजनीति में परिवर्तन हो जाए, स्वस्थ प्रणाली आ जाए तो बहुत भला हो जाएगा।

जैसा कि आप सभी को दिखाई दे रहा है कि आज चाहे वो कोई स्थानीय, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय पार्टी हो वो लोगों की वर्तमान सुविधाओं के बारे में सोच रहे हैं। जैसे आपके पास पानी का नल नहीं है वो नल दे देते हैं आपके पास बिजली का बल्ब नहीं है तो वो आपको बल्ब दे देते हैं। आज के दिन कुल मिलाकर राजनीति का अर्थ सुविधाएं देना हो गया है। आज के दिन सुविधाओं के आदान–प्रदान का नाम राजनीति हो गया है तो उससे राजनीति का वही हर्ष होना है जो आज के दिन हो रहा है और यदि हम सोचें कि हम इसमें घुसकर एक बड़ा परिवर्तन कर पाएंगे तो इससे एक बड़ा द्वंद पैदा हो जाएगा।

मैं आखरी बात कहना चाहता हूं कि हम लोगों में से कई लोग यह कहते हैं कि वे गांधीवादी विचारधारा से बोल रहे हैं, अंबेडकर विचारधारा से बोल रहे हैं तो मुझे लगता है कि हम सभी को यह देखना चाहिए कि कौन सी विचारधारा हमें क्या विचार दे रही है और उस विचार की हमारे आज के समाज में क्या उपयोगिता है आदि। इसका मूल्यांकन होना चाहिए कि कौन सी विचारधारा हमारे समाज में समता बनाए रखने और हमारे आर्थिक तंत्र को सुदृढ़ बनाने में मदद कर रही है। मुझे लगता है कि इस विषय में कौन सी विचारधारा क्या कहती है आदि बातों पर बहस करने की बजाय हमें वर्तमान समय में अपने समाज की उपयोगिता के अनुसार समाज की भलाई के बारे में सोचना होगा। धन्यवाद !

संचालक : धन्यवाद गोपाल जी ! हमारे बीच अन्य कई वक्ता भी मौजूद हैं। अब मैं, राधा बहन को आमंत्रित करूंगा।

राधा बहन : सत्र में अभी तक जिस राजनीति या दलगत राजनीति की बात हुई है उसमें अभी तक मेरा प्रवेश नहीं है। लेकिन उसमें जो समाज या मानव का तत्व आया है उसको मैं समझती हूं और मुझे लगता है कि यदि समाज या मानव का तत्व ऊपर उठ जाए तो समाज या देश में मौजूद बहुत सारी समस्याएं अपने–आप ही समाप्त हो जाएंगी। लेकिन मुझे तो लगता है कि आज हमारे देश में समाज नाम की चीज तो जैसे खत्म सी हो गई है।

अभी कुछ लोगों ने जाति की बात, आर्थिक रूप से कमजोर लोगों की बात और दलित वर्ग आदि की बात की। लेकिन मुझे लगता है कि चाहे समाज में कितना भी कमजोर व्यक्ति क्यों न हो सरकार उसे मजबूत करने का काम नहीं कर सकती वो तो समाज ही कर सकता है। समाज ने अपने को बदला नहीं है तो जब तक समाज नहीं बदलेगा तब तक सरकार की सुविधाएं किसके पास जाएंगी और किसके पास जाएंगी इसका पक्का निर्णय नहीं किया जा सकता। मुझे ऐसा लगता है कि सरकार और राजनीति या राजनीतिक दल और समाज आदि बातों को अलग–अलग और अच्छी तरह से समाज को समझकर सुस्पष्ट करने की आवश्यकता है और समाज का अर्थ अलग–अलग समुदाय नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के अलावा पेड़–पौधे और जीव–जन्तु आदि भी शामिल हैं क्योंकि इन सब तत्वों के बिना समाज बन ही नहीं सकता है। यदि समाज को जीवित रखना है तो मानव के साथ–साथ जीव–जन्तुओं, नदी, नालों और पहाड़ों आदि के बारे में भी सोचना होगा। इसके अलावा जब हम मानव समाज की बात करते हैं तो उसमें मैं, कुल मानव समाज की बात करती हूं।

मैं, जिस समाज की बात करती हूं वो राजनीति से ऊपर होता है क्योंकि जब वो राजनीति से ऊपर होगा तभी तो वह राजनीति को संभाल सकता है। मुझे लगता है कि आज हमें समाज को खड़ा करने के बारे में सोचना चाहिए क्योंकि जब तक समाज मजबूत नहीं होगा तब तक लोकतंत्र भी मजबूत नहीं होगा और न ही उसके अंदर समानता आ पाएगी।

आज मैं जिस लोकतंत्र की बात कर रहा हूं वो बहुमत पर चलता है। आजकल बहुमत के आधार पर सरकारें बनाई जाती हैं लेकिन आज चुनावों के नतीजे आते ही पता चलता है कि कहीं 51 प्रतिशत वोट पड़ा तो वहां 60 का बहुमत माना जाएगा और उस बहुमत में 60 प्रतिशत लोगों ने किसी पार्टी विशेष को चुना लेकिन 40 प्रतिशत लोगों ने तो उसका विरोध किया। तो इस प्रकार जिसे हम बहुमत कहते हैं और जिसके आधार पर वर्षों से सरकार चला रहे हैं वास्तव में वो बहुमत तो है ही नहीं। इस देश में तो अल्पमत से भी अल्पमत है क्योंकि सभी लोग तो वोट देने जाते ही नहीं हैं और उसमें भी बहुमत की मात्रा 40 प्रतिशत, 50 या 60 प्रतिशत हो तो उसका भी

कुछ अर्थ नहीं रह जाता है। इस तरह से बना हुआ लोकतंत्र समाज को जोड़ने की बजाय उसे तोड़ता ही रहेगा फिर समता लाने या गैर बराबरी की बात तो बहुत दूर है।

इस प्रकार मुझे लगता है कि हम इस गोष्ठी में समतापूर्ण समाज लाने और 100 प्रतिशत लोगों का भला करने की बात करते हैं। इसीलिए हम चाहते हैं कि सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हों। विकास की बात करने से पहले सौ प्रतिशत लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने की बात करनी चाहिए। समता का अर्थ है सभी लोगों को समान वस्तुएं तथा सुविधाएं प्राप्त हो। जब आप समता की बात करते हैं तो सबको एक किस्म का खाना, एक किस्म का कपड़ा, एक किस्म का मकान, एक किस्म की शिक्षा और एक ही किस्म की स्वास्थय व्यवस्था मिलनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसी गरीब आदमी को कैंसर है तो वह बिना इलाज के ही मर जाए और कोई अमीर आदमी किसी छोटी सी बीमारी के लिए भी विदेश जाए, तो इस तरह से समता कायम नहीं हो सकती और इसे लोकतंत्र भी नहीं कह सकते हैं।

इसलिए मैं, न तो गांधी का नाम लेना चाहती हूं और न ही किसी और का नाम ही लेना चाहती हूं लेकिन मैं ये कहना चाहती हूं कि आज इस देश में हमारे पास जितनी जनसंख्या है क्या हम उन सभी को ऐसी व्यवस्था दे सकते हैं जिसमें किसी की कोठी न भी बने लेकिन हर किसी को सर छुपाने के लिए एक छत हो, रात बिताने के लिए बिस्तर हो तथा हर किसी को खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य की व्यवस्था तथा शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएं उपलब्ध हों। ऐसा न हो कि कोई स्कूल ही न जा पाए और किसी को विदेशों में शिक्षा मिलती रहे इसलिए हमें ऐसे लोकतंत्र को समझने और उसे स्थापित करने के बारे में सोचना चाहिए ऐसे लोकतंत्र की स्थापना में यदि गांधी, लोहिया या अंबेडकर के विचार सहायक हो सकते हैं तो उसे अपनाइए और इनके अलावा किसी और व्यक्ति के विचारों का प्रयोग किया जा सकता है तो करें। लेकिन इस देश के विकास का मॉडल बनाने के लिए यहां की जनसंख्या, संसाधन आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

मुझे तो लगता है कि विकास का ऐसा मॉडल बनाने के लिए पढ़े–लिखे लोगों की अपेक्षा अनपढ़ लोग ज्यादा मददगार साबित हो सकते हैं क्योंकि उन्हें जीवन के बहुत से अनुभव तथा बुद्धिमता है। मैं उत्तराखण्ड के संबध में ही बात करती हूं कि वहां के संसाधन दिन–प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे हैं। इसमें हमारे देश तथा विदेशी सरकार के अलावा आम नागरिक भी दोषी हैं। इसलिए हमें इस समस्या के कारणों के साथ उनके समाधान के बारे में भी बात करनी चाहिए। उत्तराखण्ड के संबध में देखें तो यहां की नदियां सूख रही हैं, पानी की लूट हो रही है उसपर डकैती डाली जा रही है। हमारे यहां दो तरह की नदियां हैं एक तो हिमनदी से निकलती है और दूसरी ग्लेशियरों से। ये नदियां न केवल उत्तर भारत को बल्कि लगभग सम्पूर्ण देश को भी

जिंदा रखती हैं। यदि यमुना या गंगा नहीं है तो पूरा यू.पी., पूरा बिहार तथा बंगाल तक सूखा हो जाएगा। देश में पानी की कमी की समस्या हमारे उत्तराखण्ड से शुरू हो रही है। ग्लेशियर पीछे हट रहे हैं और तेजी से बढ़ते चले जा रहे हैं। उनकी इस तरह से पीछे हटने की गति जो आज से दस साल पहले थी वो अब तिगुनी या चौगुनी होती जा रही है क्योंकि पृथ्वी का तापमान बढ़ने से वो पिघल रहे हैं और पीछे हटते जा रहे हैं। दूसरी ओर जिन नदियों के पानी के ऊपर बांध बन रहे हैं उनके बनाने वाले यह कोशिश करते हैं कि इनके कारण से लोगों को विस्थापित न करना पड़े लेकिन इन बांधों के टनल गांव के नीचे से ही जा रहे हैं जिसके कारण उत्तराखण्ड में उत्तरकाशी में बहुत बुरा असर पड़ रहा है और निरन्तर इस तरह के बांध बनते रहने के कारण हमारे उत्तराखण्ड के कई गांव पूरी तरह से बर्बाद होते चले जा रहे हैं। और ऐसी स्थिति में आप कह रहे हैं कि अंतिम आदमी के बारे में तथा उसकी सुरक्षा और उसकी बुनियादी सुविधाओं के बारे में सोचो लेकिन मुझे लगता है कि ऐसी व्यवस्था से अंतिम आदमी तो क्या उसके ऊपर वाला व्यक्ति भी सुरक्षित नहीं हो सकता।

आज तो हमारे उत्तराखण्ड में कई नदियों में बांध बनाए जा रहे हैं और वहां की नदियों पर भिन्न–भिन्न तरह के काम किए जा रहे हैं लेकिन जिन नदियों में अभी हिम जमा हुआ है उनमें अब धीरे–धीरे पानी आ रहा है और वे पिघलते जा रहे हैं। लेकिन मैं, पूछती हूं कि क्या 12–15 साल बाद भी क्या ये बांध इसी तरह से चलने वाले हैं ? जब ग्लेशियर पीछे हट जाएंगे और बर्फ कम हो जाएगी तो इन नदियों के सामने एक समस्या खड़ी हो जाएगी। इसी प्रकार कोसी जैसी अन्य नदियां जो कि सामान्य पर्वत श्रेणियों से निकलती हैं उनका जलस्तर भी दिन–प्रतिदिन कम होता जा रहा है। जब हमने महिलाओं से कहा कि आज से 10–12 साल बाद आपकी यह नदी सूख जाएगी तो उन्होंने बड़े ही अफसोस से यह कहा कि ये तो हमारी जीवन दायनी नदी है और अगर ऐसा हुआ तो हम जिंदा नहीं रह पाएंगे इसलिए वहां की महिलाओं ने जंगलात को आरक्षित रखने का बीड़ा उठाया। उन्होंने तय किया कि हम वहां से बांज की पत्तियां नहीं लाएंगे, हम अपने पशुओं को कष्ट से पालेंगे लेकिन फिर भी अपने जंगलों को बचाकर रखेंगे। उन्होंने कहा था कि हम अभी तक कच्ची लकड़ी लाते थे लेकिन अब हम ऐसा नहीं करेंगे और लकडियों को सुरक्षित रखने की बजाय जरूरत पड़ने पर सूखी लकड़ी ही लाएंगे। हम इन जंगलों को आग से बचाने के लिए इसकी पहरेदारी करेंगे और यदि आग लग भी गई तो हम जंगलात वालों के साथ–साथ खुद भी आग बुझाने में मदद करेंगे। उन्होंने कहा कि हम अपने जंगलों से होने वाली लकड़ी की चोरी को भी रोकने का हर संभव प्रयास करेंगे। ये उन महिलाओं का एक बहुत बड़ा निर्णय था जिसके कारण आज ऐसे पचास–पच्चपन महिला मंडलों संगठित हो गए हैं।

इस प्रकार से मेरा यह कहना कि त्याग के बिना विकास नहीं हो सकता। और आज विकास की अवधारणा में त्याग और संयम जैसी चीजों का नामो–निशान नहीं है। आज लोभ का उन्माद पैदा करना, काम का उन्माद पैदा करना आदि को ही विकास से जोड़ा जाने लगा है। आज लोग सादगी में रहने की बजाय भोग–विलास का जीवन बिताना चाहते हैं संयम और त्याग का रास्ता बहुत पुराना होता जा रहा है जिसके कारण आज होने वाला विकास, विकास की अपेक्षा विनाश साबित हो रहा है। अतः हमें अपने इस विनाश के लिए एकजुट होकर कई ठोस कदम उठाने होंगे।
धन्यवाद !